

संवर्ग- 1

इकाई- 1 : आत्माराम

(मुंशी प्रेमचन्द)

संरचना

- 1.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 1.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 1.2 सारांश

1.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “शाम तक यही हाल रहा। तोता कभी इस डाल पर जाता, कभी उस डाल पर। कभी पिंजड़े पर आ बैठता, कभी पिंजड़े के द्वार पर बैठ अपने दाना-पानी की प्यालियों को देखता और फिर उड़ जाता। बु । अगर मूर्तिमान मोह था, तो तोता मूर्तिमयी माया। यहाँ तक कि शाम हो गयी। माया और मोह का वह संग्राम अन्धकार में विलीन हो गया।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश प्रेमचन्द द्वारा विरचित ‘आत्माराम’ कहानी से उद्धृत है। महादेव गंगाराम नामक तोते को बहुत प्यार करता था। एक दिन अचानक किसी लड़के ने महादेव का तोता पिंजड़ा खोलकर उड़ा दिया। वह कभी इधर कभी उधर बैठता और महादेव उसे पकड़ने के लिए दौड़ता रहता। प्रस्तुत अंश में उसी क्रिया कलाप का वर्णन करते हुए लेखक ने स्पष्ट किया है कि

व्याख्या—शाम तक यही क्रम चलता रहा। तोता इधर-उधर उड़कर एक से दूसरे डाल पर चला जाता और महादेव उसका पीछा करता। तोता कभी डाल से उतर कर पिंजड़े पर आकर बैठ जाता और कभी पिंजड़े के द्वार पर बैठकर उन पात्रों देखता जिनमें उसे दाना-पानी दिया जाता था। थोड़ी देर इस प्रकार बैठकर वह फिर उड़ जाता था। बूढ़े महादेव को तोता प्राप्त करने का मोह था। अत्यधिक मोहग्रस्त वह साक्षात् मोह ही जान पड़ता था। दूसरी ओर तोता उसी प्रकार उससे दूर भाग-भागकर उसे लुभा रहा था, जिस प्रकार माया मन को अपनी ओर आकृष्ट किये रहती है। इस दृष्टि से तोता मनो साक्षात् माया ही था। दोनों का यह क्रम संध्याकाल तक चलता रहा। जब अन्धकार हो गया और कुछ दिखाई न पड़ा तब दोनों ने भाग-दौड़ बन्द कर दी।

विशेष—लेखक ने प्रत्यक्षतः तो तोता और उसके मालिक महादेव का वर्णन किया है परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उसने माया के प्रति मनुष्य के जबरदस्त आकर्षण का परिचय कराया है। इस प्रकार वर्णन में भी दार्शनिकता का पुट आ गया है। लेखक ने बताना चाहा है कि मनुष्य मृत्यु-पर्यन्त माया के पीछे दौड़ता रहता है और बिहारी के मृग की तरह मायाजाल में उलझता ही जाता है—‘ज्यों-ज्यों सुरभि भन्यो चहत त्यों-त्यों अरु उरझत जात।’

- 1. वर्णन में अलंकार और प्रतीकात्मकता हैं।
- 2. तोता माया का प्रतीक है और अन्धकार मृत्यु का।
- 3. गद्यांश की भाषा में विषय के अनुरूप गम्भीरता है।

(2) “यह बोल सदैव महादेव की जिह्वा पर रहता था। दिन में सहस्रों बार ये शब्द उसके मुँह से निकलते थे, पर उनका धार्मिक भाव कभी भी उसके अन्तःकरण को स्पर्श नहीं करता था जैसे किसी बाजे से राग निकलता है, उसी प्रकार उसके मुँह से यह बोल निकलता था, निरर्थक और प्रभाव-शून्य। तब उसका हृदय रूपी वृक्ष पत्र-पल्लव विहीन था।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में रट लगाने वाले महादेव के स्वभाव, मंत्र व उसके अज्ञान पर प्रकाश डाला गया है। जिस मन्त्र का जप महादेव के मुँह से होता रहता था, उसकी प्रभावहीनता, व्यर्थता और कमी पर प्रकाश डालते हुए लेखक कहते हैं कि—

व्याख्या—महादेव अपनी जिह्वा से सदैव ‘सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता’ का मन्त्र रटा करता था। दिनभर में हजारों बार ये शब्द उसके मुँह से निकलते थे परन्तु उन शब्दों का जो भाव था, उसका उसके हृदय से कोई तालमेल नहीं था। महादेव के हृदय में ईश्वर के लिए कोई

स्थान नहीं था। 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' आदि शब्द उसी प्रकार व्यर्थ और निरर्थक होता था, जिस प्रकार किसी बाजे से कोई राग तो निकलता है, परन्तु उसका अर्थ समझ में नहीं आता है। अभिप्राय यह है कि महादेव शब्दों को तो दुहराता रहता था, वह स्वयं तो उनका भाव भी नहीं समझता था। जिस प्रकार पत्तों रहित वृक्ष हवा से भी किसी प्रकार की भराहट नहीं कर पाता उसी प्रकार 'सत्त गुरुदत्त' मन्त्र की रट से उसके हृदय में अच्छे भाव उत्पन्न नहीं हो पाते थे।

विशेष—जिस प्रकार पत्तों के अभाव में हवा पेड़ से गुंजार उत्पन्न नहीं कर पाती, उसी प्रकार मोहरें मिलने से पहले महादेव के मन में "सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता" इस मन्त्र से कोई स्फूर्ति संचारित नहीं होती थी। धनाभाव में ईश्वर के निमित्त कथा, पुराण सुनने आदि के लिए भी समय न दे पाता था। धन प्राप्त होने पर ही मन्त्र के भाव पर अमल करने का प्रयास आरम्भ हुआ। ठीक उसी प्रकार, जिस वृक्ष के पल्लवित होने पर ही हवा के स्पर्श से गुंजार (मर्मर ध्वनि) निकल करती है।

भाषा-शैली आलंकारिक है। लेखक ने बताया है कि भाव को समझे और उस पर अमल किये बिना तोता की तरह सम नाम रटते रहना व्यर्थ है।

1.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. 'आत्माराम' शीर्षक कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखकर उसका उद्देश्य बताइए।

उत्तर—नायक महादेव सुनार का परिचय—प्रेमचन्द जी की 'आत्माराम' कहानी एक पारिवारिक कहानी होते हुए भी जीवन के विभिन्न पहलुओं का स्पर्श किये हुए है। वेदोग्राम का महादेव सुनार अपनी अंगीठी पर खटखट किया करता था। उसके पास आत्माराम नाम का एक तोता था। तोते को वह हर समय अपने पास रखता था और उसको 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' बुलवाने का प्रयास करता था। महादेव पहले विख्यात सुनार था लेकिन अब उसकी आर्थिक स्थिति काफी कमजोर है।

पारिवारिक जीवन—महादेव के परिवार में उसके बेटे, पोते आदि सभी रहते थे किन्तु घर में उसे अब कोई महत्त्व नहीं देता था। उसे कई बार भूखा ही रहना पड़ता था। लेकिन वह हिम्मत नहीं हारता था। उसके बेटे और पोते कामचोर थे। महादेव ईमानदारी से काम करता था लेकिन गाँव वाले फिर भी उसे शक की नजर से ही देखते थे।

तोते का उड़ना—एक दिन किसी ने तोते का पिंजरा खोल दिया और तोता उड़ गया। महादेव इससे बहुत दुःखी हुआ। वह तोते के पीछे दिन भर दौड़ता रहा लेकिन तोता वापस पिंजरे में आकर नहीं बैठा। तोता गाँव के बाहर जंगल में एक पेड़ पर बैठ गया। महादेव दिनभर भूख-प्यास सहन करके भी वहीं बैठा रहा और वहीं उसको रात हो गई लेकिन वह घर नहीं लौटा क्योंकि उसे तोते से बहुत प्यार था।

चोरों से भेंट—आधी रात बीत गई। अचानक थोड़ी दूर पर आहट हुई। उसने कुछ लोगों को चिलम पीते हुए देखा। उसका मन भी मचल गया। वह जोर से बोला 'सत्तगुरुदत्त शिवदत्त दाता' उसकी आवाज सुनते ही वे लोग भागे। उसने समझ लिया कि वे चोर थे। इसलिए वह फिर चिल्लाया 'चोर, चोर पकड़ी' चोर भाग गये।

धन-प्राप्ति—महादेव को उनके स्थान पर एक कलश मिला, उसमें सोने की मोहरें भरी हुई थी। महादेव का दिल बल्लियों उछलने लगा। उसने मन ही मन कई रंगीन कल्पनाएँ कर ली।

महादेव की धार्मिक भावना—सुबह अंधेरे में तोता भी पिंजरे में आकर बैठ गया। महादेव चुपचाप घर लौट आया। मोहरों को उसने छिपा लिया और फिर चह नहा-धोकर पण्डित जी के घर गया। पण्डित जी उसे देखते ही बिगड़ गये। जब उसने पण्डित जी को अपने घर सत्यनारायणजी की कथा का न्यौता दिया तो वे आश्चर्य के साथ खुश हो गये। महादेव ने उस दिन गाँव के सब लोगों को भोजन का निमन्त्रण दिया।

आत्माराम की समाधि—महादेव सुनार के आस-पड़ोस के गाँवों में आये उपस्थित सभी सज्जनों से अपने द्वारा की गई भूलों के सम्बन्ध में क्षमा-याचना की। इतना ही नहीं, उसने सबको एक महीने का समय दिया, जिससे यदि उसमें किसी का हिसाब किताब बाकी हो तो वे बिना किसी गवाह या प्रमाण के आकर ले जायें। इतना ही नहीं, उसने शराब पीना छोड़ दिया। सगे-सम्बन्धियों से सम्बन्ध अच्छे बना लिये। साधु-सन्यासियों का यथोचित स्वागत करना प्रारम्भ कर दिया। विशाल मन्दिर और उसके पीछे एक तालाब का निर्माण कार्य करवाया। तोते आत्माराम के परलोक सिंघार जाने पर महादेव ने उसकी स्मृति में एक विशाल समाधि बनवायी और स्वयं साधुओं के साथ हिमालय की ओर चल पड़ा और फिर वहाँ से कभी लौटकर नहीं आया। उस तालाब और समाधि के विषय में वहाँ मनुष्यों के बीच अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

आत्माराम कहानी का उद्देश्य—कोई भी कहानी लिखने से पूर्व प्रत्येक कहानीकार कोई न कोई उद्देश्य निर्धारित करता है और फिर उस उद्देश्य के आधार पर कहानी लिखता है। प्रस्तुत कहानी 'आत्माराम' में इसी प्रकार प्रेमचन्दजी ने इस कहानी के माध्यम से मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करने का प्रयत्न किया है। पाश्चात्य विद्वान् 'यूरोपिडीज' ने कहा है कि— 'दरिद्रता में सबसे बड़ा रोग यह है कि वह अभाव के माध्यम से व्यक्ति को बुराई करना सीखा देती है।' आत्माराम कहानी का नायक महादेव सुनार भी अभावों से ग्रस्त रहने के कारण अपने व्यवसाय में यथासम्भव बेईमानी करके अपना भरण-पोषण करता है। वह अपने नाती-पोतों से भी इसीलिए प्यार नहीं करता कि उनकी चुलबुल से उसके कार्य करने में बाधा पहुँचती है। फिर महादेव सुनार को शराब पीने की बुरी लत पड़ी हुई थी। ऐसी स्थिति में उसके लिए पैसे जुटाने के लिए भी उसे अनुचित ढंग से धन कमाना पड़ता था। जीवन के जिस अन्तिम चरण में लोग अपना समय भगवान की भक्ति या शान्ति प्राप्ति में व्यतीत करते हैं, उस अवस्था में भी उसे दिन-रात कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार प्रेमचन्दजी ने मनोवैज्ञानिक सत्य के पहले पक्ष को उजागर करते हुए कथा के पहले अंश में यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि अभाव मनुष्य को अनुदार, संकीर्ण और आत्म-केन्द्रित बना देता है और मजबूरन उसे गलत राह पर चलने को बाध्य कर देता है।

प्रेमचन्दजी ने इस कहानी के उत्तरार्द्ध में महादेव सुनार को दैविक चमत्कार से रातों-रात मालामाल करके उसका हृदय-परिवर्तन करके मनोवैज्ञानिक सत्य के दूसरे पहलू को उजागर किया है कि सम्पन्नता मनुष्य को उदार, सहिष्णु और ईमानदार बना देती है। स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त करने पर महादेव भी ईश्वर का परम भक्त बन जाता है। वह अनुभव करता है कि भगवान ने उस जैसे कपटी व्यक्ति पर इतनी कृपा इसलिए की है कि वे उसका उद्धार करना चाहते हैं। ऐसा विचार कर वह मन ही मन भगवान के प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन करता है और स्वर्ण मुद्राओं के माध्यम से वह उस जन्म में किये गये पापों को धोने के लिए तत्पर होकर लोक-कल्याणकारी कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है।

उद्देश्य—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'आत्माराम' शीर्षक कहानी लिखने में लेखक प्रेमचन्दजी का उद्देश्य मनोवैज्ञानिक सत्यों का उद्घाटन करना है। कि एक ही मनुष्य विपन्नता अर्थात् साधन-हीनता और सम्पन्नता की स्थिति में किस प्रकार भिन्न-भिन्न आचरण करता है। प्रेमचन्दजी को इस मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करने और महादेव सुनार का मनोविश्लेषण करने में पूरी-पूरी सफलता मिली है। इस प्रकार 'आत्माराम' कहानी को उद्देश्य के आधार पर एक सफल कहानी कहा जा सकता है।

प्रश्न-2. 'आत्माराम' कहानी का मूलभाव क्या है? कहानीकार इसके माध्यम से क्या सन्देश देना चाहता है?

उत्तर—'आत्माराम' कहानी का मूलभाव—'आत्माराम' कहानी में कहानीकार श्री प्रेमचन्द ने एक सुनार महादेव के जीवन का उल्लेख किया है और इसी महादेव को नायक बनाकर उसके माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहा है कि व्यक्ति के जीवन में आर्थिक विपन्नता अर्थात् दरिद्रता व साधनहीनता अनेक बुराइयों व परेशानियों के कारण हैं। महादेव के तीन पुत्र तथा अनेक पारिवारिक सदस्य थे, परन्तु अर्थ के अभाव में परिवार के सदस्य महादेव के सुख-दुःख की कोई भी परवाह नहीं करते थे। महादेव वृद्धावस्था होने पर भी दिनभर अंगीठी के सामने बैठा खटखट किया करता, कड़ा परिश्रम करता, दिनभर 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' का धार्मिक जप किया करता परन्तु फिर भी न तो परिवार के व्यक्ति ही उसे आदर एवं स्नेह की दृष्टि से देखते थे और न बाहर वाले। महादेव के पुत्र चाहते थे कि जब तक दादा जीवित है तब तक जितना अधिक कमाकर रख जायें, अच्छा ही है।

अर्थ से सद्भावों का सम्बन्ध—लेखक ने स्पष्ट करना चाहा है कि अर्थाभाव सद्भावों को दबोच देता है और अर्थ-प्राप्ति मनुष्य की सचेतना को जगाती है। मोहर भरा कलश मिलने से पहले अपनी गरीबी की स्थिति में महादेव का आचरण कुछ इस तरह का था कि उसके कारण उसे कोई परसन्द नहीं करता था, बहुत से व्यक्ति उसे परेशान किया करते थे। स्वयं उसके मुख से निकलने वाले 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता, राम के चरण में चित्त लागा' शब्दों का भाव उसके ही अन्तःकरण को स्पर्श नहीं कर पाता था। इन शब्दों का कोई प्रभाव न पड़ता था परन्तु जब महादेव धनवान हो गया तो उसका वास्तविक धार्मिक भाव व उसकी सचेतना जाग्रत हो गयी। मनुष्य महादेव को बहुत ही धर्मात्मा, उदार व्यक्ति मानने लगे।

सन्देश—कहानीकार प्रेमचन्द जी ने इस कहानी के मूल भाव के माध्यम से बड़ा अच्छा सन्देश देना चाहा है :

1-धन को मनुष्य की श्रेष्ठता की कसौटी न माना जाए—महादेव दिनभर कड़ा परिश्रम करता था। वह अपने काम में बड़ा निपुण था। वह स्वर्णकार का कार्य औरों की तुलना में अधिक शुद्ध ढंग से करता था, फिर भी गरीबी के कारण महादेव को लोग शक की दृष्टि से देखते थे और बच्चे चिढ़ाया करते थे। लेखक ने सन्देश देना चाहा है कि मनुष्य के गुणों का सम्मान होना चाहिए, धन-वैभव का नहीं।

2-सम्पन्नता मानवता से ऊँची नहीं—कहानी के अन्तर्गत महादेव के पुत्रों को महादेव के साथ अवांछनीय आचरण करते हुए दिखाया है। महादेव को घरेलू झंझटों के कारण कभी-कभी तो निराहार ही रहना पड़ता था। घरेलू झंझटों का कारण आर्थिक अभाव था। लेखक

बताना चाहता है कि गरीबी की स्थिति में भी मनुष्य को मानवता का परित्याग नहीं करना चाहिए। अपने पिता को कष्ट पहुँचाना किसी भी स्थिति में उचित नहीं है।

3-धन का सत्कर्मों में उपयोग हो—मोहरों से भरे कलश की प्राप्ति से पहले तक महादेव 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' मन्त्र को तोते की तरह रटता ही था। उसके धार्मिक भाव का उसके अन्तःकरण से सम्बन्ध नहीं था। परन्तु धन प्राप्ति करने के बाद महादेव ने सत्यनारायण की कथा का आयोजन किया। उसने गरीबी की हालत में दूसरों का जो धन दबा लिया था, उसे भी वापस लौटाने की घोषणा की। महादेव के इस आचरण द्वारा लेखक बताना चाहता है कि धनवान होकर मनुष्य को उदार होना चाहिए। उसे धन का उपभोग दूसरों की भलाई के लिए, साधुजनों की सेवा के लिए करना चाहिए। चोरों के लिए उसे जमा करके छोड़ जाने से कोई लाभ नहीं है।

4-धन का उपयोग ही सुयश और अपयश का आधार—लेखक ने बताया है कि धन के उपयोग पर निर्भर है कि मनुष्य सुयश प्राप्त करे या अपयश। धन के अभाव में महादेव की घर व बाहर कहीं भी प्रतिष्ठा नहीं थी परन्तु धन प्राप्ति के उपरान्त धन का सत्कर्मों में उपयोग करके उसने सुयश प्राप्त कर लिया और तब उसे ज्ञात हुआ कि संसार बुरों के लिए बुरा है और अच्छों के लिए अच्छा। धन के उपयोग पर ही मनुष्य की सुगति और दुर्गति निर्भर करती है इसलिए लेखक ने धन के सदुपयोग का सन्देश दिया है।

प्रश्न- 3. महादेव सुनार का चरित्र-चित्रण 'आत्माराम' कहानी के आधार पर कीजिए।

अथवा

'आत्माराम' कहानी के आधार पर आत्माराम की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।

अथवा

महादेव सुनार की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए तथा बताइये कि उसके चरित्र की किस विशेषता ने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया है और क्यों?

उत्तर—प्रेमचन्द की 'आत्माराम' कहानी में एकमात्र नायक आत्माराम है। प्रश्न में जिस आत्माराम की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालने के लिए कहा गया है कि वह आत्माराम महादेव ही है, क्योंकि 'आत्माराम' कहानी के अन्त में बताया गया है कि महादेव ही आत्माराम नाम से प्रसिद्ध हो गया था। वैसे महादेव के पालतू तोते के लिए ही आत्माराम शब्द प्रयुक्त हुआ है।

परिचय—सुनार महादेव वेदी ग्राम का प्रसिद्ध व्यक्ति था। वह बूढ़ा अपने सागवान में बैठा दिनभर खट-खट किया करता था। वह सुबह जल्दी ही दैनिक कार्यों से निवृत्त हो जाता था और दिनभर 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' का मन्त्र बुझाया करता था। उसका अपने तोते के अलावा किसी से लगाव नहीं था। तोता उसका सबसे प्यारा साथी था। एक बार जब तोता गाँव वालों ने उड़ा दिया था तब उसकी खोज करने में आत्माराम को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था, जिससे उसके जीवन का कायाकल्प ही हो गया था। आत्माराम एक अनोखा व्यक्ति था। उसके चरित्र की मुख्य-मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

मौन परिश्रमी—यद्यपि आत्माराम बूढ़ा व्यक्ति था परन्तु सुबह दैनिक कार्यों से निवृत्त होने के बाद दिनभर कार्य में व्यस्त रहकर खट-खट किया करता था। लोग उसी खट-खट के अभ्यस्त हो गये थे। आत्माराम के ऊपर एक बड़े परिवार का बोझ था। उसके लड़के कामचोर थे, इसलिए भी आत्माराम को अधिक परिश्रम करना पड़ता था। उसके लड़के कहा करते थे कि जब तक दादा जीते हैं हम जीवन का आनन्द भोग लें, फिर तो यह ढोल गले पड़ेगी ही।

तोता पालने का बेहद शौकीन—आत्माराम अपने आत्माराम नाम के तोते से बहुत प्यार करता था। तोता प्रेम के कारण तो महादेव ही बाद में आत्माराम नाम से प्रसिद्ध हो गया था। प्रातःकाल होते ही आत्माराम अपने तोते के पिंजरे को लटका कर भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाया करता था। लोगों को उसके तोता प्रेम का सही परिचय तो तब मिला जब गाँव के बच्चों ने उसके तोते को उड़ा दिया था। आत्माराम पिंजरे से मुक्त किये गये तोते को पकड़ने के लिए बहुत ही परेशान रहा था। आत्माराम एक दिन एक रात भूखा प्यासा ही तोते को पकड़ने के लिए परेशान रहा था। तभी तो लेखक ने लिखा है— 'बूँ । अगर मूर्तिमान मोह था तो तोता मूर्तिमयी माया' तोते का जाना आत्माराम को वैसा लगा जैसा जीव का देह त्याग कर जाना।'

तम्बाकू का व्यसनी—आत्माराम को तम्बाकू पीने का व्यसन था। वह निराहार तो रह सकता था, परन्तु हुक्का पीये बिना नहीं रहता था। जब पारिवारिक कलह के कारण उसे निराहार ही रह जाना पड़ता था तब वह 'नारियल का हुक्का पीता हुआ सो जाता'। जब उसका तोता उड़ गया था और वह उसे खोजता हुआ गाँव से दूर निकल गया था तो वहीं उसे रात हो गयी थी। जब उसने कुछ आदमियों को तम्बाकू पीते अनुभव किया तो वह भी खिंचकर उनके पास जा पहुँचा था। वे सब चिलम पी रहे थे। तम्बाकू की महक ने उसे अधीर कर दिया। उच्च स्वर से बोला— 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' और उन आदमियों की ओर चिलम पीने चला गया।

महत्वाकांक्षी—आत्माराम सुखी सम्पन्न जीवन व्यतीत करना चाहता था, इसलिए कड़ा परिश्रम किया करता था। जब जंगल में उसे मोहरों से भरा कलश मिल गया तो तुरन्त ही भावी सुखी जीवन की सामग्रियों आदि की उसने कल्पना कर डाली।

भजनानन्दी—आत्माराम को भजन में आनन्द आता था। वह दिन में कई बार 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' राम के चरणों में चित्त लागा। ये पंक्तियाँ दोहराया करता था। इस तोता रटत जप का उसके हृदय से कोई सम्बन्ध था या नहीं यह अलग बात है किन्तु मोहरों से भरे कलश को और तोते को पुनः प्राप्त करके आत्माराम ने खुश होकर परमात्मा का गुणानुवाद किया था। उसके रोम-रोम से परमात्मा के गुणानुवाद की ध्वनि निकलने लगी।

धार्मिक प्रवृत्ति—आत्माराम पुराने विचारों का धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। मोहरों के मिलने पर उसने सबसे पहले सत्यनारायण की कथा कराई थी, उसे पाप-पुण्य, लोक-परलोक का ध्यान था, तभी तो कथा के आयोजन के समय उसने उपस्थित जन-समूह के सामने घोषणा की थी कि जिस किसी भी व्यक्ति का मेरे ऊपर किसी प्रकार का ऋण हो उसे वह बिना किसी गवाही के ले लेवे।

पश्चाताप की प्रवृत्ति—आत्माराम में कुछ हद तक पश्चाताप की भी प्रवृत्ति थी। आत्माराम की इस प्रवृत्ति का परिचय तो तब प्राप्त हुआ, जब मोहरों से भरा हुआ कलश मिलने के बाद उन्होंने सत्यनारायण की कथा के अवसर पर अपने दोष, अपने छल-कपट की बात स्वीकार की थी। भाइयों, मेरी सारी उम्र छल-कपट में कट गयी। मैंने न जाने कितने आदमियों को दगा दिया, कितने खरे को खोटा किया, पर अब भगवान ने मुझ पर दया की है, वह मेरे मुँह की कालिख को मिटाना चाहता है।

सहनशील एवं विनम्र—आत्माराम विनम्र स्वभाव का आदमी था। घर में या बाहर कहीं भी यदि कोई उससे कुछ बुरा कह देता तो वह चुप रहकर सहन कर लेता था। उसे आये दिन शक्की और धैर्य शून्य प्राणियों के अपशब्द सुनने पड़ते थे, पर महादेव अविचलित गाम्भीर्य से सिर झुकाये सब कुछ सुना करता था। सत्यनारायण की कथा के अवसर पर आत्माराम ने लोगों से बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा था कि 'इसके पीछे मैं तीर्थयात्रा करने चला जाऊँगा। आप सब भाइयों से विनती है कि आप मेरा उद्धार करें।'

आत्माराम का चरित्र दूसरों को सीख देने वाला था। वह व्यक्ति सहनशील, परिश्रमी, जीवों पर दया करने वाला, ईश्वर विश्वासी व्यक्ति था। महादेव के चरित्र की पश्चाताप की प्रवृत्ति ने हमें प्रभावित किया है क्योंकि पश्चाताप करने से उसकी पिछली बुराइयों पर रोक लग गई और आगे वह सत्कर्म करने लगा। उसने सबके सामने उच्च स्वर में घोषणा की कि 'भाइयों मेरी सारी उम्र छल-कपट में कट गई। मैंने न जाने कितने आदमियों को दगा दी, कितने खरे को खोटा किया' आदि। पश्चाताप मन की कालिमा को धोने का श्रेष्ठ साधन समझा जाता है। महादेव ने सच्चे मन से पश्चाताप किया और आगे सद्व्यवहार कर अपने चरित्र के सुधार का प्रमाण दिया इसलिए उसके चरित्र की यह प्रवृत्ति ही हमें अधिक प्रभावित करती है।

प्रश्न-4. मोहरें प्राप्त होने के बाद महादेव की मनःस्थिति किस प्रकार की हो जाती है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—मोहरें प्राप्त करने से पहले महादेव के मन में किसी प्रकार का भय नहीं था और न किसी प्रकार की झिझक। मोहरें प्राप्त करने के बाद सबसे पहली प्रतिक्रिया प्रसन्नता की और दूसरी भय की हुई। महादेव दीपक बुझाकर पेड़ के नीचे छिप कर बैठ गया। उसे भय लगने लगा कि कहीं चोर मोहरें न छीन ले जायें। उसका मन चिन्तित हो उठा। चिन्ताओं के बावजूद भी महादेव का मन अच्छी सुखद कल्पनाएँ करने लगा। वह सोचने लगा कि अब पक्का मकान बनवाऊँगा। सराफ की बड़ी दुकान खुलवाऊँगा, विलास की वस्तुएँ खरीदूँगा। महादेव धार्मिक कार्य करने की बात भी सोचने लगा। उसने चाहा कि मैं धन की सहायता से एक शिवालय, एक कुआँ बनवाऊँगा और एक बाग लगवाऊँगा। 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' वाला मन्त्र दिन में हजारों बार महादेव के मुँह से निकलता था, परन्तु उसका धार्मिक भाव कभी उसके अन्तःकरण का स्पर्श न करता था, परन्तु मोहरें पाने के बाद मन्त्र जप का प्रभाव बढ़ गया था, "तब उसका हृदय रूपी वृक्ष पल्लव विहीन था। यह निर्मल वायु उसे गुंजारित न कर सकती थी, पर अब उस वृक्ष में कोपलें और शाखाएँ निकल आयी थी। इस वायु-प्रवाह से वह झूम उठा, गुंजित हो गया।" अब उसका शराब का व्यसन भी छूट गया।

असाधारणता—मोहरें पाने से पहले महादेव ने कभी सत्यनारायण की कथा और भोज का आयोजन नहीं किया था परन्तु मोहरें पाकर उसने ये सब आयोजन कराये। जब पहली बार पुरोहित जी ने महादेव के मुख से सत्यनारायण की कथा की बात सुनी तो पुरोहित जी को आश्चर्य हुआ। उन्हें अपने कानों पर विश्वास न हुआ क्योंकि महादेव के घर कथा का होना उतनी ही असाधारण घटना थी, जितनी अपने घर से किसी भिखारी के लिए भीख निकालना।

सद्भावनाएँ—मोहरें प्राप्त करने के बाद महादेव के सामने कोई अर्थकष्ट तो रहा न था, इसलिए अब उसके मन में किसी की धरोहर, किसी का धन हड़पने की लालसा नहीं रह गई थी। धनाभाव की स्थिति में मजबूरी में महादेव ऐसी गलतियाँ कर बैठा होगा परन्तु मोहरें प्राप्त करने के बाद उसकी मनःस्थिति सुधर गई परिणामतः उसने खड़े होकर उच्च स्वर में कहा—भाइयों मेरी सारी उम्र छल-कपट में

कट गई। जिसकी जमा मैंने मार ली हो जिसके चोखे माल को खोटा कर दिया हो, वह आकर अपनी एक-एक कोड़ी चुक ले, गवाही-साक्षी का काम नहीं। मोहरें पाने से पहले उसने काफी सम्पत्ति मार ली थी। तभी तो किसी ने महादेव की घोषणा पर अविश्वास करते हुए कहा था, 'क्या खाकर भरेगा हजारों का टोटल हो जायेगा।' अब स्थिति इसके विपरीत थी। वह कोड़ी-कोड़ी गिने बिना किसी साक्षी गवाही के ही चुकाने को बेताब हो रहा था। मोहरें पाने के बाद उसकी मनःस्थिति में कुछ ऐसा अभूतपूर्व परिवर्तन हो रहा था कि लोग उसे साधु समझने लगे थे। जैसा कि लेखक ने इस कथन में स्पष्ट किया है— 'सबसे बड़ी बात यह थी कि महादेव की साधुता ने उन्हें वशीभूत कर लिया था।' पुरोहित जी ने अपने माल के खामियाजे के रूप में महादेव से पचास रुपये की माँग की थी और महादेव ने तुरन्त दो मोहरें पुरोहित जी के सामने रखकर अपने मन की स्वच्छता का प्रभाव दे दिया था। मोहरें पाने के बाद महादेव में अत्यधिक उदारता आ गई थी और धार्मिक कार्यों के प्रति रुचि बढ़ गई थी, तभी तो उसने कथा के आयोजन के अवसर पर उपस्थित जनों से प्रार्थना की कि वे अपने रुपये जो महादेव की तरफ निकलते हों महीने भर के अन्दर ले लें। इसके बाद मैं तीर्थ यात्रा करने चला जाऊँगा। आप सब भाइयों से मेरी विनती है कि आप मेरा उद्धार करें।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मोहरें प्राप्त होने के बाद महादेव की मनःस्थिति बहुत ही सुधर गई।

प्रश्न-5. 'आत्माराम' शीर्षक कहानी की विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।

अथवा

आत्माराम कहानी की कलात्मक विवेचना कीजिए?

उत्तर—'आत्माराम' प्रेमचन्द जी की एक प्रसिद्ध कहानी है, जिसके माध्यम से उन्होंने मानव-स्वभाव व सामाजिक रवैये के कुछ सत्यों का सफल व कलात्मक उद्घाटन किया है। कहानी का नायक महादेव सुनार है और आत्माराम उसका पालतू तोता है। महादेव के माध्यम से ही लेखक ने अपनी बात पाठकों तक पहुँचाई है।

इस कहानी की कतिपय विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. आर्थिक व धार्मिक पहलू का मनोवैज्ञानिक निरूपण—कहानी की सबसे बड़ी व महत्वपूर्ण विशेषता यही है कि इसमें मानव के आर्थिक व सामाजिक पहलू का सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक आधार पर स्पष्ट किया गया है। लेखक ने महादेव सुनार की स्थिति को समझाने का प्रयास किया है कि आर्थिक संकट मानव के तन-मन को दुर्बल बना देते हैं। पैसे के बिना परिवार समाज में उसकी कोई सम्मानित स्थिति नहीं रहती है। कोई भी उसकी इज्जत नहीं करता है। आदमी इससे कुण्ठित हो जाता है और जीवन-यापन के लिए भी उसे छल-कपट का प्रश्रय लेना पड़ता है। उसमें इस विषमता का विरोध का मुकाबला करने का हौसला नहीं रहता है। उसके मन में धर्म के प्रति भी कोई वास्तविक आकर्षण न होने के कारण उसमें सद्भावों और सत्कर्मों के प्रति भी कोई निष्ठा शेष नहीं रहती है।

धन की प्राप्ति होते ही आदमी का (महादेव का भी) कायाकल्प हो जाता है। मन में विश्वास और स्वाभिमान जाग उठता है। सत्कर्मों में प्रवृत्ति हो जाती है। दान-पुण्य, पूजा-पाठ, कथा-यात्रा, भजन-पूजन आदि में मन लगने लगता है। वह अपने पर किसी का कोई ऐहसान भी नहीं रखना चाहता। सब प्रकार के भारों से मुक्त हो लेना चाहता है। महादेव के व्यक्तित्व से लेखक ने यही स्पष्ट किया है कि तब आदमी आर्थिक दृष्टि से किसी की दावेदारी पसन्द नहीं करता और धार्मिक भावना तो उसमें स्वतः लहलहाने लगती है। लेखक के अनुसार— 'अभिलाषाओं ने अपना काम शुरू कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफि की एक भारी दुकान खुल गयी, सगे-सम्बन्धियों से फिर नाता जुड़ गया।'

'पर उसका धार्मिक भाव उसके अन्तःकरण को स्पर्श न करता था। तब उसका हृदय-रूपी वृक्ष पल्लव विहीन था। पर अब उस वृक्ष में कोपलें और शाखाएँ निकल आयी थी। वह वायु-प्रवाह से झूम उठा और गुन्जित हो गया।'

इस प्रकार लेखक ने स्पष्ट किया है कि धन का अभाव आदमी को संकुचित कर देता है और धन की स्थिति उसे हर तरफ उठा देती है।

2. सीमित पात्र—पात्रों की संख्या सीमित होना कहानी की विशेषता मानी जाती है। प्रस्तुत कहानी में भी कुल एक ही पात्र सक्रिय है, जो कि कहानी का नायक भी है। अन्य पात्रों में केवल एकरूपता बनी रहती है और कहानी भी अपने लक्ष्य की ओर तीव्रता के साथ आगे बढ़ती है। कहानी में एकाग्रता बनी रहने के कारण पाठक पर भी कहानी का प्रभाव अधिक सशक्तता से पड़ता है। इस पूरी कहानी में केवल कहानी के नायक महादेव का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार से प्रभाव की एकरूपता प्रारम्भ से अन्त तक बनी रहती है।

3. प्रतीकात्मक शैली—प्रस्तुत कहानी में तोता आत्माराम माया का प्रतीक है और कहानी का नायक महादेव जीव का। जिस प्रकार जीव माया के चक्कर में पड़कर जन्म-जन्मान्तर तक इधर-उधर भटकता फिरता है, वैसे ही हम देखते हैं कि महादेव तोते के पीछे भटकता फिरता है। तोता प्राप्त कर लेने पर उसे अतीव प्रसन्नता की अनुभूति होती है और एक दिन जब वह परलोक सिंघार जाता है तो महादेव भी अपनी आत्मा को शान्ति देने के लिए साधुओं की मण्डली के साथ हिमालय की ओर चल पड़ता है और फिर कभी लौटकर नहीं आता। कहानी में जीव की माया के प्रति आसक्ति को सफलतापूर्वक निभाया गया है।

4. कौतूहल का निर्वाह—प्रस्तुत कहानी में प्रारम्भ से अन्त तक कथावस्तु के प्रति पाठक में कौतूहल बना रहता है। वह महादेव जैसे स्वार्थी पात्र के विविध क्रिया-कलाप के प्रति पूर्ण उत्सुक रहता है एवं उनमें उसके द्वारा किये जाने वाले कार्य के प्रति जिज्ञासा बनी रहती है। कौतूहल या जिज्ञासा से कहानी में रोचकता बनी रहती है और इससे कहानी की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि होती है। इस दृष्टि से भी उसे एक सफल कहानी कही जा सकती है। कहानी का कथानक संक्षिप्त और चुस्त है। इसमें कहीं भी शिथिलता अथवा अरोचकता नहीं आ पाई है।

5. संस्कृत निष्ठ भाषा-शैली—प्रेमचन्द जी ने कहानी के क्षेत्र में उर्दू से हिन्दी में प्रवेश किया था। ऐसी स्थिति में उनकी भाषा-शैली में उर्दू के शब्दों का बाहुल्य होना चाहिए था, किन्तु हिन्दी के क्षेत्र में लिखी गई प्रारम्भिक कहानी 'आत्माराम' की शैली संस्कृत निष्ठ है, किन्तु भाषा की दुरुहता, कहानी की सरसता, सहजता और प्रभावोत्पादकता में कहीं बाधक सिद्ध नहीं होती। कहावतों, मुहावरों व उपमानों के प्रयोग से शैली की सुन्दरता में वृद्धि की है और यथोचित भाषा का प्रयोग इसे स्वाभाविकता प्रदान करता है।

6. विश्वसनीय कथान्त—प्रस्तुत कहानी 'आत्माराम' का अन्त विश्वसनीय है। इसमें लेखक श्री प्रेमचन्द महादेव सुनार के निवास-स्थान वेदोग्राम में आज भी उस तालाब और ठाकुर द्वारे के कलश आदि को देख आने का निवेदन करते हैं और कहते हैं कि 'आप वेदोग्राम जाइए, तो दूर से ही एक सुनहरा कलश दिखाई देता है। वह ठाकुर द्वारे का कलश है। उससे मिला हुआ एक पक्का तालाब है, जिसमें खूब कमल खिले रहते हैं। उसकी मछलियाँ कोई नहीं पकड़ता, तालाब के किनारे एक विशाल समाधि है। यही आत्माराम का स्मृति चिह्न है, उसके सम्बन्ध में विभिन्न किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

7. सामाजिक व्यंग्य—प्रेमचन्द ने इस कहानी में अर्थाभाव को लेकर समाज व परिवारों के लोगों पर व्यंग्य किया है कि वे ऐसे निर्धन व्यक्ति की सहायता करने के स्थान पर उसकी हँसी-ठिठौली करते हैं। प्रसंगवश लेखक ने पुरोहित जी, जिन्हें धर्म व सामाजिक आचरण का ठेकेदार समझा जाता है, व्यंग्य किया है कि पूजा करते समय भी उसके मन में मुकदमे की पेशी और यजमानों के पैसों में ही मन रहता है और जब महादेव जैसा गरीब आदमी उनके यहाँ पहुँचता है तो वे उसे अमंगल मूर्ति समझते हैं। लेखक उनकी इस प्रवृत्ति के अतिरिक्त एक और प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए कहता है— 'महादेव के घर कथा का होना उतनी ही असाधारण घटना थी, जितनी अपने घर से किसी भिखारी के लिए भीख निकालना।'

1.2 सारांश

संक्षेप में 'आत्माराम' शीर्षक कहानी-कला की अनेक विशेषताओं से युक्त है और इसे एक सफल कलात्मक कहानी कहा जा सकता है। इसकी विश्वसनीयता असंदिग्ध है और इसे गल्प या कल्पना-मात्र नहीं कहा जा सकता। भारतीय परिवेश में हृदय-परिवर्तन का इसमें बड़ा भव्य रूप अंकित किया गया है और उपदेश व शिक्षा देने के साथ ही यह कहानी प्रारम्भ से अन्त तक रोचक व सरस होने से पाठकों को रससिक्त करने में समर्थ है।

इकाई- 2 : आप बीती

(लज्जाराम मेहता)

संरचना

- 2.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 2.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 2.2 सारांश

2.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “इस संसार महासागर में जब मैं एक कीटाणु हूँ तब मेरी ‘आप बीती’ क्या ? आप बीती उनकी लिखी जानी चाहिए, जिन्होंने दुनियाँ में आकर कुछ काम किया और नाम कमाया हो। जब मेरा जीवन ही आलस्य में, प्रमाद में, निद्रा में, मोह में, रोग में और इस तरह दुनियाँ की हाथ-हाथ में बीता जा रहा है तब मेरी आप बीती लिखने से लाभ ही क्या ? कुछ नहीं। चौंसठ वर्ष बीत जाने पर भी अब मेरे हाथ से कोई ऐसा अच्छा काम नहीं हुआ, जिससे मैं ‘आप बीती’ लिखने का अधिकारी समझा जाऊँ। जब कर्तव्यपालन के अभाव से मेरा जीवन लौहार की धोंकनी की तरह है, तब मैं यदि आप बीती लिखने का साहस भी करूँ तो किस बूते पर ? किन्तु नहीं। लाभ और हानि किसी पदार्थ विशेष का गुण दोष नहीं है। लाभ उठाने वाले मार्ग की धूलि से लाभ उठाते हैं। यदि वे अधिक से अधिक अथवा कम से कम इन पृष्ठों से उतना ही लाभ उठा लें कि जैसे इस अकिंचन लेखक ने संसार में आकर अपना जीवन बर्बाद कर दिया, वैसे खोना अच्छा नहीं तो वह भी मेरा सौभाग्य है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यावतरण ‘आप बीती’ लेखक के विनय भाग से लिया गया है। इसके लेखक स्व. श्री लज्जाराम मेहता हैं। इसमें श्री मेहता ने ‘आप बीती’ अर्थात् आत्म-कथा किसे लिखना चाहिए, इस पर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

व्याख्या—श्री मेहता का कथन है कि यह संसार एक बड़े समुद्र के समान है और उसमें मैं एक सबसे छोटा प्राणी हूँ। ‘आप बीती’ का आशय है कि अपने घर व्यतीत हुई आत्म-कथा क्या महत्त्व रखती है। उनका कथन है कि आप बीती उन लोगों की लिखी जानी चाहिए, जिन्होंने इस संसार में आकर कुछ काम किये हों तथा अपनी प्रसिद्धि पाई हो।

श्री मेहता का कथन है कि जब उनका जीवन आलस्य, प्रमाद, नींद, मोह, रोग तथा इसी प्रकार की दुनियाँ दारी में बीता जा रहा है तब उनकी वे आत्म-कथा लिखकर कौनसा लाभ पा सकेंगे। वे कहते हैं कि मेरे चौंसठ वर्ष के हो जाने पर भी मेरे हाथ से कोई ऐसा अच्छा काम सम्पादित नहीं हुआ, जिससे मैं अपने को आत्म-कथा लिखने के अधिकारी समझूँ। उनके अनुसार कर्तव्यपालन की कमी के कारण वे पराश्रित, लौहार की धोंकनी की भाँति रहे हैं, तब वे आप-बीती लिखने की हिम्मत किस आधार पर करें।

आगे वे इसके विपरीत विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि ऐसा ही नहीं है कि लाभ-हानि पर ही किसी पदार्थ के गुण-दोष नहीं देखे जाते। लोग तो रास्ते में पड़ी धूलि तक से भी लाभ उठा लेते हैं। अतः मेरी इस ‘आप बीती’ को पढ़कर इतना ही लाभ उठा ले कि इसके लेखक ने संसार में आकर अपना जीवन व्यर्थ गंवा दिया, वैसा जीवन हम नहीं खोयेंगे, तो यह भी मेरा सौभाग्य है।”

विशेष—किसी लेखक, संपादक या समालोचक की ‘आप बीती’ के सम्बन्ध में मेहता जी के यही विचार हैं कि लोगों को उनके जैसा नहीं बनना है। यदि वे प्रयत्न करेंगे तो उन्हें भी वही कष्ट उठाने होंगे, जो कि मेहता जी ने उठाये हैं।

(2) “जब यह पोथी अपने आत्मीय के लिए लिखी गई है तब सचमुच ही उनके लिए धरोहर है। जो वास्तव में महज्जन है वे अपने स्वजनों को शिक्षा देते हैं, उपदेश देते हैं, धन देते हैं, सम्पत्ति देते हैं और वैभव देते हैं किन्तु मैं धन का दरिद्री हूँ, मन का दरिद्री हूँ और चरित्र का दरिद्री हूँ तब मैं यदि कुछ देना भी चाहूँ तो आशीर्वाद के अतिरिक्त क्या दे सकता हूँ ? बस इसलिए मैं यह अपनी ‘आप बीती’ देता हूँ और सो भी इसीलिए देता हूँ कि कभी-कभी अपने अवकाश के समय रद्दी की टोकरी में से उठाकर इसी बहाने से इसके द्वारा मुझे स्मरण कर लिया करें।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक श्री मेहता जी ने अपने ‘आप बीती’ लिखी है। वह मात्र स्वजनों को उसे पढ़ने हेतु ‘भला हो तुम्हारा, इस बहाने याद तो किया’, इस आशय हेतु निर्मित की है।

व्याख्या—श्री लज्जाराम जी मेहता का कथन है कि जब मैंने यह 'आप बीती' पुस्तक अपने स्वजनों के लिए लिखी है तब यह वास्तव में उनके लिए धरोहर जैसी उपादेय है। जो महान् व्यक्ति होते हैं वे सत्यरूप में अपने स्वजनों को शिक्षा, उपदेश, धन, सम्पत्ति और वैभव प्रदान करते हैं किन्तु मुझसे यह अपेक्षा करना व्यर्थ ही होगा, कारण कि मैं धन का, मन का, चरित्र का गरीब हूँ। मैं तो इन्हें केवल अपना आशीर्वाद ही दे सकता हूँ। बस इसलिए कि वे मेरी 'आप बीती' पढ़कर मुझे याद करे तो उनका भगवान अवश्य भला करे। किसी लेखक, समालोचक या सम्पादक को कोई क्यों याद करेगा? किन्तु मेहता जी उन्हें स्वयं को यदि वे याद कर लेंगे तो भगवान उनका अवश्य कोई-न-कोई भला करेगा, यही उनका आशीर्वाद है तथा लेखकों, सम्पादकों, समालोचकों की रचना को रद्दी की टोकरी में डाली मात्र वस्तु न समझे। वह उन्हें पथ-प्रदर्शित बन सकेगी।

विशेष—लेखकों, सम्पादकों व समालोचकों की 'आप बीती' पुस्तक पढ़ने वालों को चाहे धन, सम्पत्ति, वैभव, शिक्षा, उपदेश न दे पाए तथापि आशीर्ष अवश्य देगी, जिसे पाकर वे उन जैसे विपरीत दशा में भी बनने का प्रोत्साहन पा सकेंगे ताकि ये विधाएँ लुप्त प्रायः नहीं हो जाएँ।

(3) “अभी तक किसी ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख मेरे देखने में नहीं आया है कि महर्षि शुक्रदेव जी की भी माता के गर्भवास में अठारह महीने तक निवास करना पड़ा था, किन्तु मेरी माता मेरी भी वही स्थिति बतलाकर कहा करती थी कि तेरा नाम शुक्रदेव रखा गया था। यह नाम प्रसिद्ध नहीं हुआ और न हुआ बालकृष्ण नाम जो मेरे पिता का रखा हुआ था। जन्म-पत्र का नाम रमावल्लभ भी जन्म-पत्र में ही रह गया और पितामही का प्रदान किया हुआ लज्जाराम नाम व्यवहार में आया। इसका कहना था कि इसने जन्म ग्रहण कर हमारी लज्जा रखी है। इससे इसका नाम लज्जाराम।

यह ठहरी हुई बात है कि बिना किसी बीमारी के प्रकृति के नियम समय के अतिरिक्त बालक गर्भ में निवास नहीं कर सकता। मैं अठारह मास गर्भ में रहा इसके लिए मेरी माता कभी-कभी कुछ कहा भी करती थी, किन्तु इतना निश्चय है कि मेरी बीमारी ने मेरे साथ-साथ ही जन्म ग्रहण किया था। जन्म से लेकर आज तक के चौंसठ वर्षों का अधिक भाग मेरी बीमारी ही बीमारी में व्यतीत हुआ।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांशों में श्री लज्जाराम जी मेहता ने अपने कई नामों का उल्लेख करते हुए वे गर्भावस्था में नौ माह से दुगने समय तक क्यों रहे इसका आश्चर्य परिपूर्ण कारण दिया है।

व्याख्या—श्री मेहता जी कहने जा रहे हैं कि महर्षि शुक्रदेव जी ने माता के गर्भ में अठारह महीने वास किया था। इसका उल्लेख वैसे तो किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता है तथापि जनश्रुति यही है तभी तो मेहता जी की माता जी ने भी लज्जाराम जी की वही अठारह महीने के वास की स्थिति बतलाते हुए कहा था कि तू भी 18 महीने वास करने के कारण शुक्रदेव नाम पा सका था। श्री मेहता जी कहते हैं यह मेरा शुक्रदेव नाम प्रसिद्धि नहीं पा सका था। जब मेरे दादाजी ने मेरा नाम बालकृष्ण रखा, वह भी प्रसिद्ध नहीं हुआ। जन्म-पत्र का नाम रमावल्लभ भी जन्म-पत्र में ही अंकित रह गया। किन्तु मेरी दादी जी का दिया हुआ नाम लज्जाराम ही प्रसिद्ध हुआ। वे कहा करती थी कि तूने पैदा होकर हमारे परिवार को अंगी बढ़ाने की लाज रखी थी। अतः तेरा लज्जाराम नाम रखा। क्योंकि उनसे पहले बड़े भाई श्याम-सुन्दर जी का देहावसान हो चुका था तथा उसके बाद पुत्रोत्पत्ति की आशालता पर तुषार पात करती हुई बहन ने जन्म ग्रहण किया। उसके पश्चात् उन्होंने परिवार वालों की लाज रखते हुए जन्म ग्रहण किया था। अतः इनका नाम लज्जाराम रखा गया।

अग्रिम अनुच्छेद में श्री मेहता जी अपने 18 माह गर्भ में रहने की बात को कुछ इस भाँति स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यह निश्चित बात है कि कोई भी बच्चा किसी बीमारी के बिना नियम समय नौ माह के अलावा गर्भ में नहीं ठहरता। इसी को मेरी माता जी कभी-कभी कहा करती थी कि मैं अठारह महीने ही गर्भ में रहा था किन्तु वे इस समयावधि का कारण अपनी बीमारी अर्थात् लेखन, सम्पादन व समालोचन करने की बीमारी इनके जन्म के साथ ही पैदा हो गई थी—ऐसा प्रतीत होता है। तभी तो जन्म से लेकर आज तक चौंसठ वर्षों का अधिक भाग उनकी बीमारी ही बीमारी लेखन सम्पादन व समालोचन में ही बीता।

विशेष—ऐसा ही कुछ ब्रह्म ऋषि शुक्रदेव जी के साथ भी हुआ था। वे भी 18 माह गर्भ में इसीलिए टिक सके थे कि उन्हें भी ब्रह्म में लीन होने की बीमारी गर्भावस्था से ही थी। जब पैदा हुए तब से लेकर पाँच वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने संन्यास ग्रहण कर सांसारिक प्राणियों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते रहे। ऐसी ही घटना लज्जा जी मेहता के साथ हुई प्रतीत होती है। उन्हें लेखन-सम्पादन व समालोचन की बीमारी जन्म से लेकर चौंसठ वर्ष पर्यन्त घेरे रही। वे अपने जीवन-काल में इस बीमारी से छुटकारा नहीं पा सके थे। यह हमारे राजस्थान का या फिर कहें कि भारत वर्ष का ही सौभाग्य मानेंगे कि इतनी सुन्दर बीमारी उन्हें आजन्म से पकड़े हुए थी।

(4) “मैंने यह बात गुरुजी को सुनाई। उन्होंने श्रीमान से निवेदन किया और पाठशाला के खर्च में गुंजायश निकालकर ‘सर्वहित’ नाम का पाक्षिक-पत्र जारी किया गया। आरम्भ के तो अंकों का सम्पादन पण्डित जी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र और मेरे मित्र पण्डित रामप्रताप जी ने किया ‘सर्वहित’ में पोलिटिकल विषयों का अभाव था और न बूंदी की कोई भली-बुरी खबर दी जाती थी। पत्र बहुत होनहार था और बाहर तथा राज्य में इसके ग्राहक भी बढ़ते जा रहे थे। मूल्य इसका राज्य में दस आना और डाक द्वारा एक रुपया था। इतनी संख्याओं से एक लाइन भी ऐसी न थी जिस पर बोहरा मेघवाहन जी को कुछ आक्षेप कर सके, किन्तु राज्याधिकारी के बढ़ते हुए जोश में उनके लिए पण्डित जी महाराज काँटा थे। किसी से न दबना और अपनी स्वतंत्र सम्पत्ति बेधड़क निःसंकोच देना और जो कुछ कहना राजा प्रजा के हित में कहना उनका सिद्धान्त था। श्रीमान उनकी राय अवश्य लेते थे और बोहरा जी चाहते थे कि उनकी साँकल पर कोई पैर न रखे। यद्यपि उनकी और तरह से रीति नहीं चलती थी किन्तु शिक्षा विभाग का कार्य और श्री रंगनाथ प्रेस दोनों पण्डितजी के हाथ से निकाल लेना उनके लिए सहज था। पण्डित जी जैसे निःस्वार्थ व्यक्ति को उन्हें रखने का आग्रह भी नहीं था। उन्होंने सर्वहित के किसी लेख पर झूठी-सच्ची आपत्ति की और इस तरह पण्डितजी की राय देखकर इन दोनों विभागों को अपने हाथ में ले लिया।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश में लेखक श्री लज्जारामजी मेहता ने ‘सर्वहित’ नामक पाक्षिक पत्र बूंदी में कैसे प्रारम्भ करवाया इसका विवरण दिया गया है।

व्याख्या—श्री मेहता जी कहते हैं कि उन्होंने अपने पाठशाला के गुरुजी को यह बात कही कि यदि बूंदी से कोई पाक्षिक पत्र ‘सर्वहित’ नाम से निकले तो यहाँ की जनता की रुचि भी हिन्दी के प्रति बढ़ेगी। गुरुजी ने बूंदी के राज्याधिकारी श्रीमान जी से इस ‘सर्वहित’ पत्र के निकालने के सम्बन्ध में निवेदन किया। उन्होंने पाठशाला के व्यय में से ही बचत निकालकर उक्त पत्र ‘सर्वहित’ जारी करने की व्यवस्था कर दी। इस ‘सर्वहित’ के प्रारम्भिक अंकों का सम्पादन तो गुरुजी के ज्येष्ठ पुत्र पं. रामप्रताप जी ने किया। इस पत्र में प्रायः राजनैतिक विषय नहीं छपा करते थे तथा न ही बूंदी की भली बुरी खबरें। पत्र बड़ा प्रगतिशील था। इसके ग्राहक बाहर व भीतर सभी जगह बढ़ते जा रहे थे। मूल्य मात्र दस आना था। बाहर डाक के मंगवाने पर एक रुपया रखा गया। इतनी ग्राहक संख्याओं तथा इस पत्र के विषय-वस्तु आदि से एक भी लाइन ऐसी न थी जिस पर पाठशाला संचालक श्री बोहरा मेघवाहन जी कोई आक्षेप कर सके।

श्री मेघवाहन जी को राज्याधिकार के बढ़ते जोश में पण्डित जी मेरे पुण्यपाद गुरुजी काटि की तरह खटकते थे क्योंकि गुरुजी की किसी से न दबने वाली प्रवृत्ति तथा अपनी सम्पत्ति बेधड़क निःसंकोच देने की आदत तथा जो कुछ कहना राजा-प्रजा के हित में कहने का सिद्धान्त मेघवाहन जी को खटकता था। राज्याधिकारी श्रीमान उनकी राय अवश्य लेते थे। बोहरा जी चाहते थे कि इनके प्रभाव को कोई कम न कर दे। इस विषय में यद्यपि उनका महत्ता का प्रभाव दूसरी रीति से नहीं चल सकता था, फिर भी उन्होंने शिक्षा विभाग का काम और श्री रंगनाथ प्रेस दोनों को पण्डितजी के हाथ से निकाल लेना चाहा था। पण्डित जी निःस्वार्थ पुरुष थे, उन्हें इनके रखने में कोई आग्रह नहीं था। अतः मेघवाहन जी ने ‘सर्वहित’ के किसी लेख में बेबुनियाद आपत्ति की तथा दोनों विभागों (प्रेस व शिक्षा का काम) को अपने हाथ में ले लिया।

विशेष—निःस्वार्थ व्यक्ति को कोई भी चालाक मानव झूठे-सच्चे दोष लगाकर प्रभावहीन करने में कृत कार्य (सफल) हो ही जाता है। जैसे कि बोहरा मेघवाहन जी ने पण्डितजी के साथ किया।

(5) “एक बार बम्बई के एक धनाढ्य देश के हितैषी यहूदी सज्जन ने जिनका नाम शायद मिस्टर वाकर था, वहाँ की सर्व-साधारण जनता के लिए एक व्याख्यान शाला बनवाई और उसे वहाँ की जनता को भेंट किया। इस उत्सव में प्रजोपकार आरम्भ करने के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओं के विद्वानों की भिन्न-भिन्न विषयों पर वक्तवाएँ करवाई गई। हिन्दी के लिए उस समय मैं ही अन्धों में काना-राजा था। मैं पकड़ा गया। मैंने व्याख्यान का विषय रखा ‘भारत की राष्ट्रभाषा’ हिन्दी है। मिस्टर वाकर ने इस पर ऐतराज किया और बहुत-सी कटा-सुनी के बाद उस व्याख्यान का शीर्षक रखा गया ‘भारतवर्ष की मातृभाषा हिन्दी होने की सम्भावना’। बस इससे समझा जा सकता है कि उस जमाने में बम्बई की दृष्टि में हिन्दी कितनी मिटी हुई थी। श्रीमान् सेठजी ने मेरी कमजोरी मिटाने के लिए व्याख्यात की दो सौ या तीन सौ कापियाँ छपवा दी, किन्तु नित्य के विरुद्ध उस दिन सभा भवन में तीस-चालीस मनुष्यों से अधिक नहीं थे। सभापति रेलवे के उच्च अधिकारी एक युक्त प्रान्तीय खत्री बनाये गये थे। इन्होंने मेरे कथन का अनुमोदन करने की जगह हिन्दी-उर्दू का पचड़ा डालकर और तुलसीकृत रामायण तथा सूरसागर को ब्रजभाषा के ग्रन्थ बतलाकर हिन्दी का अस्तित्व होने में भी इन्कार किया। सभापति की राय के विरुद्ध जाता हुआ मैं अपने टूटे-फूटे शब्दों में खण्डन कर सकता था, किन्तु मिस्टर वाकर महाशय ने मेरा यह काम नियम विरुद्ध बतलाया। इससे मानो सब किया-कराया चौपट हो गया। किन्तु उपस्थित जनता में से एक महाराष्ट्र सज्जन जिनका नाम मिस्टर साठे था और जो हिन्दी एक शब्द भी नहीं बोल सकते थे खड़े हुए। उन्होंने मराठी भाषा में थोड़े-से शब्दों से सभापति के आक्षेपों का खण्डन किया और मराठी भाषा में मुद्रित एक पुस्तक उपस्थित लोगों में वितरण की। उसमें अकाद्यों युक्तियों से यह प्रतिपादित किया गया था कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश में श्री मेहता जी ने सन् 1898 में बम्बई में हिन्दी की क्या दशा थी, इसका चित्रण प्रस्तुत करते हुए उस काल में अपने प्रयत्नों को हिन्दी के अग्रेषण को झलकाया है।

व्याख्या—श्री लज्जाराम जी मेहता का कहना है कि 1898 में बम्बई में एक धनी मानी देश-हितैषी यहूदी सज्जन मिस्टर वाकर आया था। उसने सर्व-साधारण के लिए एक व्याख्या शाला बनवाई और उसे वहाँ (बम्बई) की प्रजा को भेंट कर दी। उस शाला में जनता की भलाई के लिए उत्सवों का आयोजन होता था, जिनमें अनेक भाषाओं के विद्वान् विभिन्न विषयों पर भाषण देते थे। श्री मेहता जी का कथन है कि उस समय हिन्दी के लिए बम्बई में ही मूर्खों में विद्वान् समझा जाता था। अतः मुझे वह भाषण करने का उत्तरदायित्व मिला। मैंने व्याख्यान का विषय रखा था। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। किन्तु वाकर ने इस पर आपत्ति उठाई तथा विषय बदलकर यह बना दिया कि भारतवर्ष की मातृभाषा हिन्दी होने की सम्भावना। इसी घटना से उन दिनों बम्बई में हिन्दी की कितनी गिरी हुई दशा थी, अनुमान लगाया जा सकता है।

श्रीमान् सेठजी, मि. वाकर ने मेरी कमजोरी मिटाने के लिए मेरे व्याख्यान की दो सौ या तीन सौ प्रतियाँ छपवा दी। किन्तु रोजाना की अपेक्षा उस दिन सभा भवन में तीस-चालीस से अधिक मनुष्य नहीं थे। सभापति जी एक रेलवे के उच्च अधिकारी यू.पी. के खत्री बनाये गये थे। उन्होंने श्री मेहता जी के कथन का समर्थन करने की अपेक्षा हिन्दी-उर्दू का पचड़ा डालकर तथा तुलसीकृत समायण एवं सूरसागर को ब्रजभाषा के ग्रन्थ बतलाकर हिन्दी का अस्तित्व कभी रहा था, इससे भी इन्कार किया।

श्री लज्जाराम मेहता जी कहते हैं कि मैं सभापति जी की राय का खण्डन कर सकता था। किन्तु मि. वाकर ने इसे नियम विरुद्ध बतलाया। इस घटना से मेरा हिन्दी के लिये किया कराया प्रयत्न चौपट हो गया। किन्तु भाग्यवश उपस्थित जन-समूह में से एक महाराष्ट्र सज्जन मिस्टर साठे उठे और उन्होंने मराठी भाषा में ही सभापति जी के आक्षेपों का खण्डन किया और मराठी भाषा में मुद्रित एक पुस्तक सभी लोगों में बाँट दी गई, जिसमें अकाव्य युक्तियों से यह सिद्ध किया हुआ था कि 'भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है'।

विशेष—सन् 1898 में बम्बई में हिन्दी की दशा का चित्रण करते हुए लेखक ने उसके उत्थान हेतु क्या-क्या प्रयत्न किये, इन्होंने बातों का दिग्दर्शन यहाँ कराया गया है। उनका कहना है कि उस समय हिन्दी के प्रचार-प्रसार में 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था।

(6) “इस तरह मेरी और उनकी अनेक बार 'दो दो चोंचें' होती रही किन्तु थे हम दोनों एक। उन दिनों हिन्दी पत्रों के लिए कोई ऐसा विषय नहीं था, जिसके कारण लोग उन्हें अधिक अत्कंठा से पढ़ें। इसीलिए यह झगड़ा खड़ा किया गया था। पत्र संपादन में मेरा अनुभव इस बात को स्वीकार करता है कि समय आने पर पत्रों की रक्षा और जन-मनोरजन के लिए ऐसा करना पड़ता है। बंग-भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत ज्योतिन्द्र मोहन टैगोर के विचारों ही उपन्यासों का हिन्दी भाषान्तर किया 'भारत जीवन' काशी के स्वामी और सम्पादक बाबू रामकृष्ण वर्मा ने अपने प्रेस से प्रकाशित किया था। उनमें से चित्तौर-चातकी और 'अश्रुमती' दो पुस्तकों के नाम मुझे स्मरण आते हैं। इनमें मेवाड़ के इतिहास के विरुद्ध 'टॉड राजस्थान' का आधार लेकर जो घटनाएँ लिखी गई थी, उनमें टैगोर महाशय ने अपनी कल्पना से मेवाड़ की राज-महिलाओं का मुसलमान बादशाहों अथवा शहजादों पर प्रेम दिखलाया था। गुप्त जी के आरम्भ और मेरे साथ देने से यह झगड़ा भी पराकाष्ठा को पहुँचा। हमारा कथन था कि ऐसी कल्पना किस काम की जिसमें इतिहास विरुद्ध निर्दोष मेवाड़ राज्य पर कलंक लगाया जाए। आज चाहे ये उपन्यास कल्पित माने जाते हैं किन्तु कुछ वर्षों में सत्य घटना मान ली जायेगी और इससे बड़ा अनर्थ होगा। इस विषय में मेवाड़ कर्मचारियों से लिखा-पढ़ी करके श्रीमान् महाराज साहब का भी ध्यान दिलाया गया किन्तु उन्होंने हमारी बात पर ध्यान न दिया। हिन्दी पत्रों में इसका बहुत जोर-शोर से आन्दोलन हुआ था। महीनों तक 'भारत मित्र' और 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' में इस बात पर जोर डाला गया और इस समय बाबू रामकृष्ण वर्मा को अवश्य धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होंने हमारा मार्ग—न्यायमार्ग समझकर अपनी गलती स्वीकार की और 'चित्तौर-चातकी' की आठ सौ प्रतियों का गंगा-प्रवाह किया।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश में श्री मेहता लज्जारामजी ने अपने सम्पादकीय अनुभव का एक उदाहरण देते हुए मेवाड़ की मान रक्षा का भारतीय प्रयत्न उजागर किया है।

व्याख्या—श्री मेहता जी ने स्वयं का तथा 'भारत मित्र' के सम्पादक बाल मुकुन्द गुप्त का परस्पर विचार संघर्ष दिखाते हुए यह स्पष्ट किया है कि ऐसे संघर्ष हिन्दी-पत्रों के लिए आवश्यक होते हैं ताकि पाठक वर्ग उन्हें उत्साह से पढ़ें। एक संघर्ष का उदाहरण पेश करते हुए मेहता जी कहते हैं कि बंग भाषा के लेखक श्रीयुत ज्योतिन्द्र मोहन टैगोर के बहुत से उपन्यासों का हिन्दी रूपान्तरण 'भारत जीवन' काशी के मालिक और सम्पादक बाबूराम कृष्ण वर्मा ने अपने प्रेस से प्रकाशित किये थे। इनमें से 'चित्तौर चातकी' और 'अश्रुमती' दो पुस्तकें छपी थी। इनमें मेवाड़ के इतिहास के विरुद्ध 'टॉड राजस्थान' का आधार लेकर जो घटनाएँ लिखी थी, उनमें टैगोर महाशय ने अपनी कल्पना से मेवाड़ की राज-महिलाओं का मुस्लिम बादशाहों अथवा शाहजादों पर प्रेम दिखलाया था।

इसका श्री बालमुकुन्द जी गुप्त संपादक 'भारत मित्र' ने विरोध की शुरुआत की तथा श्री लज्जाराम मेहता ने सहयोग दिया। समाचार-पत्र में यह विरोध परकाष्ठा पर पहुँच गया। मेहता जी ने कहा था कि ऐसी कल्पना किस काम की, जिसमें इतिहास विरुद्ध निर्दोष मेवाड़ राज्य पर कलंक लगाया जाए। तत्कालीन ये उपन्यास चाहे कल्पित माने जाएँ परन्तु कालान्तर में ये सत्य घटना मान लिये जायेंगे। तब यह मेवाड़ के पक्ष में बड़ा अनर्थ होगा।

मेहता जी कहते हैं कि इस सम्बन्ध में हमने मेवाड़ के महाराजा का भी इस ओर ध्यान देते हुए निवेदन किया किन्तु उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। किन्तु समाचार-पत्रों में इसके विरुद्ध जोर-शोर से आन्दोलन हुआ जिसके फलस्वरूप बाबू रामकृष्ण वर्मा ने हमारा मार्ग न्याय-मार्ग स्वीकार करते हुए 'चितौर चातकी' की आठ सौ प्रतियाँ गंगा में बहा दी।

विशेष—सम्पादकों का विशिष्ट प्रभाव होता है कि वे किसी गलत प्रस्तुति के विरोध से अपने पत्र को तो प्रसिद्ध कर ही पाते हैं। इसके विपरीत इस गलत प्रस्तुति का जब तक अन्त न हो जाए तब तक चैन से नहीं बैठते।

(7) 'एक दिन हार कर मैंने सम्पादक जी को लिखा कि—

आप अहेतु की कृपा पर गुप्त दानी बनने की इच्छा से जब अपना नाम भी प्रकट करना नहीं चाहते तब मुझे अब लाचार होकर कलकत्ता निवासी मेरे अन्य मित्रों को लिखकर आपका नाम धाम पूछना पड़ेगा। इस तरह मैं जब घबरा उठा तब ऐसे गुप्तदानी महाशय ने पत्र लिखने का अनुग्रह कर अपना नाम प्रकट किया। आप थे पं. झाबरमल शर्मा। बस पत्राचार जारी हुआ। पत्र में निज के पत्र से भिन्न-भिन्न विषयों पर अपनी राय देकर संक्षेप में उनकी सेवा में भेजने लगा और वह भली या बुरी जैसी बात हुई बच्चों की तरह मेरा उत्साह बढ़ाने की इच्छा में उसे पत्र में छापने लगे। एक बार जब इस तरह फिर मेरा श्रीगणेश हुआ तब श्रीयुक्त दुलारेलालजी भार्गव ने 'माधुरी' को जन्म प्रदान कर उसे बिना मूल्य भेजना और लेख भेजने का अनुरोध करना प्रारम्भ किया। मैंने हजार मना किया, हजार अपनी असमर्थता बताई किन्तु मेरी सुनवाई बिल्कुल नहीं हुई। पं. झाबरमलजी शर्मा एक ओर, दूसरी ओर दुलारे लालजी भार्गव—दोनों मेरी दोनों टाँगें पकड़कर मैदान में खींच लाए। अब जो कुछ थोड़ा-थोड़ा लिखता हूँ वह केवल इन दोनों महानुभाव मित्रों की कृपा से, उनके लाचार करने से।'

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश में श्री लज्जाराम जी मेहता ने उस अपने दयनीय समय का चित्रण किया है, जब उन्होंने श्री प्रताप नारायण मिश्र जी द्वारा उनकी श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों पर आक्षेप करना शुरू किया तब उन्हें ध्यान में रखकर मेरी उन पुस्तकों में पुलिस की अश्लीलता की गंध आने लगी। ऐसे अवसर पर मैंने मंचाध्यक्ष पर वह मामला चलाने को लिख दिया तथा लेखन वर्ग ही त्याग दिया। ऐसे गम्भीर समय में मेरा उत्साहवर्धन किन्तु किन सम्पादकों ने किया, यही यहाँ पर प्रदर्शित किया है।

व्याख्या—लेखक श्री मेहता जी ने कहा कि एक दिन नित्य बिना पैसे आने वाले 'कलकत्ता समाचार-पत्र' के सम्पादक जी को मैंने एक पत्र लिखा, उसमें मैंने उन्हें गुप्तदानी रूप में सम्बोधित करते हुए कहा, श्रीमान जी, आप निष्कारण भी समाचार-पत्र भेजने की कृपा करके जब अपना नाम भी नहीं बताना चाहते हैं, तब तो मुझे अपने कलकत्ता निवासी मित्रों से पत्र लिखकर आपका नाम-पता पूछना पड़ेगा। ऐसा लिखने पर गुप्तदानी महाशय जी ने अपना नाम पत्र में प्रकट किया। वे थे पं. झाबरमल शर्मा। बस फिर पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हो गया। मैं अपने पत्रों में निज के पत्र श्री वेंकटेश्वर समाचार से भिन्न-भिन्न विषयों पर राय देकर संक्षेप में उनकी सेवा करने लगा तथा वे भली या बुरी जैसी भी बात मैं लिखता था उसे अपने पत्र 'कलकत्ता समाचार-पत्र' में एक अज्ञानी बालक की तरह छाप देते थे। यह सब वे मेरे लेखन कर्म के उत्साहवर्धन हेतु ही करते थे। एक बार पुनः जब मेरे लेखन-कर्म का श्रीगणेश हुआ तब श्रीयुक्त दुलारे लालजी भार्गव सम्पादक पत्रिका 'माधुरी' ने अपना पत्र बिना मूल्य भेजना प्रारम्भ कर दिया। मैंने हजार बार मना किया, अनेक बार अपनी असमर्थता बतलाई किन्तु उन्होंने मेरी एक बरसुनी। एक ओर से पं. झाबरमल शर्मा तथा दूसरी ओर से दुलारेलालजी भार्गव—दोनों मेरी दोनों टाँगें पकड़कर लेखन क्षेत्र में खींच लाए। आजकल जो कुछ थोड़ा-थोड़ा मैं लिख लेता हूँ, वह केवल इन दोनों महानुभाव मित्रों की कृपा से उनके लाचार करने से ही ऐसा दुःसाहस कर पाया हूँ।

विशेष—लेखन कर्म एक बार छूट जाने पर बड़ी कठिनाई से पुनः प्रारम्भ होता है। वह भी दूसरों के उत्साहवर्धन पर ही सम्भव हो पाता है। जैसे श्री लज्जाराम मेहता जी को पं. झाबरमल शर्मा तथा श्री दुलारेलाल भार्गव जी ने उत्साहवर्धन करके फिर से लेखन कर्म की ओर प्रवृत्त किया था।

(8) 'इसके अतिरिक्त 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के इतिहास लिखते समय काम में आने योग्य मेरी 'आप बीती', में और भी कितनी ही घटनाएँ हैं, जिनमें प्रथम है 'शेष' शब्द पर वादानुवाद। बात यह हुई कि जिन दिनों मैं इस पत्र का सम्पादक था, बाबू लाल मुकुन्द गुप्त 'भारत-मित्र' के सिद्धहस्त और प्रशंसित सम्पादक थे। इस शब्द पर मेरा और उनका झगड़ा हुआ। वह लिखते थे कि 'इस

तरह से इस कार्य का शेष हो गया', मेरा कहना था कि बंगला में चाहे इस शब्द का प्रयोग इस रूप में होता हो किन्तु है यह सरासर अशुद्ध। शेष का अर्थ बाकी है और अंग्रेजी के शब्द खालिलिश्रीलीकी जगह भले ही इसका व्यवहार कर लिया जाए किन्तु अन्त हो गया की जगह शेष हो गया नहीं लिख सकते। जैसा यह झगड़ा था, वैसा हिन्दी-पत्रों में विभक्ति प्रत्यय के सिवाय कभी नहीं हुआ। अवश्य ही इस विषय में दो पार्टियाँ बन गई थी, किन्तु अंत में जनता ने गुप्तजी का अनुकरण करना छोड़ दिया और इस दिशा में मैं कह सकता हूँ कि मैदान मेरे ही हाथ आया।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यावतरण में श्री मेहता जी ने ‘शेष’ शब्द पर हुए विवाद का उल्लेख करते हुए मान्यता किसे मिली इसका वर्णन किया है।

व्याख्या—श्री लज्जाराम मेहता जी का कथन है कि मेरी ‘आप बीती’ में ‘भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है’ इस वक्तूता के झगड़े के अलावा अनेक घटनाएँ हैं, उनमें से सर्वप्रथम है—‘शेष शब्द पर वाद-विवाद’। श्री मेहता जी उस घटना का प्रारूप चित्रित करते हैं कि जब मैं ‘श्री वैकटेश्वर समाचार-पत्र’ का सम्पादक था तब ‘भारत मित्र’ समाचार-पत्र के सिद्धहस्त व प्रसिद्ध सम्पादक बाबू बाल-मुकुन्द जी थे। वे शेष शब्द का प्रयोग कुछ इस भाँति किया करते थे ‘इस तरह से इस कार्य का शेष हो गया।’ इस सम्बन्ध में श्री मेहता जी कहते हैं कि बंगला में चाहे इस ‘शेष’ शब्द का प्रयोग इस रूप में होता हो किन्तु है यह सरासर अशुद्ध। शेष का अर्थ ‘बाकी’ होता है। अंग्रेजी में खालिलिश्रीलीकी जगह चाहे इसका प्रयोग कर लिया जाए किन्तु ‘अन्त हो गया’ की जगह ‘शेष हो गया’ नहीं लिख सकते।

यह ‘शेष’ शब्द के प्रयोग का विवाद हिन्दी के विभक्ति प्रत्यय जैसा भयंकर चला। उस समय इस सम्बन्ध में दो गुट हो गये। अन्त में जनता ने बालमुकुन्द गुप्तजी का अनुकरण करना छोड़ दिया। ऐसी अवस्था में मैदान अर्थात् जीत का क्षेत्र श्री मेहता जी के हाथ में आया। शेष शब्द का प्रयोग मेहता जी वाला बाकी रहना ही स्वीकारा गया।

विशेष—सम्पादकों की परस्पर दो-दो चोंचें प्रायः होती रहती हैं। यहाँ पर भी ‘शेष’ शब्द के प्रयोग पर छिड़े वाद-विवाद श्री मेहता जी एवं श्रीयुक्त बालमुकुन्द जी गुप्त के मध्य प्रकाशित किया गया है। इसमें सही प्रयोग श्री मेहताजी के गुट का ही रहा है।

2.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. लेखक के अनुसार जीवनी और आत्मकथा का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—लेखक की दृष्टि से अन्तर—उसमें जीवनीकार अपने एवं समाज के प्रेरणास्पर्द महापुरुष के कर्म व कर्तव्यों का दिग्दर्शन करवाता है। उसमें उसके द्वारा सम्पन्न हुए देश हित एवं समाज-हित के कार्यों को भली-भाँति प्रदर्शित कर जीवनीकार उन्हें उत्प्रेरित करता है।

उदाहरणार्थ हम श्री ठाकुर केसरीसिंह बारहठ जी की जीवनी को ही यदि लें तो उसके जीवनीकार डॉ. रामचरण महेन्द्र हैं। उन्होंने उनके जीवन से संबंधित समस्त हाड़ीती अंचल के स्वतंत्रता संग्राम में घटित घटनाओं को प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त उन के बाल्यकाल, शिक्षा, जीवन का संघर्ष केन्द्र और जीवन के अन्तिम पड़ाव के सम्बन्ध में ही उन्होंने उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है—

‘भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सम्पूर्ण बारहठ परिवार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यद्यपि केसरीसिंह जी की बाल्यकाल एवं प्रारम्भिक शिक्षा, मेवाड़ में ही सम्पन्न हुई थी लेकिन कोटा नगर उनके जीवन का संघर्ष केन्द्र और जीवन के अन्तिम पड़ाव का केन्द्र भी रहा। गुमान पुरा में अवस्थित ‘मणिक भवन’ जो अमर शहीद प्रतापसिंह की माताजी माणिक कुंवर की स्मृति में ही बनाया गया था और उस विशाल भवन के बाहर चबूतरे में श्रीमती माणिक कुंवर की अस्थि अवशेष सुरक्षित हैं। उसी चबूतरे पर बैठकर प्रतापसिंह के आत्म-बलिदान के बाद एवं श्रीमती माणिक कुंवर की अन्तिम जुदाई के बाद जीवन के एकांकी क्षण केसरीसिंह बारहठ ने उसी चबूतरे पर बैठकर बिताए थे। मणिक भवन हाड़ीती अंचल का स्वराज्य भवन है, जहाँ देश की आजादी के ताने-बाने बुने गये थे।’

अन्य प्रकार से श्री डॉ. रामचरण महेन्द्र जी ने केसरीसिंह बारहठ जी की जीवनी उनके बाल्यकाल एवं शिक्षा से लेकर उनके कर्म एवं कर्तव्यों को झलकाते हुए प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त 21 फरवरी की घटना को डॉ. महेन्द्र जी ने निम्नानुसार चित्रित किया है—

‘राष्ट्रीय स्तर पर सन् 1857 के विफल विद्रोह के बाद, स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए यह दूसरा प्रयास था। जिसका नेतृत्व केसरीसिंह बारहठ व ठाकुर गोपालसिंह कर रहे थे। उसके अन्तर्गत 21 फरवरी सन् 1914 को क्रान्ति का शंखनाद बजना था, लेकिन गुप्तचरों को भनक मिल गई। सैनिक विद्रोह एवं सशस्त्र क्रान्ति की तमाम तैयारियाँ विफल कर दी गयी और वे 31 मार्च को गिरफ्तार कर लिये गये तथा 6 अक्टूबर, 1919 को केसरीसिंह बारहठ को 20 वर्ष का आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें अंग्रेज सरकार ने एक बागी के रूप में स्वीकार किया।’

एक अविस्मरणीय क्षण जोधपुर के आशानाड़ा स्टेशन पर दिल्ली षडयन्त्र केस के अन्तर्गत इनके पुत्र प्रतापसिंह को गिरफ्तार कर बरेली जेल में भयंकर शारीरिक यातना दी गई। उस नवयुवक को बेहद पीड़ित किया गया। इसी समय केसरीसिंह बारहट ने बिहार के हजारी बाग जेल में आजीवन कैद काटते समय काल कोठरी में अन्न त्याग कर दिया। लगभग तीस दिन बीत चुके थे। प्रतापसिंह ने पिताश्री से मिलने की इच्छा प्रकट की और पिता-पुत्र की यह अन्तिम भेंट हजारी बाग जेल में सम्पन्न हुई। जर्जर बागी पिता जेल के सीकंनों में बन्द और इधर बेड़ियों में कसा आहत प्रतापसिंह 'वन्दे-मातरम्' के सम्बोधन के बाद सिर्फ आँसू-आँसू प्रतापसिंह सिसकते रहे।

उपर्युक्त उद्धरणों में केसरीसिंह बारहट की जीवनी से अमर शहीदों की वृद्धता, अविचल स्वातंत्र्य निष्ठा एवं देश के प्रति उत्सर्ग की भावना का प्रभाव जनता पर पड़ता प्रतीत हो रहा है।

आत्मकथा के लेखक का अन्तर—आत्मकथा का लेखक वह स्वयं व्यक्ति ही होता है, जिस पर वह 'आप-बीती' लिखी गई है। क्योंकि आप पर व्यतीत हुई घटनाएँ अच्छी या बुरी स्वयं उसी व्यक्ति के द्वारा प्रकट की जा सकती है। जिसकी कि वह आत्मकथा है। दूसरा तो उसके अच्छे पक्ष को ही उजागर करने में अपने को कृतकार्य समझता है। अतः वह उसके बुरे पक्ष की कभी भी चित्रित करने का प्रयास नहीं करता। उसे उन बुरे प्रसंगों में कोई जनता के भले होने की बात नहीं नजर आती है, जिसे वह उनकी जीवनी में रखे।

उदाहरणतया हम श्री लज्जाराम मेहता जी की 'आप-बीती' को ही यदि लें तो वह आत्मकथा उन्होंने स्वयं रची थी। उसमें उन्होंने अपने जीवन के लेखक, सम्पादक व समालोचन पक्ष के उतार-चढ़ाव दोनों रूपों में उभारा है। उसमें श्री मेहता जी ने स्वयं की प्रशंसा ही नहीं की है अपितु अपनी कमियाँ एवं असफलताएँ तथा पुनः लेखन क्षेत्र में प्रवृत्त होने के श्रेय आदि की बातें साफ-साफ तौर से झलकाई हैं।

सर्वप्रथम तो वे अपनी 'आप-बीती' को पाठकों के हित में न समझते हुए उसे मात्र एक लेखक के आशीर्वाद प्रदान के फलस्वरूप पढ़ने का आग्रह करते हैं तथा निम्न रूप में विनय पूर्वक कहते हैं—

'जब यह पोथी मैंने अपने आत्मीयों के लिए लिखी है तब सचमुच ही उसके लिए यह एक धरोहर है क्योंकि जो वास्तव में सज्जन हैं वह अपने स्वजनों को शिक्षा देते हैं, उपदेश देते हैं, धन देते हैं, सम्पत्ति देते हैं और वैभव देते हैं किन्तु मैं धन का दरिद्री हूँ, मन का दरिद्री हूँ और चरित्र का दरिद्री हूँ तब यदि मैं उन्हें कुछ देना भी चाहूँ तो आशीर्वाद के अतिरिक्त क्या दे सकता हूँ? बस इसीलिए मैं अपनी यह 'आप-बीती' देता हूँ और वह भी इसलिए देता हूँ कि कभी-कभी अपने अवकाश के समय रद्दी की टोकरी में से उठाकर इसी बहाने से इसके द्वारा मुझे स्मरण कर लिया करें।'

उपर्युक्त उद्धृत अंश से प्रकट होता है कि आत्म-कथा जो व्यक्ति स्वयं रचता है उसका एकमात्र उद्देश्य अन्य विविध हितों में व्यक्त पाठकों को स्वयं के स्मरण करने मात्र के लिए लिखता है। नहीं तो इस व्यस्त संसारी प्राणी को किसी की आपबीती से क्या लेना-देना रहता आया है, किन्तु नहीं, फिर भी सज्जन अपने स्वजनों के लिए 'आप-बीती' लिखते हैं ताकि वे यदि इस लेखन, सम्पादन व समालोचन जैसे कर्मों को ग्रहण करने की चेष्टा करें तो उस 'आप-बीती' से मार्ग-दर्शन पा सकें।

आत्मकथा के विषय—आत्मकथा के भी विषय प्रायः जीवनी के समान ही हुआ करते हैं। इसमें भी जो अपनी 'आप बीती' लिखता है वह अपने नामकरण शिक्षा-मराठी की या फिर हिन्दी का अभ्यास आदि के बारे में उल्लेख करता है। तत्पश्चात् यदि वह सम्पादकत्व की ओर उन्मुख है तो किसी पत्र का सम्पादक कैसे बना उनमें कौन-कौन बाधाएँ आई, इनके प्रसंगों का अंकन करता है।

उक्त विषयों को श्री मेहता जी ने अपनी 'आप-बीती' में निम्न रूप से अभिव्यक्त किया है—

'सर्वहित' पाक्षिक पत्र—बात यह हुई कि मुझे हिन्दी समाचार पत्रों को पढ़ने का शौक था। कभी-कभी जिन लेखों को मैं अच्छे समझता था। मेरे गुरुवर पूज्यपाद पण्डितजी को सुनाया करता था। सुनते-सुनते उनकी इच्छा हुई कि बूंदी से भी कोई पत्र प्रकाशित किया जाए, ताकि अच्छे-अच्छे चुने हुए लेखों के साथ दुनियाँ भर के संक्षिप्त समाचार पढ़ने को एक ही पत्र में बूंदी वालों को मिल जाएँ और इस तरह अनायास यहाँ की जनता की रुचि हिन्दी पढ़ने की ओर प्रवृत्त हो। इसके लिए राज्याधिकारी श्रीमान् से निवेदन किया गया। उन्होंने पाठशाला के खर्च में गुंजायश निकालकर 'सर्वहित' नाम का पाक्षिक पत्र निकालने की व्यवस्था कर दी।

श्री मेहता जी का संपादकत्व—इस पत्र के आरम्भ के अंकों का सम्पादन तो पण्डित जी के ज्येष्ठ पुत्र और मेहता जी के मित्र पं. रामप्रताप जी ने किया। किन्तु शाला के अध्यक्ष श्री बोहरा मेधवाहन जी के राज्याधिकार के फलस्वरूप वह कार्यभार श्री मेहतानी व पण्डित गंगाशंकर को सौंपा गया। इन दोनों को बजट से पंचोली जो को दस व मेहता जी को पाँच रुपये तनख्वाह के अलावा बढ़ाकर देने का श्री बोहरा जी ने आश्वासन दे दिया। इस प्रकार से 'सर्वहित' का सम्पादकत्व आया।

बम्बई में आकर 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' का सम्पादकत्व—बम्बई में आने पर श्री मेहता जी को वहाँ के 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' का सम्पादन मिल गया। उस काल की एक घटना जो कि 'शेष' शब्द के प्रयोग पर विवादग्रस्त थी, उसका उल्लेख श्री मेहता जी ने अपनी 'आप-बीती' में किया है। उस समय श्री बालमुकुन्द गुप्त 'भारत मित्र' के यशस्वी सम्पादक थे। वे 'शेष' शब्द का प्रयोग कुछ इस प्रकार से करते थे, 'इस तरह से इस कार्य का शेष हो गया। जिसका अर्थ निकलता है अन्त हो गया। किन्तु श्री मेहता जी की दृष्टि में यह शेष शब्द का अर्थ 'बाकी' रहना ही सही है। इसके स्थान पर अन्त हो गया के लिए इसका प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है।'

इस प्रकार की चीँचें दो सम्पादकों में हुई, जिसकी चर्चा उनके अपने-अपने पत्रों में मुद्रित होती रही। अन्त में विजय मेहताजी को ही मिली लोगों ने श्री गुप्तजी के प्रयोग का अनुकरण करना छोड़ दिया।

चातकी का गंगाप्रवाह व अश्रुमती का शोधन—उनके सम्पादन कालमें ही दो पुस्तकें बंगभाषा से हिन्दी भाषान्तर की गईं बाबू रामकृष्ण वर्मा ने अपने प्रेस से प्रकाशित की। बाबू रामकृष्ण वर्मा उस समय 'भारत जीवन' पत्र के मालिक व सम्पादक थे। इसमें 'चितौड़ चातकी' में तो मेवाड़ की राजमहिलाओं का मुसलमान बादशाहों अथवा शहजादों पर प्रेम दिखलाया था। इसके बंगला लेखक थे—श्रीयुत ज्योतीन्द्र मोहन टैगोर। उन्होंने यह सब अपनी कल्पना के सहारे तथा 'टॉड राजस्थान' का आधार लेकर लिखी गई। इन पर श्री मेहता जी ने अपने पत्र 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' में भीषण विरोध किया। उनका कहना था कि ऐसी कल्पना किस काम की, जिसमें इतिहास विरुद्ध निर्दोष मेवाड़ राज्य पर कलंक लगाया जाए। मेहताजी की आलोचना सही निकली अतः इसके हिन्दी रूपान्तरण के प्रकाशक श्री रामकृष्ण जी ने 'चितौर चातकी' की आठ सौ प्रतियाँ गंगा की धारा में बहा दीं।

इसी प्रकार से 'अश्रुमती' नाटक का भी शोधन करवाया गया। अश्रुमती का दूषित अंक निकलवाया और नये ढंग से नाटक तैयार हुआ। उस समय गुजराती में 'देशी नाटक समाज' एक उच्च कोटि की नाटकमण्डली थी, जिसने संशोधित 'अश्रुमती' का रंगमंच पर प्रदर्शित करके पुराने नाटक की भावना को दूर किया।

संक्षिप्तसार—उक्त विवेचन से स्पष्टतया प्रतीत होता है कि 'आत्म कथा' एवं जीवनी में लेखक व विषय की दृष्टि से बहुत अन्तर होता है। विषय के परिणाम आत्मकथा में भी पाठकों पर महत्वशाली प्रभाव डालने वाले होते हैं जबकि जीवनी में विषय की प्रस्तुति ही पाठक के मन पर सीधा असर डालने में सक्षम प्रतीत होती है। लेखक दोनों के अलग-अलग होते हैं। जीवनी के लेखक जिसकी जीवनी लिखी गई है, जबकि उससे भिन्न होता है आत्मकथा लिखने वाला व्यक्ति स्वयमेव अपनी 'आप-बीती' रचता है।

प्रश्न- 2. "धन दरिद्री और मन दरिद्री दूसरों को क्या दे सकता है" अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—आप बीती की रचना का उद्देश्य—लेखक श्री लज्जाराम जी मेहता 'आप बीती' के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'आप-बीती' तो उनकी लिखी जानी चाहिए, जिन्होंने दुनियाँ में आकर कुछ काम किया हो या इस संसार में नाम कमाया हो। जब मेरा जीवन ही आलस्य में प्रमाद में, मिट्टी में, मोह में, रोग में और इस तरह दुनियाँ की हाय-हाय में बीता जा रहा है, तब मुझे मेरी 'आप बीती' लिखने में लाभ ही क्या है? कुछ नहीं। चौंसठ वर्ष बीत जाने पर भी जब मेरे हाथ से कोई ऐसा अच्छा काम नहीं हुआ, जिससे मैं 'आप-बीती' लिखने का अधिकारी समझा जाऊँ किन्तु नहीं, लाभ और हानि किसी पदार्थ विशेष का गुणदोष नहीं है। लाभ उठाने वाले तो मार्ग की धूलि से भी लाभ उठा लेते हैं। यदि वे अधिक से अधिक या कम से कम इन पृष्ठों को पढ़कर इतना ही लाभ उठा लें कि जैसे इस अकिंचन लेखक ने संसार में आकर अपना जीवन बर्बाद कर दिया, वैसे खोना अच्छा नहीं तो यह भी मेरा सौभाग्य होगा।

लेखक श्री लज्जाराम जी के उक्त कथन से यही तात्पर्य निकलता है कि मेरे द्वारा लिखित इस 'आप-बीती' को पढ़कर पाठक इतना तो लाभ उठा ही सकते हैं कि मेरी तरह संसार में आकर अपने जीवन को बर्बाद करने से बचा लें। उनका जीवन बर्बाद होने से यदि इस 'आत्मकथा' के अध्ययन के पश्चात् बच जावे तो मेरे लिए यही सौभाग्य की बात होगी। तात्पर्य यह हुआ कि लेखकों की 'आत्म-कथा' को कोई फल ही नहीं।

पुनः इस 'आप बीती का निर्माण क्यों'—श्री मेहता जी चाहते हैं कि जब मैंने यह पोथी 'आप-बीती' अपने स्वजनों के निमित्त लिखी है, तब सचमुच ही उनके लिए यह धरोहर स्वरूप है। जो वास्तव में बड़े लोग हैं, वे अपने स्वजनों को शिक्षा देते हैं, उपदेश देते हैं, धन देते हैं, सम्पत्ति देते हैं और वैभव देते हैं।

मेहता जी ने 'आप-बीती' के माध्यम से क्या दिया—मेहता जी कहते हैं कि मैं तो धन का दरिद्री हूँ तथा मन का दरिद्री हूँ, आशय यह हुआ कि न तो पाठकों को मेरे पास देने को न धन है, न ही मानसिक उच्च विचार हैं, तब मैं तो केवल उन्हें यदि देना भी चाहूँ तो केवल आशीर्वाद ही दे सकता हूँ।

इस आशीर्वाद के रूप में मैं अपनी यह 'आप-बीती' देता हूँ और वह भी इसलिए कि कभी-कभी अपने अवकाश के समय रद्दी की टोकरी में से उठाकर इसी बहाने से कि इस 'आप-बीती' पढ़ने में उन्हें मेरा आशीर्वाद मिल जाएगा, मेरी याद को ताजा बना लें।

मेहता जी के कहने का आशय है कि धन का दरिद्री और मन का दरिद्री मैं तो अपनी 'आत्म-कथा' पढ़ने वालों को आशीर्वाद ही दे सकता हूँ कि मेरे जैसे लेखक की याद को अपने मन में सदा बनाए रखें। नहीं तो इस व्यस्त संसार में लेखकों की 'आप-बीती' पढ़ने को किसे फुर्सत है। सभी अपने मनोरंजनार्थ अन्य उपदेय पुस्तकें पढ़ते हैं। 'आत्म-कथा' को तो कोई आँख बन्द करके भी नहीं देखना चाहता है।

अतः लेखक को अपने पाठकों से इतनी भर अपेक्षा है कि वे इनकी 'आप-बीती' अवश्य पढ़ें ताकि उसके निर्माण के उद्देश्य को प्राप्त कर सकें।

प्रश्न-3. लेखक श्री लज्जाराम मेहता जी को हिन्दी पढ़ने की रुचि जागृत हुई? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—हिन्दी बोलने का अभ्यास पैमायश के कर्मचारियों से—लेखक श्री लज्जाराम मेहता कहते हैं कि हिन्दी मेरी मातृभाषा नहीं है, पहले मैंने पण्डित सूर्यनारायण जी वैद्य से मराठी सीखी। मराठी से पहले मेरे घर की ओर घर के बाहर की एवं राजसेवा की भाषा बूंदी की बोली खेराड़ी थी। मैं डाकघर में रोज जाता-आता रहता था। इससे मुझे अँग्रेजी पढ़ने का शौक लगा तथा वहीं पर बन्दोबस्त महकमें में पैमायश के काम जो कर्मचारी नौकर थे, वे प्रायः सब ही युक्त प्रान्त (यू.पी.) के निवासी थे। उनसे बातचीत करने में हिन्दी बोलने का अभ्यास हुआ।

समाचार पत्र पढ़ने का शौक—इस अभ्यास के साथ हिन्दी समाचार-पत्र पढ़ने का शौक हुआ। हम तीन-चार मित्रों ने मिलकर, 'भारत-मित्र' और 'भारत-जीवन' साप्ताहिक पत्र मँगवाने शुरू किये। हिन्दी के अभ्यास की रुचि यहाँ तक बढ़ी की पढ़ते-पढ़ते लिखने की ओर रुचि बढ़ने लगी। मेरे गुरुवर पूज्यपाद पण्डितजी के अनुग्रह से राज्य की ओर से सर्वहित नामक पाक्षिक पत्र बूंदी से शिलायन्त्र से निकलने लगा। श्री मेहता जी ही उसके प्रथम सम्पादक थे।

हिन्दी के लिए राष्ट्रभाषा का पद—एक बार बम्बई के एक धनीमानी यहूदी सज्जन मिस्टर वाकर ने जनता के लिए एक व्याख्यानशाला बनवाई और उसे वहाँ की प्रजा को भेंट कर दिया। इसमें वह विभिन्न भाषाओं के विद्वानों की वक्तुताएँ करवाता था। हिन्दी के लिए वक्तुता देने हेतु श्री मेहता जी को चुना गया। उन्होंने व्याख्या का विषय रखा कि 'भारत की राष्ट्रीय भाषा हिन्दी है'। मिस्टर वाकर ने इस विषय पर ऐतराज किया और उसे बदलकर 'भारतवर्ष की मातृभाषा हिन्दी होने की सम्भावना' कर दिया। बस इससे हम जान सकते हैं कि उस जमाने में बम्बई की दृष्टि में हिन्दी कितनी गिरी हुई थी।

यद्यपि श्रीमान सेठजी मिस्टर वाकर ने उनके भाषण की दो सौ, तीन सौ प्रतियाँ छपवा दी थी ताकि मुझे उस भाषण को बोलने की आवश्यकता न पड़े। इस भाषण सभा में सभापति रेल्वे के उच्च अधिकारी एक युक्त प्रान्तीय (यू.पी.) खत्री बनाये गये। उन्होंने श्री मेहताजी के कथन का समर्थन करने की अपेक्षा हिन्दी-उर्दू का पचड़ा डालकर तथा तुलसीकृत रामायण एवं सूर-सार को ब्रजभाषा का ग्रन्थ बतलाकर हिन्दी के अस्तित्व होने से भी इन्कार किया। श्री मेहता जी सभापति की राय के विरुद्ध जाते हुए उसका खण्डन कर सकते थे किन्तु मिस्टर वाकर महाशय ने उनका यह काम नियम विरुद्ध बतलाकर उन्हें शान्त कर दिया। इससे उनका सब किया कराया चौपट हो गया। किन्तु उपस्थित जनता में एक महाराष्ट्रियन सज्जन मिस्टर साठे ने अपनी भाषा मराठी में थोड़े से शब्दों में ही सभापति जी के सभी अपेक्षों का खण्डन कर दिया तथा मराठी भाषा में मुद्रित एक पुस्तक भी लोगों में वितरित की, जिसमें अकाट्य युक्तियों से यह प्रतिपादित किया गया था कि 'भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है'। सभापति जी को चुप हो जाना पड़ा। किन्तु उस समय की स्थिति का इस घटना से अनुमान हो सकता है कि उस काल में हिन्दी की क्या दशा थी। आज बम्बई में हिन्दी की उत्तरोत्तर उन्नति हो तथा दुनियाँ ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि 'भारत की राष्ट्रभाषा' हिन्दी ही है। यह लगभग 1898 के समय की बात है। अतः यह आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय हिन्दी के विषय में आगे बढ़ना कितना कठिन था।

हिन्दी में रुचि जगने के साथ अन्य तत्संबन्धी कार्य—उक्त विवेचन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्री लज्जारामजी मेहता की हिन्दी पढ़ने के प्रति रुचि पैमायश के कर्मचारियों के साथ बोलने के अभ्यास से तथा हिन्दी में वक्तुता देकर उनके राष्ट्रभाषा के पद पर स्थापित करने के प्रयत्न से यह रुचि उनमें जगी थी।

तत्सम्बन्धी (हिन्दी सम्बन्धी) कार्य—इसके उपरान्त तो वे हिन्दी में प्रयोग किये जाने वाले 'शेष' शब्द के सही प्रयोग को भी विशिष्ट सम्पादकों तक की बताने लगे। उस समय 'भारत मित्र' के सम्पादक श्री बालमुकुन्द जी गुप्त इस शेष शब्द का प्रयोग कुछ इस भाँति करते थे—'इस तरह से इस कार्य का शेष हो गया'। इस प्रयोग से शेष का अर्थ अन्त हो गया निकलता है। जबकि श्री मेहता जी

इसका सही अर्थ 'बाकी रहना' मानते थे। इस पर मेहताजी व बालमुकुन्द जी में काफी समय तक विवाद चला। अन्त में जनता ने बालमुकुन्द जी का अनुकरण करना छोड़ दिया। इस बहस में मैदान लेखक श्री मेहता जी के हाथ लगा।

इसके अतिरिक्त श्री मेहता जी ने बंगला से अनूदित 'चितौर-चातकी' जिसके बंगला लेखक श्री ज्योतिन्द्र मोहन टैगोर थे, जिन्होंने इस उपन्यास में अपनी कल्पना को 'टॉड राजस्थान' के सहारे मेवाड़ की राजमहिलाओं का मुसलमान बादशाहों या शाहजादों पर प्रेम दिखलाकर की थी। इसका भी मेहता जी ने विरोध इस प्रकार से किया। वे कहते थे कि 'हमारा कथन है कि ऐसी कल्पना किस काम की, जिसमें इतिहास विरुद्ध निर्दोष मेवाड़ राज्य पर कलंक लगाया जाए क्योंकि आज ये उपन्यास कल्पित माने जाते हैं किन्तु कुछ वर्षों बाद ये सत्यघटना मान लिये जायेंगे तथा इससे बड़ा अनर्थ होगा।'

तब 'चितौर चातक' के हिन्दी रूपान्तरण के प्रकाशक, 'भारत-जीवन' पत्र के मालिक व सम्पादक श्री रामकृष्ण वर्मा ने उसकी आठ सौ प्रतियों को गंगा की धारा में बहा दिया।

सारांश—इस प्रकार से श्री लज्जारामजी मेहता ने हिन्दी पढ़ने में रुचि जागृत करके उसके शोधन एवं उसमें गलत-बदालों का विरोध करके अपने हिन्दी प्रेम का प्रत्यक्ष परिचय दिया। हम उनकी हिन्दी सेवा को कभी भी नहीं भुला पायेंगे। उन्होंने हिन्दी भाषा की सेवा उस कठिन काल में की थी जब उसे लोग राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने से कतराते थे।

प्रश्न-4. पं. लज्जाराम की सम्पादकीय और समालोचनीय दृष्टियों पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर—'सर्वहित' पाक्षिक पत्र के सम्पादक के रूप में—श्री लज्जारामजी मेहता बूंदी के रहने वाले थे। वे बन्दोबस्त महकमे में पैमायश के काम पर नियुक्त कर्मचारियों के संसर्ग में हिन्दी बोलने का अभ्यास कर पाये थे। इससे पहले उनके घर की, घर से बाहर की और राजसेवा की भाषा, बूंदी की बोली खेराड़ी थी। उनकी हिन्दी के प्रति रुचि 'भारत मित्र' और 'भारत जीवन' साप्ताहिक पत्रों के पढ़ने से बढ़ी। पढ़ते-पढ़ते उनकी रुचि हिन्दी लेखन की ओर प्रवृत्त हुई।

उनके गुरुवर पूज्यपाद पण्डित जी के अनुग्रह से राज्य की ओर से 'सर्वहित' नामक पाक्षिक पत्र वहाँ (बूंदी) से शिलायन्त्र से निकलने लगा। उन्हें इस 'सर्वहित' का सम्पादक बनाया गया। श्री रंगनाथ प्रेम का प्रबन्ध तथा 'सर्वहित' पत्र का सम्पादन उन्होंने मन लगाकर उपेक्षा रहित होकर किया।

बम्बई आगमन एवं 'श्री वैकटेश्वर समाचार' सम्पादन—पुनः श्री मेहता जी बूंदी से बम्बई आ गये तथा यहाँ भी उन्होंने श्री वैकटेश्वर समाचार-पत्र का सम्पादन किया। 'श्री वैकटेश्वर समाचार' पत्र का इतिहास लिखते समय जो घटनाएँ घटी, उनमें सर्वप्रथम 'शेष' शब्द पर वादानुवाद।

बात यह हुई कि जिन दिनों श्री मेहता जी 'श्री वैकटेश्वर समाचार' पत्र के सम्पादक थे तब बाबू बालमुकुन्द गुप्त 'भारत मित्र' समाचार पत्र के सिद्धहस्त एवं प्रशंसित सम्पादक थे। इस शेष शब्द के सही प्रयोग पर श्री मेहता जी और बालमुकुन्द जी गुप्त का झगड़ा हुआ। वह लिखते थे कि, 'इस तरह से इस कार्य का शेष हो गया। किन्तु श्री मेहता जी का कहना था कि शेष शब्द का अर्थ बाकी है। बंगला में चाहे इस शब्द का प्रयोग 'अन्त होने' के अर्थ में कर लिया जाए, किन्तु हिन्दी में इसका प्रयोग 'अन्त हो गया' के अर्थ में 'शेष हो गया' नहीं लिख सकते। अवश्य ही इस विषय में उस समय दो पार्टियाँ बन गयी थी किन्तु अन्त में जनता ने गुप्त जी का अनुकरण करना छोड़ दिया तथा श्री मेहता जी के अनुसार उस 'शेष' शब्द को 'बाकी होना' रूप में व्यहृत करने लगे।'

चातकी का गंगा-प्रवाह तथा अश्रुमती का संशोधन—इनके 'श्री वैकटेश्वर समाचार' पत्र के सम्पादन काल में ही बंग-भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुक्त ज्योतीन्द्र मोहन टैगोर के कितने ही उपन्यासों का हिन्दी रूपान्तर 'भारत जीवन' काशी के मालिक और सम्पादक बाबू रामकृष्ण वर्मा ने अपने प्रेस से प्रकाशित किये थे। उनमें से 'चितौर-चातकी' उपन्यास तथा 'अश्रुमती' नाटक कुछ विषय वस्तु की दृष्टि से आपत्तिजनक थे।

'चितौर-चातकी' में तो मेवाड़ के इतिहास के विरुद्ध 'टॉड राजस्थान' का आधार लेकर जो घटनाएँ लिखी गई थीं, उनमें श्री ज्योतीन्द्र मोहन टैगोर जी ने अपनी कल्पना से मेवाड़ की राजमहिलाओं का मुसलमान बादशाहों या शाहजादों पर प्रेम दिखलाया था। श्री बालमुकुन्द गुप्त जी के इस विषय में झगड़े के आरम्भ करने व श्री मेहताजी के साथ देने से यह झगड़ा पराकाष्ठा को पहुँचा। इन दोनों सम्पादकों का कथन था कि ऐसी कल्पना किस काम की जिसमें इतिहास विरुद्ध निर्दोष मेवाड़ पर कलंक लगाया जाए। आज चाहे ये उपन्यास कल्पित माने जाते हैं किन्तु कुछ वर्षों बाद ये सत्य घटना मान लिये जायेंगे और इससे बड़ा अनर्थ होगा। हिन्दी पत्रों में इसका बहुत जोर-शोर से आन्दोलन हुआ। महीनों तक 'भारत मित्र' और 'श्री वैकटेश्वर समाचार' में इस बात पर जोर डाला गया। तब कहीं जाकर बाबू रामकृष्ण वर्मा ने हमारे मार्ग को न्याय-मार्ग समझ कर अपनी गलती स्वीकार की तब चितौर चातकी की आठसौ प्रतियाँ गंगा में प्रवाहित की।

अश्रुमति का संशोधन—श्री वर्मा जी ने नाटक 'अश्रुमती' का दूषित अंश निकालकर उसे दुबारा छपवाया। इस प्रकार श्री लज्जाराम जी मेहता जी के सम्पादकत्व में ऐसे दूषित उपन्यास व नाटकों का प्रकाशित होना बन्द हुआ।

श्री लज्जाराम मेहता जी की समालोचकीय दृष्टि—उस समय में समालोचकों में तीन का गुट था—प्रतापनारायण मिश्र जी, बालमुकुन्द गुप्त जी और लज्जाराम मेहता। किन्तु इसका यह आशय नहीं था कि न्याय और अन्याय हर बात में उन तीनों की एक राय हो। 'शेष' के विषय में गुप्त जी और श्री मेहता जी का वैचारिक मतभेद देख ही चुके हैं।

श्री प्रतापनारायण मिश्र जी से उनका झगड़ा उस समय बड़ा रंग लाया था। बात यह हुई कि मथुरा के पं. गोकुलचन्द्र जी वकील लिखित सूर्यकान्त की समालोचना करते समय भी मेहता जी ने लिख दिया था कि, इसमें 'चन्द्रकान्ता' के समान असम्भव बातें नहीं हैं। पं. माधवप्रसाद मिश्र उस समय 'सुदर्शन' पत्र के सम्पादक थे और 'चन्द्रकान्ता' के लेखक श्री देवकीनन्दन खत्री उस पत्र 'सुदर्शन' के मालिक थे।

'चन्द्रकान्ता' में असम्भव बातों पर बहस—बस इस पर बहस प्रारम्भ हुई और समाचार-पत्रों में इस बात को लेकर घोर आन्दोलन हुआ। श्री मेहताजी का उस समय कहना था तथा उनके जीवन काल तक वे मानते थे कि 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' में से यदि तिलस्मी और ऐयारी दो शब्द निकाल दिये जाएँ तो उसमें कुछ भी शेष नहीं बचेगा। इस उपन्यास से हिन्दी पाठकों की संख्या अवश्य अनाप-शनाप बढ़ी है किन्तु सच पूछो तो उसमें है कुछ भी नहीं।

इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि इन पुस्तकों की बिक्री कम हो गई। तब इसके लेखक श्री देवकीनन्दन खत्री को इनकी बिक्री के लिये समाचार-पत्रों में विज्ञापन देने पड़े। इसके फलस्वरूप श्री प्रतापनारायण मिश्र जी ने वैकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों पर आक्षेप करना आरम्भ किया। उन्होंने अपने लेखों में एक-दो ऐसी पंक्तियों का संकेत किया जिन्हें स्मरण कर पुलिस को अश्लीलता की गन्ध आने लगी। श्री मेहता जी कहते हैं कि उन्होंने मिश्र जी को लिख दिया था कि, 'आपने मुझे छोड़कर सभाध्यक्ष कर आक्षेप करें।'।

उक्त झगड़ों में श्री मेहता जी ने लेखन कार्य छोड़ दिया। उसके पश्चात् उन्हें फिर से लेखन क्षेत्र में लाने का श्रेय पण्डित झाबरमलजी शर्मा तथा दुलारेलाल जी भार्गव सम्पादक माधुरी पत्रिका वालों की है।

उक्त प्रकार से श्री लज्जाराम मेहता ने सम्पादकत्व एवं समालोचना के क्षेत्र में कार्य किया। इन दोनों क्षेत्रों में उनके प्रयास प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय हैं। उन्होंने पत्रों का संपादन भी बेधड़क किया तो समालोचना भी किसी के दबाव में आकर ढीली-ढाली नहीं की। उनकी समालोचना में दृढ़ता एवं प्रभोवात्पादकता थी तभी तो 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास की बिक्री कम होती गई। उसके सम्बन्ध में उनका यह कथन कि यदि इस 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास से ऐयारी व तिलस्मी घटनाएँ हटा दी जाएँ तो उसमें कुछ भी शेष पढ़ने लायक या पाठकों को कुछ देने योग्य वस्तु नहीं रह जाएगी।

2.2 सारांश

ऐसे थे श्री लज्जारामजी मेहता जो हिन्दी बोलने का अभ्यास करते-करते इसके लेखन क्षेत्र में आये तथा पुनः पत्र संपादकत्व किया फिर पुस्तकों की समालोचना भी प्रभावी एवं बेधड़क की। ऐसे ही व्यक्ति अपनी 'आप-बीती' से आने वाले लोगों में लेखन-कर्म, संपादन कौशल व समालोचन सामर्थ्य का शुभाशीर्वाद देकर उन्हें इन तीन कर्मों में प्रवृत्त करने की क्षमता रखते हैं। हमें उनकी लिखी आप-बीती से यही प्रेरणा लेनी चाहिए कि जो भी काम करें उसमें निष्पक्षता का होना परम आवश्यक है। प्रत्येक कार्य में बाधाएँ तो आती ही हैं किन्तु दृढ़ निश्चय पुरुष सभी बाधाओं को पार करता हुआ अपनी मंजिल तक पहुँच ही जाता है। श्री लज्जाराम जी मेहता की कृति 'आप-बीती' से यही सब कृष्ण ग्रहण करना है तथा अपने जीवन को समाज के लिए कुछ देने योग्य बनाना है। चाहे मेहता जी की तरह आशीर्वाद ही देकर उनका कल्याण करें।

इकाई- 3 : राष्ट्र मन्दिर का सुवासित पुष्प

(डॉ. रामचरण महेन्द्र)

संरचना

- 3.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 3.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 3.2 सारांश

3.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “स्वाधीनता यद्यपि एक जन्म सिद्ध अधिकार है, लेकिन इस अधिकार की प्राप्ति के लिए संघर्ष की रक्त गाथा लिखने वाले आत्म बलिदानियों की एकान्तिक पीड़ा व्यथा को अभिव्यक्ति देने के लिए समाज और इतिहास के पास वे शब्द कहाँ हैं? वे रोशनी की लकीरें जिन्होंने स्याह अंधेरे को चीरकर आजादी की राह बनाई, स्वयं को ही नहीं सम्पूर्ण परिवार को और उनके जीवन को ही देश की आजादी के लिए दाव पर लगा दिया, उन्हें इने-गिने स्मरणीय एवं वन्दनीय अमर आत्माओं में से एक थे—ठाकुर केसरीसिंह बारहठ।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यावतरण में डॉ. रामचरण जी महेन्द्र ने ठाकुर केसरीसिंह जी बारहठ के सपरिवार आत्माहुति को देश की स्वाधीनता निमित्त समर्पित होता चित्रित किया है।

व्याख्या—श्री महेन्द्र जी का कहना है कि यद्यपि आजादी सभी मानवों का पैदायशी हक है, किन्तु इसे पाने के लिए जो संघर्ष की खूनी कहानी लिखने वाले बलिदान कर्ताओं की अतिशायिनी पीड़ा-व्यथा को प्रकट करने हेतु समाज व तत्कालीन इतिहास के पास शब्दों का अभाव ही है। वे साहस की प्रकाश किरणें जिन्होंने काले अन्याय को चीरकर स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया, स्वयं के साथ-साथ समग्र परिवार को और उनके जीवन को देश की स्वाधीनता के लिए दाव पर लगा दिया, उन्हीं कतिपय प्रातः स्मरणीय एवं वन्दनीय अमर आत्म बलिदानियों में एक थे—ठाकुर केसरीसिंह बारहठ।

विशेष—आत्म बलिदानी स्वयं को ही नहीं अपितु अपने समग्र परिवार को देश की आजादी हेतु दाव पर लगा दिया करते हैं। यही तो है उनकी देश के प्रति निष्ठा एवं भक्ति। वे देश को पराधीन नहीं देख सकते हैं। ऐसे ही वीर बलिदानी थे—ठाकुर केसरीसिंह जी बारहठ।

(2) “राजस्थान में इतिहास लेखन और इतिहास निर्माण की विशिष्ट परम्परा रही है। महाकवि चन्द-बरदायी के बाद यह परम्परा महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण से चलती हुई उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में शाहपुरा के लोक विख्यात इतिहासज्ञ श्री कृष्णसिंह जी बारहठ तक पहुँची थी। उन्होंने महाकवि सूर्यमल्ल के विशाल इतिहास काव्य ग्रंथ ‘वंश भास्कर’ को सुपाठ्य बनाने के लिए ‘वंश भास्कर’ की उदधि मंथनी टीका तैयार की थी, जो जोधपुर के मुरारीदास प्रेस से प्रकाशित हुई थी, उसी परिवार में जन्मे थे—श्री केसरीसिंह बारहठ, जोरावरसिंह बारहठ एवं प्रतापसिंह बारहठ, जिन्होंने मातृभूमि के सौभाग्य श्री का श्रृंगार करने के लिए अपने प्राणों को भी न्योछावर कर दिया था।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश में लेखक श्री रामचरण जी महेन्द्र ने ठाकुर श्री केसरीसिंह जी का जन्म एक लोक-विख्यात इतिहास विद के परिवार में हुआ तथा उनके जीवन संघर्षों का क्या किया, इसका चित्रण किया है।

व्याख्या—श्री महेन्द्र जी का कथन है कि हमारे राजस्थान में इतिहास लिखने व अपने बलिदानों से इतिहास बनाने की विशिष्ट परम्परा रही है। महाकवि चन्दबरदायी के पश्चात् यह इतिहास लेखन व निर्माण परम्परा महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण से चलती हुई उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दस सालों में शाहपुरा के लोकप्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता श्री कृष्णसिंह जी बारहठ तक पहुँची थी। इन्होंने महाकवि सूर्यमल्ल के विशाल इतिहास काव्य-ग्रंथ ‘वंश भास्कर’ को पढ़ने योग्य व समझ सकने लायक बनाने हेतु इस ग्रंथ की ‘उदधि मंथनी’ नाम से टीका तैयार की थी। यह टीका जोधपुर के मुरारीदास प्रेस से प्रकाशित हुई। इन्हीं श्री कृष्णसिंह जी के परिवार में जन्मे थे—श्री केसरीसिंह बारहठ, जोरावरसिंह बारहठ तथा प्रतापसिंह बारहठ। इसी बारहठ परिवार ने मातृ-भूमि की आजादी की शोभा के श्रृंगार हेतु अपने प्राण-न्योछावर कर दिये थे।

विशेष—आजादी तो बलिदान चाहती है, एक-दो की नहीं अपितु समस्त परिवार के निष्ठावान सदस्यों की। तभी कहीं जाकर बारहठ परिवार के आत्म-बलिदान से राजस्थान में ही नहीं अपितु समग्र भारत में आजादी की लहर जागी थी।

(3) “भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सम्पूर्ण बारहठ परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यद्यपि केसरीसिंह जी का बाल्यकाल एवं प्रारम्भिक शिक्षा मेवाड़ में ही सम्पन्न हुई थी लेकिन कोटा नगर उनके जीवन का संघर्ष केन्द्र और जीवन के अन्तिम पड़ाव का केन्द्र भी रहा। गुमानपुरा में अवस्थित ‘माणिक भवन’ जो अमर शहीद प्रतापसिंह की मातृ श्री माणिक कुंवर की स्मृति में ही बनाया गया था और उन विशाल भवन के बारह चबूतरे में श्रीमती माणिक कुंवर की अस्थि अवशेष सुरक्षित हैं; इसी चबूतरे पर बैठकर प्रतापसिंह के आत्म-बलिदान के बाद एवं श्रीमती माणिक कुंवर की अन्तिम जुदाई के बाद जीवन के एकांकी क्षण केसरीसिंह बारहठ ने उसी चबूतरे पर बैठकर बिताये थे। माणिक भवन हाड़ौती अंचल का ‘स्वराज्य भवन’ है, जहाँ देश की आजादी के ताने-बाने बुने गये थे।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश में डॉ. रामचरण जी महेन्द्र ने केसरीसिंह जी के कोटा स्थित माणिक भवन किनकी यादगार में बना तथा वहाँ पर किन क्रिया-कलापों ने जन्म लिया, इसी का वर्णन यहाँ किया है।

व्याख्या—श्री महेन्द्र जी कहने जा रहे हैं कि भारत की आजादी की लड़ाई में बारहठ परिवार की अहम भूमिका रही है। यद्यपि केसरीसिंह जी की बाल्यावस्था एवं प्रारम्भिक शिक्षा मेवाड़ में ही परिपूर्ण हुई तथापि कोटा नगर उनके जीवन का संघर्ष केन्द्र तथा अन्तिम पड़ाव स्थान रहा था। कोटा के गुमानपुरा में विद्यमान ‘माणिक भवन’ अमर शहीद प्रतापसिंह की पुण्य माता जी की यादगार में बनाया गया था। उस भवन के विशाल चबूतरे में श्रीमती माणिक कुंवर की बची हुई हड्डियाँ सुरक्षित हैं। इसी चबूतरे पर बैठकर अपने पुत्र प्रतापसिंह के आत्म-बलिदान के बाद तथा माणिक कुंवर की अन्तिम जुदाई के बाद अपने जीवन के अकेले समय को केसरीसिंह जी ने इसी चबूतरे पर बैठकर व्यतीत किये थे। ‘माणिक भवन’ हाड़ौती क्षेत्र का ‘स्वराज्य भवन’ है। यहाँ देश की आजादी के क्रिया-कलाप बनते एवं कार्यरूप में परिणित होते थे।

विशेष—बलिदानी वीरों को स्वजनों की स्मृतियाँ ही प्रेरणा दायिनी हुआ करती है, तभी तो श्री केसरीसिंह जी बारहठ ने अपने जीवन के अन्तिम एकांकी क्षणों को माणिक भवन के चबूतरे पर बैठकर साहस से बिता दिये।

(4) “वे सदैव स्वदेश, स्वराज्य, स्वाधीनता और स्वाभिमान के पक्षधर रहे। केसरीसिंह बारहठ के लिए राष्ट्रीय स्वाभिमान सर्वोपरि था। वे नहीं चाहते थे कि राष्ट्रीय स्वाभिमान और दिल्ली दरबार में जाकर अन्य भारतीय नरेशों की भाँति तलवार जमीन पर रखकर कोर्निश बजाये अतः जब उन्हें पता चला कि उदयपुर के महाराजा भी दासता के इस भव्य प्रदर्शन में सम्मिलित होने जा रहे हैं तो कवि का राष्ट्रीय स्वाभिमान आहत हो उठा। उन्होंने तत्क्षण ही “चेतावणी रा चूँगट्या” शीर्षक से मर्मभेदी भाषा में तेरह सोरटे लिखकर महाराजा को भेजे, जिनके द्वारा उन्होंने महाराणा प्रताप द्वारा सर्वस्व त्याग एवं बलिदान की परम्परा का भान कराया। ट्रेन उदयपुर से रवाना हो चुकी थी, अतः सन्देशवाहक चित्तौड़ स्टेशन पर मिला। कर्जन राजस्थान गौरव को अपने दरबार में सिर झुकाये खड़ा देखने की राह देख रहा था, लेकिन उदयपुर के महाराणा दिल्ली दरबार में न तब गये, न अब गये। इस घटना से केसरीसिंह की काव्योचित प्रतिभा का प्रसार तो हुआ, लेकिन वे ब्रिटिश सरकार की आँख की किरकिरी बन गये।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश में लेखक डॉ. रामचरण जी महेन्द्र ने केसरीसिंह जी के रचित सोरठों का महाराणा पर जो प्रभाव पड़ा, उसका वर्णन किया है तथा ब्रिटिश सरकार को तत्पश्चात् वे कैसे लगने लगे, यह भी स्पष्ट किया है।

व्याख्या—श्री महेन्द्र जी का कथन है कि केसरीसिंह जी बारहठ हमेशा से ही अपने देश, अपने राज्य, स्वाधीनता तथा स्वाभिमान के पक्षपाती रहे थे। किन्तु उन्हें राष्ट्र का स्वाभिमान सर्वोपरि में था। वे यह नहीं चाहते थे कि राष्ट्रीय स्वाभिमान के प्रतीक महाराणा उदयपुर, दिल्ली दरबार में जाकर अन्य नरेशों की भाँति कर्जन के सम्मुख अपनी तलवार जमीन पर रखकर झुककर तीन बार सलाम बजाएँ। अतः जब केसरीसिंह जी को मालूम हुआ कि महाराणा उदयपुर भी पराधीनता के इस सुन्दर दिखावे में सम्मिलित होने जा रहे हैं तब तो कवि श्री बारहठ जी का राष्ट्रीय स्वाभिमान प्रताड़ित हो उठा। उन्होंने तुरन्त ही ‘चेतावणी रा चूँगट्या’ शीर्षक से दिल के दू लेने वाली भाषा में तेरह सोरटे लिखकर महाराणा को भेजे, जिनके द्वारा उन्होंने महाराणा प्रताप के सर्वस्व त्याग एवं बलिदान की परम्परा का ज्ञान करवाया था।

यद्यपि ट्रेन उदयपुर से रवाना हो चुकी थी तथापि, सन्देशवाहक ने चित्तौड़ स्टेशन पर पहुँचकर वे लिखित सोरठे महाराणा को दिये जिन्हें पढ़कर उदयपुर का राष्ट्रीय स्वाभिमान जाग चुका था। अतः वे कर्जन के दरबार में उसके बहुत प्रतीक्षा करने पर भी दिल्ली नहीं गये। यह प्रभाव था केसरीसिंह जी की काव्य-प्रतिभा का। किन्तु उसने ब्रिटिश सरकार को अपने विरुद्ध कर लिया। वे तत्कालीन गवर्नर कर्जन की आँख में किरकिरी की भाँति सदैव खटकने लगे।

विशेष—काव्य प्रतिभा किसी पर शुभ प्रभाव डालती है तो किसी पर अशुभ प्रभाव भी। केसरीसिंह जी के सोरठों ने महाराणा का एक ओर राष्ट्रीय स्वाभिमान जगाने रूप में शुभ प्रभाव डाला तो दूसरी ओर तत्काली गवर्नर कर्जन आँख में खटकने रूपी दुष्प्रभाव को भी डालते नहीं चूके।

(5) “राष्ट्रीय स्तर पर सन् 1857 के विफल विद्रोह के बाद स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए यह दूसरा प्रयास था, जिसका नेतृत्व केसरीसिंह बारहठ, ठाकुर गोपालसिंह कर रहे थे। 21 फरवरी, 1914 को क्रान्ति का शंखनाद बजना था लेकिन गुप्तचरों को भनक लग गयी। सैनिक विद्रोह एवं सशस्त्र क्रान्ति की तमाम तैयारियाँ विफल कर दी गईं और वे 31 मार्च को गिरफ्तार कर लिये गये। 6 अक्टूबर, 1919 को केसरीसिंह बारहठ को बीस वर्ष के आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें अंग्रेज सरकार ने एक बागी के रूप में स्वीकार किया। एक अविस्मरणीय क्षण जोधपुर के आशा नाड़ा स्टेशन पर दिल्ली षड्यन्त्र केस के अन्तर्गत पुत्र प्रतापसिंह को गिरफ्तार कर बरेली जेल में भयंकर शारीरिक यंत्रणा दी गई। उस नवयुवक को बेहद पीड़ित किया गया। उसी समय केसरी सिंह बारहठ ने जेल में आजीवन कैद काटते समय काल कोठरी में अन्न त्याग कर दिया, लगभग 30 दिन बीत चुके थे। प्रतापसिंह ने पिता से मिलने की इच्छा प्रकट की और पिता-पुत्र की यह अन्तिम भेंट हजारी बाग जेल में सम्पन्न हुई। जर्जर बागी पिता जेल के सीकचों में बन्द और उधर बेड़ियों में कसा आहत प्रतापसिंह ‘वन्दे मातरम्’ के सम्बोधन के बाद सिर्फ आँसू-आँसू प्रतापसिंह सिसकते रहे।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश में डॉ. रामचरण महेन्द्र ने 21 फरवरी, 1914 की स्वतंत्रता प्राप्ति का दूसरा प्रयास की विफलता एवं परिणाम पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या—श्री महेन्द्र जी कहने जा रहे हैं कि 1857 के विद्रोह के विफल होने के बाद स्वतंत्रता प्राप्ति का दूसरा प्रयास 21 फरवरी, 1914 को क्रान्ति का शंखनाद होना था। किन्तु गुप्तचरों को इसकी भनक लग जाने से सैनिक विद्रोह एवं सशस्त्र क्रान्ति की तमाम तैयारियाँ विफल कर दी गईं। वे क्रान्तिकारी 31 मार्च को गिरफ्तार कर लिये गये। 6 अक्टूबर, 1919 को केसरीसिंह बारहठ को बीस साल का आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई तथा उन्हें बिहार के हजारी-बाग जेल में भेज दिया गया। एक नहीं भुलाने योग्य घटना और घटी कि जोधपुर के आशानाड़ा स्टेशन पर दिल्ली षड्यन्त्र केस में पुत्र प्रतापसिंह को गिरफ्तार करके बरेली जेल में भीषण शारीरिक कष्ट पहुँचाया गया। उस नवयुवक को बेहद पीड़ित किया गया। इसी समय केसरीसिंह बारहठ ने बिहार के हजारी बाग जेल में आजीवन कैद काटते समय काल-कोठरी में अन्न त्याग दिया। लगभग तीस दिन बीत गये थे। इधर प्रतापसिंह ने पिताजी से मिलने की इच्छा प्रकट की तब पिता-पुत्र की यह आखिरी भेंट हजारी बाग जेल में हुई। वह भेंट बड़ी दर्दनाक थी। जर्जर बागी पिता जेल के सीकचों में बन्द और इधर बेड़ियों से कसा प्रतापसिंह वन्दे मातरम् के सम्बोधन के बाद सिर्फ आँसू ही आँसू बहाते सिसकते रहे।

विशेष—अंग्रेज सरकार ने स्वतंत्रता प्रेमी देशभक्तों को कैसी-कैसी यातनाएँ दी थी, उसी का नम्र चित्रण श्री महेन्द्रजी ने यहाँ किया है।

(6) “केसरीसिंह का बेटा शेर की तरह बहाड़ सकता है, जीवन के लिए मिमिया नहीं सकता और फिर बेटे की तरफ झुकते हुए बोले, ‘बेटे प्रताप आजादी बिकती नहीं, आजादी छीनी जाती है, अपहरण करने वालों से। आजादी मिलती नहीं, हासिल की जाती है, संघर्ष से और हर संघर्ष की कीमत होती है, वह हमें चुकानी है, यह एक अनन्त सिलसिला है, बेटे तुम्हारे दीर्घ जीवन की अब क्या कामना करूँ, कष्टपूर्ण यात्रा है, भारत माँ के लाड़ले बनो। प्रताप हो प्रताप बनो।’ भेंट का यह क्रम जल्दी ही टूट गया और प्रताप ने बरेली जेल जाकर जबान काट ली, होंठ सी लिए और ब्रिटिश सरकार के रहनुमाओं ने उन्हें गोली मार दी। केसरीसिंह ने पुत्र शोक की निर्मम पीड़ा को सहज रूप में स्वीकार कर लिया। हजारी बाग जेल से मुक्त होने के बाद जब कोटा आये तो किसी ने उनसे पूछा तो उन्होंने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया, ‘यह मैं आपके मुँह से सुन रहा हूँ कि वह मर गया, हाँ देश की स्वतन्त्रता के लिए वह शहीद हो गया है—यह मेरे लिए सन्तोष का विषय है।’”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक श्री महेन्द्र जी ने जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट फ्लीवलेण्ड के यह आग्रह करने पर कि यदि प्रतापसिंह, रास बिहारी बोस, शचीन्द्र सान्याल और गोपालसिंह खरवा के छिपने के ठिकाने बता दें तो इन्हें छोड़ा जा सकता है, इस पर केसरी सिंह जेल अधीक्षक को एवं अपने पुत्र प्रतापसिंह को प्रेरणादायी वचन कहता है, उन्हें यहाँ स्पष्ट किया है।

व्याख्या—केसरीसिंह बारहठ जेल अधीक्षक फ्लीवलेण्ड को तो पूँछ हिलाने वाला अंग्रेजों का कुत्ता कहता है तथा उस जैसे व्यक्ति ही देश के प्रति ऐसी गद्दारी का काम कर सकते हैं। मेरा बेटा शेर की सी गर्जन कर सकता है किन्तु जीवन के लिए अंग्रेजों के सामने मिमिया नहीं सकता। पुनः श्री बारहठ जी अपने पुत्र से कहते हैं कि, ‘बेटे प्रताप! आजादी बिकती नहीं है, उसे तो अपहरणकर्ताओं से जबरन छीनना होता है। आजादी किसी के बदले में नहीं मिलती अपितु प्राणों की कीमत चुकाकर हासिल करनी पड़ती है। यही अनन्त समय से तरीका चला आया है।’

पुनः वे कहने लगे बेटा, तुम्हारी लम्बी उम्र की कामना तो मैं क्या करूँ, इस समय तो कष्टपूर्ण जीवन यात्रा है। तुम्हें तो भारत माँ का प्यारा बेटा बनना है, तुम तो प्रताप हो अतः महाराणा प्रताप की भाँति कष्ट सहिष्णु बनना है। यह कहने के बाद भेंट का क्रम जल्दी ही टूट गया। प्रतापसिंह ने बरेली जेल जाकर अपनी जबान काट ली व होंठ सी लिये ऐसी दशा में कुछ नहीं बताने पर अंग्रेज सरकार के रहनुमाओं ने प्रताप को गोली मार दी। श्री केसरीसिंह बारहठ ने पुत्र शोक को सहज रूप में स्वीकार कर लिया। जब वे हजारी बाग जेल से मुक्त होकर कोटा आये तब किसी ने उनके पुत्र के मरने की सूचना दी तब उन्होंने कहा कि यह तो मैं आपके मुँह से सुन रहा हूँ किन्तु हाँ वह देश की स्वतन्त्रता के लिए बलिदान हो गया है, यह मेरे लिए सन्तोष की बात है।

विशेष—देश की स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने वाले शहीद कहलाते हैं। उनकी मौत मौत नहीं कही जाती, यही उत्तर केसरीसिंह जी ने कोटा आने पर प्रश्नकर्ता को दिया। कितना विशाल एवं देशभक्ति भावना से परिपूर्ण हृदय था—श्री केसरीसिंह जी का।

(7) “भारत के क्रान्तिकारी जनतंत्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्वर्गीय ठाकुर केसरीसिंह बारहठ का नाम सदैव अंकित रहेगा। वे उत्कृष्ट कोटि के बुद्धिजीवी, विचारक, लेखक तथा कवि थे। वे राष्ट्रीय एकता, स्वतन्त्रता और समता के सादर समर्पित, राष्ट्रभारती के चरणों में समर्पित वे पुष्प हैं, जिसकी गन्ध से आज राष्ट्र मन्दिर सुवासित है। वे आत्म-बलिदान और निःश्रेयस पूजा की साकार प्रतिमा है, उनकी स्मृति को प्रणाम।”

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश में डॉ. रामचरण जी महेन्द्र ने ठाकुर केसरीसिंह जी के अन्तर्निहित गुणों का दिग्दर्शन कराते हुए उनकी स्मृति को नमन करते हुए अपने जीवन को धन्य बनाया है।

व्याख्या—श्री रामचरण जी महेन्द्र का कथन है कि भारत देश के क्रान्तिपूर्ण जनतंत्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्व. ठाकुर केसरीसिंह बारहठ का नाम हमेशा उल्लिखित रहेगा। वे उच्च कोटि के बुद्धिजीवी, विचारक, लेखक व कवि थे। वे देश की एकता, स्वतन्त्रता, समानता के लिए सादर समर्पित रहा करते थे। वे भारत माता के चरणों में समर्पित हुए ऐसे पुष्प थे, जिसकी सुगन्ध से आज समग्र भारत राष्ट्र सुवासित हो रहा है। वे स्वयं के बलिदान और सकल-कल्याण के लिए पूजा की शरीरधारी प्रतिमा हैं। लेखक उनकी याददाश्त को ही प्रणाम करते हुए अपने को धन्य बताते हैं।

विशेष—गुण, पूजा के स्थान होते हैं। अतः अनन्त गुणों व देश-प्रेम की साकार प्रतिमा बने स्व. ठाकुर केसरीसिंह जी की स्मृति-मात्र को लेखक नमन करके स्वयं को कृतार्थ करता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. हाड़ौती अंचल के स्वतन्त्रता संग्राम में बारहठ परिवार की भूमिका का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

उत्तर—बारहठ परिवार का सामान्य परिचय—राजस्थान में इतिहास लेखन एवं अपने बलिदान से इतिहास को बनाने की एक विशेष परम्परा चलती आई है। महाकवि चन्दबरदाई के बाद यह परम्परा महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण से चलती हुई, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में शाहपुरा के लोक प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्री कृष्णसिंह जी बारहठ तक पहुँची थी।

श्री कृष्णसिंह जी बारहठ ने सूर्यमल्ल के विशाल इतिहास काव्य ग्रन्थ ‘वंशाभास्कर’ को सरल बनाने एवं समझने योग्य करने हेतु वंश भास्कर की ‘उदधि मंथिनी’ नामक टीका लिखी थी, जो जोधपुर के मुरारी दास प्रेस से प्रकाशित हुई। इसी इतिहासज्ञ परिवार में जन्मे थे, श्री केसरीसिंह बारहठ जोरावर सिंह बारहठ (अनुज) एवं प्रतापसिंह बारहठ (पुत्र), जिन्होंने अपनी मातृभूमि के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिये थे।

हाड़ौती अंचल के स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान—भारत के स्वातंत्र्य संग्राम में सम्पूर्ण बारहठ परिवार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यद्यपि केसरीसिंह जी का बचपन व प्रारम्भिक शिक्षा मेवाड़ में ही पूर्ण हुई थी, फिर भी हाड़ौती अंचल का कोटा नगर उनके जीवन का संघर्ष केन्द्र तथा जीवन के अन्तिम पड़ाव का केन्द्र भी रहा था।

गुमानपुरा (कोटा) में विद्यमान माणिक-भवन, जो अमर शहीद प्रतापसिंह की मातृश्री माणिक कुंवर की स्मृति में बनाया गया था तथा उस विशाल भवन के बाहर चबूतरे में श्रीमती माणिक कुंवर के अस्थि अवशेष सुरक्षित हैं। इसी चबूतरे पर बैठकर प्रतापसिंह के आत्म-बलिदान के बाद एवं श्रीमती माणिक कुंवर की अन्तिम जुदाई के बाद जीवन के एकांकी क्षण केसरीसिंह बारहठ ने इसी पर बैठकर बिता दिये थे। अतः माणिक भवन हाड़ौती अंचल का ‘स्वराज्य भवन’ है, जहाँ भारत देश की आजादी के ताने-बाने बुने गये थे।

केसरी सिंह जी के कर्म व कर्तव्य—केसरीसिंह बारहठ महर्षि दयानन्द सरस्वती के समकालीन थे। शाहपुरा में आर्य समाज की स्थापना के बाद उनका आर्य समाज से घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, जो उदयपुर के दीवान थे,

उनके साथ कार्य करने का अवसर मिला। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ने के बाद तो वे भारतीय स्तर के नेता के रूप में स्वीकार कर लिये गये इनका विवाह कविराज देवीदान की बहिन माणिक कुंवर के साथ हुआ। कोटा ही जीवन पर्यन्त आपका कार्यक्षेत्र व कर्मक्षेत्र रहा।

बारहठ जी की काव्य प्रतिभा का महाराणा पर प्रभाव—श्री केसरीसिंह बारहठ के लिए राष्ट्रीय स्वाभिमान सर्वोपरि था। वे नहीं चाहते थे कि राष्ट्रीय स्वाभिमान के प्रतीकभूत उदयपुर के महाराणा दिल्ली दरबार में जाकर अन्य भारतीय नरेशों की भाँति तलवार जमीन पर रखकर कोर्निश बजाएँ। अतः जब उन्हें पता चला कि उदयपुर के महाराणा भी दासता के इस भव्य प्रदर्शन में सम्मिलित होने जा रहे हैं तो कवि का राष्ट्रीय स्वाभिमान आहत हो उठा। उन्होंने तुरन्त ही 'चेतावणी रा चूंगट्या' शीर्षक से मर्मभेदी भाषा में तेरह सोरठे लिखकर महाराणा को भेजे, जिनके द्वारा महाराणा प्रताप के सर्वस्व त्याग एवं बलिदान की परम्परा का उन्हें भान कराया। ट्रेन उदयपुर से रवाना हो चुकी थी, अतः सन्देशवाहक चित्तौड़ स्टेशन पर मिला। उन तेरह सोरठों को पढ़कर महाराणा का राष्ट्रीय स्वाभिमान जागृत हो गया। वे दिल्ली दरबार में जाने से रुक गये। तत्कालीन गवर्नर लार्ड कर्जन उनकी प्रतीक्षा ही करता रह गया। इस घटना से केसरीसिंह जी की काव्योचित प्रतिभा का प्रसार तो हुआ, किन्तु अंग्रेजी सरकार की वे आँखों की किरकिरी बन गये।

स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु क्रान्तिकारी दूसरा प्रयास—राष्ट्रीय स्तर पर सन् 1857 के विफल विद्रोह के बाद स्वतंत्रता पाने हेतु यह दूसरा प्रयास था, जिसका नेतृत्व केसरीसिंह बारहठ व ठाकुर गोपालसिंह कर रहे थे। 21 फरवरी, 1914 को क्रान्ति का शंखनाद बजना था लेकिन गुप्तचरों को भनक मिल गयी। सैनिक विद्रोह एवं सशस्त्र क्रान्ति की तमाम तैयारियाँ विफल कर दी गयी। 31 मार्च को सभी क्रान्तिकारी गिरफ्तार कर लिये गये। 6 अक्टूबर, 1919 को केसरीसिंह बारहठ को बीस वर्ष की आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें अंग्रेज सरकार ने एक बागी के रूप में स्वीकार किया। जोधपुर के आशानाड़ा स्टेशन पर दिल्ली षड्यन्त्र केस के अन्तर्गत पुत्र प्रतापसिंह को गिरफ्तार कर बरेली जेल में भयंकर शारीरिक यन्त्रणा दी गई। इसी समय केसरीसिंह बारहठ ने बिहार के हजारी बाग जेल में आजीवन कैद काटते समय अन्न त्याग कर दिया। लगभग 30 दिन बीत चुके थे। प्रतापसिंह ने पिताश्री से मिलने की इच्छा प्रकट की और पिता-पुत्र की अन्तिम भेंट हजारी बाग जेल में हुई।

अन्तिम भेंट की मार्मिकता—जर्जर बागी पिता जेल की सीकचों के पीछे बन्द थे तथा इधर बेड़ियों में कसा आहत प्रतापसिंह 'बन्दे मातरम्' के सम्बोधन के बाद सिर्फ आँसू-आँसू बहाते हुए सिसकता रहा। इसी बीच में जेल अधीक्षक फ्लीव लेण्ड ने आग्रह किया कि यदि प्रतापसिंह, रास बिहारी बोस, शचीन्द्र सान्याल और गोपालसिंह खरवा के छिपने के ठिकाने बता दें तो उन्हें रिहा किया जा सकता है। इस मशवरे पर केसरीसिंह का स्वाभिमान जाग उठा और उन्होंने कहा, 'तुम जैसे गुलाम ही जूठन के लिए पूँछ हिलाते हैं। केसरीसिंह का बेटा शेर की तरह दहाड़ सकता है जीवन के लिये मिमिया नहीं सकता।'।

पुत्र के लिये कामना—केसरीसिंह प्रताप की ओर झुकते हुए बोले—'बेटे प्रताप! आजादी बिकती नहीं अपहरणकर्ताओं से जबरन छीनी जाती है। आजादी मिलती नहीं हासिल की जाती है, संघर्ष से तथा हर संघर्ष की कीमत होती है, वह हमें चुकानी है, यह एक अनन्त सिलसिला है। बेटे तुम्हारे दीर्घ जीवन की क्या कामना करूँ, कष्टपूर्ण यात्रा है, भारत माँ के लाडले बनो, प्रताप हो, प्रताप बनो।' भेंट का यह क्रम जल्दी ही टूट गया।

बरेली जेल जाकर प्रताप की आहुति—प्रतापसिंह ने बरेली जेल जाकर अपनी जबान काट ली ताकि कष्टों से घबराकर कुछ सत्यांश उगल न दे तथा अपने होठ सीं लिए। ब्रिटिश सरकार के रहनुमाओं ने उसे गोली मार दी। केसरीसिंह ने पुत्र शोक की निर्मम पीड़ा को सहज रूप में स्वीकार कर लिया। हजारी बाग जेल से मुक्त होने के बाद जब वे कोटा आये तो किसी ने उनसे पूछा कि, क्या प्रताप को मार दिया गया? तब उन्होंने कहा कि, 'यह मैं आपके मुँह से सुन रहा हूँ कि वह मर गया, हाँ—देश की स्वतंत्रता के लिए वह शहीद हो गया—यह मेरे लिए सन्तोष का विषय है।'।

'अग्निव भारत' एक गुप्त संगठन—उन दिनों क्रान्तिकारियों ने एक गुप्त संगठन बनाया था, जिसका नाम था अग्निव भारत। उसमें खरवा के ठाकुर गोपालसिंह, जयपुर के अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह के छोटे भाई जोरावर सिंह व पुत्र प्रतापसिंह शामिल थे। 23 दिसम्बर, 1912 को दिल्ली में शाही हाथी की सवारी पर जाते हुए वायसराय लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया, जिसमें केसरीसिंह के छोटे भाई जोरावरसिंह व पुत्र प्रतापसिंह सम्मिलित थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह पूर्णतया स्पष्ट हो गया है कि हाड़ौती अंचल के स्वतंत्रता संग्राम में बारहठ परिवार ने पूरा-पूरा योगदान दिया। श्री केसरीसिंह बारहठ ने चाहे अपने प्रिय पुत्र प्रतापसिंह को खो दिया किन्तु संग्राम में योगदान देने में न्यूनता नहीं आने दी, क्योंकि वे एक सजग क्रान्तिकारी थे। पुत्र प्रतापसिंह के शहीद हो जाने के पश्चात् वे महात्मा गाँधी की सेवा में वर्धा भी जाना चाहते थे।

एक पत्र के उत्तर में उन्होंने सेवाग्राम को एक पत्र लिखा, 'शेष जानकारी मेरे सम्बन्ध में पुरुषोत्तम दास टण्डन और डॉ. भगवानदास केला से प्राप्त कर लें।' यह पत्र सिद्ध करता है कि केसरीसिंह बारहठ राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए लड़े जा रहे आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण कड़ी थे। जीवन का कुछ अंश 74 वर्ष की अवस्था में सेवाग्राम में बापू की देखभाल में बिताना चाहते थे, लेकिन 14 अगस्त, 1941 को इस महान् आत्मा की जीवनलीला समाप्त हो गयी।

प्रश्न-2. 'केसरीसिंह बारहठ' इस आलेख से केसरीसिंह बारहठ की किन-किन विशेषताओं का पता चलता है?

उत्तर—केसरीसिंह बारहठ की विशेषताएँ—डॉ. रामचरण जी महेन्द्र के 'केसरीसिंह बारहठ' आलेख से बारहठ जी की निम्नलिखित विशेषताओं का प्रस्फुटन होता है—

सजग क्रान्तिकारी—केसरीसिंह बारहठ एक सजग क्रान्तिकारी व्यक्ति थे। भारत के क्रान्तिकारी जनतंत्रीय आन्दोलन के इतिहास में उनका नाम सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

राष्ट्रीय स्तर पर सन् 1857 के विफल विद्रोह के बाद, स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु जो दूसरा प्रयास था, उसका नेतृत्व केसरीसिंह बारहठ व ठाकुर गोपालसिंह ने किया था। 21 फरवरी को क्रान्ति का शंखनद बजना था लेकिन गुप्तचरों को इसकी भनक मिल गयी थी। सैनिक विद्रोह एवं सशस्त्र क्रान्ति की तमाम तैयारियाँ विफल कर दी गईं और वे 31 मार्च, 1914 को गिरफ्तार कर लिये गये। 6 अक्टूबर, 1919 को केसरीसिंह बारहठ को बीस वर्ष की आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें अंग्रेज सरकार ने एक बागी के रूप में स्वीकार किया। इन्हें आजीवन कारावास बिहार की हजारी बाग जेल में काटने पड़े। वहाँ पर इन्होंने 30 बिन के लिए अन्न त्याग दिया था।

उत्कृष्ट बुद्धिजीवी, विचारक, लेखक व कवि—उनकी ये विशेषताएँ उस समय सामने आती हैं, जब ये सन् 1900 में कोटा के तत्कालीन शासक महाराजा उम्मेदसिंह जी के आग्रह पर कोटा रियासत में राजकीय दायित्वों का निर्वहन करने लगे थे। उस समय उनको पता चला कि उदयपुर के महाराणा अन्य भारतीय नरेशों की भाँति तलवार जमीन पर रखकर दिल्ली दरबार में कोर्निश बजाने जा रहे हैं। तब श्री केसरीसिंह जी ने तत्क्षण ही 'चेतावणी रा चूंगट्या' शीर्षक से मर्मभेदी भाषा में तेरह सोरठे लिखकर महाराणा को भेजे, जिनके द्वारा उन्होंने महाराणा प्रताप के सर्वस्व त्याग और बलिदान की परम्परा का भ्रान्त कराया।

ट्रेन उदयपुर से रवाना हो चुकी थी, अतः सन्देशवाहक चितौड़ स्टेशन पर मिला। तत्कालीन गवर्नर लार्ड कर्जन राजस्थान के गौरव के प्रतीक बने महाराणा को अपने दरबार में सिर झुकाये खड़ा देखने की राह देख रहा था, लेकिन उदयपुर के महाराणा दिल्ली दरबार में तब गये, न अब गये। अर्थात् कभी गये ही नहीं थे। इस घटना से केसरीसिंह जी बारहठ की काव्योचित प्रतिभा का प्रसार तो हुआ किन्तु वे ब्रिटिश सरकार की आंख की किरकिरी बन गये।

सदैव स्वाभिमान के पक्षधर—श्री केसरीसिंह बारहठ सदैव स्वाभिमान के पक्षपाती रहते आये थे। परिस्थिति चाहे कैसी भी दर्दनाक क्यों न हो। एक समय की घटना है, जब वे अपने आजीवन कारावास के बीस वर्ष बिहार की हजारी बाग जेल में काट रहे थे, तब उन्होंने जेल की उसी काल-कोठरी में अन्न का त्याग कर दिया। अन्न त्याग किये हुए लगभग तीस दिन बीत चुके थे। प्रतापसिंह, जो उस समय दिल्ली षड्यन्त्र केस के अन्तर्गत बरेली जेल में भयंकर शारीरिक यन्त्रणा भोग रहा था, उसने पिताश्री से मिलने की इच्छा प्रकट की और पिता-पुत्र की यह अन्तिम भेंट हजारी बाग जेल में ही सम्पन्न हुई।

जर्जर बागी पिता जेल के सौंक्रियों में बन्द, इधर बेड़ियों में कसा आहत प्रतापसिंह 'वन्दे मातरम्' के सम्बोधन के बाद सिर्फ आँसू बहाते हुए सिसकते रह गये। उनकी यह कारुणिक दशा देखकर जेल अधीक्षक फ्लीव लेण्ड ने आग्रह किया यदि रास बिहारी बोस, शचीन्द्र सान्याल और गोपालसिंह खेरवा के छिपने के ठिकाने बता दिये जाएँ तो प्रतापसिंह को छोड़ा जा सकता है। जेल अधीक्षक की यह घोषणा सुनते ही केसरीसिंह बारहठ का स्वाभिमान जाग उठा, वे बोले, 'तुम जैसे गुलाम ही जूठन के लिए पूँछ हिलाते हैं और बाद में तुम्हारी भाषा बोलते हैं। केसरीसिंह का बेटा शेर की तरह दहाड़ सकता है, जीवन के लिय मिमिया नहीं सकता।'।

यह था बारहठ जी का स्वाभिमान भरा निर्णय, जिसने जेल अधीक्षक फ्लीव लेण्ड की आँखें खोल दी।

स्वाधीनता के लिए दृढ़ निश्चयी—श्री केसरीसिंह जी का स्वाधीनता पाने हेतु निश्चय सदैव अडिग था। अतएव उनके पुत्र प्रतापसिंह जब उनसे बिहार की जेल हजारी बाग में मिलने आये तब चाहे पुत्र की कितनी भी हीन दशा हो रही थी, फिर भी उन्होंने यही कहा कि बेटा तुम्हारे दीर्घ जीवन की अब क्या कामना करूँ, कष्टपूर्ण यात्रा है, फिर भी भारत माँ के लाडले बनो, प्रताप हो प्रताप बनो। इन दोनों कामनाओं का आशय था कि स्वाधीनता प्राप्ति हेतु चाहे प्राण भी गवां देने पड़े, फिर भी अपने निश्चय पर अडिग रहो।'।

जब श्री केसरीसिंह जी हजारी बाग से मुक्त होकर कोटा आये तब किसी ने उनसे पूछा कि क्या प्रतापसिंह मर गया? तब उन्होंने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया कि, 'यह मैं आपके मुँह से सुन रहा हूँ कि वह मर गया, हाँ देश की स्वतंत्रता के लिए वह शहीद हो गया—यह मेरे लिए सन्तोष का विषय है।' इन उदाहरणों से बारहठ साहब एक दृढ़ निश्चयी मानव की विशेषता अपनाये हुए थे।

अन्य विशेषताएँ—केसरीसिंह जी संस्कृत के उद्भट विद्वान् और शास्त्रों के ज्ञाता के रूप में सर्वत्र मान्य हो चुके थे। राजनीतिक, क्षात्रधर्म, समाज सुधार, शिक्षा प्रसार आदि विषयों के सम्बन्ध में प्रकाशित उनके लेखों से सभी परिचित हो चुके थे। वे राजस्थानी एवं ब्रज भाषा के प्रसिद्ध कवि थे।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ने के बाद तो वे भारतीय स्तर के नेता के रूप में स्वीकार कर लिये गये थे। जिन्होंने स्वजनों और परिजनों सहित माँ भारती के प्रांगण में प्राण-प्रसून अर्पित किये थे।

उक्त सभी विशेषताएँ 'केसरीसिंह बारहठ' आलेख से हमें उपलब्ध होती है। अतएव अन्त में डॉ. रामचरण जी महेन्द्र ने कहा कि वे राष्ट्रीय एकता, स्वतंत्रता और समता के लिए सादर समर्पित, राष्ट्र के चरणों में समर्पित वे पुष्प हैं, जिसकी सुगन्ध से आज राष्ट्र मन्दिर सुवासित है। वे आत्म-बलिदान और निःश्रेयस पूजा की साकार प्रतिमा है, उनकी स्मृति को प्रणाम।

प्रश्न-3. 'आजादी बिकती नहीं, आजादी छीनी जाती है'—इससे केसरीसिंह का क्या तात्पर्य था ?

उत्तर—आजादी पाने के बारे में बारहठ जी के विचार—'आजादी बिकती नहीं, आजादी छीनी जाती है।' ये वाक्य केसरीसिंह जी ने तब कहे जब वे बिहार की हजारी बाग जेल में बीस वर्ष के आजीवन कारावास के दिन काट रहे थे। वहीं पर उन्होंने जेल की काल-कोठरी में अन्न-त्याग कर दिया था, लगभग 30 दिन बीत चुके थे। प्रतापसिंह ने जो जोधपुर के आशानाड़ा स्टेशन पर दिल्ली षड्यन्त्र केस के अन्तर्गत गिरफ्तार कर बरेली जेल में भयंकर शारीरिक यंत्रणा पा रहे थे, उन्होंने पिताश्री से मिलने की इच्छा प्रकट की और पिता-पुत्र की यह अन्तिम भेंट हजारी बाग जेल में सम्पन्न हुई थी तब 'वन्दे मातरम्' के सम्बोधन के बाद प्रतापसिंह सिर्फ आँसू-आँसू बहाते हुए सिसक रहे थे तब जेल अधीक्षक फलीव लेण्ड ने कहा था कि यदि रास बिहारी बोस, शचीन्द्र सान्याल व गोपालसिंह खख्राह के छिपने के ठिकाने प्रतापसिंह बता दे तो इन्हें छोड़ा जा सकता है। उस समय श्री केसरीसिंह जी का स्वाभिमान जाग उठा और वे बोले, 'तुम जैसे गुलाम ही जूठन के लिए पूँछ हिलाते हैं और बाद में तुम्हारी भाषा में बोलते हैं। केसरीसिंह का बेटा शेर की तरह दहाड़ सकता है, जीवन के लिए मिमिया नहीं सकता।'।

पुत्र के लिये उद्बोधन एवं आजादी पाने का मंत्र—पुनः केसरीसिंह जी अपने पुत्र प्रतापसिंह की ओर उन्मुख होकर बोले—'बेटे प्रताप! आजादी बिकती नहीं, आजादी छीनी जाती है, अपहरण करने वाली से।'

उक्त वाक्य का श्री बारहठ जी का आशय यही था कि आजादी जीवन-दान की याचना रूपी कीमत पर बेची नहीं जाती वह तो जिन दुष्टों ने उसका अपहरण किया है, उनसे जबर्दस्ती छीनी जाती है। इस छीनने में जो संघर्ष करना पड़ता है, उस प्रत्येक संघर्ष की कीमत होती है अपने प्राणों का न्यौछावर कर डालना। यही अन्तहीन सिलसिला चलता आया है। यदि आजादी पानी है तो अपने प्राणों की आहुति देकर उसकी कीमत चुकानी होगी, तभी उसे छीन पायेंगे।

पुत्र द्वारा मूलमंत्र पर आचरण—आजादी पाने का उक्त मूलमंत्र अपने दिल में बिठाकर, भेंट की अवधि समाप्त होने पर प्रतापसिंह अपनी बरेली जेल में लौट गया। वहाँ पर क्रान्तिकारी रहस्यों का उद्घाटन न कर सके तथा अपने होठों को सी लिये। ऐसी स्थिति में जब उसे प्रतापसिंह से कुछ भी रहस्य का पता नहीं चल पायेगा, ऐसा निश्चय होने पर ब्रिटिश सरकार के रहनुमाओं ने उन्हें गोली मार दी। केसरीसिंह जी को जब यह पता चला तो उन्होंने पुत्र द्वारा आजादी की चुकाई हुई कीमत पर सगर्व कहा—मेरा बेटा प्रतापसिंह मरा नहीं है वह तो देश की स्वतंत्रता के लिए शहीद हुआ है—यह मेरे लिए सन्तोष का विषय है। यह कहकर उन्होंने पुत्र शोक की निर्मम पीड़ा को सहज रूप में स्वीकार कर लिया।

ब्रिटिश रहनुमाओं का घृणित कार्य—उक्त विवेचन से सोदाहरण स्पष्ट हो गया कि 'आजादी बिकती नहीं, आजादी छीनी जाती है।' बारहठ पुत्र प्रतापसिंह ने अपने जीवन की आहुति देकर उक्त वाक्य की सार्थकता सिद्ध कर दी थी। उसने अपना जीवन-दान रूपी याचना मूल्य से आजादी का क्रय नहीं किया अपितु जीवन सर्वस्व ही न्यौछावर कर आजादी छीनने की प्रक्रिया अपनाई थी। धन्य है ऐसे भारत माँ के लोडले जिन्होंने स्वयं नाम के प्रताप की सार्थकता उन दरिन्दों के सामने सिद्ध करके प्रत्यक्ष कर दी। उसके उक्त जबान काट लेने व होड़-सी लेने के कर्म से तंग आकर आखिर उन दरिन्दों ने उसको गोली मारकर अपने सामने से हटाना पड़ा।

प्रश्न-4. राजस्थान के क्रान्तिकारी आन्दोलन में केसरीसिंह बारहठ के योगदान का वर्णन कीजिए।

उत्तर—कोटा रियासत के राजकीय दायित्वों का निर्वहन—उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह के उदार मान्य एवं विश्वस्त सलाहकार और 'वीर विनोद' इतिहास ग्रन्थ के सुप्रसिद्ध लेखक कविराज श्यामलदास की छत्रछाया में अपना अध्ययन समाप्त कर सन् 1900 में कोटा के तत्कालीन शासक महाराव उम्मेदसिंह के आग्रह पर कोटा रियासत के दायित्वों का निर्वाह श्री केसरीसिंह जी बारहठ करने लगे थे। कोटा में ही कोटड़ी ठिकाने के कविराज देवीदान की बहिन माणिक कुंवर से आपका विवाह हुआ तथा कोटा ही जीवन पर्यन्त आपका कार्यक्षेत्र एवं कर्मक्षेत्र रहा।

राष्ट्रीय स्वाभिमान को सर्वोपरि मानने का उदयपुर के महाराणा पर प्रभाव—केसरीसिंह बारहठ जी सदैव स्वदेश, स्वराज्य, स्वाधीनता और स्वाभिमान के पक्षधर रहे थे। उनके लिए राष्ट्रीय स्वाभिमान सर्वोपरि था। वे नहीं चाहते थे कि राष्ट्रीय स्वाभिमान के प्रतीक महाराजा सज्जनसिंह दिल्ली दरबार में जाकर अन्य भारतीय नरेशों की भाँति तलवार जमीन पर रखकर कोर्निश बजायें। अतः जब उन्हें पता चला कि उदयपुर के महाराणा भी दासता के इस भव्य प्रदर्शन में सम्मिलित होने जा रहे हैं तो कविश्री केसरीसिंह बारहठ जी का राष्ट्रीय स्वाभिमान प्रताड़ित हो उठा। उन्होंने तत्क्षण ही 'चेतावणी रा चूँगट्या' शीर्षक से मर्मभेदी भाषा में तेरह सोरठे लिखकर महाराणा को भेजे, जिनके द्वारा उन्होंने महाराणा प्रताप के सर्वस्व त्याग एवं बलिदान को परम्परा का भान करवाया।

ट्रेन उदयपुर से रवाना हो चुकी थी, अतः सन्देशवाहक चित्तौड़ स्टेशन पर मिला। महाराणा ने श्री केसरीसिंह जी के तेरह सोरठे पढ़े व उनके प्रभाव से उनमें राष्ट्रीय स्वाभिमान जाग्रत हो गया। अतः वे दिल्ली दरबार में नहीं गये। तत्कालीन भारतीय गवर्नर लार्ड कर्जन, जो राजस्थान के गौरव को अपने दरबार में सिर झुकाये खड़ा देखने की राह देख रहे थे, इनका सपना पूरा नहीं हो सका। इस घटना से केसरीसिंह जी की काव्योचित प्रतिभा का प्रसार तो हुआ, लेकिन वे ब्रिटिश सरकार की आँख की किरकिरी बन गये।

क्रान्तिकारी आन्दोलन में योगदान—उक्त घटना से ही केसरीसिंह जी बारहठ साहब का राजस्थान में क्रान्तिकारी आन्दोलन में योगदान का सूत्रपात प्रारम्भ हो चला था। पुनः जब राष्ट्रीय स्तर पर 1857 की क्रान्ति विफल हो गई तब स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए दूसरा प्रयास केसरीसिंह, बारहठ व गोपालसिंह खखाह के नेतृत्व में हुआ। 21 फरवरी, 1914 को क्रान्ति का शंखबाद बजना था, किन्तु गुप्तचरों को भनक मिल गयी। सैनिक विद्रोह एवं सशस्त्र क्रान्ति की तमाम तैयारियाँ विफल कर दी गईं और वे 31 मार्च को गिरफ्तार कर लिये गये। 6 अक्टूबर, 1919 को केसरीसिंह बारहठ को 20 वर्ष के आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें अंग्रेज सरकार ने एक बागी के रूप में स्वीकार किया तथा उन्हें बिहार की हजारी बाग जेल में भेज दिया गया।

जेल में 30 दिन का अन्न त्याग—एक अविस्मरणीय घटना और घटी। इसी समय जोधपुर के आशानाड़ा स्टेशन पर दिल्ली षड्यन्त्र के केस के अन्तर्गत पुत्र प्रतापसिंह को गिरफ्तार कर बरेली जेल में भयंकर शारीरिक यंत्रणा दी गई। उस नवयुवक को बेहद पीड़ित किया गया। इसी दौरान केसरीसिंह बारहठ ने बिहार की हजारी बाग जेल में आजीवन कैद काटते समय काल-कोठरी में अन्न-त्याग कर दिया, लगभग 30 दिन बीत गये थे। प्रतापसिंह ने पिता से मिलने की इच्छा प्रकट की। पिता-पुत्र की यह अन्तिम भेंट हजारी बाग जेल में सम्पन्न हुई।

भेंट का मर्मन्तिक दृश्य—जर्जर बागी पिता हजारी बाग जेल की कोठरी के सींकचों में बन्द, इधर बेड़ियों में कसा आहत पुत्र प्रतापसिंह 'वन्दे मातरम्' के सम्बोधन के बाद आँसू-आँसू सिसकते रहे। इस मर्मविदारक दृश्य को देखकर जेल अधीक्षक पत्नी व लैंड ने आग्रह किया कि यदि प्रतापसिंह, क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस, शचीन्द्र सान्याल व गोपालसिंह खखा के छिपने के ठिकाने बता दे तो उन्हें छोड़ा जा सकता है।

इस अवसर पर केसरीसिंह जी बारहठ का स्वाभिमान जाग उठा। वे बोले, 'तुम जैसे गुलाम ही जूठन के लिए पूँछ हिलाते हैं और बाद में तुम्हारी भाषा बोलते हैं। केसरीसिंह का बेटा शेर की तरह दहाड़ सकता है, जीवन के लिए मिमिया नहीं सकता।'

पुत्र प्रतापसिंह को आजादी का मूलमंत्र देना—तत्पश्चात् केसरीसिंह बारहठ अपने पुत्र के प्रति उन्मुख हुए और बोले, 'बेटे प्रताप! आजादी बिकती नहीं, आजादी गरीबी जाती है, अपहरण करने वालों से। आजादी मिलती नहीं, हासिल की जाती है, संघर्ष से और प्रत्येक संघर्ष की कीमत होती है, वह हमें चुकानी है, यह एक अनन्त सिलसिला है। बेटे तुम्हारे दीर्घ जीवन की अब क्या कामना करूँ, कष्टपूर्ण यात्रा है। भारत माँ के लाडले बनें, प्रताप हो, प्रताप बनें।'

इस प्रकार से अपने पुत्र को संघर्ष के प्रति दृढ़ करते हुए केसरीसिंह से मिलने का समय समाप्त हो गया। प्रतापसिंह ने अपनी जेल बरेली लौटने पर अपनी जबान काट ली ताकि कोई अतिकष्ट की घड़ी में क्रान्ति का रहस्योद्घाटन न हो जाए एवं अपने होठ सी लिए। इस घटना से तंग आकर ब्रिटिश सरकार के रहनुमाओं ने उसे जेल में ही गोली मार दी तथा जीवनलीला समाप्त कर दी।

हजारी बाग जेल से लौटने पर केसरीसिंह की प्रतिक्रिया—केसरीसिंह बारहठ ने जब पुत्र के मारे जाने की घटना सुनी तो पुत्र शोक की निर्मम पीड़ा को सहज रूप में स्वीकार कर लिया। हजारी बाग जेल से मुक्त होने के बाद जब वे कोटज आये तब किसी ने उनसे पुत्र की मृत्यु के बारे में पूछा। तब उन्होंने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया—'यह मैं आपके मुँह से सुन रहा हूँ कि वह मर गया, हाँ देश की स्वतंत्रता के लिए वह शहीद हो गया—यह मेरे लिए सन्तोष का विषय है।'

3.2 सारांश

केसरीसिंह बारहठ एक सजग क्रान्तिकारी थे। उन्होंने राजस्थान के क्रान्तिकारी आन्दोलनों में से सक्रिय योगदान दिया। अतएव वे आत्म-बलिदान और निःश्रेयस पूजा की साकार प्रतिमा हैं। हमें उनकी स्मृति को सदैव नमन करते रहना चाहिए ताकि हममें भी देश-भक्ति एवं देश पर न्योछावर होने की मनोवृत्ति सदैव बनी रहे।

इकाई- 4 : सुभद्रा कुमारी एक संस्करण (महादेवी वर्मा)

संरचना

- 4.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 4.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 4.2 सारांश

4.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “नारी के हृदय में जो गम्भीर ममता, सजल-वीर-भाव उत्पन्न होता है वह पुरुष के उस शौर्य से अधिक उदात्त और दिव्य रहता है। पुरुष अपने व्यक्तिगत या समूहगत राग-द्वेष के लिए भी वीरधर्म अपना सकता है और अहंकार की तृप्ति मात्र के लिए भी। पर नारी अपने सृजन की बाधाएँ दूर करने के लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए ही रुद्र बनती है। अतः उसकी वीरता के समकक्ष रखने योग्य प्रेरणाएँ संसार के कोष में कम हैं। मातृ शक्ति का दिव्य-रक्षक, उद्धारक रूप होने के कारण ही भी माकृति चण्डी वत्सला अम्बा भी है जो हिंसात्मक पाश्विक शक्तियों को चरणों के नीचे दबाकर अपनी सृष्टि के मंगल की साधना करती है।”

सन्दर्भ सहित व्याख्या—यह गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा लिखित ‘सुभद्रा कुमारी एक संस्करण’ से अवतरित है। यहाँ लेखिका प्रतिपादित कर रही है कि पुरुष के हृदय में तो शौर्य भावना होती है और नारी के हृदय में ममता और सहृदयता की भावना होती है। स्त्री और पुरुष दोनों के ये भाव उदात्त होते हैं अतः दोनों का महत्त्व है। किसी को कम या किसी को अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रसंग में लेखिका गम्भीरता से विवेचन करती हुई ये स्पष्टतः प्रतिपादित कर रही है कि नारी के हृदय में जो ममता, सहृदयता और वीर भावना होती है वह पुरुष के शौर्य से कहीं अधिक पवित्र और उदात्त होती है। उसकी दृष्टि में इसका कारण यह है कि पुरुष व्यक्तिगत राग-द्वेष और सामाजिक राग-द्वेष के लिए वीर धर्म को स्वीकार करता है। कई बार ऐसा भी होता है कि वह अपने अहंकार को तृप्त करने के लिए भी वीरता के भाव को ग्रहण कर लेता है। रही नारी, वह न तो व्यक्तिगत राग-द्वेष से प्रेरित होकर और न समूहगत भाव से प्रेरित होकर वीर धर्म अपनाती है। अपने मन में अपने अहंकार को तृप्त करने का भी कोई भाव नहीं होता है। वह यदि वीर भाव को अपनाती है तो निश्चय ही कल्याणी बनकर अपनाती है। स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि वह सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा भावना और कल्याण भावना से प्रेरित होकर ही रौद्र रूप धारण करती है। उसके सृजन-धर्म के मार्ग में जो बाधाएँ आती हैं, उनका निवारण करने के लिए भी अनेक बार नारी वीर भावना से प्रेरित होकर कार्य करने लगती है।

महादेवी वर्मा का कहना है कि नारी के हृदय में जो वीर भाव है, उसकी तुलना संसार में अन्यत्र देखने को नहीं मिलती है। वह मातृशक्ति का दिव्य रूप होती है, रक्षक रूप भी होती है और अनेक बार सृष्टि के उद्धार की कामना से प्रेरित होकर भी भयंकर रूप धारण करती हुई साक्षात् चण्डी रूप में भी सामने आती है। ऐसी स्थिति में अथवा ऐसा रूप धारण करके वह हिंसा और पशुता को अपने चरणों के नीचे दबा देती है और वहाँ कार्य करती है, जिनसे सम्पूर्ण सृष्टि का मंगल विधान होता है। एक वाक्य में कह सकते हैं कि नारी सृष्टि के कल्याण के लिए हिंसा और पाशविकता को दबाकर, मातृशक्ति का दिव्य रूप लेकर जिस चण्डी रूप में सामने आती है, वह रूप भी हर स्थिति में पुरुष के शौर्य और उसकी वीर भावना से कहीं अधिक श्रेष्ठ, उदात्त और अनुपम होता है।

टिप्पणी—1. अवतरण में परिष्कृत शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

2. नारी द्वारा वीर धर्म की महत्ता प्रतिपादित की गयी है।

3. लेखिका ने अवतरण में अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया है।

4.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. ‘सुभद्रा कुमारी एक संस्करण’ के आधार पर सुभद्रा कुमारी के व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—सामान्य परिचय—छायावाद की हिन्दी काव्यधारा के चार स्तम्भ प्रसाद, पन्त, निराला के साथ-साथ महादेवी वर्मा का भी नाम उल्लेखनीय है। आपने जिस प्रकार काव्य के भोग में अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है, उसी प्रकार आपने गद्य के भोग

में भी अपने मौलिक चिन्तन और मनन के सहारे विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया है। आपके इस चिन्तन और मनन पर भावुकता की अमिट छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है।

आपने अधिकांश विचारात्मक निबन्ध ही लिखे हैं, जिनमें से कुछ संस्मरणात्मक हैं तो कुछ आलोचनात्मक हैं। आपके निबन्ध बौद्धिक चिन्तन को अग्रसर करने वाले हैं तथा वे बौद्धिक तीक्ष्णता के साथ-साथ भावात्मक संश्लेषण से परिपूर्ण हैं। आपके निबन्धों के सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि 'महादेवी जी के निबन्ध काव्य के शाश्वत सिद्धान्तों के अमर व्याख्यान हैं। आज साहित्यिक मूल्यों के बवण्डर से भटका हुआ जिज्ञासु इन्हें आलोक स्तम्भ मानकर बहुत-कुछ स्थिरता पा सकता है।'

संकलित संस्मरणात्मक निबन्ध अपने बालपन की साथिन सुभद्रा कुमारी के व्यक्तित्व और कृतित्व को आधार बनाकर रचा है। समूचे निबन्ध में करुणा, कोमल, सुखद और पवित्र स्मृतियों का आकलन किया गया है।

लेखिका ने सुभद्रा जी के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए निबन्ध के प्रारम्भ में कहा है कि मेरे अतीत की चित्रशाला में बहिन सुभद्रा से मेरे साथ का चित्र पहली कोटि में ही रखा जा सकता है क्योंकि उतने वर्षों के उपरान्त भी उसकी सब रंग-रेखाएँ अपनी सजीवता में स्पष्ट हैं। इसी आधार पर महादेवी ने उनके व्यक्तित्व की जिन विशेषताओं की ओर संकेत किया है, वे निम्नलिखित हैं—

1. कोमलता एवं उदारता से पूरित व्यक्तित्व—महादेवी वर्माने उनके शारीरिक सौष्ठव की ओर संकेत करते हुए कहा है कि उनका मुख गोल, माथा चौड़ा, छोटी सुडौल नासिका और उनकी दृढ़ता सूचक ठुड़ी सब-कुछ मिलाकर एक अत्यन्त निश्छल कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही बोध कराते थे।

2. लक्ष्य पथ पर अडिग—सुभद्रा जी अपनी धुन की पक्की थी इसीलिए उनका लक्ष्य पथ पर अडिग रहना और सब-कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण बन गया था। महादेवी इसी क्रम में एक घटना सुनाती हुई कहती हैं कि जब सुभद्रा को कृष्ण और गोपियों की कथा सुनकर गोपी बनने की धुन सवार हो गयी तब वे एक दिन लकुटी लेकर गाँवों और ग्वालों के कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गयी। गोधूलि वेला में सब वापिस अपने-अपने घरों में चले आए लेकिन गोपी बनी सुभद्रा भूखी, प्यासी काँटों से घायल पैरों से चलकर वन में कृष्ण को ढूँढती ही रही। रात होने पर ग्वालों से पूछताछ करने के बाद घर वाले उसे वन में से लेकर के आए।

3. परिस्थितियों से जूझना उनका सहज स्वभाव—लेखिका कहती है कि परिस्थितियों से जूझना सुभद्रा जी का सहज स्वभाव बन गया था। जब वे आठवीं कक्षा में पढ़ती थीं तब ही उनका विवाह हो गया था। उन्होंने स्वतन्त्रता के लिए तैयार पति को विवाह से पूर्व ही देख लिया था और उनके विचारों से भी भली-भाँति परिचित हो गयी थी। इसीलिए उन्हें यह पता था कि नव वधू के रूप में उन्हें जो पति से मिलना चाहिए उसके लिए उनके पति के पास अवकाश नहीं था। वे जान गयी थी कि जिसमें विवाह के मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया उसकी गृहस्थी कारागार में ही बसाई जा सकती थी। घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरम्भ हुआ था वह अनन्त तक चलता रहा। लेकिन वे परिस्थितियों से हरी नहीं। लेखिका कहती हैं कि एक बार जब भूख से रोती बालिका को बहलाने के लिए उन्हें जेल में कुछ भी नहीं मिला तब उन्होंने अरहर दलने वाली महिला कैदियों से अरहर की दाल ली और उसे तवे पर भूनकर अपनी पुत्री को खिलाया। घर आने पर भी आर्थिक स्थिति ठीक न होने पर उनकी यही दशा हो जाती थी। लेकिन इन परीक्षाओं से उनका मन न कभी हारा, न उसने परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए कोई समझौता स्वीकार किया।

4. हीन भावना से दूर—सुभद्रा जी की प्रिय सहेली कहती है कि उनके मानसिक जगत में हीनता को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। वे जिन हाथों से कविता के छन्द सजाती थी, उन्हीं हाथों से गोबर भी थापती थीं। वे अपने अधभरे घर के आँगन को जिस तन्मयता से लीपती थी लेखिका कहती है कि शायद ही कोई उनकी इस क्षेत्र में समानता कर सकता था। इसके साथ ही छोटे-बड़े पेड़, रंग-बिरंगे पौधों की क्यारियाँ, ऋतु के अनुसार तरकारियाँ, गाय-बछड़े आदि-आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट के दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी।

(5) ममता और उदात्त गुणों से पूरित—लेखिका कहती है कि सुभद्रा जी ममता और उदात्त गुणों से पूरित थी। उनमें जो महिमामयी माँ थी, उसकी वीरता का उत्सर्ग भी वात्सल्य ही कहा जा सकता है। उनमें गम्भीरता, ओजस्विता और परहित उत्सर्ग जैसे गुण विद्यमान थे, उनमें क्षणिक उत्तेजना नहीं थी। उनका जीवन के प्रति ममता भरा विश्वास था।

(6) स्वतन्त्रता की पक्षपाती—सुभद्रा जी स्वतन्त्रता की पक्षपाती थी। वे स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में कहा करती थी कि मनुष्य की आत्मा स्वतन्त्र है, चाहे वह स्त्री-शरीर के अन्दर निवास करती हो या चाहे वह मनुष्य शरीर के अन्दर निवास करती हो। इसी दृष्टि से उन्होंने परिवार और समाज में व्यक्ति बन्धन पर अपने स्वतन्त्र विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि ये बन्धन देश-कालानुसार बदलते रहते हैं। इसी

प्रकार उन्होंने समाज में चली आ रही नारी-परम्परा की रूढ़ियों के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। वे राजनीतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रही। अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतारकर उसे सृजन का रूप दिया है।

(7) सृजन की मौलिक प्रतिभा से युक्त—सुभद्रा जी का व्यक्तित्व सृजन की मौलिक प्रतिभा से युक्त था। यद्यपि अध्ययन का क्रम असमय भंग हो जाने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा नहीं मिल सकी परन्तु अनुभव की पुस्तक से उन्होंने जो कुछ भी सीखा उसे उनकी प्रतिभा ने हमेशा ही निजी विशेषता दी है। भाषा, भाव, छन्द की दृष्टि से नए, झाँसी की रानी जैसे वीरगति तथा अन्य सरल स्पष्टता में मधुर प्रगीत मुक्तक, यथार्थवादिनी मार्मिक कहानियाँ आदि उनकी मौलिक प्रतिभा के सृजन हैं।

(8) वात्सल्य का अनूठा विधान—लेखिका कहती हैं कि सुभद्राजी के साथ अनुभव और चिन्तन की एक अनोखी दुनियाँ समाहित थी। इसी आधार पर उन्होंने अपने बच्चों को विकास के लिए मुक्त वातावरण दिया। उन्होंने अपने बच्चे को उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करने के लिए बाध्य नहीं किया, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि किसी बच्चे ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया, जिससे उसकी महीयसी माँ को किंचित् भी क्षुब्ध होने का कारण मिला हो। उनके वात्सल्य का विधान अलिखित और अटूट था।

(9) संकीर्णता से दूर—सुभद्रा जी के विशाल हृदय में संकीर्णताओं को कोई भी स्थान प्राप्त नहीं था। इसीलिए पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने एक पल के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं जिस कन्यादान के प्रति सब मुक्त भाव से अपनी श्रद्धा व्यक्त करते रहे, उसी के विरुद्ध उन्होंने घोषणा की 'मैं कन्यादान नहीं करूँगी। क्या मनुष्य-मनुष्य को दास करने का अधिकारी है। क्या विवाह के उपरान्त मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी।'

10. अनूठा आत्मीय भाव—लेखिका अपनी प्रिय सहेली के स्वभाव की विशेषताओं का जिक्र करते हुए कहती हैं कि उनका हृदय आत्मीय भाव से पूरित था। जब भी वे मेरे घर पर आती थी तो ढेर सारे आत्मीय उपहार मेरे लिए लेकर आती थी। कभी-कभी कवि-सम्मेलन में आते-जाते समय उन्हें समय नहीं होता था तब मुझे उनसे मिलने के लिए स्टेशन पर ही जाना पड़ता था। तब वे अपने थैले से दो चमकीली चूड़ियाँ निकाल कर हँसती हुई पूछती थी—'पसन्द हैं।' मैंने तो तुम्हारे लिए और दो अपने लिए खरीदी थी। तुम पहनने में तोड़ डालोगी, लाओ अपना हाथ मैं पहनाए देती हूँ। पहन लेने के बाद वे बच्चों के सवाल पर प्रसन्न हो उठती थी। लेखिका कहती हैं कि हम दोनों जब भी मिलते थे तो बात एक मिनट की होती थी और हँसी पाँच मिनट के अनुपात में चलती थी।

4.2 सारांश

उपर्युक्त विवेचनाधार पर कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा ने सुभद्रा जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की विशेषताओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। इसमें दोस्ती को न निभाकर एक अच्छे और सच्चे साहित्यकार के गुणों का परिचय महादेवी जी ने दिया है।

इकाई- 5 : साधना के कवि

(जैनेन्द्र कुमार)

संरचना

- 5.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 5.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 5.2 सारांश

5.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

लेखक का संक्षिप्त परिचय—जैनेन्द्र कुमार का जन्म 1905 में अलीगढ़ जिले के कौडियागंज कस्बे में एक जैन परिवार में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल में हुई। मैट्रिक उत्तीर्ण करने के बाद वाराणसी महाविद्यालय में प्रवेश लिया। इसके बाद असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर जेल में लेख लिखे। सन् 1928 में 'विशाल भारत' आपका लेख प्रकाशित हुआ। आपकी कृति मुक्तिबोध पर साहित्य अकादमी नयी दिल्ली से पाँच हजार रुपये का पारितोषिक भी प्राप्त हुआ। हिन्दी साहित्य में जैनेन्द्रजी की देन बहुमुखी है। दर्शन और मनोविज्ञान आपके कथा-साहित्य की प्रमुख विशेषता है। जैनेन्द्रजी के विचारात्मक निबन्धों को सजग-सतर्क चिन्तन विराट् व्यक्तित्व विश्वासी अहं की संज्ञा प्रदान की जाती है। वे भावुक की अपेक्षा विचारक अधिक हैं। उनकी आस्था तर्क की कसौटी पर चमकती है, श्रद्धा ज्ञान की सेवा में स्वस्थ होती है। इनके विचारात्मक निबन्धों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है।

प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—कहानी संग्रह, ध्रुवशाला, फाँसी, एक रात, वातायन, देने चिड़ियाँ, नीलम देश की राजकुमारी, जैनेन्द्र की कहानियाँ, जैनेन्द्र की कहानियाँ (दस भाग), जगसिन्धु पाजेब, नई कहानियाँ—स्पर्द्धा, एक दिन तथा एक रात।

उपन्यास—कल्याणी, सुनीता, त्याग-पत्र, परख, जयवर्धन विवर्त एवं व्यतीत मुक्ति बोध, सुखदा।

निबन्ध संग्रह—जैनेन्द्र के विचार, प्रस्तुत प्रश्न, बड़ की बात, संस्मरण, साहित्य का श्रेय और प्रेम मन्थन, काम, प्रेम और परिवार, समय और हम, साधना के कवि मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि आपकी नवीन रचनाएँ हैं।

मानवता निबन्धों का मूल संगीत है। सीधे सरल बोलचाल के शब्दों में गहन-गम्भीर, दर्शन की बात भी वे कह जाते हैं। लघु सरल, सीधे वाक्य, भाषा की उलझन नहीं, पर तह में तीव्र चिन्तन और अर्थ गांभीर्य की समझ काफ़ी पैनी और सतर्क, कहीं तो भाषा में गजब की संक्षिप्तता एवं बांकापन और कहीं विलक्षण प्रसादात्मकता तथा संतवाणी का भोलापन जैनेन्द्र हिन्दी के गिने-चुने शैलीकारों में लकीर खींचकर अलग चमकते हैं।

पाठ-सन्दर्भ—साधना के कवि मैथिलीशरण गुप्त संस्मरणात्मक शैली का आत्मपरक निबन्ध है। जैनेन्द्र गुप्त जी के प्रति सम्मान भाव रखते रहे हैं। निबन्ध के आरम्भ में उन्होंने गुप्त जी से अपनी भेंट के रोचक एवं आत्मीय प्रसंग को रूपायित किया है। जहाँ जैनेन्द्र जी ने जिज्ञासा और कौतूहल का समावेश करते हुए निबन्ध में कहानी का-सा प्रवाह दिया है। गुप्तजी का असाधारण काव्य-व्यक्तित्व उनके लिए जिज्ञासा का कारण रहा है। गुप्तजी के आतिथ्य और स्नेहित व्यक्तित्व जैनेन्द्रजी को प्रमुख रूप में प्रभावित किया था, तभी तो वे कहते हैं— 'उस घर में जाकर किसी बाहर वाले में परायण या अपनापन कायम नहीं रह सकता। वहाँ वैसी सुधबुध बिसर जाती है।'

वातावरण में इतना स्नेह है कि जितना नहीं होना चाहिए। बीसवीं सदी के शहरों में रहने वाला आदमी ऐसा स्नेह पाने का आदी नहीं होता, उसे अविश्वासी से काफ़ी काम पड़ता है और दम्भ से भी काम पड़ता है। जैनेन्द्रजी ने अन्तिम पंक्तियों में आधुनिक जीवन पर व्यंग्य भी कर दिया है जो निबन्ध को सरस स्वरूप प्रदान करता है। गुप्तजी का मातृ प्रेम, सहज जीवन, उदात्त विचार एवं हंसमुख स्वभाव को लेखक ने घटनाओं के माध्यम से वर्णनात्मक शैली में चित्रित किया है। गुप्तजी के विराट् किन्तु सहज कवि रूप को शब्दायित कर रहे हैं जैनेन्द्रजी लिखते हैं— 'गुप्तजी कोमल वाद्य यन्त्र के समान हैं, यह तो मैं नहीं जानता। संवेदन की मूर्च्छना की सूक्ष्मता मैं क्या समझूँ? लेकिन वे अपने आवेशों को वश में रखने वाले महात्मा नहीं। आवेशों के साथ बहुत कुछ समस्वर होकर बज उठने वाला कवि का स्वभाव उनका है।' इस निबन्ध की भाषा सरल, सहज और कहानी की-सी गतिशीलता लिए हुए है। वस्तुतः यहाँ गुप्तजी के व्यक्तित्व का सजीव चित्रांकन हुआ है।

5.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. साधना के कवि मैथिलीशरण गुप्त निबन्ध के आधार पर गुप्तजी के चरित्र की विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर—साधना के राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 में श्रावक शुक्ला तृतीया को झाँसी के चिरगाँव नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता सेठ रामचरणजी एक अच्छे कवि थे। गुप्तजी ने घर पर ही शिक्षा प्राप्त की थी। इनकी प्रारम्भिक कविताएँ कलकत्ता से निकलने वाले 'वैश्वोपकारक' पत्र में और बाद में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुईं। महावीर प्रसाद द्विवेदी के मार्गदर्शन से इनकी काव्यकला में निखार आया। गुप्तजी वैष्णव, रामभक्त कवि थे। उन पर उनके पारिवारिक संस्कारों का बड़ा प्रभाव था। सब धर्मों के प्रति आदर का भाव था। वे सरल सात्विक प्रवृत्ति के उदार व्यक्ति थे। द्विवेदी जी की प्रेरणा से ही गुप्तजी परिमार्जित हिन्दी के काव्य मार्ग पर अग्रसर हुए। गुप्तजी के काव्य में भारतीय संस्कृति और नारी-सम्मान की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। स्त्री जाति के प्रति उनके उदार और संवेदनशील होने का प्रमाण कैकेयी, उर्मिला, विष्णुप्रिया एवं यशोधरा का उदात्त चित्रण है। गुप्तजी ने राष्ट्र को जमाने की आवाज उठाई और अपने देश की महिमा का गुणगान किया। पौराणिक कथाओं और ऐतिहासिक घटनाओं को उन्होंने अपनी रचनाओं का आधार बनाया। इनकी अनेक कविताओं में गाँधीवाद, सत्याग्रह, विनत-विद्रोह, देश प्रेम, स्वतन्त्रता, अहिंसा एवं साम्यवाद की झलक देखने को मिलती है। मैथिलीशरण गुप्त की अगलिखित विशेषताएँ हैं—

(1) **अपनत्व की भावना**—मैथिलीशरण गुप्तजी में अपनत्व की भावना कूट-कूट कर विद्यमान थी। एक लेखक जैनेन्द्र कुमार का उनके घर जाना हुआ। वहाँ उन्होंने देखा कि उनके मन में भेदभाव की कोई भावना नहीं है। उन्हें वहाँ घर जैसा ही व्यवहार प्राप्त हुआ। वहाँ के वातावरण में इतना स्नेह है कि जितना नहीं होना चाहिए, बीसवीं सदी के शहरों में रहने वाला आदमी ऐसा स्नेह पाने का आदी नहीं होता। उसे अविश्वास से काफी काम पड़ता है और दम्भ से भी काम पड़ता है, इससे खुले स्नेह में वह कुछ खोया-सा हो सकता है। शहराती को मालूम हो सकता है कि यह स्नेह का वर्णन कहाँ है, यह तो सीधा सच्चा आकर्षण है। पर इस आकर्षण से वहाँ कोई बचाव नहीं है और बचाव कहाँ से हो, आदमी निराश तो पहले ही हो जाता है।

(2) **दृढ़ आत्म-विश्वास**—ऐसा सहज विनय दृढ़ आत्म-विश्वास और कर्तव्यनिष्ठा से ही उत्पन्न होता है। अपने साहित्यिक जीवनारम्भ से ही उन पर बहुत बड़ा पारिवारिक दायित्व आ पड़ा था। उसमें साभार करने वाले और भी हो सकते थे, पर मैथिलीशरण जी ने उसे अपने कंधों पर लिया बल्कि साहित्य-साधना भी इस कर्तव्य के एक अंग के रूप में विकसित हुई। उनके काव्य में निरन्तर कर्तव्य का स्वर बोलता है, बल्कि कहा जाए कि गुप्तजी कर्तव्य के कवि हैं, तो अत्युक्ति न होगी। गुप्तजी की रंग में गंग इण्डियन प्रेस से छप चुकी थी, कविता कलाप में भी अधिकांश उन्हीं की कविताएँ छपी थीं।

(3) **कर्तव्य भावना व साहस**—मैथिलीशरण गुप्तजी में कर्तव्य भावना के साथ-साथ साहस भी था, जिसका उदाहरण इस प्रकार है—चिरगाँव में अपनी जमीन में सिंचाई के लिए गुप्तजी ने बिजली का इन्जिन लगवाया था। एक दिन जब दो लड़के कुएँ के भीतर काम कर रहे थे और उन पर इन्जिन चल रहा था, तब अचानक इन्जिन का पट्टा उतर गया। मोटर बहुत जोर से चलने लगी और कुएँ के ऊपर इन्जिन वाला समूचा चौखटा ऐसे जोर से हिलने लगा कि अब गया, अब गया। मोटर का स्विच कुएँ के अन्दर ही था। गुप्त जी ने देखा, तो भीतर काम करते हुए लड़कों का ध्यान करके अपना जोखिम भूलकर कुएँ के अन्दर उतर गये और वहाँ से स्विच बन्द करके मोटर को रोक दिया।

(4) **यन्त्र प्रेम**—बिजली की मोटर के उल्लेख से सहसा गुप्तजी के यन्त्र-प्रेम की ओर ध्यान जाता है। परम वैष्णव कवि में यन्त्रों के बारे में बड़ा कौतूहल और उत्साह है। कुछ कार्य-दक्ष यन्त्र से गुप्तजी बहुत प्रभावित होते हैं। इसका एक नमूना उनके प्रेस का यन्त्र है। चिरगाँव जैसे छोटे स्थान में प्रेस की आवश्यकताएँ सीमित होती हैं और अपनी आवश्यकता की अपेक्षा में बहुत बड़ी और नामी मशीनें लगाना व्यापारिक बुद्धि के सर्वथा प्रतिकूल है—मशीन से पूरा काम न लिया जाए तो वह बोझ हो जाती है, फिर भी कलकत्ते में एकाधिक बार अच्छी और बड़ी मशीन देखकर गुप्तजी ने उसे खरीद लिया है और चिरगाँव लाकर डाल दिया है।

(5) **कर्तव्य-निष्ठ**—तब इधर-उधर की अनेक बातों में रस लेकर भी अपने साहित्य निर्माण के समय का गुप्तजी कड़ाई से पालन करते हैं। बल्कि कहा जाए कि उन्होंने जो-जो काम उठाये, उनमें से यही एक बिना व्याघात से पूरा होता जा रहा है और सब काम अधूरे ही रह गये हैं। सितार बजाने का उन्हें बहुत शौक था और उसका बहुत अभ्यास भी करते रहे, पर फिर वह छूटा और ऐसा छूटा कि एक बार उन्होंने कहा, 'अब तो सितार के सुरों की अपेक्षा यन्त्र के सुर से ही अपना परिचय अधिक है।' यों संगीत में उन्हें बराबर प्रेम रहा और मुन्शी अजमेरी से उनकी गहरी मित्रता का एक कारण यह भी था। संगीत ही नहीं अच्छे चित्रों से भी उन्हें बहुत प्रेम है और ब्रजभाषा साहित्य से तो है ही।

(6) सादगी—मैथिलीशरण गुप्तजी के अन्दर अहं की भावना नहीं थी। वे खादी से निर्मित कपड़े ही पहनते थे व गाँधीवादी विचारधारा पर चलते थे। शहरीयत विशेषतः मैथिलीशरण के प्रयत्न से उनके परिवार को नहीं छू सकी थी, उनका जीवन सादगी से परिपूर्ण था। उनका बिास मोटा, देहाती और कुढ़ंगा सज्जा पगड़ी यदि हो तो तदनुकूल और आधुनिक फैन्सी के प्रतिकूल। सिर पर बुन्देलखण्डी पगड़ी, घुटने तक रहने वाली धोती इस प्रकार पहनावा सादगी से परिपूर्ण था।

(7) गाम्भीर्यता—मैथिलीशरण गुप्त में गम्भीरता की भावनाएँ विद्यमान थी। विद्वान् को गम्भीर होना चाहिए पर मैथिलीशरण जी के ऊपर विद्वता ढंग के साथ टिकती दिखाई नहीं दी। बीच में चपलता भी दिखाई दे रही थी। कभी-कभी तो ऐसा आभास होता था कि पचास वर्ष की उम्र में बच्चों की तरह चपलता करते थे।

(8) सामाजिकता—मैथिलीशरण जी ने सामाजिक मर्यादाओं का पालन अपने बुद्धि-बल के द्वारा किया। वे व्यावहारिक व्यक्ति थे। उनमें भेदभाव की भावना विद्यमान नहीं थी। वे सभी को सामाजिक प्राणी मानकर समानता का व्यवहार करते थे। उनमें राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान थी।

(9) संगीत प्रेमी—मैथिलीशरण गुप्तजी संगीत प्रेमी थे। वे कविता पाठ भी संगीतमय स्वर में करते थे। उनकी कविताएँ संगीतमयी हैं।

(10) देश-प्रेमी—वे देश-प्रेमी थे। उनमें देश-प्रेम की भावनाएँ कूट-कूटकर समायी हुई थी। उन्होंने देश-प्रेम की कई कविताएँ लिखी हैं। मैथिलीशरण गुप्तजी में साहित्यिक परम्परा के भी अनेक गुण विद्यमान हैं। वे साधना के कवि हैं। उन्होंने साहित्य की साधना की है।

प्रश्न-2. साधना के कवि मैथिलीशरण गुप्त निबन्ध का सार अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर—जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित निबन्ध साधना के कवि मैथिलीशरण गुप्तजी की साधना के बारे में उनके जीवन व उनकी साधना के बारे में वर्णन किया है। जिसका सार निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है—

(1) प्रस्तावना—लेखक ने बचपन से ही मैथिलीशरण गुप्त का नाम सुना था। उनकी कविताएँ लेखक के मन पर दिनों-दिन उभरती चली गईं। उनके पद्य बचपन में ही हृदय का स्पर्श कर गये थे। समय गुजरता चला गया, हृदय की आकांक्षा बढ़ती चली गई। उसमें जयद्रथ वध के खण्ड को पढ़कर ऐसा आभास हुआ कि पता नहीं मैथिलीशरण जी कितने बड़े आदमी होंगे। उनका गाँव कितना बड़ा होगा। अचानक ऐसा सौभाग्य मिला कि मुझे चिरगाँव देखने का आभास हुआ कि वह उनको अपने गाँव जैसा ही प्रतीत होने लगा। वहाँ जाकर उन्होंने मैथिलीशरण गुप्तजी को देखा। वे बड़े सादगी से युक्त थे। वे झूलते झूल रहे थे। उनकी बगल में एक पुस्तक का पुलिना था। वे कुछ गुनगुना रहे थे। वहाँ पर मैथिलीशरण गुप्तजी से मुलाकात हुई।

मैथिलीशरण गुप्त की चारित्रिक विशेषताएँ—एक बार लेखक जैनेन्द्र कुमार जी को उनके घर जाने का अवसर मिला। वहाँ पर उनको अतिथि सत्कार बहुत अच्छा मिला, उनका वहाँ पर घर-सा वातवरण प्रतीत हुआ। उनके घर में आने वाले के साथ अपनापन व परायापन कायम नहीं रह सकता है। आधुनिक समाज में ऐसी किसी से अपनत्व की आशा नहीं की जा सकती, जैसी गुप्त से मिली। चिरगाँव का वह गुप्त लोगों का घर बहुत-सी बातों में आधुनिक नहीं है। पुरातन कछो या सनातन है। वह घर यानी मैथिलीशरण एक ही बात है। गुप्त-परिवार का पारिवारिक संगठन नये नमूने का नहीं है। पर पुरातन शैली का है। पर इस कारण वह शिथिल नहीं बल्कि सक्षम है। पर यह शहरीयत विशेषतः मैथिलीशरण के प्रयत्न से उसके परिवार को नहीं छू सकी है। वे अपने व्यवहार में हार्दिक हैं।

मैथिलीशरण गुप्तजी का शारीरिक गठन व वेशभूषा—मैथिलीशरण जी को देखकर वह शक्ति चरितार्थ हुई कि 'नाम बड़े दर्शन छोटे' अर्थात् उन्होंने नाम तो बड़ा किया किन्तु दर्शन थोड़ा रखा। उन्होंने अपने चारों ओर दर्शनीयता नहीं बैटोरी बल्कि कहा जा सकता है कि उल्टे चले हैं। अपनी ओर से भी वे उसे आकर्षक न बनने दें, मानो इसका भी उन्हें सदा ध्यान रहता है। लिबास मोटा, देहाती और कुढ़ंगा। सज्जा यदि हो तो तदनुकूल और आधुनिक फैन्सी के प्रतिकूल सिर पर बुन्देलखण्डी पगड़ी घुटने तक गया कुरता और लम्बे घुटने तक ही रहने वाली धोती। बाल इतने छोटे कि उन्हें चाहकर भी संवारा न जा सके। शरीर कृश और श्यामल, मूँछें बेरोक उगती हुई, जिनमें कोई छंटाव नहीं मानो दीखने वाले मैथिलीशरण अपने समूचे पन से घोषित करना चाहते हैं मैं किसी सम्मान के योग्य प्राणी नहीं हूँ।

फिर भी सच है कि उनके इस ढंग में भी एक अपनी आन है, निजत्व है और इधर की उनकी मूँछों के साथ वाली दाढ़ी के फोटोग्राफ देखता हूँ तो रोष पड़े बिना मुझ पर नहीं रहता। खैर, मालूम होता है कि अपने बारे में वे न तो गलत फहमी खुद चाहते हैं न औरों में चाहते हैं। जो है, सो है। इज्जत में व्यतिरेक नहीं आ सकता। कुल की और अन्य प्रकार के गौरव की टेक उनमें है। उस मामले में दुर्बल हैं, हठीले भी हैं। किन्हीं नए मूल्यों की प्रतिष्ठा उनके जीवन में नहीं है, मान्य की ही मान्यता है।

गाम्भीर्यता व सामाजिक मर्यादा—गुप्तजी में गम्भीरता की भावना नहीं थी। वह शायद आवश्यकता से कम थी। वैसे विद्वान् को गम्भीर होना चाहिए। पर मैथिलीशरण जी के ऊपर विद्वत् ढंग के साथ टिकती। लेखक नहीं देखी बीच में चपलता झांक ही उठती है। पचास वर्ष की उम्र में बचपन जैसी हरकतें करते थे। कहीं किसी से मिलने जायेंगे या पार्टी आदि में जायेंगे तो भी किसी वस्तु का स्पर्श नहीं करते थे। उनसे गलती सहज भावना में ही हो जाती थी। लेकिन एक गलती का पुनः प्रसारण कभी नहीं होता था। पर वे अदब कायदे के प्रति अवज्ञा उनमें नहीं है। अवज्ञा के प्रति नहीं है। वे निवेदन में झुक सकते थे लेकिन आत्म-सम्मान को ठेस नहीं पहुँचने देते थे। उनको वय की अवज्ञा नापसन्द थी लेकिन वे दबेंगे राजा से नहीं और दबायेंगे रंक को भी नहीं।

सामाजिक मर्यादाओं का बुद्धि बल से इन्कार करके चलने की उनमें सामर्थ्य नहीं थी। वैसी रुचि और संस्कार ही नहीं है। व्यावहारिक क्षमता उनके संस्कारों के प्रतिकूल थी। हरिजन के अर्थ जबर्दस्त कविता और जबर्दस्त उत्सर्ग वे कर सकते थे, पर चौके की और बात थी और छूतछात वह भी और बात थी।

विनयशीलता व कोमलता—कवि व साधारण व्यक्ति में क्या अन्तर है। शायद यह कि वह भावुक अधिक होता है। वह भावुक अधिक, सहनशील कम होता है। वृद्ध की जगह उसे कोमल होना चाहिए। मानव स्वभाव का विकास दोहरा होता है, दो विश्वाओं में होता है। एक और उपमा व्यक्तित्व की दी जाती है कि पर्वत की तरह अचल, वज्र की तरह अनिवार्य और कठोर इत्यादि। ये उपमाएँ सन्त महात्माओं पर सुशोभित होती हैं। इन उपमाओं के योग्य कवि होते हैं। जैसे बारीक तार का कसा हुआ कोई कोमल वाद्य यन्त्र तनिक चोट लगी कि उसमें से झंकार फूट आई। गुप्तजी भी कोमल वाद्य यन्त्र के समान थे। यह तो मैं नहीं जानता संवेदन की मूर्च्छना की सूक्ष्मता में क्या समझूँ? लेकिन वे अपने आवेश को वश में रखने वाले महात्मा नहीं हैं। आवेशों के साथ बहुत-कुछ समस्वर होकर बज उठने वाले कवि का स्वभाव उनका है। इसी से उनके काव्य में प्रेरणा है और सच्चाई है। झोंका आया कि क्रोध में उनके नथुने फूल आए, आँखें लाल हो गई और शिराएँ मानों फड़क उठी, यह हो सकता है पर झोंका बीता कि किस बात पर उनकी आँखें डेढ़ डेढ़ आँखें, यह हम नहीं कह सकते।

उनका कविता पाठ भी आरोह-अवरोह के साथ अपने आप ही हो उठता था। ध्वनि लय के अनुसार चलती थी। कविता पाठ भक्ति के प्रेरणा से आबद्ध होकर उपासनामयी होती थी। उनका काव्य कथानुसार चलता था। वह घटना के साथ चलता था। वह आत्मलक्ष्मी न होकर परोपकारी होता था। वे कोमल थे तो दूसरे को लेकर भाव प्रवण भी थे तो दूसरों के लिए उनके पास स्वयं के लिए कुछ भी नहीं था। जो कुछ भी दूसरों के लिए था। मनुष्य श्लोक पुरुषों की गाथाएँ हैं और उनका गान उन्हें पसन्द था। उसके आगे वे अपना निवेदन करते थे।

उपसंहार—उनके परम मित्र प्रेमचन्द थे। उनके सम्मान ही उन्होंने समाज को सुधारने के लिए लोक-संग्रह की रचना की है। वे भी लोक समस्याओं से घिरे रहे। मैथिलीशरण गुप्तजी का साहित्य द्वारा लोकोत्तर से नाता था। ऐहिक विचार में वे ऐहिक हैं। मशीन में मैथिलीशरण जी कविता से शायद कम दिलचस्पी नहीं लेते। कलपुराणों में उन्हें अच्छी गति व रस है। इनके वहाँ बिजली का इंजन था, वह खराब हो जाने पर भी निराश नहीं हुए। वे अपने काम की बातों को नहीं छोड़ते थे। उन पर यथावसर ध्यान देते थे। उनमें बनियागिरी का अभाव नहीं था। वे टोटे में रहना नहीं जानते थे। व्यवसाय का टोटा तो चलता ही रहता था लेकिन वे धन की तरफ कोई ध्यान नहीं देते थे।

वे अपने सम्बन्धों के बारे में सावधान थे। हर कोई उनका दोस्त नहीं बन सकता था। उनका विश्वास महँगा था। अर्थात् वे अपना दिल नहीं बाँटते थे। वे समाज में कभी दिशा-निर्देश नहीं दे सकते थे बल्कि अपने आपको भीड़ से भिन्न समझते थे। वे जनता से डरते थे। उनके बारे में अनायास ही सिद्ध हो जाता है कविता में शब्द और तुक। सफर में तीसरा दर्जा। वेश-भूषा में सादगी वेश में चिरगांवता। प्रेम में अपत्य प्रेम व्राणी में मित-भाषण और साहित्य में सुरुचि इन सभी के लिए प्रयासों को प्रयास लगता है। राष्ट्रीय व्यक्ति के लिए रेल का तीसरा दर्जा अभी तक सहज नहीं है। यह गौरव का विषय है। बारीक बातें उनसे नहीं बचती और मानस सम्बन्धों को परख में सूक्ष्मदर्शी है। चिरगांव से न टलना उनके हक में भीरुता ही नहीं है, साधना भी है। प्रकृति से अधिक वे साधना के कवि हैं।

प्रश्न-3. साधना के कवि 'मैथिलीशरण गुप्त' से आपको क्या प्रेरणा मिलती है ?

उत्तर—मैथिलीशरण गुप्तजी का जन्म लगभग आधुनिक काल में हुआ। उनके पिता जी एक माने हुए कवि थे। वैसे मैथिलीशरण गुप्त पर यह उक्ति चरितार्थ होती है कि नाम बड़े, दर्शन छोटे। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में छायावाद में अति ख्याति प्राप्त की, फिर भी उनमें कोई अहं की भावना नहीं थी। इसी से हमें प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए कि चाहे हम कितने ही बड़े आदमी क्यों नहीं बन जायें, अपने आप पर घमण्ड नहीं करना चाहिए। इसके उनके यह भी प्रेरणा ग्रहण करने लायक बात है कि घर में कोई भी आये, उसका आदर-सत्कार करना चाहिए क्योंकि अतिथि देवतुल्य होता है। वह कोई भी हो, जिस पर से अतिथि निराश होकर लौटता है, वह अपने पाप देकर पुण्य लेकर चला जाता है। इसलिए आतिथ्य सत्कार करना चाहिए। उनके सादगी से युक्त लिबास से यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि हमें भी भारतीय

संस्कृति के अनुसार सादगी का लिबास धारण करना चाहिए। उनको स्वतन्त्रता संग्राम में जेल जाना पड़ा। वे गाँधीवादी विचारधारा पर चलते थे तो हमको भी उनके अनुसार गाँधीवादी विचारधारा के अनुसार कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। उन्होंने जेल में भी कविताओं की रचना की इसी प्रकार से विपत्ति काल में भी धैर्य को नहीं छोड़ना चाहिए।

उनके अन्दर अपनत्व की भावना थी। उसी प्रकार से मेहमानों से अपनत्व की भावना को अपनाना चाहिए। वे गाँव के निवासी थे और गाँव से प्रेम करते थे। उनको शहरीयता बिल्कुल स्पर्श नहीं कर पायो। उसी प्रकार भारत की अधिक जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। उसी प्रकार गाँवों को बढ़ावा देने की प्रेरणा प्राप्त होती है। उन पर पारिवारिक बोझ आ पड़ा, उसका नियमपूर्वक तरीके से निर्वाह किया, उसी प्रकार से अपने परिवार का वहन अपने कंधे पर लेकर वहन करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। अपने आत्म-सम्मान को कोई ठेस नहीं पहुँचने देते थे उसी प्रकार से हमको प्रेरणा भी मिलती है कि अपने आत्म-सम्मान को ठेस नहीं पहुँचनी चाहिए, चाहे सिर को कटा लें लेकिन किसी के सामने झुकें नहीं। किसी के दबाव में आकर उसकी बातों को स्वीकार नहीं करनी चाहिए। वैसे विद्वान् को आवेशित नहीं होना चाहिए लेकिन बचपन में उनके समान बचपना अवश्य होना चाहिए। इसके साथ-साथ विनयशीलता की प्रेरणा को ग्रहण करना चाहिए।

वे अपनी गलती को सहर्ष स्वीकार कर लेते थे लेकिन एक गलती को पुनः दोहराते नहीं थे। उसी प्रकार हमें यह प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए कि गलती मनुष्य से ही होती है लेकिन उसको बार-बार नहीं करना चाहिए। उनका कहना था कि व्यक्ति के मन में उदारता व सम्मान की भावना होनी चाहिए। उससे यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि राजा को हुजूर कहेंगे तो रंक को 'तू' भी कहना चाहिए लेकिन दबे राजा से भी नहीं और दबायेंगे रंक को भी नहीं। उनके अनुसार छुआछूत का व्यवहार नहीं करना चाहिए। सबको समान समझने की प्रेरणा को ग्रहण करना चाहिए। व्यक्ति को अपना हृदय कोमल रखने की प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। वे संगीत से भी प्रेम करते थे। उनके स्वर में संगीत स्वयं ही गुंजायमान हो जाता था। उसी प्रकार व्यक्ति को संगीत के रूप काव्य से प्रेम रखना चाहिए। व्यक्ति को उनके समान अपने कर्तव्यों की साधना करनी चाहिए। जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों की साधना करता है, ईश्वर उसे सफलता प्रदान अवश्य करता है। वे प्रकृति से अधिक साधना के कावे थे, उसी प्रकार हमें प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए कि अपने कर्मों की साधना अवश्य करें।

व्यक्ति को उनसे कर्तव्य भावना व कर्तव्य निष्ठता की प्रेरणा को ग्रहण करना चाहिए और प्रकृति का चित्रण करके प्रकृति का आस्वादन करना चाहिए और साहस की प्रेरणा को ग्रहण करना चाहिए। उनके गुंथीले व्यक्तित्व की प्रेरणा को ग्रहण करना चाहिए और अपने परिवार के दायित्व को अपने कंधों पर लेने की प्रेरणा को ग्रहण करना चाहिए। व्यक्तित्व की दृढ़ता को सिद्ध करना चाहिए और अपने कर्तव्य परायणता की साधना के द्वारा दूसरों को हठात् आबद्ध करने की प्रेरणा को ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्न-4. मैथिलीशरण गुप्तजी की गम्भीरता व सामाजिकता को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—मैथिलीशरण जी में गम्भीरता की कमी नहीं। 'कमी' भी सोच-समझकर कह रहा हूँ। किसी के बुरा न मानने का डर हो तो शायद मैं कहूँ कि अभाव पाया और कुछ मैथिलीशरण आवश्यकता से अधिक हों, गम्भीर वे आशा से कम हैं। शायद आवश्यकता से भी कम है। मैं अनुमान कुछ करता था और निकला कुछ। विद्वान् को गम्भीर होना चाहिए। पर मैथिलीशरण जी के ऊपर विद्वत्ता ढंग के साथ टिकती मैंने नहीं देखी। बीच में जपलता झाँक ही उठी है। कभी तो डर होता है कि क्या वे सचमुच पचास से ऊपर के हैं भी? मालूम होता है कि उम्र जो भी हो पर अब भी बचपन है। जिसमें बुढ़ापे की आशा हो, इसकी जवानी हमें बचपन न लगेगी तो क्या लगेगी? धीमे वे नहीं चलते, तेज चलते हैं। कहीं पचास से ऊपर उम्र वालों का भाग कूद के खेलों का भारतीय टूर्नामेंट हो जाए, तो मैथिलीशरण का नम्बर शर्तिया पिछड़ा नहीं रह सकता। जहाँ मैं सोचता रह गया हूँ, वे कर गुजरे हैं। सड़क पर हम कई जने जा रहे हैं। एक बच्चा किसी की चपेट में आकर रास्ते की धूल में गिर पड़ा, तो आपसे पहले वे होंगे तो उसे उठाएँगे। सूझ-बूझ उनमें जगी रहती है। आधुनिक सूट-बूट वाले समाज में भी अगर उनका पहुँचना हो जाए तो अपने दोहाती बाने को लेकर वहाँ भी वे मन्द नहीं दीखेंगे। टी-पार्टी होगी तो न चाय पियेंगे, न शायद कुछ खायेंगे। कदाचित फल भी न छुएँगे। पर उस पार्टी में अपने परहेज के कारण असमंजस में किसी को न पड़ने देंगे। मिलेंगे, बोलेंगे, हँसेंगे और अपनी चाल-ढाल की असाधारणतया पर या परहेज पर मानो किसी का भी ध्यान तनिक न रुकने देंगे। गलती वे बड़े सहज भाव से कर सकते हैं, पर कुण्ठित व्यग्रता या असमंजस द्वारा अपनी गलती को डबल गलती बनाने की गलती वे कभी नहीं करते। मानो स्पष्ट व्यवहार से वे स्पष्ट व्यक्त करते हैं (आपको) समाज का अदब कायदा कुछ है तो वह जरूर है। पर मैं जानता हूँ, उतना ही जानता हूँ। अधिक नहीं जानता, इसकी लज्जा से अपनी उपस्थिति में मैं किसी को लज्जित नहीं होने दूँगा। अपनी उदारता के सम्मान में अपनी ही त्रुटि पर मन्दभागी दीखने का अपराध मैं नहीं कर सकता।

पर अदब-कायदे के प्रति अवज्ञा उनमें नहीं है। अवज्ञा किसी के प्रति नहीं है। इस बारे में वे कमजोर तक हैं। पुरानी परिपाटी का अदब-कायदा उनसे नहीं छूट सकता। वे हर एक से शालीनता की आशा करते हैं। छोटा-छोटा है, बड़ा-बड़ा है। सबको अपना पद देकर चलना चाहिए। अपने प्रति भी अविनय उन्हें दुस्सह है। इसलिए कम कि वह उनके प्रति है, अधिक इसलिए कि वह अविनय है। इसी से

अविनय के लिए वे अपने समान किसी को क्षमा नहीं कर सकते। वे निवेदन तक झुक सकते हैं। हो सकता है कि झुकने में वे हद भी लाँघ जाएँ। पर किसी के मन को चुनौती दें, यह असम्भव है। अपने से बड़ों को वे बड़ा मानते हैं और यह हो सकता है कि इसमें अपने से छोटों को भी बड़ा मान बैठें। लेकिन जिनको अपने से छोटा मानना होता है उनसे वे प्रत्याशा रखते हैं कि छोटों की तरह बड़ों का मान रखकर वे चलें। वय की अवज्ञा उन्हें नापसन्द है और वय की वृद्धता के कारण मूढ़ भी उनके निकट आदरणीय हो सकता है। विद्या-बुद्धि नहीं, गुण भी उतना नहीं, जितना सामाजिकता के लिहाज से मनुष्य-मनुष्य के प्रति अपने व्यवहार में वे भेद करते हैं। राजा और रंक उनके लिए समान नहीं हैं। राजा को 'हुजूर' कहेंगे, रंक को तू भी कह देंगे। लेकिन दबेंगे राजा से नहीं और दबायेंगे रंक को भी नहीं।

5.2 सारांश

सामाजिक मर्यादाओं का बुद्धिबल से इन्कार करके चलने की उनमें स्पृह नहीं है। वैसी रुचि और सरकार ही नहीं है। व्यावहारिक सभ्यता उनके संस्कारों के प्रतिकूल है। हरिजन के अर्थ जबर्दस्त कविता और जबर्दस्त उत्साह वे कर सकते हैं, पर चौंके की और बात है और छूत-छात वह भी और बात है।

इकाई- 6 : राखी

(हरिकृष्ण प्रेमी)

संरचना

- 6.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 6.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 6.2 सारांश

6.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) ‘ऐसा न कहो। उन्हें भी भारत में जीना-मरना है। हमारी तरह भारत उनकी भी जन्म-भूमि हो चुकी है। अब उन्हें काफिले में लादकर अरब नहीं भेजा जा सकता। उन्हें यहाँ रहना पड़ेगा और हमें उतना रखना पड़ेगा। वे हमें भाई समझें और हम उन्हें, यही स्वाभाविक है, यही उचित है। इस विकट अवसर पर मेवाड़ की रक्षा का उपाय ही क्या है?’

प्रसंग—उपर्युक्त अवतरण हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा रचित एकांकी ‘राखी’ से उद्धृत है। मेवाड़ पर बहादुरशाह के आक्रमण के बढ़ते दबाव को देखकर स्वर्गीय महाराणा सांगा की पत्नी महारानी कर्मावती बादशाह हुमायूँ से सहायता लेने के लिए उसे राखी भेजकर भाई बनाने का प्रस्ताव करती है, तब मेवाड़ के लोग मुसलमानों को भारत का शत्रु बताते हैं। इसके उत्तर में रानी कर्मावती उदारतापूर्वक कहती है—

व्याख्या—मुसलमानों को भारत का शत्रु कहना उचित नहीं है। वे अब इस देश के वासी बन चुके हैं। उनके सुख-दुःख इस देश से जुड़ गए हैं। यही देश उनकी भी जन्म-भूमि बन चुका है। वे केवल यहाँ आक्रमणकारी बनकर ही नहीं रह गए हैं, बल्कि यहाँ की संस्कृति का एक हिस्सा हो गये हैं। उनकी भाषा, उनके रीति-रिवाज हमारी परम्पराओं में घुलने-मिलने लगे हैं। अब यह सम्भव नहीं रह गया है कि हम उन्हें विदेशी मानकर यहाँ से निकाल दें। वे यहाँ के वासी बनकर रहेंगे और हमें उन्हें स्वीकार करना होगा। अतः यही बेहतर है कि हम उनके साथ मिल-जुलकर रहें, उन्हें अपना समझें। वे भी हमसे भाईचारा रखें और मिल-जुल कर रहें। यही उचित होगा। हम उनसे मैत्री बनाये रखें और वे भी हमें अपना समझें। तभी एक-दूसरे की सहायता सम्भव है। मेवाड़ में जब कठिन स्थिति है, तब बादशाह हुमायूँ से सहायता लिये बिना कोई उपाय नहीं। अतः उनके साथ भाईचारा कायम करना ही होगा। मेवाड़ की रक्षा के लिए एक मुसलमान को भाई बनाकर उसे स्नेह-सूत्र में बाँधना ही होगा। मुझे इस समय और कोई उपाय नहीं सूझ रहा है।

विशेष—लेखक ने एक ऐतिहासिक घटना को आधार बनाकर ‘राखी’ के महत्त्व को दर्शाया है।

इस गद्यांश में कर्मावती के मुख से हिन्दू-मुस्लिम भाई-चारे की बात की गई है। धार्मिक विद्वेष से परे साम्प्रदायिक एकता का यह रूप बहुत सुन्दर बन पड़ा है। लेखक ने मुसलमानों को भारतीय मानकर उन्हें भाई और मित्र के रूप में मान्यता देने की बात कही है।

हिन्दू-मुस्लिमों की एकता से बाहरी शत्रु को परास्त किया जा सकता है। भारत के पर्व-त्यौहार मानवीय संस्कृति और प्रेम के प्रतीक हैं।

भाषा सरल और सुबोध है।

(2) “सचमुच हिन्दूबेग, उन्होंने जादू का पिटारा भेजा है। मेरे सून आसमान में उन्होंने मुहब्बत का चाँद चमकाया है। उन्होंने मुझे राखी भेजी है, मुझे अपना भाई बनाया है। (कूत से) बहन कर्मावती से कहना, हुमायूँ तुम्हारी माँ के पेट से पैदा न हुआ तो क्या, वह तुम्हारे सगे भाई से भी बढ़कर है। कह देना—मेवाड़ की इज्जत मेरी इज्जत है, जाओ।”

प्रसंग—उपर्युक्त अवतरण हरिकृष्ण प्रेमी के एकांकी ‘राखी’ से लिया गया है। इस अवतरण में मेवाड़ की महारानी कर्मावती द्वारा मुगल बादशाह हुमायूँ को राखी भेजे जाने पर हुमायूँ की प्रतिक्रिया को व्यक्त किया गया है—

व्याख्या—बादशाह हुमायूँ कर्मावती की राखी को देखकर गद्गद हो उठता है। वह अपने सेनापति हिंदूबेग से कहता है कि महारानी ने जादुई चीज भेजी है क्योंकि यह वस्तु अमूल्य प्रेम की प्रतीक है। मेरे जीवन का पूरा सूना आसमान मानो प्रेम के चाँद से जगमगा उठा है क्योंकि अभी तक मैं सिर्फ युद्धों में लगा रहा हूँ—परिवार का सुख और आत्मीयता भी मुझे नहीं मिली। मुस्लिम संस्कृति में भाई-बहिन

का प्यार तो होता है किन्तु 'राखी' जैसा पवित्र त्योहार भाई-बहिन के प्रेम को एक गरिमा और प्रतीक से भर देता है। हुमायूँ भारतीय संस्कृति की इस गौरवपूर्ण भावना को समझता है, अतः कर्मावती द्वारा भाई के रूप में स्नेह बंधन की भावना से वह अभिभूत हो उठता है। वस्तुतः राखी के धागे मन की पवित्र भावना से भी बढ़कर मन के दृढ़ संकल्प और चेतना के प्रतीक हैं। 'राखी' के धागे धर्म, जाति, वर्ग, आयु, पद आदि से भी परे प्रेम की प्रतिबद्धता को प्रकट करते हैं। अतः हुमायूँ मुसलमान होकर भी 'राखी' को स्वीकार करता है और दूत से कहता है कि बहन कर्मावती को मेरी ओर से आश्वासन देना और संदेश देना कि हुमायूँ भले ही तुम्हारा सहोदर न हो किन्तु उसका स्नेह और जिम्मेदारी सगे भाई से भी बढ़कर है। अब मेवाड़ की मानरक्षा का प्रश्न मेरी मानरक्षा का प्रश्न बन गया है। मैं मेवाड़ की रक्षा के लिए प्रस्तुत हूँ।

विशेष—लेखक ने हुमायूँ के चरित्र की उदारता और भारतीय संस्कृति के प्रति उसकी सम्मान भावना को प्रस्तुत किया है।

हुमायूँ की प्रतिक्रिया को और प्रसन्नता को लेखक ने काव्यात्मक भाषा में अभिव्यक्त किया है।

यह गद्यांश हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के परस्पर सद्भाव को दर्शाता है।

भाषा सरल, रोचक, बोलचाल की है।

(3) “और तुम उनके पैगम्बर को मानते हो ? तुम्हारे कुरान शरीफ में तुम्हें हुक्म दिया गया है कि तुम दूसरों के पैगम्बरों पर भी ईमान लाओ, उनका यकीन करो। सच्चाई जहाँ भी रोशन हुई है, जिस किसी के मुँह से रोशन हुई है, सच्चाई है। खुदा की साफ हिदायत होते हुए भी तुम हिन्दुओं के धर्म और अवतारों की इज्जत न करते हुए उनसे लड़ते हो। राजपूत इस वक्त सच्चाई पर हैं और बहादुरशाह गुमराह हैं। सच्चे मुसलमान का काम सच्चाई का साथ देना है, फिर चाहे उसे मुसलमान के ही खिलाफ क्यों न लड़ना पड़े।”

प्रसंग—उपर्युक्त गद्यांश हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा लिखित एकांकी 'राखी' से लिया गया है। इसमें हुमायूँ अपने सेनापति तातारखाँ को हिन्दू-मुस्लिम कट्टरता से परे धार्मिक सद्भाव और एकता की बात समझाते हुए कहता है—

व्याख्या—हुमायूँ कहता है कि यदि हिन्दू-मुस्लिम पैगम्बर को नहीं मानते तो तुम भी उनके पैगम्बरों और अवतारों को नहीं मानते। तुम भी उतने ही संकीर्ण और कट्टर हो। तुम्हारे धार्मिक ग्रन्थ कुरान शरीफ में यह स्पष्ट आदेश है कि तुम दूसरे धर्मों और अवतारों का सम्मान करो, उनका विश्वास करो। मानवता के प्रति जिस भी रूप में सच्चाई का महत्व बताया गया है, जिस भी महान् पुरुष के द्वारा हुई है, वह सच्चाई ही महत्वपूर्ण है क्योंकि उस सच्चाई से 'इन्सान ही सर्वोपरि है'—यह स्पष्ट होता है। खुदा ने ही यह निर्देश दिया है कि सबको एक समान समझो। उसके बावजूद तुम हिन्दुओं के धर्म और अवतारों को पराया मानकर उनसे लड़ाई करते हो। मेवाड़ के राजपूत इस समय अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध हैं, बहादुरशाह उनकी जमीन हड़पना चाहता है। सच्चा मुसलमान हमेशा सच्चाई का साथ देता है, चाहे उसे गुमराह मुसलमान के विरुद्ध क्यों न लड़ना पड़े। सच्चाई का साथ देने वाला इन्सान खुदा के आदेश का पालन करता है।

विशेष—हरिकृष्ण प्रेमी ने हुमायूँ के मुख से हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए कुरान शरीफ और खुदा की वाणी को महत्वपूर्ण माना है।

मानवता की रक्षा सच्चाई से ही सम्भव है, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान।

इस गद्यांश में हुमायूँ के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष प्रकट हुआ है।

भाषा उर्दू मिश्रित सरल हिन्दुस्तानी है।

(4) “सारी दुनियाँ की सल्तनत से भी बढ़कर एक सल्तनत है, वह है इन्सानियत की सल्तनत, मुहब्बत की सल्तनत। सिकन्दरशाह, जिन्होंने यूनान से हिन्दुस्तान तक अपनी सल्तनत कायम की थी, आज कहाँ है ? कहाँ है उनकी सल्तनत ? कहाँ है उनकी जिन्दगी भर की कमाई ? लेकिन जिन्होंने दिलों को जीता था, वे आज तक जिन्दा हैं, वे आज तक हुक्मत कर रहे हैं। उनकी सल्तनत आज तक दुनियाँ के दिल पर इन्सानियत की ताकत के सहारे टिकी हुई है।”

प्रसंग—उपर्युक्त पंक्तियाँ 'राखी' एकांकी से ली गई हैं। इस एकांकी के लेखक हरिकृष्ण प्रेमी हैं। उन्होंने इन पंक्तियों में हुमायूँ के मुख से इन्सानियत को सर्वश्रेष्ठ मानने की दुहाई दी है। हुमायूँ देहली की सल्तनत की परवाह न करते हुए कर्मावती की राखी के बंधन को अधिक महत्वपूर्ण मानते हुए तातारखाँ से कहता है—

व्याख्या—लेखक ने हुमायूँ के मुख से इन्सानियत को सर्वश्रेष्ठ कहलवाया है। हुमायूँ मेवाड़ की महारानी कर्मावती की राखी पाकर भाई के फर्ज को बहुत ऊँचा मानता है। उस फर्ज की खातिर वह दिल्ली की सत्ता को भी उपेक्षित कर देता है। क्योंकि संसार में फर्ज और

इन्सानियत का अस्तित्व सदा इतिहास में लिखा रहता है और इस फर्ज की खातिर जान देने वाले इतिहास में अमर हो जाते हैं। सारी दुनियाँ के शासन, सत्ता और अधिकार से बढ़कर इन्सानियत और मुहब्बत की सत्ता सबसे बड़ी है। मानवता की जीत हो और व्यक्ति अपने व्यवहार से लोगों के दिलों पर राज करे, उनकी भलाई के लिए अपना जीवन कुर्बान करे तो उसका नाम बहुत दिनों तक जीवित रहता है। सिकन्दर ने यूनान से भारत तक विजय पताका फहराई थी, उसने अपने बाहुबल और सैन्य बल से सब राजाओं को अपने अधीन किया था किन्तु अपनी सारी आयु युद्धों में झोंककर भी उसकी सत्ता कायम नहीं रह सकी—सब राजपाट नष्ट हो गया। वह केवल आक्रमणकारी के रूप में ही जाना जाता है, जबकि आम आदमी के दिल को जीतने वाले, सच्चाई का पक्ष लेने वाले सदियों बाद भी अमर हैं, उनको प्यार और सम्मान से याद किया जाता है। इन्सानियत के लिए जीने वाले सदा दुनियाँ को सच्चाई का रास्ता दिखाते हैं। हिंसा और घृणा को छोड़कर प्यार और मुहब्बत का संदेश देते हैं। हजरत मोहम्मद ने इन्सान को हर इन्सान से प्यार करने की सीख दी। अतः धन-दौलत से भी बड़ी दौलत इन्सानियत की दौलत है।

विशेष—उपर्युक्त गद्यांश में ‘इन्सानियत’ को सर्वश्रेष्ठ गुण माना गया है। इसमें किसी प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं माना जाता।

हुमायूँ के चरित्र को बहुत ऊँचा उठा दिया है। वह न केवल सच्चा इन्सान और खुदा को मानने वाला है, बल्कि दूसरे धर्मों और दूसरे धर्मों को मानने वालों की भी कद्र करता है। वह सिकन्दर को नहीं, हजरत मुहम्मद को महान् मानता है जो आज भी इन्सानियत के लिए लोगों के दिलों में सम्मान प्राप्त किये हैं।

हुमायूँ के कथन की स्वाभाविकता के लिए उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है।

एकांकी का उद्देश्य हुमायूँ के कथन से बिल्कुल स्पष्ट हो गया है।

(5) “हिन्दुस्तानी ही नहीं, इन्सान हैं। हमें अब दुनियाँ की हर किस्म की तंगदिली के खिलाफ जिहाद करनी चाहिये। हमारा काम भाई के गले पर छुरी चलाना नहीं, भाई को गले लगाना है, भाई को ही नहीं, दुश्मन को भी गले लगाना है। दुनियाँ के हर एक इन्सान को अपने दिल की मुहब्बत के दरिया में डुबो लेना है। बहन कर्मावती ने इसी दरिया के दो बड़े हिस्सों—हिन्दू और मुसलमानों को जिस मुहब्बत के धागे में बाँध दिया है, वह कभी न टूटे, मैं खुदा से यही चाहता हूँ।”

प्रसंग—यह अवतरण हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा लिखित एकांकी ‘राखी’ से उद्धृत किया गया है। इसमें हुमायूँ के चरित्र की उदारता, सदाशयता और मानवता-प्रेम को दर्शाया गया है। वह हिन्दू-मुसलमानों को केवल हिन्दुस्तानी ही नहीं बल्कि इन्सान समझकर संकीर्णता को दूर करने के लिए कहता है—

व्याख्या—हिन्दू और मुसलमानों के नाम से इन्सानों को बाँटकर उनमें शत्रुता का भाव भरना अपराध है, क्योंकि केवल हिन्दुस्तान में रहने के कारण ही वे हिन्दुस्तानी मात्र हों, ऐसा भी नहीं सोचना चाहिए। हर व्यक्ति चाहे वह किसी भी धर्म को मानने वाला हो, सबसे पहले इन्सान है और इन्सान, इन्सान में कोई फर्क नहीं होता। दुनियाँ में भेदभाव की जो संकीर्ण मानसिकता है, जो कटुता है, उसके विरुद्ध आन्दोलन और विद्रोह होना चाहिये। हमें अपने भाइयों के प्रति हिंसा भाव त्यागकर प्रेम भाव बढ़ाना होगा, उन्हें गले लगाना होगा बल्कि दुश्मन से भी दुश्मनी भुलाकर उसे दोस्त बनाना होगा। मैं तो यह चाहता हूँ कि दुनियाँ के हर इन्सान को प्यार की भावना से भर देना है। सारे भेदभाव भुलाकर उन्हें एक मानना है। बहन कर्मावती ने हिन्दू-मुसलमानों के भेद को मिटाकर प्रेम का रिश्ता कायम किया है, सारी धार्मिक दीवारें गिराकर भाई-बहन के पवित्र बंधन में बाँधा है, वह रिश्ता सदा बना रहे, वह पवित्र भावना हमेशा बनी रहे, मैं यही खुदा से दुआ करता हूँ।

विशेष—हुमायूँ के चरित्र की अनेक विशेषताएँ इस कथन से स्पष्ट होती हैं। वह उदार है, सहृदयता है, प्रेम-बन्धन का सम्मानकर्ता है।

हुमायूँ संकीर्ण भेदभाव से ऊपर उठकर सारी दुनियाँ में प्रेम भावना फैलाना चाहता है।

भारतीय संस्कृति का मूल लक्ष्य भी ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की भावना ही है।

हुमायूँ के कथन में लेखक का गाँधीवादी चिन्तन स्पष्ट है। वह अहिंसा और सद्भाव को बढ़ावा देना चाहता है।

लेखक का मुख्य उद्देश्य साम्प्रदायिक सद्भाव है। इस भाव को मुसलमान बादशाह के मुख से कहलाकर एकांकी के उद्देश्य को ज्यादा प्रभावित बना दिया है।

कर्मावती के आह्वान को हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक के रूप में देखा गया है।

कर्मावती द्वारा एक मुसलमान को अपने भाई का दर्जा देना भी कर्मावती के चारित्रिक साहस और उदारता का परिचायक है।

भाषा सरल, रोचक, काव्यात्मक और उर्दू मिश्रित है।

6.1 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. 'राखी' एकांकी की कथा को अपने शब्दों में लिखिये।

उत्तर—हरिकृष्ण प्रेमी ने 'राखी' नामक एकांकी में एक ऐतिहासिक कथानक को आधार बनाया है। मेवाड़ की महारानी कर्मावती अपने पति महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् बड़े संकट में फँस जाती है क्योंकि चित्तौड़गढ़ पर बहादुरशाह आक्रमण कर देता है। उसकी फौज का दबाव चित्तौड़ पर बढ़ता जाता है। पराजय की स्थिति सामने देखकर वह एक साहसिक निर्णय लेती है। सर्वस्व बलिदान की भावना से गढ़ की सभी स्त्रियाँ क्षत्रियों को राखी बाँधकर युद्ध भूमि में भेजती है और सभी स्त्रियाँ स्वयं के लिए जौहर की ज्वाला तैयार करती हैं।

क्षत्रिय जाति अपनी मातृभूमि पर मर-मिटने के लिए सदा तैयार रहती है, क्षत्राणियाँ हँसते-हँसते पुरुषों को युद्ध भूमि में वीरगति हेतु भेजती रहती हैं। वीरता और शौर्य मेवाड़ की आन और शान है। किन्तु शत्रु के सैन्यबल का मुकाबला करने के लिये किसी सबल की सहायता आवश्यक है। राजपूतों की परस्पर फूट से बाहर के लोगों को आक्रमण करने का हौसला मिल जाता है। लेकिन इस विषम परिस्थिति में कर्मावती मुगल बादशाह हुमायूँ को 'राखी' भेजने का प्रस्ताव करती है। वह मुसलमान को 'राखी' की भावना से भाई बनाकर सहायता चाहती है। इस भावना से उसके परिजन चौंकते भी हैं और विरोध भी करते हैं, किन्तु वह न केवल राखी के सांस्कृतिक महत्व और गरिमा का बखान करती है, बल्कि हिन्दू-मुस्लिमों के भेद को मिटाकर हिन्दुस्तानियों की तरह रहने का तर्क भी देती हैं। मुसलमानों को भारत का शत्रु न मानकर भाई के रूप में स्वीकार करना होगा। उनके भ्रातृत्व को मनुष्यत्व पर विश्वास करना होगा।

बिहार में गंगा तट पर हुमायूँ के फौजी डेरे में हुमायूँ और उसके सेनापति हिंदूबेग और तातारखाँ वार्तालाप कर रहे हैं। वे लोग शेरखाँ को परास्त करने के लिए दिल्ली से सैन्य सहायता की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हुमायूँ शेरखाँ की बहादुरी की तारीफ करता है। उसी समय मेवाड़ का दूत हुमायूँ को महारानी कर्मावती की सौगात देता है। हुमायूँ मेवाड़ की तारीफ करते-करते कर्मावती की राखी प्राप्त करके चमत्कृत और भावुक हो उठता है। वह राखी का सम्मान करते हुए कर्मावती को आश्वासन देता है कि मेवाड़ की इज्जत को अपनी इज्जत मानकर वह अवश्य सहायता के लिए आयेगा। उसके सेनापति इस निर्णय का विरोध करते हैं किन्तु हुमायूँ उन्हें कहता है कि राखी के ये छोटे-छोटे धागे दुश्मन को भी मुहब्बत की जंजीरों में जकड़ देते हैं। राखी बहिन की प्रार्थना नहीं, आदेश के समान होती है। मैं यह उदाहरण पेश करना चाहता हूँ कि हिन्दुओं के रीति-रिवाज मुस्लिमों के लिए भी उतने ही पवित्र हैं। हुमायूँ सब शंकाओं के जवाब में कहता है— हिन्दू और गुरालगान राब एक ही खुदा की रांतान हैं। एक राब्बा इंसान रादा राब्बाई का साथ देता है। बहिन का रिश्ता दुनियाँ के सारे सुखों और धन-दौलत से बढ़कर है। वह शेरखाँ को परास्त करने के सारे अवसर छोड़कर कर्मावती की सहायता करने का निर्णय लेता है और चित्तौड़गढ़ की तरफ प्रस्थान करता है किन्तु उसके वहाँ पहुँचने से पूर्व की महारानी कर्मावती 1200 क्षत्राणियों के साथ चिता पर चढ़कर खाक हो चुकी होती है। हुमायूँ उस समाधि स्थल को प्रणाम करता है और मेवाड़ के राजा विक्रमादित्य से प्रार्थना करता है कि मुसलमानों के लिए मन में द्वेष न पाला जाए। मुसलमान हिन्दुओं से प्रेम के महत्व की सीख ले सकते हैं। वस्तुतः हिन्दू-मुस्लिम अलग-अलग नहीं, बरा इंसान हैं। भाई-भाई रो-सफरत को गुलाकर रांकीर्ण गानरिकाता को दूर करना होगा। दोनों वर्ग यदि एक-दूसरे को अपने अधीन करने की भावना को मिटाकर प्रेम से रहें तो एक-दूसरे का सम्मान कर सकते हैं—एकता और सद्भाव बना रह सकता है। शेरखाँ के बढ़ते कदमों और विजय की बात सुनकर भी हुमायूँ बहिन कर्मावती के प्यार और राखी के महत्व को सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मानता है। वह बहिन की चिता पर अपना सिर झुकाता है और अपनी स्वर्गवासी बहिन से क्षमा माँगता है।

प्रश्न-2. 'राखी' एकांकी में प्रस्तुत विचारधारा पर प्रकाश डालते हुए आज की परिस्थितियों में उसकी सार्थकता पर अपने विचार भी प्रकट कीजिए।

उत्तर—'राखी' एकांकी का कथानक ऐतिहासिक प्रतीत होते हुए भी आदर्शवादी और सांस्कृतिक अधिक है। मेवाड़ की राजपूत महारानी द्वारा एक मुगल को राखी भेजकर भाई बनाने की कल्पना दो रूपों में महत्वपूर्ण है। पहला तथ्य तो 'राखी' के महत्व का है, भारतीय संस्कृति, परम्परा और आदर्श की है, राखी के दो धागों में छिपे भावनात्मक गौरव का है और इस प्रतीक द्वारा भाई-बहिन के पवित्र रिश्ते के महत्व का है। यह रिश्ता निःस्वार्थभाव से भाइयों को बहिनों की रक्षा के लिए प्रेरित करता है, संकल्पबद्ध करता है। प्राचीनकाल से ही राखी के महत्व को भारत में महत्वपूर्ण स्थान मिलता रहा है। संसार के सबसे पवित्र और प्रतिबद्ध रिश्तों के रूप में इसे मान्यता मिलती है। संकट के समय, युद्ध में जाते समय अथवा अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर स्त्रियों ने पुरुषों को राखी बाँधकर उन्हें शुभकामनाएँ दी हैं तथा मर्यादा की रक्षा की प्रार्थना की है। 'राखी' एकांकी में लेखक ने कर्मावती की इस प्रेरणा और भावना को महत्व दिया है कि वह अपनी मातृभूमि पर संकट के समय एक सबल व्यक्ति को राखी भेजकर भाई का दर्जा दे और रक्षा के लिए प्रार्थना करे, चाहे वह भाई मुगल ही क्यों न हो,

क्योंकि भावात्मक बन्धन जाति-विजाति से परे होता है। इस अनुरोध की विशेषता यह है कि हुमायूँ ने इस हिन्दू परम्परा और भारतीय नारी की भावना का पूरा सम्मान किया। इस एकांकी में लेखक ने हुमायूँ को बहुत सहृदय और उदार एवं संवेदनशील चित्रित किया है। वह कर्मावती की राखी पाकर भाई-बहिन के रिश्ते की पवित्रता से भावुक हो उठता है और अपने गन्तव्य को छोड़कर मेवाड़ की रक्षा के लिए जाने को तत्पर हो उठता है। अपने दोनों सेनापतियों द्वारा बार-बार मना करने और विरोध करने पर भी उसके निश्चय में कोई अन्तर नहीं आता। वह अपने साथियों को भी तर्क द्वारा अपनी बहिन की रक्षा के लिए तैयार कर लेता है।

दूसरा तथ्य है इस एकांकी में हिन्दू-मुस्लिम मैत्री भाव का। इस मुद्दे को लेखक ने बहुत ही गम्भीरता से उठाया है। सबसे पहले रानी कर्मावती जब हुमायूँ को राखी भेज कर भाई बनाने का प्रस्ताव करती है, तब वह कहती है—‘मुसलमान भी इंसान हैं। उनके भी बहनें होती हैं। सोचो तो बहन, क्या वे मनुष्य नहीं हैं? क्या उनके हृदय नहीं हैं?’

कर्मावती के मुख से लेखक ने मुसलमानों को भारत का निवासी मानकर भाई-भाई की संज्ञा दी है। हुमायूँ के मुख से भी लेखक ने हिन्दू-मुस्लिम एकता और इन्सानियत की बात की है। कर्मावती की राखी पाकर उसके उद्गार हैं—‘मैं दुनियाँ को बता देना चाहता हूँ कि हिन्दुओं के रस्मो-रिवाज मुसलमानों के लिए भी उतने ही प्यारे हैं, उतने ही पाक हैं।’

हुमायूँ हिन्दुओं के धर्म और अवतारों की इज्जत करते हुए उनसे लड़ाई की बात को मिटाना चाहता है। वह इज्जत मुहम्मद की तालीम की इज्जत करते हुए कहता है कि धन दौलत का ख्याल छोड़कर इन्सानियत की सल्लतनत कायम करना ही सबसे अच्छा है।

वस्तुतः लेखक का उद्देश्य हिन्दू-मुसलमान नामों के भेद में न पड़कर हिन्दुस्तानी को महत्त्व देना है। इससे भी आगे बढ़कर इन्सानियत की बात करना है। हुमायूँ कहता है—‘हमें अब दुनियाँ की हर किस्म की तंगदिली के खिलाफ जिहाद करना चाहिये। हमारा काम भाई के गले पर छुरी चलाना नहीं, भाई को गले लगाना है, भाई को ही नहीं, दुश्मन को भी गले लगाना है। दुनियाँ के हर एक इंसान को अपने दिल की मुहब्बत के दरिया में डुबो लेना है।’

मानवता और हिन्दू-मुस्लिम एकता ही वह मुख्य लक्ष्य अथवा उद्देश्य है, जिसने इस एकांकी को महत्वपूर्ण बना दिया है। वर्तमान सन्दर्भों में न तो भाई-बहिन के रिश्ते में वह भावात्मक लगाव रह गया है न हिन्दू-मुस्लिमों में भाई-चारा। अतः वर्तमान परिस्थितियों में यह एकांकी बहुत ही सुन्दर दृश्य देता है। साहित्य के माध्यम से इन्सानियत और साम्प्रदायिक सद्भाव की भावना के विकास के कारण इस एकांकी की विचारधारा अधिक सार्थक प्रतीत होती है।

प्रश्न-3. हुमायूँ का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—‘राखी’ नामक एकांकी में हुमायूँ का चरित्र अनेक विशेषताओं से युक्त है। मुगल बादशाह हुमायूँ आरम्भ से अन्त तक एक नेक और सच्चे इन्सान के रूप में चित्रित किया गया है। इतिहास में भी उसकी छवि एक उदार शासक की रही है। हरिकृष्ण प्रेमी ने ‘राखी’ एकांकी में हुमायूँ का चरित्र विशेष आग्रह से लिखा है। इस एकांकी में कर्मावती से भी अधिक हुमायूँ का चरित्र विशेष आग्रह से लिखा है। इस एकांकी में कर्मावती से भी अधिक हुमायूँ के चरित्र का विस्तार है। लेखक ने अपने सारे आदर्श और उद्देश्य हुमायूँ के मुख से ही प्रकट किये हैं। इसलिए ये आदर्श और उद्देश्य अधिक प्रभावी बन पड़े हैं। हुमायूँ के चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

उदार हृदय—हुमायूँ का पाठक से प्रथम परिचय उदार रूप में होता है। वह खुले मन से सबकी प्रशंसा करता है, चाहे वह उसका शत्रु ही क्यों न हो। वह जिस शत्रु का मुकाबला करने जगह-जगह भटक रहा है, उसी की प्रशंसा अपने सेनापतियों के सामने करता है—

‘शेरखाँ की बहादुरी इन लड़ाइयों में साफ रोशन हो चुकी है। ऐसे दिलेर दुश्मन से लोहा लेना ही फख की बात है।’

बाद में मेवाड़ से दूत आने की खबर सुनकर वह राजपूतों की जी खोलकर प्रशंसा करता है—

‘राणा साँगा। उन्हें तो खुदा ने फौलाद से बनाया था। उनकी तिरछी नजर कयामत का पैगाम थी; उसकी उदारता किसी को भी दुश्मन मानने के लिए तैयार नहीं है। वह बड़ी उदारता से कहता है—

‘जिन्हें हम दुश्मन समझते हैं, वे सब हमारे भाई हैं। हम एक ही खुदा के बेटे हैं।’

कहीं-कहीं हुमायूँ की यह उदारता स्वाभाविक मानव-धर्म की सीमाएँ लाँघ जाती है। वह स्वयं सेना लेकर शत्रु को परास्त करने के लिए भटक रहा था, ऐसे में शत्रु को भाई और एक ही खुदा के बेटे कहना विचित्र लगता है। फिर भी पाठक और दर्शक के सामने हुमायूँ की एक छवि तो बन ही जाती है।

भावुक हृदय—हुमायूँ एक बहुत नरम दिल और भावुक इंसान है। वह कर्मावती की राखी पाकर गद्गद हो उठता है। वह अपने सेनापति से बड़ी काव्यात्मक शैली में कहता है—

‘सचमुच हिंदूबेग, उन्होंने जादू का पिटारा भेजा है। मेरे सूने आसमान में उन्होंने मुहब्बत का चाँद चमकाया है। उन्होंने मुझे राखी भेजी है, मुझे अपना भाई बनाया है। (दूत से) बहन कर्मावती से कहना, हुमायूँ तुम्हारी माँ के पेट से पैदा न हुआ तो क्या, वह तुम्हारे सगे भाई से भी बढ़कर है। कह देना—मेवाड़ की इज्जत, मेरी इज्जत है, जाओ।’

हुमायूँ यह सोचकर ही आश्चर्यचकित रह जाता है कि कोई क्षत्राणी अपने पति के शत्रु से भी मदद माँग सकती है और उसे भाई जैसा महत्वपूर्ण दर्जा दे सकती है। वह जैसे मुग्ध और आत्मविस्मृत होकर कह उठता है—‘अपने खाविंद के दुश्मन से मदद माँगना, उसे भाई बनाना, उसे अपने यकीन का सबसे पाक और सबसे प्यारा हिस्सा देना, कम फराख दिली नहीं। बहन का प्यार! हाय, वह मेरे लिए हमेशा ही सपने की चीज रहा है।’

वह बेहद भावुक होकर भाई-बहिन के प्यार को अमृत तुल्य बतलाता है और उस प्यार की अनुभूति के लिए व्याकुल हो उठता है।

मानवता प्रेमी—हुमायूँ जितना भावुक है, उतना ही नेक और आदर्शवादी भी। वह इंसानियत को सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मानता है। जब उसका सेनापति तातारख़ाँ दिल्ली की सल्तनत कायम रखने की चिंता व्यक्त करता है, तब वह वायदे और वचन को इंसानियत की भावना से देखता है और स्वार्थ से परे वह इंसानियत को अहमियत देते हुए कहता है—‘सारी दुनियाँ की सल्तनत से भी बढ़कर वह सल्तनत है, वह है इंसानियत की सल्तनत, मुहब्बत की सल्तनत। हजरत मुहम्मद जिन्होंने इंसान को सारी दुनियाँ से मुहब्बत करने की तालीम दी, आज दिलों के आसमान में सितारे की तरह चमक रहे हैं। अभी तक वह गोया हमें इशारे से जता रहे हैं कि ‘धन-दौलत का ख्याल छोड़ और इंसानियत की सल्तनत कायम कर।’ हुमायूँ खुदापरस्त इन्सान है। दुनियाँ के दिलों पर राज करने के लिए पैगम्बरों के संदेशों को काम में लेना जरूरी है। भौतिकता के पीछे भागने से बेहतर है दुनियाँ में नाम कमाना और अच्छे काम करना। हुमायूँ दार्शनिक अन्दाज में इंसानियत की सल्तनत की बात करता है।’

साम्प्रदायिक-सद्भाव का इच्छुक—हुमायूँ हिन्दू-मुसलमान के भेद को नहीं मानता। वह धर्म के नाम पर इंसान को किसी जाति या वर्ग में नहीं बाँटना चाहता। यद्यपि वह स्वयं एक सच्चा मुसलमान है और पैगम्बर के संदेश को पूरा महत्व देता है किन्तु अपने धर्म का सम्मान करते हुए भी वह हिन्दू धर्म और संस्कृति के प्रति भी उदार है। वह कहता है—‘मैं दुनियाँ को बता देना चाहता हूँ कि हिन्दुओं के रस्मोरिवाज मुसलमानों के लिए भी उतने ही प्यारे हैं, उतने ही पाक हैं।’ सब इंसान उस एक ही परवरदिगार की औलाद हैं। हिन्दुओं के अवतार हों या मुस्लिमों के पैगम्बर—सबने सबको एक बराबर माना है। मेवाड़ की महारानी कर्मावती ने राखी के धागों से हिन्दू-मुसलमानों को प्रेम और सद्भाव के मजबूत धागों में बाँधा है। हुमायूँ इसकी प्रशंसा करते हुए कहता है—‘बहिन कर्मावती ने इसी दरिया के दो बड़े हिस्सों, हिन्दू और मुसलमानों को जिस मुहब्बत के धागे में बाँध दिया है, वह कभी न टूटे, मैं खुदा से यही चाहता हूँ।’

संकल्प निष्ठ—हुमायूँ के चरित्र की बड़ी विशेषता यह है कि वह अच्छाई और सच्चाई का पक्षधर है और एक बार निर्णय लेने के बाद वह बड़ी से बड़ी कुर्बानी के लिए भी तैयार हो जाता है। कर्मावती की राखी स्वीकार करने के बाद वह अपने पुत्र शेरख़ाँ को छोड़कर मेवाड़ की तरफ कूच कर देता है। उसके सामने दिल्ली की सल्तनत को खोने का भय था, किन्तु अपनी सीमित सेना के साथ भी वह मेवाड़ की ओर ही जाने का निश्चय करता है—‘राखी आ जाने के बाद भी क्या रोच विचार किया जा सकता है? यह तो आग में कूद पड़ने का न्यौता है। हिन्दुस्तान की तबाही ख कह रही है कि राखी के धागों ने हजारों कुर्बानियाँ कराई हैं। मैं दुनियाँ को बता देना चाहता हूँ कि हिन्दुओं के रस्मोरिवाज मुसलमानों के लिए भी उतने ही प्यारे हैं, उतने ही पाक हैं।’

‘राखी’ एकांकी के लेखक हरिकृष्ण प्रेमी ने हुमायूँ के चरित्र को बहुत उदार, सच्चाई पसन्द मुसलमान, प्रेम और मैत्री के इच्छुक इंसान के रूप में चित्रित किया है। वह बहुत विनम्र और भावनाप्रद व्यक्ति है। मेवाड़ पहुँचने पर उसे पता चलता है कि कर्मावती जौहर की ज्वाला में शहीद हो गई है तो वह शोक पिछल हो उठता है। वह पिता की खाक के सामने नतमस्तक होकर कह उठता है—‘यह खाक वतन के लिए जान देने वालों के लिए दुनियाँ की सबसे बड़ी नियामत है। यह खाक इंसानियत की आँखों का अंजन है, इसे जो सर-आँखों पर लगायेगा, उस पर हमेशा खुदा की मेहरबानी का साया रहेगा।’

6.2 सारांश

इस प्रकार यह चरित्र एकांकी का प्रमुख पात्र है और लेखक ने छोटे-छोटे वाक्यों और भावना प्रधान शैली में इस चरित्र को बहुत सार्थक बनाया है।

इकाई-7 : आकुलता

(विजयसिंह पथिक)

संरचना

- 7.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 7.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 7.2 सारांश

7.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “कर्महीन के उद्योग की तरह, निर्मल हृदय की पवित्रता की तरह, स्वार्थियों की मित्रता की तरह मेरे तो सब प्रयत्न निष्फल होते जाते हैं। एक तार जोड़ता हूँ तो दो और टूट जाते हैं, एक ओर दीवार खड़ी करता हूँ तो दूसरी तरफ की गिर पड़ती है, खेत जोतता हूँ, धान्य बोता हूँ, रात-रात भर जागकर रखवाली करता हूँ, किन्तु जब धान पकता है तभी तुषार पड़ जाता है। धान की पूरी फसल जल-भुनकर खाक हो जाती है।”

प्रसंग—उपर्युक्त गद्यांश ‘आकुलता’ नामक गद्य काव्य से लिया गया है। इसके लेखक विजयसिंह पथिक हैं। इसमें लेखक ने काव्यात्मक शैली में भाव विह्वल होकर मातृभूमि की दुर्दशा पर अपनी वेदना व्यक्त करते हुए कहा है—

व्याख्या—‘हे माँ! तुम्हारी स्थिति सुधारने के लिए मैं चिन्तित हूँ। कभी आशा और कभी निराशा में मेरा मन डूबा रहता है। मैं जितने भी सपने तुम्हारे सुन्दर भविष्य के देखता हूँ, वे सब उसी तरह व्यर्थ हो जाते हैं, जैसे कोई निकम्मा व्यक्ति बेमन और अकुशलता से कोई कार्य करे, जिस प्रकार किसी निष्पाप हृदय की पवित्रता बहुत देर तक नहीं रहती, जिस प्रकार अपना हित साधने वाले दीर्घ जीवी मित्रता नहीं रख पाते और उनका मैत्री भाव अस्थायी होता है, उसी तरह मेरे द्वारा सोचे और किये गये सभी प्रयत्न भी बेकार हो रहे हैं। मैं आपस के भेद-भाव मिटाकर स्नेह-सूत्र जोड़ने का प्रयत्न करता हूँ तो दूसरी जगह अनेक भेद-भाव उत्पन्न हो जाते हैं। एक तरफ सुरक्षा का उपाय करता हूँ तो दूसरी ओर असुरक्षा उत्पन्न हो जाती है।’

हे मातृभूमि! तुम्हारी समृद्धि और खुशहाली के लिए मैं उत्पादन कार्यों को बढ़ावा देता हूँ। खेती के रूप में अनाज की वृद्धि करना चाहता हूँ। पूरे परिश्रम से किसान उसकी रखवाली करता है। भविष्य के सपने देखता है। जब अनाज पक जाता है, एक उम्मीद बँध जाती है, तभी प्रकृति के प्रकोप के रूप में पाला पड़ जाता है और पूरी फसल नष्ट हो जाती है। इस प्रकार दैविक, भौतिक, प्राकृतिक विपदाएँ भी उन सपनों को नष्ट कर डालती हैं।

विशेष—लेखक ने मातृ-भूमि के लिए प्रतीकात्मक रूप से चिन्ता व्यक्त की है।

देश की पराधीनता, आर्थिक दासता, गरीबी, वर्ग, जाति आदि की दीवारें खोखला किये जा रही हैं, अतः मातृ-भूमि भारत माता के रूप में दीन-हीन बनी हुई है।

इस माँ की दशा सुधारने के लिए जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, वे सब परस्पर की फूट और आलस्य से निष्फल हो रहे हैं।

किसान अपने कठोर परिश्रम से देश को हरा-भरा रखते हैं किन्तु उन्हें भी प्रकृति का प्रकोप सहना पड़ता है।

यहाँ खेती का अभिप्राय अन्न उत्पादन के अतिरिक्त देश की समृद्धि के अन्य उत्पादन कार्यों से भी है।

लेखक की पीड़ा ‘मैं’ के रूप में व्यक्तिवाचक होते हुए भी उन सभी की पीड़ा है, जो देश की दुर्दशा से आहत हैं।

यह गद्यांश कविता की तरह अनेक अर्थों, प्रतीकों और व्यंजनाओं को प्रकट करता है। अतः स्पष्ट अर्थ की प्रतीति में कठिनाई होती है।

(2) “ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे तुम्हारे अपमानों का अनुभव ही नहीं करती, मानो उन्हें अपनी गुलामी अखरती ही नहीं, मानो अपने साथ हुए मनुष्यत्व से कोई सम्बन्ध ही नहीं, सहृदयता, देश प्रेम, धर्म-प्रेम अब मानो उनसे विदा हो चुके हैं, उन्हें अगर चिन्ता है तो रुपये की, अगर किसी से प्रेम है तो अपने पेट से, उनकी चाह पलाश के फूलों की तरह है जो किसी देवता पर नहीं चढ़ाये जाते, न मनुष्य के गले का हार ही बन सकते हैं। कितने तो उल्टे अपने साथियों को हानि पहुँचाना ही अपना कर्तव्य समझते हैं।”

प्रसंग—लेखक विजयसिंह पथिक द्वारा लिखित गद्य काव्य 'आकुलता' से उपर्युक्त गद्यांश उद्धृत किया गया है। इसमें लेखक ने देशवासियों की कायरता, अकर्मण्यता और स्वार्थ भावना से क्षुब्ध होकर देश की दुर्दशा पर अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहा है—

‘हे मातृभूमि! तुम्हारी करोड़ों सन्तानें हैं, किन्तु उनका स्वाभिमान जैसे कहीं खो गया है, वे परतन्त्रता में ही सन्तोष का अनुभव करने लगी हैं। उन्हें देश की स्वाधीनता की पहचान ही नहीं। उनकी बुद्धि जड़ हो चुकी है। मनुष्यत्व की चेतना और मानव जन्म की सार्थकता का एहसास ही जैसे मर चुका है और ऐसी स्थिति मानवता के लिए बहुत दुःखद होती है। एक-दूसरे के लिए सुख-दुःख की संवेदना, कोमल भावना समाप्त हो चुकी है। देश-प्रेम और धर्म के प्रति कर्तव्य-बोध अब उनके मन को प्रभावित नहीं करते। राष्ट्रीय भावना अब उनके लिए कोई मायने नहीं रखी, बस अब सारी चिन्ता धन कमाने की है, रुपये की है, भौतिक सुविधाओं की है। उन्हें अपनी भूख की चिन्ता है। अर्थात् वे केवल आत्म-केन्द्रित हो गए हैं। उनकी इच्छाएँ पलाश के फूलों की तरह चटकीली हैं, स्वयं के सन्तोष और अस्थायी आनन्द के लिए किन्तु पलाश के फूल जिस प्रकार देवता पर नहीं चढ़ाये जाते, न उन्हें माला में ही गुँथा जा सकता है अर्थात् किसी ऊँचे और बड़े उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकती। ऐसे आत्म-केन्द्रित मनुष्य अपने संगी-साथियों की भी कोई सहायता नहीं कर सकते, ईर्ष्या, द्वेष में फँसकर दूसरों को हानि पहुँचाने में आनन्द का अनुभव करते हैं।

विशेष—लेखक ने कायरों और स्वार्थी व्यक्तियों की प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया है, जिनके लिए देश-प्रेम, कर्तव्य बोध आदि के कोई अर्थ नहीं। लेखक के शब्दों में देश के प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त होती है।

लेखक की भाषा सरल, सुबोध और काव्यात्मक है।

(3) ‘ऐसा प्रतीत होता है कि थोड़े समय की पहुँच के भीतर इस समुद्र का किनारा ही नहीं, इस नदी का मानो कूल है ही नहीं, इस मरुस्थल का या तो अन्त है ही नहीं। ऐसा जान पड़ता है मानो इस समुद्र का पानी ही जम गया है, न अब इसमें नौका चल सकती है, न ही तैरा जा सकता है, न अब इसमें उत्साह की लहरें ही उठती हैं, न ही शान्तिमय चन्द्र का प्रतिबिम्ब ही इसमें पड़ता है। इस नदी में तो माना मगरमच्छ ही भरे पड़े हैं, इस मरुस्थल में मानो स्थान-स्थान पर ज्वालामुखी ही दबे पड़े हैं और जो अपनों को ही भस्म करते हैं।’

प्रसंग—उपर्युक्त प्रसंग विजयसिंह पथिक द्वारा रचित 'आकुलता' नामक गद्य काव्य से उद्धृत किया गया है। इस गद्यांश में लेखक ने देशवासियों की देश के प्रति संवेदनहीनता के प्रति दुःख व्यक्त करते हुए लिखा है—

व्याख्या—देश के लोग अपनी मातृ-भूमि के प्रति अपने सारे लगाव और दायित्वों को भूलते जा रहे हैं। लेखक ने अपने समाज के अन्तर्विरोधों और आन्तरिक खोखलेपन के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखा है कि छुआछूत में फँसे हुए लोग, आपस में फूट डालने वाले किस प्रकार देश का भला कर सकते हैं। अपने उद्देश्यों और मानवता से भटक कर लोग किस प्रकार एकता की बात सोच सकते हैं। ऐसा लगता है, ये स्थितियाँ प्रेम और सौहार्द के सागर को निगल गई हैं, पूरी भावनाएँ बंजर हो गई हैं, पूरा देश मानो रेगिस्तान की तरह सूखा हो गया है, इस देश रूपी समुद्र में प्रेमरूपी पानी रहा ही नहीं, अब इसमें कोई भी संचार नहीं हो सकता, न कोई नई उमंग उठती है, न उत्साह से किसी पुनर्निर्माण का मार्ग सिद्ध होता है, न ही मन की शान्ति खोजी जा सकती है। बस—एक भयावह सूनापन और निःसंगता भर गई है, मानो दुर्भाग्यवशों के मगरमच्छ ही यहाँ रह गए हैं अथवा इस सूनेपन में आक्रोश की आग भर गई है तो भीतर ही भीतर सुलग कर सारे रस की सारी आनन्द चेतना को सोख रही है।

विशेष—पूरे गद्यांश में लेखक ने देश की स्थिति का एक रूपक बाँधा है। भावना हीन नदी या समुद्र मरुस्थल की भाँति है। स्थायी और द्वेष मगरमच्छों और ज्वालामुखियों की तरह है।

भाषा प्रतीकात्मकता, काव्यात्मकता के कारण बोझिल और दुरुह हो गई है।

आवेग प्रधान होने के कारण पाठक को बात के मर्म तक पहुँचने में कठिनाई होती है।

भावुकता अधिक है।

(4) “यदि इस पापी मानव संसार में तुम्हारे लिये कोई पवित्र स्थान न मिलता तो मैं तुम्हें लेकर हिमालय के सर्वोच्च शिखर पर जा बैठता, वहीं तुम्हारी गोद में बैठकर, माँ! स्वतंत्रता की वीणा बजाता और कभी तुम्हें अपने शीश पर उठाये भक्ति भावोन्मत्त हो नाचता-गाता, अपनी मस्ती से सारी तराई की वनश्री को मस्त बनाता और वन्य कुसुमों के कण्ठ से कण्ठ मिलाकर वहीं तुम्हारी स्तुति से हिमालय के विस्तृत प्रांगण को गुंजाता.....लेकिन यह भी नहीं किया, उस विधाता ने, मुझे और तुम्हें तदाकार ही क्यों न बनाया, हमारे अलग-अलग शरीर क्यों बनाये.....यदि ऐसा होता तो फिर जो गति माँ! तुम्हारी होती वही मेरी भी होती, जो दुःख तुम्हें होता, वही मुझे भी होता।”

प्रसंग—उपर्युक्त अवतरण 'आकुलता' नामक गद्य काव्य से लिया गया है। इसके लेखक विजयसिंह पथिक हैं। इस गद्यांश में लेखक ने भारत माता के प्रति अपनी भक्ति, अपनी भावनाओं को हर्ष और पीड़ा के भावों से भरकर प्रकट किया है—

व्याख्या—हे भारत माता! यह संसार बहुत पापों और दुर्गुणों से भर गया है, लेकिन मैं चाहता हूँ कि इस संसार में पवित्र धरती पर ही अपना गौरव प्राप्त करो। यदि यहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान न होता तो मेरी यही कामना होती कि तुम्हें हिमालय के उच्च श्रृंग का गौरव प्राप्त होता.....मैं तुम्हारी शरण में स्वयं को समर्पित कर 'स्वतन्त्रता' का स्वर चारों दिशाओं में भर देता, तुम्हारी भक्ति में लीन होकर तुम्हारे गौरव को मस्तक पर वहन करता। तुम्हारे प्रति वन्दना के स्वरों को मैं कण-कण में भर देता.....वनों में, घाटियों में तुम्हारी शोभा भर जाती और जिस प्रकार वन्य कुसुमों की महक चारों ओर भर जाती है, उसी प्रकार मातृभूमि के प्रति भक्ति के स्वर चारों ओर वन्य समीर की भाँति भर जाते और हिमालय की ऊँचाई तक तुम्हारा गौरव गान गूँज उठता किन्तु मुझे दुःख है कि ईश्वर ने मुझे तुम्हारी ऊँचाई और भावना के अनुरूप नहीं बनाया। हमें अलग-अलग अस्तित्व दिया। यदि ऐसा नहीं होता तो हे माँ! तुम्हारे दुःख-सुख मेरे दुःख-सुख होते और मैं तुम्हारे ही अस्तित्व में विलीन हो जाता।

विशेष—यह गद्यांश अतिशय भावुकता का उदाहरण है। लेखक की देश-प्रेम की भावना और भारत माता के गौरव के प्रति भक्ति भावना अनुपम है।

वह राष्ट्र प्रेम के भाव को वन, पर्वत, सभी दिशाओं में गुँजा देना चाहता है।

लेखक की आदर्श भावना और यथार्थ का कठोर स्वरूप उसे दुःखी कर जाता है।

वह स्वयं के रूप में देश के प्रत्येक व्यक्ति को भारत माता के पुत्र के रूप में देखता है और हर व्यक्ति को मानो यह अहसास दिला देना चाहता है कि उसे भारत माँ के सुख-दुःख से एकाकार हो जाना चाहिए।

गद्यांश की शैली भावुकता युक्त एवं काव्यात्मक है।

वर्तमान युग में देश प्रेम की यह अटूट भावना दिखाई नहीं देती। अतः यह लेखक अधिक प्रेरणादायी बन गया है।

7.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. लेखक ने किस आकुलता की ओर संकेत किया है? अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर—'आकुलता' पाठ के लेखक विजयसिंह पथिक हैं। उन्होंने अपने मन के भावों, आवेगों और एक बेचैनी को एक गद्य काव्यात्मक निबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया है। परतन्त्र भारत की दुर्दशा, भारत माता के प्रतीक के रूप में भारतीयों की पीड़ा, विवशता और कायरता को देखा और उससे मुक्ति पाने की छटपटाहट को अनुभव किया है। लेखक व्याकुल होकर भारत माता को सम्बोधित करके उसके बन्धनों को तोड़ने की बात करता है, उसे स्वतन्त्र देखने की कामना करता है, भारत की गरीबी दूर होने का सपना देखता है। जिस स्वतन्त्रता के लिए लाखों लोगों ने कुर्बानियाँ दी हैं अपना सब कुछ त्याग दिया है, किन्तु उसके बाद भी भारत माँ का अपमान कम नहीं हुआ। यहाँ के गरीबों और स्त्रियों का अपमान बढ़ता जा रहा है। हे भारत माता! तुम्हारा यह जर्जर स्वरूप, तुम्हारे आँसू और विदेशी वस्तुओं की बढ़ोतरी मुझे व्याकुल किये जा रहे हैं। निरन्तर प्रयत्न करने पर भी तुम्हें स्वतन्त्र देखने की तमन्ना बर्माहिन के कार्य की तरह, स्वार्थियों की मित्रता की तरह बनकर रह गई है। ऐसा लगता है जैसे देश को स्वतन्त्र करने की कोशिश वैसी ही है, जैसे कोई किसान खेत जोतता है, रखवाली करता है और फसल को पाला मार जाता है।

देश की खातिर अनेक आन्दोलन, विचारधाराएँ चल रही हैं, कहीं कोई ऊँची कुर्सी हथियाना चाहता है, कहीं दुःआदृत के झगड़े शुरू हो जाते हैं, कहीं हिन्दु-मुसलमान के भेदभाव शुरू हो जाते हैं। सभी स्वार्थी में लिप्त हैं और अपनी बुद्धि और प्रतिभा में सबसे आगे रहने पर भी यहाँ के लोग अपने कर्तव्यों से विमुख हैं।

कई बार तो ऐसा लगता है, जैसे सब जगह निराशा छा गई है। अब कोई उत्साह, कोई उमंग नहीं रह गई है। पूरे देशवासी निराशा के घने जंगल में खो गये हैं। यदि सभी देशवासी अपनी भारत माता को स्वतन्त्र कराने में जुट जाते तो यहाँ उपवन हो जाता और इस देश की स्थिति सुधर चुकी होती। आशा का संचार होता तो राष्ट्रीयता यहाँ सबके हृदयों में कूट-कूट कर भर जाती। अकेले कुछ महापुरुषों के दम पर ही तो सारा कार्य नहीं हो सकता।

हे भारत माता! यदि तुम अमूल्य मणि या मोती अथवा रत्न होती तो मैं तुम्हें प्रकृति की गोद में किसी पवित्र स्थान पर ले जाता, जहाँ चारों ओर स्वतन्त्रता के गीत गाये जाते, तुम स्वाधीन होती, तुम्हारी जय-जयकर होती। अपने हृदय में तुम्हारे गौरवमय रूप को भर लेता। कोई विदेशी तुम्हें यों न लूटता, न तुम्हारा स्पर्श करने का साहस करता। इस पापी संसार से उठाकर मैं तुम्हें हिमालय की ऊँची चोटी पर बिठाता—प्रकृति का पवित्र रूप तुम्हारा अभिनन्दन करता।

किन्तु देश के गौरव को भस्म करने वाली धन लिप्सा ने, व्यापारी बनकर आये लुटेरों ने, अत्याचारियों के घातों ने हृदय को चूर-चूर कर दिया है। संसार के सामने इस बात की लज्जा झेलनी पड़ती है कि देशवासियों ने देश को स्वतन्त्र करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। भारत माता के पुत्र कुमुत्र हो गये हैं, माता की दुर्दशा की उन्हें कोई चिन्ता नहीं है।

हे माँ! तुम्हें स्वतन्त्र न करवा पाने की लज्जा मुझे कुंठित किये दे रही है। भारतवासी अपना कर्तव्य पालन नहीं कर पा रहे हैं। संसार के सामने मस्तक झुका जा रहा है। ये भारतवासी अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र करवाने की बजाय परस्पर लड़े जा रहे हैं, पशुवत् छोटे-छोटे स्वार्थों से घिरे हुए हैं। यह पीड़ा बहुत गहरी है।

प्रश्न-2. 'मरने के बाद भी ये बातें मुझे चिंता पर चैन से चिर निद्रा में सोने देंगी क्या'—कथन से लेखक का क्या आशय है—स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—लेखक विजयसिंह पथिक ने मातृ-भूमि के प्रति विशेष लगाव और भावना को 'आकुलता' नामक निबन्ध में प्रकट किया है। निबन्ध के शीर्षक के अनुकूल उनके भावों में भावुकता और बेचैनी है।

लेखक भारत माता को 'माँ' सम्बोधन से पुकारता है, उसकी परतन्त्रता और दरिद्रता से व्याकुल होता है। देशवासियों की दीन-हीन और विवश दशा से पीड़ित होता है। उसकी इच्छा है कि देश स्वतन्त्र और सम्पन्न हो, यहाँ गरीबी का नामोनिशान न हो, लेकिन आजादी की लम्बी लड़ाई भी जब निष्फल होती दिखाई देती है तो वह थोड़ी देर के लिए निराश हो जाता है और फिर पीड़ा के अनेक रूप दुःख देने लगते हैं। पूँजीपतियों और सत्तावानों के शोषण, विदेशियों के अधिकार और अभियान, स्वदेशवासियों के अपमान लेखक को भीतर तक झकझोर डालते हैं।

लेखक को भारत माता का जर्जरित और जीण-क्षीण स्वरूप व्याकुल कर जाता है अर्थात् देश में शोषण, अन्याय, अत्याचार, लूट, बेईमानी ने मानो भारत माँ को कंकाल मात्र बना दिया है। लेखक को महसूस होता है कि भारत माँ की आँखों से निरन्तर आँसुओं की जो धार बह रही है वह इतनी करुण है कि पत्थर हृदय भी पसीज जाये। ऐसी स्थिति में क्या किसी भी भारतीय का हृदय कठोर हो सकता है? यदि वे स्थितियाँ हैं, जो एक संवेदनशील भारतवासी को भीतर तक मथ देती हैं और अपनी बेबसी को याद दिलाता हुआ वह सोचने लगता है कि उसे मृत्यु के पश्चात् भी अपने देश की दुर्दशा के कारण चैन नहीं मिलेगा।

लेखक की यह व्याकुलता सिर्फ अपने लिए ही नहीं, प्रत्येक देशवासी की मजबूरी का प्रतीक है, क्योंकि देशवासी एक लम्बे अरसे से विदेशियों को खदड़ने में लगे हुए थे। मगर वे लोग हर तरह से देश को लूट रहे थे, अपनी कूटनीति से देशवासियों में फूट डाल रहे थे।

लेखक ने देशवासियों के प्रयत्नों और आशाओं के विषय में बताते हुए कहा है कि थोड़ी-सी उम्मीद बँधती है, अखबारों में खबरें छपती हैं, थोड़ा-सा जोश दिखाई देता है और फिर सब ठण्ठ हो जाता है। कुछ लोग बड़े-बड़े सिद्धान्तों की बातें करते हैं, कुछ स्वार्थों में लिप्त हो जाते हैं, कुछ परिवर्तन का शोर करते हैं। प्रखर बुद्धि और प्रतिभा के होते हुए भी अपने कर्तव्य के प्रति सजग नहीं।

लेखक ने न केवल अपनी चिंता और पीड़ा का बयान किया है, बल्कि देशवासियों की आपसी फूट तथा क्रांति और बलिदान के नाम पर स्वार्थों के पोषण की भी बात की है। देश पर मर मिटने वाले महापुरुषों और शहीदों की चर्चा की है। उसका बस चलता तो भारत माता को मणि-मुक्ता की तरह शीश कर धारण किये हिमालय की पवित्र धरती पर ले जाता। देश को स्वतन्त्र देखने की ललक उसे बार-बार भावुक कर जाती है। मानव जन्म धारण करके भी अपनी मातृभूमि की रक्षा न कर पाने का दुःख लेखक को बार-बार सताता है। यह अपमान केवल उसका नहीं है, बल्कि संसार के सामने पूरे देशवासियों का है। विदेशियों ने देश को अपने व्यापार का बाजार बनाकर लूटने का साधन बना लिया है और देशवासी बिल्कुल नालायक बेटों की तरह उसकी रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। आपस में लड़ रहे हैं, एक-दूसरे के लिए बाधाएँ खड़ी कर रहे हैं। इसी कारण लेखक ने मरने के बाद भी अपनी चिंता व्यक्त की है।

प्रश्न-3. लेखक विजयसिंह पथिक की भाषा एवं शैली का परिचय सोदाहरण दीजिए।

उत्तर—विजयसिंह पथिक का निबन्ध 'आकुलता' एक गद्यकाव्य है। भावुकता, कल्पना, रोमानियत, आदर्शवाद और प्रतीकात्मकता आदि से रचा-बसा यह निबन्ध परतन्त्र देश की स्थिति का मार्मिक चित्रण है। लेखक ने अपनी अनुभूतियों को शब्द दिये हैं, अभिव्यक्ति दी है। भाषा चूँकि मनुष्य की सोच और कार्य व्यापार को प्रकट करने का सर्वाधिक सशक्त साधन है, साथ ही भाषा का चुनाव और प्रस्तुत करने का ढंग उसके व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है। अतः लेखक की संवेदना प्रयोजन और कल्पना से भाषा सीधे जुड़ी होती है।

विजयसिंह पथिक की भाषा न केवल उनके प्रयोजन और संवेदना को पुष्ट करती है बल्कि उसके युग और परिवेश को भी दर्शाती है। इनकी भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

संवेदनशील गद्य—विजयसिंह पथिक की भाषा संवेदना और करुणा के भावों से ओत-प्रोत है। 'आकुलता' नामक निबन्ध गद्यकाव्य का सटीक उदाहरण है। राष्ट्रीयता और देश प्रेम के भावों को लेखक ने मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। देश की सामाजिक, राजनैतिक स्थिति का चित्र लेखक ने भावात्मक शब्दों में प्रकट किया है। लेखक के संवेदनशील गद्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है—'तुम्हारे ऊपर प्रत्येक विदेशी का ईश्वर का प्रतिनिधि बनकर आना, तुम्हारे धन-वैभव पर उसका प्रकृति अधिकारी बन हमला करना और तुम्हारी संतानें जिस विदेश में जाये, उसे कुत्ते की तरह दुरदुराना, उसे लात मारकर गेंद की तरह ठुकराना इस स्मृति-पटल से धोया जा सकेगा क्या?'

लेखक की भावुकता इन शब्दों में कथ्य की संवेदना को बखूबी अभिव्यक्त करती है।

काव्यात्मकता—भाषा का अपना मिजाज और अभिव्यक्ति होती है, लेकिन प्रत्येक लेखक के व्यक्तित्व की पहचान भी उसकी भाषा से होती है। प्रायः कवि हृदय कोमल और आदर्शवादी होता है। एक आदर्शवादी जीवन के महान् उद्देश्यों के लिए चिन्तित होता है। वह अपने परिवेश और समाज की उपलब्धियों के साथ दुर्बलताओं को भी देखता है, उनकी छानबीन और पड़ताल करता है। 'आकुलता' निबन्ध के लेखक ने पराधीन देश की स्थिति को काव्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त करते हुए लिखा है—'ऐसा प्रतीत होता है कि थोड़े समय की पहुँच के भीतर इस समुद्र का किनारा ही नहीं। इस नदी का मानो कूल है ही नहीं, इस मरुस्थल का या तो अंत है ही नहीं। ऐसा जान पड़ता है, मानो इस समुद्र का पानी ही जम गया है, न अब इसमें नौका चल सकती है, न ही तैरा जा सकता है, न अब इसमें उत्साह की लहरें ही उठती हैं, न ही शान्तिमय चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब ही इसमें पड़ता है।'

संगीतात्मक गद्य—लेखक का गद्य एक रागात्मक वातावरण तैयार करता है, जहाँ उसके मन का हर्ष, विषाद और उल्लास मुखरित हो उठता है। मनुष्य का मन जब भावनाओं के ज्वार से भर जाता है तब आवेग शब्दों के प्रवाह में फूट पड़ता है। विजयसिंह पथिक के निबन्ध की पूरी शैली संगीत और रागात्मकता से भरपूर है। यह कोमलता उनके लेखन की शैली है। एक उदाहरण देखिए—

'मैं तुम्हें लेकर हिमालय के सर्वोच्च श्रृंग पर जा बैठता, वहीं तुम्हारी गोद में बैठकर माँ! स्वतन्त्रता की वीणा बजाता और कभी तुम्हें अपने शीश पर उठाये भक्ति भावोन्मत्त हो नाचता-गाता, अपनी मस्ती से सारी तराई की वनश्री को मस्त बनाता और वन्य कुरुमों के कण्ठ से कण्ठ मिलाकर वहीं तुम्हारी स्तुति से हिमालय के विस्तृत प्रांगण को गुंजाता.....'

विजयसिंह पथिक के निबन्ध में आकुलता का स्वर बेवजापरक है।

द्रव्यात्मकता—शीर्षक से ही यह स्पष्ट है कि लेखक की वेदना विवशता, कर्तव्यबोध, आह्वान सभी भाव एक बड़े उद्देश्य के लिए प्रस्तुत हुए हैं। लेख के आरम्भ से यह द्रव्यात्मकता स्पष्ट हो जाती है। जब लेखक भारत माता की पराधीनता के बन्धनों को काटने के लिए छटपटाहट अनुभव करता है। वह बार-बार स्वयं से प्रश्न करता है, कभी भारत माँ को सम्बोधित कर उसकी जर्जर स्थिति पर अश्रु बहाता है, कभी देशवासियों के निष्फल प्रयत्नों पर और कभी उनकी कायरता पर दुःखी होता है। देश और समाज की जर्जर अवस्था से कभी वह एकदम निराश हो जाता है तो कभी अपने देश का गौरव जाग जाता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—'क्या अब तक राष्ट्रीयता का यह सरोवर खाली ही पड़ा रहता? क्या अब तक ये तुम्हारे नंदन-कानन खाण्डव-वन ही बना रहता—कभी नहीं। अकेले अरविन्द लोक मान्य तिलक, गाँधी जी, लाजपत, अब्दुल कलाम आजाद, भगवानदास ने ही सब कुछ कर डाला होता?'

उपर्युक्त सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि विजयसिंह पथिक की भाषा एक विशिष्ट पहचान रखती है। तत्सम प्रधान भाषा बोल-चाल की व्यावहारिक भाषा से गुंथी हुई है। छोटे-छोटे वाक्यों से बनी हुई भाषा आवेगमयी है। वर्णनात्मक होते हुए भी विभिन्न उदाहरणों से संयुक्त है। कहीं प्रतीक है, कहीं रूपक और कहीं आत्मीय सस्पर्श। सम्पूर्ण निबन्ध की भाषाशैली स्वतन्त्रता आन्दोलन के युग की छाप छोड़ती है। प्रायः आदर्शवादी स्वर अर्थ को बोझिल बना देता है। कहीं-कहीं अर्थ शब्द जाल में खो जाता है। कहीं-कहीं स्वाभाविकता की भी छानि होती है।

7.2 सारांश

समग्र रूप से भाषा का आवेग लेखक के उद्देश्य को वहन करने में समर्थ है।

इकाई- 8 : मूल्यों का उलट फेर

(हरिशंकर परसाई)

संरचना

8.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

8.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

8.2 सारांश

8.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “कूलर की बात मैंने विस्तार से इसलिए बतायी कि कैसे एक जरूरत पैदा की जाती है। चीज की कि वह प्रतिष्ठा की निशानी बन जाती है। सफलता की साधक बना दी जाती है और उसके बिना आदमी अपने आपको धिक्कारता है। उपभोक्ता इसी तरह बनाये जाते हैं और कुछ लोग तो आज की संस्कृति को उपभोक्ता संस्कृति ही कहते हैं। मैं मानता हूँ कि विज्ञान और तकनीक की सारी विधाएँ मनुष्य को मिलना चाहिये। मगर झंझट प्राथमिकता की है।”

प्रसंग—उपर्युक्त गद्यांश हरिशंकर परसाई द्वारा लिखित व्यंग्य लेख ‘मूल्यों का उलट फेर’ से लिया गया है। इसमें लेखक ने भौतिक सुख-साधनों की आदत और आवश्यकता पर अपनी सोच को व्यक्त किया है।

व्याख्या—विज्ञान की तरक्की के साथ व्यक्ति सुख-साधनों का आदी होता जा रहा है। कुछ समय पहले तक सामान्य मध्यवर्गी व्यक्ति गर्मी के मौसम में घर-आँगन में छिड़काव कर मटके-सुराही का पानी पीकर अपना काम चला लेता था, किन्तु धीरे-धीरे गर्मी में घर को बंद कर कूलर का आदी हो गया। एक उपकरण धीरे-धीरे प्रतिष्ठा का प्रतीक बन जाता है। एक मनोवैज्ञानिक दबाव उस पर हावी होने लगता है कि वह यदि इस साधन को नहीं लेगा तो समाज में उसकी प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह बिल्कुल निर्धन माना जायेगा। ऐसी वस्तु उसकी सामाजिक, आर्थिक सफलता की मापदण्ड बना दी जाती है। इस प्रकार से भौतिक उपकरणों के उपयोग के प्रति बढ़ती ललक से समाज में एक नई संस्कृति, एक नयी विचारधारा बनने लगती है। जिसे उपभोक्ता संस्कृति कहा जा सकता है।

लेखक का मानना है कि विज्ञान और तकनीक का लाभ आम आदमी को मिलना चाहिए, मगर जीवन की दैनिक आवश्यकताओं में मुख्य या पहली आवश्यकता क्या है, इस पर भी ध्यान देना चाहिए।

मनुष्य की पहली आवश्यकता, रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की है, अतः इनकी पूर्ति से पहले केवल आराम और मनोरंजन को प्राथमिकता दी जायेगी तो मध्य वर्ग की स्थिति के विषय में सोचना पड़ेगा।

विशेष—लेखक के सहज वक्तव्य में उपभोक्ता संस्कृति का अर्थ स्पष्ट हो गया है। विज्ञान और तकनीक के माध्यम से भौतिक साधनों को बढ़ावा मिला है। लेखक ने यह स्पष्ट कर दिया है कि किसी चीज के प्रचार-प्रसार से मनोवैज्ञानिक रूप से वह वस्तु आवश्यकता बन जाती है।

मध्यवर्गीय मानसिकता को बहुत साफ तरीके से समझाया गया है।

भौतिक साधक न केवल प्रतिष्ठा के सूचक हैं, बल्कि सफलता के साधन भी बन जाते हैं।

सामान्य जीवन और व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर लेखक ने सामाजिक परिवेश और मानसिकता को प्रकट किया है।

भाषा सहज, सरल और रोचक है।

(2) “इस शहर का आदमी ग्लानि से मरा जा रहा है कि भोपाल, इन्दौर और रायपुर में टेलीविजन खुल गया मगर हमारे महान् शहर में अभी नहीं खुला। जुलूस महंगाई के खिलाफ भी निकलते हैं। लेकिन कोई अगर टेलीविजन के लिये जुलूस निकालने की पुकार लगाये तो इतिहास का सबसे बड़ा जुलूस निकल जायेगा। लोग गुर्रसे में उपद्रव करेंगे तो पुलिस की गोली से दो चार सौ आदमी खुशी से मर जाएंगे। वे अमर शहीद होंगे। झोंपड़ी वाला भी टेलीविजन की बात करता है, बँगला वाला भी। मुझसे मिलने वाले कहते हैं—‘यहाँ टेलीविजन क्यों नहीं खुल रहा है। आप इस बारे में कुछ लिखिये ना।’”

प्रसंग—हरिशंकर परसाई व्यंग्य लेखक हैं। उन्होंने अपने निबन्ध ‘मूल्यों का उलट-फेर’ में अन्य शहर में बढ़ते टेलीविजन के प्रसार से अपने शहर के लोगों की ललक को बहुत रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हुए कहा है—

व्याख्या—शहर में टेलीविजन का आकर्षण दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है और अपने आस-पास के शहरों में टेलीविजन की सुविधा आ जाने से तो उनकी ललक और भी बढ़ गई है। लगता है, जैसे किसी बहुत बड़ी नियामत से उन्हें वंचित कर रखा हो। लेखक का कहना है कि आम आदमी अपने विरोध का प्रदर्शन प्रायः जुलूस के रूप में करते हैं। विशेष रूप से महंगाई के खिलाफ तो जुलूस का निकलना आम बात है, क्योंकि उनकी बुनियादी जरूरतों पर महंगाई चोट करती है। मगर जिस तरह टेलीविजन की माँग बढ़ रही है, उस हिसाब से तो यह जुलूस इतना बड़ा होगा कि इतिहास के अन्य जुलूस भी छोटा पड़ जायेगा। टेलीविजन की माँग को लेकर लोग शोर-शराबा, तोड़-फोड़ आदि कुछ भी हँगामा कर सकते हैं, ऐसे में यदि पुलिस की गोली चल गई और दो-चार जानें चली भी गईं तो लोग उसे खुशी से शहादत मान लेंगे, उन्हें अमर शहीद बना दिया जायेगा और उनका सम्मान देश-भक्तों के समान किया जायेगा। टेलीविजन का नशा इतना जबरदस्त है कि गरीब से गरीब व्यक्ति भी इसके आकर्षण से नहीं बच पा रहा, वह भी इसे जैसे-तैसे प्राप्त करना चाहता है। अमीरों के लिए तो यह एक बड़ा आकर्षण है ही। चूँकि लेखक एक कलमजीवी है, इसलिए उनके नगरवासी अधीर होकर उनसे यह अपेक्षा रखते हैं कि ये अखबारों में टेलीविजन केन्द्र शीघ्र खोलने के विषय में लिखें, ताकि सरकारी वर्ग पर कुछ दबाव पड़े।

विशेष—टेलीविजन के बढ़ते आकर्षण का आम आदमी पर पड़े मनोवैज्ञानिक प्रभाव को लेखक ने स्पष्ट किया है। टेलीविजन सैट कितना भी कीमती उपकरण क्यों न हो, अमीर-गरीब सब इसको खरीदना-देखना चाहते हैं।

टेलीविजन का जादू लोगों को किसी भी कुर्बानी के लिए तैयार कर सकता है।

लेखक ने व्यंग्यात्मक भाव से आम आदमी की मानसिकता को और टेलीविजन के लगातार बढ़ते आकर्षण को प्रस्तुत किया है।

बोल-चाल की व्यावहारिक भाषा का रोचक रूप प्रस्तुत किया गया है।

(3) “मैं यह नहीं कहता कि विज्ञान तकनीक का लाभ हमें नहीं उठाना चाहिये। जरूर उठाना चाहिये। यह सभ्यता और संस्कृति की आवश्यकता है। पर कब उठाना चाहिए—बुनियाद बनने के बाद यह सब होना चाहिये या बुनियादी कोई न हो और हमें ट्रान्समिशन टॉवर से लटक जाना चाहिये। यों पश्चिम के समाजशास्त्रियों का यह मत बनने लगा है कि टेलीविजन के असीमित उपयोग से सामाजिक सम्बन्ध टूट रहे हैं। यहाँ भी ऐसा होगा। जो लोग शाम को बाहर निकलते हैं, लोगों से मिलते हैं, मित्रों के साथ बैठते हैं, वे टेलीविजन के पर्दे से चिपक जायेंगे व सम्बन्ध ढीले हो जायेंगे।”

प्रसंग—उपर्युक्त गद्यांश हरिशंकर परसाई रचित व्यंग्य लेख ‘मूल्यों का उलट फेर’ से उद्धृत किया गया है। इसमें लेखक ने विज्ञान और तकनीक का लाभ उठाने के लिए उपयुक्त समय की आवश्यकता पर बल दिया है, लेकिन पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की तरह हमारे यहाँ भी सामाजिकता की समाप्ति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए लेखक ने कहा है—

टेलीविजन ने हमारी सभ्यता संस्कृति को इतना प्रभावित कर लिया है कि जीवन की अन्य समस्याओं की ओर कोई विशेष ध्यान ही नहीं जाता। मूलभूत आवश्यकताओं और जीवन के सम्मान की भले ही पूर्ति न हो, किन्तु टेलीविजन ने सबको आत्म-केन्द्रित कर रखा है। लेखक का मानना है कि वैज्ञानिक उन्नति का लाभ हर व्यक्ति को मिलना चाहिये। संसार के विषय में अधिकाधिक जानकारी हमें अवश्य मिलनी चाहिये—सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिये यह बहुत आवश्यक है। लेकिन इन भौतिक साधनों का लाभ उठाने का उपयुक्त समय होना चाहिये अर्थात् सामाजिक जीवन की बुनियाद की आवश्यकता पहले है, समाज के हर वर्ग की रोटी, कपड़े की जरूरत पूरी हो जाये यह बहुत आवश्यक है, अगर मसज की नींव ही न हो तो क्या हमें ट्रान्समिशन टॉवर से लटक जाना चाहिये—मतलब यह है कि पैरों के नीचे मजबूत आधार का होना जरूरी है। पश्चिम में भौतिक साधनों के बढ़ते प्रयोग से वहाँ के समाजशास्त्रियों ने ये निष्कर्ष अवश्य निकाले हैं कि सामाजिक सम्बन्ध टेलीविजन से अवश्य प्रभावित हुए हैं, लोग परस्पर मिलना पसन्द नहीं करते। यहाँ भी यही होगा। भारतीय संस्कृति मैत्री पसन्द और परस्पर मिल बैठने में ज्यादा विश्वास करती है, लोग प्रायः शाम को मित्रों से मिलना पसन्द करते हैं, एक-दूसरे के हाल पूछते हैं। टेलीविजन आने के बाद लोग एक जगह बंधकर बैठ जायेंगे और परस्पर सम्बन्धों में शिथिलता आने लगेगी।

विशेष—लेखक ने समाज के भौतिक परिवर्तनों को सभ्यता और संस्कृति से जोड़ा है तथा टेलीविजन के प्रभावों की चर्चा की है। भाषा सरल, रोचक है।

8.1 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. व्यंग्य लेखन हिन्दी की सशक्त विधा है—इस दृष्टि से परसाई के इस व्यंग्य का सार लिखिये।

उत्तर—हिन्दी की अनेकानेक गद्य विधाओं में व्यंग्य का प्रमुख स्थान है। वर्तमान सन्दर्भों में आदर्शों के टूटने के साथ ही आक्रोश बढ़ने लगा है, स्थितियाँ विसंगत होने लगी हैं, पुरानी सारी बातें, सारे मूल्य बदलने लगे हैं, अतः व्यंग्य उन विसंगतियों को व्यक्त करने

का प्रमुख साधन बन गया है। यूँ तो गद्य के विकास के साथ-साथ ही व्यंग्य का प्रचलन बढ़ गया था। भारतेन्दु साहित्य में बहुत ही सुन्दर व्यंग्यों की रचना हुई है। वर्तमान में हरिशंकर परसाई ने वैज्ञानिक संसाधनों के बढ़ते प्रसार के कारण लोक चेतना में हुए परिवर्तनों को व्यंग्य-लेखन के रूप में प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि भयंकर गर्मी के दिन उन्होंने कूलर की सुविधा के बिना ही काट दिये क्योंकि उनका बिगड़ा कूलर मरम्मत के लिये लगा है। ऐसी वस्तुओं का प्रयोग करें या न करें परन्तु उनके होने से सामाजिक प्रतिष्ठा अवश्य मिलती है। ये भौतिक उपकरण प्रायः नगरीय सभ्यता की पहचान है और इनके प्रयोग और असलियत की जानकारी धीरे-धीरे ही होती है, प्रायः ग्रामीण परिवेश और नगरीय परिवेश की बोल-चाल और व्यावहारिक सभ्यता अलग-अलग होती है। गाँव में आत्मीयता अधिक होती है, शहर में अकेलापन। आजीविका के लिये जो लोग गाँव से पहली बार दिल्ली आते हैं, उन्हें अनेक चीजें बिल्कुल नई लगती हैं, होटल क्लबर बिल्कुल नया लगता है, अतः भौतिक उपकरणों की प्रतिष्ठा का चिह्न समझने की मानसिकता भी नयी लगती है।

भरी गर्मी में कूलर बिगड़ जाये तो एक के बाद एक पुर्जे खराब होते चले जाते हैं और गर्मी का मुकाबला सिर पर शीला कपड़ा लपेटकर करते हैं। मित्रों ने मजाक किया – सन्त बन जाओ। अगर नहीं बन सकते तो एक नया कूलर खरीद लो। लेखक आम आदमी के मनोविज्ञान की बात करता है कि जब पैसा कम होता है तब वह कोई भी कीमती चीज खरीद लेता है लेकिन अधिक होने पर भी वह पुरानी चीज की ही मरम्मत करवाता रहता है। जब मुझे तीव्र रूप से यह अहसास करवाया गया कि कूलर के बिना मेरा लेखन अधूरा रह जायेगा। विज्ञापनों, परिजनों और मित्रों का दबाव किसी भी भौतिक सुविधा की आवश्यकता को एकदम प्राथमिकता बना देता है, इसी प्रकार से उपभोक्ता संस्कृति का विकास होता है।

विज्ञान और तकनीक के उपकरणों का हाल यह है कि लोग रोजगार दिलाने वाले कारखानों की बजाय रेडियो स्टेशन को अधिक प्रमुखता देते हैं। राजनेता भी इसमें अपना लाभ देखते हैं। इस सुनियोजित प्रचार में आम-आदमी भी शामिल हो जाता है। पानी की विकट समस्या को भूलकर वह अपने शहर में टेलीविजन खुलवाने के लिए ज्यादा लालायित हैं। टेलीविजन की आवश्यकता और आकर्षण का यह हाल है कि लोगों को पानी का संकट, खस्ता हाल सड़कें और बढ़ती हुई महँगाई से कोई अन्तर महसूस नहीं होता। टेलीविजन न होने की ग्लानि अन्य सब समस्याओं से बढ़कर है, इसके लिए वे जुलूस निकालकर गोली खाने को भी तैयार हैं। सघन प्रचार से एक वातावरण तैयार किया जाता है। ऐसे भौतिक साधनों का लाभ सबसे पहले पूँजीपति, दो नम्बर के पैसे वाले उठाते हैं किन्तु इससे मध्यवर्गीय व्यक्ति सबसे ज्यादा पीड़ित होते हैं। उनके बच्चों और पत्नी का दबाव लोक लाज और सामाजिक स्तर की कसौटी बन जाता है, अतः हीनता की भावना से बचने के लिए टी.वी. खरीदना होगा, चाहे ढाल, गेहूँ महँगे हो जायें। सामाजिक व्यवस्था की बुनियाद मूलभूत आवश्यकताओं पर नहीं, भौतिक उपकरणों पर बनने लगी है।

प्रश्न- 2. लेखक किन मूल्यों के उलट-फेर की चर्चा इस लेख में कर रहा है ?

उत्तर – स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय जन-जीवन में बड़ी तेजी से परिवर्तन हुए हैं। औद्योगिक विकास के साथ-साथ भौतिक सुविधाओं का आकर्षण भी बढ़ा है। पूँजीवादी रुझान ने त्याग और सहिष्णुता की भावना और आदर्शों को कम किया है। भाईचारे और मैत्री की जगह स्वार्थ और आत्म-केन्द्रित मनोवृत्ति ने ले लिया है। लेकिन मुख्य कारण तो यह है कि भौतिक उपकरणों की बढ़ोतरी ने हमारी नैसर्गिक जीवनशैली को बदल डाला है। प्रकृति ने हमें जो सुविधाएँ दी हैं, उनसे हम कट गये हैं। हम ठण्डी हवा की जगह खुले आँगन में सोने की जगह, कूलर की सुविधा के आदी होते जा रहे हैं। लोगों से मिलने की जगह हम रेडियो और टेलीविजन में अधिक रुचि लेते हैं। लोगों की मानसिकता इतनी बदल गई है कि चाहे शहर में पानी की समस्या हो, चाहे सड़कें टूटी हों, चाहे महँगाई का संकट हो, गरज कि जीवन की मूलभूत समस्याएँ कितनी ही दुःख दे रही हों, फिर भी टेलीविजन और कूलर का नशा सिर चढ़कर बोलने लगा है। संचार माध्यमों और उपभोक्ता संस्कृति के बढ़ते प्रसार तथा पूँजी के आकर्षण ने सारी प्राचीन परम्पराओं और आदर्शों को बदल डाला है।

विज्ञान और तकनीकी ज्ञान से उपलब्ध सारी सुविधाएँ सबको मिलनी चाहिये, किन्तु जीवन की प्राथमिकता व्यक्ति को प्रतिस्पर्धा के रूप में नहीं, आवश्यकता के आधार पर तय करनी पड़ती है। जब ऐसा नहीं होता जनता को भ्रमित करने में स्वार्थान्ध राजनीति का हाथ होता है तो जीवन के बड़े आदर्श डगमगा जाते हैं। यदि किसी क्षेत्र में कारखाना खोला जाये तो हजारों लोगों को रोजगार मिले, आस-पास कई उद्योग खुल जायें और पूरे क्षेत्र का विकास हो तथा आम आदमी खुश हाल हो जाये। लेकिन नेता लोग रेडियो स्टेशन खुलवा देते हैं और अपनी लोकप्रियता बढ़ाकर अपने वोट स्थायी कर लेते हैं। लेखक इस तथ्य को उचित नहीं मानता और न ही ऐसी राजनीति को प्रशंसनीय मानता है। किन्तु रेडियो स्टेशन खोलने का प्रचार इतना विकट किया जाता है कि आम आदमी इसी में गर्व महसूस करने लगता है।

इसी प्रकार शहर में पानी की समस्या के स्थायी हल की जगह टेलीविजन का होना अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा का कारक माना जाता है। खूब प्रचार किया जाता है, एक मनोवैज्ञानिक वातावरण बनाया जाता है और फिर एक घर से दूसरे घर तक प्रतिस्पर्धा बढ़ती

चली जाती है, उसके हानि-लाभों की चर्चा की आवश्यकता ही नहीं रहती, उसकी भावी संभावनाओं पर और जन-चेतना पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों पर ध्यान ही नहीं दिया जाता।

यही मूल्यों का उलट फेर है, ऐसा लगता है, जैसे सोच-समझकर एक षड्यन्त्र रचा गया हो, अनावश्यक वस्तु को प्राथमिक स्तर पर महत्व दिया गया हो, बल्कि उसे अनिवार्य और अपरिहार्य बना दिया जाये, ऐसी मानसिकता बना दी जाये कि सारे तर्क धरे रह जायें। चाहे उनका उपयोग सही हो या न हो, लेकिन घर में होना आवश्यक माना जाये, चाहे बौद्धिक स्तर और गरिमा, शालीनता का विकास हो, न हो लेकिन ऐसे उपकरण खरीदे अवश्य जायें—ऐसे वातावरण का दबाव परिवेश से परिवार और परिवार से बुद्धि पर अवश्य पड़ता है।

प्रश्न-3. अनावश्यक को अनिवार्य बनाने की मानसिकता तैयार करने से लेखक किस रुचि का संकेत करता है ?

उत्तर—लेखक अनावश्यक और अनिवार्य—इन दो शब्दों से जीवन के उचित और अनुचित का मूल्यांकन कर रहा है। जीवन को उच्चतर बनाने के लिये सादा जीवन उच्च विचार का आदर्श अपनाना पड़ता है। अनिवार्य वे सब पदार्थ हैं, जिनके बिना जीवन जिया नहीं जा सकता, जिनसे मनुष्य के शरीर और बुद्धि स्वस्थ रहते हैं, जीवन को एक सार्थक प्रयोजन मिलता है, किन्तु जब उन्हें आर्थिक और सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक मानकर आत्म-संतोष और गर्व अनुभव किया जाता है।

लेखक ने व्यंग्यात्मक रूप में बताया है कि आस-पास के परिवेश में ऐसा मानसिक दबाव तैयार किया जाता है कि जिन वस्तुओं के बिना रहा जा सकता है, जो हमारे दैनिक जीवन में अनावश्यक होती हैं, वे ही अनिवार्य प्रतीत होने लगती हैं, उन्हें खरीद लिया जाता है और फिर उनकी मरम्मत पर लगातार खर्चा भी किया जाता रहता है, उससे उसका लाभ भी नहीं मिलता है, साथ ही आर्थिक हानि और तनाव भी झेलने पड़ते हैं लेकिन उस चीज को आवश्यकता तो बना ही दिया जाता है और ऐसे ही समाज में उपभोक्ता संस्कृति का जन्म होता है। लेखक का मानना है—‘कूलर की बात मैंने विस्तार से इसलिए बतायी कि कैसे एक जरूरत पैदा की जाती है, चीज की कि वह प्रतिष्ठा की निशानी बन जाती है। सफलता की साधक बना दी जाती है और उसके बिना आदमी अपने आपको धिक्कारता है। उपभोक्ता इसी तरह बनाये जाते हैं और कुछ लोग तो आज की संस्कृति को उपभोक्ता संस्कृति ही कहते हैं। मैं मानता हूँ कि विज्ञान और तकनीक से सारे सुभीते मनुष्य को मिलने चाहिये। मगर झंडट प्राथमिकता की है।’

यही चिन्ता सबसे बड़ी है कि आज हम भूल गये हैं कि प्राथमिक चीजों की पूर्ति का संघर्ष कितना कठिन हो गया है। लेखक हरिशंकर परसाई ने अपने आस-पास के वातावरण और लोगों की सोच के आधार पर वर्तमान युग की विसंगतियों को उठाया है। टेलीविजन की माँग को लेकर जुलूस निकालने वाले लोग शहीद होने के लिए तैयार हैं—मगर अपने नगर की स्थिति सुधारने के लिए चिन्तित नहीं।

भौतिक साधनों के प्रति बढ़ती आसक्ति का एक दोष और भी है कि लोग दो नम्बर का पैसा कमाने में ज्यादा रुचि दिखाते हैं। इन साधनों का बढ़ता आकर्षण और आर्थिक तंगी उन्हें न केवल कुंठित करती है बल्कि गलत रास्तों पर भी धकेल देती है। अथवा ग्लानि से आत्मदग्ध होते रहेंगे। बिना ऊपरी आमदनी वाला मध्यवर्गीय व्यक्ति पत्नी और बच्चों का सामना नहीं कर पाता। घूस न लेने का गुण-दोष बन जाता है और पत्नी की नजर में ईमानदारी का कोई मूल्य नहीं रह जाता। बच्चों का तर्क ठोस आधार खोजने की कोशिश करता है—टी.वी. से ज्ञान बढ़ता है। लेखक व्यंग्यात्मक लहजे में कहता है—लड़का बापू को फुसला रहा है कि तुम अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए टी.वी. लाओ।

जिन मासूम बच्चों को टी.वी. के बारे में कुछ नहीं मालूम, वे भी इसके आकर्षण से अछूते नहीं। लेकिन चारों तरफ टेलीविजन की अनिवार्यता के रूप में हल्ला है।

इन सब स्थितियों में भौतिक उपकरण जीवन पद्धति और दृष्टि दोनों को बदल देते हैं। लेखक की चिन्ता है—‘इस कदर अनिवार्यता और प्रतिष्ठा की निशानी और जीवन का एकमात्र मूल्य बना दिया गया है कि मुझे लगता है कि शहर में जो कुछ ईमानदार बचे हैं, वे भी भ्रष्टाचारी हो जायेंगे और टी.वी. रखेंगे। अगर ऐसा नहीं तो हीनता की भावना व घरवालों के तानों से मर जायेंगे।’

हरिशंकर परसाई ने सामाजिक स्तर पर आने वाले परिवर्तनों का न केवल विश्लेषण किया है बल्कि उनकी संभावनाओं पर भी विचार किया है। उनकी सोच दूरदर्शी है, लेकिन आम आदमी प्रायः इतनी गहराई से नहीं सोचते। आज पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से संवेदनाएँ क्षीण होती जा रही हैं, परस्पर मैत्री भाव और प्रेम समाप्त होता जा रहा है। स्वार्थ और आत्म-केन्द्रित स्थिति में वृद्धि हो रही है।

8.2 सारांश

निष्कर्षतः आधुनिक युग का वातावरण अनावश्यक को अनिवार्य बनाने की मानसिकता तैयार करने वाला है और आम आदमी ऊपरी प्रतिष्ठा और सामाजिक स्तर ऊँचा बनाने वाली भौतिक प्रवृत्ति का शिकार हो रहा है।

इकाई- 9 : मुक्ति योद्धाओं के शिविर में

(विष्णु कान्त शास्त्री)

संरचना

- 9.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 9.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 9.2 सारांश

9.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “मैं सिपाही आदमी हूँ। इतना जानता हूँ कि पाकिस्तानियों ने तेईस सालों तक लगातार मेरे देश का शोषण किया है, हमें गुलाम बनाकर रखा है। इस लड़ाई में उन्होंने जिस विश्वासघातकता तथा पशुता का परिचय दिया है, उससे यह साफ है कि वे हमारे देश को अपने कब्जे में रखने के लिए नीचता की किसी सीमा तक जा सकते हैं। इन परिस्थितियों में लड़ाई कैसे चल सकती है? कैसे सफल हो सकती है? मेरी समस्या यही है।”

प्रसंग व सन्दर्भ— प्रस्तुत गद्यावतरण विष्णु कान्त शास्त्री द्वारा लिखित रिपोर्टाज ‘मुक्ति योद्धाओं के शिविर में’ शीर्षक से उद्धृत है। जब विष्णु कान्त शास्त्री अपने साथियों के साथ बांग्ला देश की मुक्ति फौज के अधिकारी कैप्टेन रशीद के छोटे से प्रशासनिक शिविर में पहुँचे तब कैप्टेन के व्यवहार व वार्तालाप ने उन्हें बड़ा प्रभावित किया। परन्तु शास्त्री जी के एक साथी ने कैप्टेन रशीद से बांग्ला देश की विभिन्न राजनीतिक पार्टियों में व्याप्त मतभेदों की आलोचना शुरू की तो कैप्टेन ने उस प्रसंग को बन्द करते हुए जो कुछ कहा, शास्त्री जी ने उसे ही इस अवतरण में शब्दबद्ध कर वाणी प्रदान की है।

व्याख्या— बांग्ला देश को पाकिस्तान के राक्षसी पंजों से मुक्त कराने के लिए बांग्ला देश की स्वाधीनता और गणतंत्र के विश्वासी साढ़े सात करोड़ नागरिकों ने स्वतंत्रता-संग्राम छेड़ रखा था। सभी लेखक उन मुक्ति योद्धाओं के शिविर में पहुँच जाते हैं। वहाँ कैप्टेन रशीद उन्हें स्वयं के विषय में यह बतलाता है कि उसे बांग्ला देश की विभिन्न राजनीतिक पार्टियों में व्याप्त मतभेदों से कोई प्रयोजन नहीं है। वह तो एक सिपाही है, मुक्ति-युद्ध का एक सिपाही है और केवल इतना ही जानना है कि शांति और गणतंत्र का शत्रु पाकिस्तान उनकी स्वाधीनता की आकुलता को कुचल देना चाहते हैं। उन परिस्थितियों ने तेईस वर्षों के दीर्घकाल तक लगातार बांग्ला देश का शोषण किया है और वहाँ के नागरिकों को परतंत्र व गुलाम बनाकर रखा है। बांग्ला देश की मुक्ति की लड़ाई में भी उन्होंने अर्थात् पाकिस्तानियों ने जिस विश्वासघात और पशु के समान स्वार्थी प्रवृत्ति का परिचय दिया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे पाकिस्तानी नीचता करने में किसी सीमा को पराकाष्ठा नहीं मानते हैं और किसी भी सीमा तक नीचता कर सकते हैं। इस प्रकार की विरोधी परिस्थितियों में जबकि बांग्ला देश के नागरिकों ने मुक्ति युद्ध चला रखा है और पाकिस्तानी अपनी नीचता से उन्हें दबाकर गुलाम बनाये रखने के लिए तत्पर हैं, यह मुक्ति युद्ध कैसे चल सकता है अर्थात् हम लोग अपने इस मुक्ति युद्ध को लगातार मुक्ति गिलने तक कैसे चला सकते हैं— इस दिशा में ही मेरी बुद्धि निरन्तर सोच-बिचार करती रहती है। मैं हमेशा यही उपाय सोचता रहता हूँ जिससे हमारे देश को पाकिस्तानी खूनी पूँजे में निज़ात मिले। बस मेरी तो यही समस्या है और मैं निरन्तर इसी के निराकरण व समाधान के लिए विचार करता हूँ तथा कार्य करता रहता हूँ। इसके अतिरिक्त मेरे सामने अन्य कोई समस्या ही नहीं है और न मेरा ध्यान किसी अन्य समस्या की ओर जाता ही है। आशय यह है कि मैं बांग्ला देश की मुक्ति के लिए ही समर्पित हूँ।

विशेष— 1. कैप्टेन रशीद की चारित्रिक विशेषताओं के साथ ही मुक्ति योद्धाओं के लक्ष्य पर प्रकाश पड़ता है।

2. पाकिस्तानियों के अत्याचारों स्वार्थों का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत किया गया है।

3. एक सच्चे सिपाही की आकाँक्षा का भव्य उद्घाटन हुआ है।

9.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. रिपोर्टाज किसे कहते हैं? स्पष्ट करें।

उत्तर— किसी घटना का अपने सत्य रूप में वर्णन, ऐसा वर्णन जो पाठक के सम्मुख घटना का चित्र सजीव रूप में उपस्थित कर उसे प्रभावित कर सके रिपोर्टाज कहलाता है (रामगोपालसिंह चौहान)। रिपोर्टाज में कहानी का तत्त्व होता है, किन्तु वह कहानी नहीं होती। रिपोर्टाज प्रायः घटना प्रधान होता है। कोई कहानी सत्य घटना पर भी आधारित हो सकती है और कल्पना पर भी, किन्तु रिपोर्टाज सत्य घटना को ही अपना वर्ण्य विषय मानता है। लेखक उसमें अपनी भावनाओं का रंग भर सकता है।

रिपोर्टाज लिखने में जितने कौशल की आवश्यकता है उतने कौशल की आवश्यकता कहानी लिखने में नहीं है। एक सफल रिपोर्टाज में घटना, उस घटना का प्रभाव, उस घटना से उत्पन्न समस्या और उस समस्या का समाधान आदि सब कुछ होता है। जैसे कहानी में घटना, वातावरण, समस्या और समाधान होता है लेकिन कहानी के लिये यह आवश्यकता नहीं है। रिपोर्टाज में लेखक घटनाओं, सम्बन्धित व्यक्तियों के जीवन और इनसे सम्बद्ध समस्या की गहराई में जाकर पूर्ण जानकारी के साथ उनका वर्णन करता है। उस वर्णन में उसके हृदय की संवेदना भी होती है किन्तु कहानी सहसा आरम्भ होकर सहसा समाप्त हो जाती है। कहानी का डंक उसके शीर्षक में होता है। उसमें कथोपकथन एक आवश्यक तत्व है। वैसे रिपोर्टाज में भी कथोपकथन हो सकता है किन्तु आवश्यक तत्व नहीं हैं।

रिपोर्टाज द्वितीय विश्व युद्ध की देन है। लेकिन कहानी का मानव जीवन के साथ चोली दामन का साथ है। बच्चा अपनी दादी की गोद में बैठकर कई प्रकार की कहानियों का रस प्राचीनकाल से लेता आ रहा है लेकिन रिपोर्टाज विशेष रूप से सोवियत साहित्य की देन है। रिपोर्टाज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। इसका अंग्रेजी भाषा के रिपोर्ट शब्द से गहरा सम्बन्ध है लेकिन कहानी की विधा भारत में स्वतन्त्र रूप से जन्मी व पली है। पाश्चात्य साहित्य का तो उस पर इस रूप में प्रभाव पड़ा है कि उसमें यथार्थ चित्रण तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी सम्मिलित हो गये हैं। जिस प्रकार अखबार की साधारण रिपोर्ट होती है उसी प्रकार रिपोर्टाज में भी किसी एक घटना अथवा घटनाओं का यथातथ्य वर्णन होता है किन्तु कहानी एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसमें तथ्य एवं कल्पना का मणिकोचन संयोग होता है। इस सारे विवेचन का सार यह है कि रिपोर्टाज और कहानी में समानताएँ कम तथा भिन्नता अधिक हैं। दोनों ही हिन्दी साहित्य की वर्तमान युग की सशक्त विधाएँ हैं। अपने में पूर्ण स्वतन्त्र एवं जन-मानस को प्रभावित करने वाली।

इस प्रकार गद्य की अनेक विधाओं में रिपोर्टाज भी एक विधा है, जिसमें लेखक आँखों देखी किसी घटना का वर्णन करता है, जैसा कि विष्णुकान्त शास्त्री ने अपने रिपोर्टाज मुक्ति योद्धाओं के शिविर में किया है। वास्तव में जन-साधारण के उपयोग के लिए किसी घटना का आँखों देखा वर्णन एक विशेष ढंग से लिखना रिपोर्टाज है। इस विधा का विकास हिन्दी में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् हुआ। यह शब्द 'रिपोर्ट' (Report) शब्द से विकसित होकर निर्मित हुआ है और साथ ही इसमें लेखी कमेंट्री का भी समावेश है। वास्तव में रिपोर्ट का साहित्य रूप ही रिपोर्टाज है। श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, प्रभाकर माचवे, लक्ष्मी चंद जैन, विष्णुकान्त शास्त्री आदि ने इस क्षेत्र में स्तुत्य सहयोग दिया है। प्रस्तुत रिपोर्टाज में अर्थात् मुक्ति योद्धाओं के शिविर में लेखक विष्णुकान्त शास्त्री ने बांग्ला देश मुक्ति वाहिनी के सैनिकों व अफसरों की लगन, साहस तथा देश के प्रतिनिष्ठा के साथ ही साथ अपने कवि रूप व साहित्यकार के रूप को भी उभारकर इसे अत्यन्त प्रभावपूर्ण बना दिया है।

प्रश्न 2. बांग्ला देश की मुक्ति सेना के अदम्य उत्साह का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—विष्णुकान्त शास्त्री ने अपने रिपोर्टाज 'मुक्ति योद्धाओं के शिविर में' में बांग्ला देश को पाकिस्तान के राक्षसी पंजों से मुक्त कराने के लिए मुक्ति योद्धाओं के अदम्य उत्साह का चित्रण किया है, जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

कैप्टेन का उत्साह—लेखक विष्णुकान्त शास्त्री ने मुक्ति योद्धाओं के शिविर में जाकर वहाँ के अदम्य उत्साह का जो रूप देखा, उसमें सबसे पहले वहाँ के छोटे से प्राशासनिक शिविर के स्थानीय अधिकारी कैप्टेन रशीद का चित्र अंकित किया गया है। वे पहले पाकिस्तान की रेगुलर आर्मी में थे और फिर पूर्वी बंगाल के किसी सैन्य प्रशिक्षण केन्द्र में थे। परन्तु उत्तरदायित्व का बोध और संघर्ष का संकल्प उनके चेहरे पर स्पष्ट, अंकित दिखाई देता था। उनकी टुकड़ी पाकिस्तान के पाशविक सैन्य बल के सामने टिक नहीं पाई थी परन्तु उसने दुश्मन को क़रारी चोटें पहुँचाई थी और उन्होंने बड़ी ही भयंकर प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी टुकड़ी को बिखरने से बचाया था और एक लम्बे युद्ध की आवश्यकता समझकर नये सिरे से उसका पुनर्गठन बड़े साहस से कर रहे थे। उन्हें बांग्ला देश की विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियों में व्याप्त मतभेदों की कोई चिन्ता नहीं थी, वे राजनीतिक दावपेंच नहीं जानते थे और बड़े अदम्य उत्साह से उन विपरीत परिस्थितियों में लग बने समय तक लड़ाई चलाकर सफलता प्राप्ति के प्रयासों में लगे थे। उनके ही शब्दों में उनके अदम्य उत्साह को देखा जा सकता है—

'मैं सिपाही आदमी हूँ। इतना जानता हूँ कि पाकिस्तानियों ने तेईस सालों तक लगातार मेरे देश का शोषण किया है, हमें गुलाम बनाकर रखा है। इस लड़ाई में उन्होंने जिस विश्वासघात और पशुता का परिचय दिया है, उससे साफ है कि वे हमारे देश को कब्जे में रखने के लिए नीचता की किसी सीमा तक जा सकते हैं। इसका एक ही जवाब है, जीतने तक युद्ध करते जाना। इन परिस्थितियों में लड़ाई कैसे चल सकती है? कैसे सफल हो सकती है? मेरी समस्या यही है। राजनीतिक दाँव-पेच मैं नहीं जानता।'

छावनी के जवानों का उत्साह—विष्णुकान्त शास्त्री ने कैप्टेन के उत्साह के पश्चात् वहाँ के नये रंगरूपों और पुराने जवानों के अदम्य उत्साह का चित्रण किया है। इस फौजी छावनी के जवानों का वातावरण बड़ा रोमांचक था और वे लोग अपने देश को सोने का बंगला मानकर उसे प्यार करते थे और जानते थे कि देश को कैसे प्यार किया जाता है। देश प्रेम केवल जबानी जमा-खर्च नहीं होता है और देश की प्रतिष्ठा

के लिए अपना जीवन, अपना सब कुछ बलिबेदी पर चढ़ाने को वे तत्पर थे। उन्हें गुरिल्ला युद्ध का प्रशिक्षण दिया जा रहा था और वे अपने सब कुछ को होम करके, प्राणों को हथेली पर रखकर देश के दुश्मन से जूझने को, उसे मार भगाने को कटिबद्ध थे। विष्णुकान्त शास्त्री ने जब उन्हें देश-भक्ति के दृढ़ संकल्प की कविताएँ सुनाईं तो उन्होंने अपनी तालियों की गड़गड़ाहट से सारे परिवेश को गुंजाकर अपनी सहमति व प्रशंसा प्रकट की थी।

बांग्ला देश मिशन के प्रतिनिधि का उत्साह—बांग्ला देश मिशन के प्रतिनिधि का उत्साह भी अदम्य था। उसने भी अपने तेजस्वी भाषण में यही कहा कि हमारी पाकिस्तान से मुक्ति की लड़ाई चालू है और आखिरी जीत तक चालू रहेगी। जीत हमारी ही होगी क्योंकि हमारी सारी जनता इस शोषण और गुलामी को केवल सीमावर्ती अंचलों में ही नहीं, बांग्ला देश की समस्त भूमि पर लड़ाई किस जोशोखरोश के साथ चालू हो जानी है।

दैनिक प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा मुक्ति योद्धाओं का निवेदन—मुक्ति योद्धाओं के शिविर में सैनिक कार्यक्रम की व्यस्तता, गुरिल्ला योद्धाओं को विस्फोटकों, मार्टरों, मशीनगनों, हथ गोलों आदि का प्रयोग सिखाना, उनमें सामाजिक एवं राजनीतिक चेतुत्व की क्षमता का विकास करना आदि कार्यक्रमों में ध्वंस और निर्माण साथ-साथ चलते थे। मुक्ति योद्धाओं के निवेदन में भी उनके अदम्य उत्साह की झलक है, जिसमें निवेदन किया गया था कि हम स्वाधीनता और गणतंत्र के विश्वासी हैं। मनुष्य की तरह जीना चाहते हैं। इसीलिए हम संग्राम कर रहे हैं। हम बांग्ला देश पर जुल्मबाजी नहीं चाहते। हम संभासपूर्ण शासन से मुक्ति चाहते हैं, इसीलिए हम संग्राम कर रहे हैं। जिस दिन तक हम साढ़े सात करोड़ बांग्ला स्वाधीन बांग्ला देश के नागरिक नहीं बन जाते उस दिन तक यह संग्राम शेष नहीं होता। शांति और गणतंत्र के शत्रु हमारी स्वाधीनता की आकुलता को कुचल देना चाहते हैं किन्तु वे पूर्णतः पराजित होंगे ही। हम लोगों की जय सुनिश्चित है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि बांग्ला मुक्ति सेना का उत्साह अदम्य था। उनके प्रतिनिधि, अधिकारी, छावनी के जवानों व दैनिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा मुक्ति योद्धाओं के निवेदन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। समग्रतः स्वाधीनता की आकुलता की अनुभूति जब किसी परतंत्र देश के नागरिकों के हृदयों में जाग्रत हो जाती है तो वे विपरीत परिस्थितियों, दुश्मन के पाश्विक बल, अपने प्राणों आदि की चिन्ता नहीं करते हैं और उनमें तो मरने की होड़ लग जाती है—इसी होड़ में तथा स्वाधीनता के शत्रु को पराजित करने के उपायों तथा कार्यक्रमों में ही उनके अदम्य उत्साह के दर्शन होते हैं। जैसा कि प्रस्तुत रिपोर्टाज 'मुक्ति योद्धाओं के शिविर में' विष्णु कान्त शास्त्री ने चित्रित किया है। इतना ही नहीं उन्होंने वहाँ जो दो कविताएँ सुनाईं, उनमें वहाँ के छात्रों का अदम्य साहस व कष्ट सहिष्णु के साथ ही देश-भक्ति की निष्ठा भी थी।

प्रश्न-3. विष्णुकान्त शास्त्री के काव्य पाठ के उपरान्त सैनिकों में हुई प्रतिक्रिया का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—विष्णु कान्तशास्त्री का काव्य पाठ—विष्णु कान्तशास्त्री ने बांग्ला देश मुक्ति योद्धाओं के शिविर में जाकर पहले तो सिकन्दर अबू जफर की कविता 'आमादेर संग्राम चलवेई' सुनाई और फिर श्रोताओं के आग्रह पर नसीमुनआर की कविता 'तिमिर हनने रगान आकार कंठे, आमर होते इ चाबी आवासी देनेर' सुनाई। उनका कथन है कि इन दोनों ही कविताओं के कवि अभी छात्र ही हैं किन्तु ये कविताएँ विज्ञानी वजनदार हैं, विज्ञानी धारदार हैं। पहली कविता का आशय है 'दीनो है शांति, देंगे स्वस्ति भी। दे चुके संभ्रम, देंगे जब अस्थि भी। प्रयोजन हुआ तो देंगे नदी भर रक्त। होले पथ बाधा के पत्थर और सखत। अविराम यात्रा के लिए चिर संघर्ष से। एक दिन पहाड़ बह चलेगा ही। चलेगा ही, चलेगा ही, संग्राम यह चलेगा ही।' वास्तव में इन कविताओं में उनके रचयिता बांग्ला देश के विद्यार्थियों की वाणी उनके भावों का सम्पूर्ण बल लेकर मुखरित हुई है और चिर संघर्ष के प्रति उनकी दृढ़ निष्ठा के साथ ही मार्ग की बाधाओं को चकनाचूर करने का संकल्प भी।

'चलेगा ही, चलेगा ही, संग्राम यह चलेगा ही'—मुक्ति योद्धाओं के हृदयों की राहज, स्वाभाविक भावना है—यह बात विष्णुकान्त शास्त्री ने उनके शिविरों में जाकर अनुभव की थी। अतः उन्होंने जो काव्य पाठ किया वे कविताएँ जो बांग्ला देश के विद्यार्थियों द्वारा ही रचित थीं—परन्तु उन्होंने बड़ी तन्मयता से सुनाया था। इस तन्मयता के सम्बन्ध में उन्होंने प्रस्तुत रिपोर्टाज 'मुक्ति योद्धाओं के शिविर में' में स्पष्ट लिखा है कि— 'कविताएँ सुनाना मेरा नशा है किन्तु उतनी तन्मयता से मैंने शायद ही कभी कविताएँ सुनाई हों।'

9.2 सारांश

विष्णुकान्त शास्त्री के काव्य पाठ के उपरान्त सैनिकों में उसकी बड़ी अच्छी प्रतिक्रिया हुई क्योंकि ये कविताएँ उनके बांग्ला देश की नयी संग्रामी कविताएँ थी और अंधकारपूर्ण कब्रगाह में उषा के बीज बोने वालों का दृढ़ संकल्प उनमें व्यंजित था। अपने काव्य पाठ का प्रभाव व प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में स्वयं शास्त्री जी ने इस रिपोर्टाज में इस प्रकार उल्लेख किया है— 'मेरा काव्य पाठ ज्यों ही समाप्त हुआ, स्वतः स्फूर्त तालियों की गड़गड़ाहट से परिवेश गुँज उठा। मुझे खुशी हुई कि जवानों ने इन कविताओं को पसन्द किया।'

इकाई- 10 : दक्षिण गंगा : गोदावरी

(काका कालेलकर)

संरचना

- 10.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 10.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 10.2 सारांश

10.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “ये नदियाँ भूतकाल के गौरवशाली इतिहास की जितनी साक्षी हैं, उतनी ही भविष्य की महान् आशाओं की प्रेरक भी। इनमें भी गोदावरी का महात्म्य कुछ अनोखा ही है। वह जितनी सलिल समृद्ध है, उतनी ही इतिहास समृद्ध भी। गोपाल कृष्ण के जीवन में जिस तरह सर्वत्र विविधता ही विविधता भरी हुई है एक-सा उत्कर्ष दिखाई देता है, उसी तरह गोदावरी के अतिदीर्घ प्रवाह के किनारे सृष्टि सौन्दर्य की विविधता और विपुलता भरी पड़ी है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश श्री काका कालेलकर द्वारा रचित यात्रा वृत्त ‘दक्षिण गंगा : गोदावरी’ का अंश है। इस अंश में लेखक गोदावरी और कृष्णा नदी के गौरव की कहानी कहकर गोदावरी के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं।

व्याख्या—गोदावरी और कृष्णा नदियों ने महाराष्ट्र और आन्ध्र के साम्राज्यों का पोषण किया है। इन नदियों ने भारत के गौरव को बढ़ाया है। इनके किनारों पर बसे नगरों की वैभव की कहानी इनमें छिपी है। भूतकाल में इन नदियों ने भारत के प्रान्तों को जितना दिया है, उन्हें समृद्ध बनाया है, उसी आधार पर भविष्य में भी लोग इनसे आशा लगाए हुए हैं। कृष्णा की अपेक्षा गोदावरी का महत्त्व अधिक है। इसमें अथाह पानी है। यह अधिक क्षेत्र में बहती है और इसका पाट भी अधिक चौड़ा है। इसी प्रकार इसका इतिहास भी गौरवशाली है। भगवान कृष्ण का व्यक्तित्व विविधताओं से पूर्ण एवं उत्कर्षपूर्ण है, उसी प्रकार इस नदी गोदावरी के किनारों पर सृष्टि का अपार सौन्दर्य व्याप्त है। वह विपुल प्रकृति सौन्दर्य उसके गौरव और समृद्धि का प्रतीक है।

विशेष—गोदावरी के प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ उसका ऐतिहासिक महत्त्व निरूपित है।

(2) “तेरी कृपा होगी तो हृदय में से तथा देश में से रावण का राज्य मिट जायेगा, रामराज्य की स्थापना होते मैं देखूँगा और फिर तेरे दर्शन के लिए आऊँगा और कुछ नहीं तो कांस की कलगी के स्थावर प्रवाह की तरह मुझे उन्मत्त बना दे, जिससे बिना संकोच के एक ध्यान होकर मैं माता की सेवा में रत रह सकूँ और बाकी सब भूल जाऊँ। तेरे नीर में अमोघ शक्ति है। तेरे नीर के एक बूँद का सेवन भी व्यर्थ नहीं जायेगा।”

प्रसंग—यह गद्यांश श्री काका कालेलकर जी द्वारा रचित ‘दक्षिण गंगा : गोदावरी’ नामक यात्रावृत्त से लिया गया है। इसमें लेखक ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए यह अपेक्षा की है कि मेरे हृदय और देश में से रावण जैसी मनोवृत्ति का नाश हो जाए।

व्याख्या—गोदावरी नदी का तट देशभक्त, शूरवीर, तत्त्व, चिन्तक, ईश्वर भक्तों की जन्म-स्थली रहा है। भक्तगण अनेक आशाओं के साथ इसके तट पर स्थित मन्दिर में भक्ति भावना से आते हैं। यहीं राम ने रावण को मारने का संकल्प लिया था। लेखक अपनी भावना व्यक्त करते हैं कि आज प्रत्येक मानव रावण है। देश के कोने-कोने में रावण पैदा हो गये हैं। लोगों की मनोवृत्ति हिंसात्मक, शोषण और अत्याचार युक्त हो गई है। गोदावरी के तट पर बने मन्दिरों और तपोभूमियों से यदि सच्ची भक्ति भावना का प्रवाह होने लगे तो देश में व्याप्त कुभावनाओं का अन्त हो जायेगा। रामराज्य की स्थापना हो जायेगी। समता, एकता, सहयोग की भावना जाग्रत हो जायेगी। जब देश में शान्ति होगी, सद्विचार व्याप्त होंगे तभी सच्चे रामराज्य की कल्पना साकार होगी। लेखक कामना व्यक्त करता है कि मैं ध्यानस्थ होकर माता की सेवा का भार ग्रहण कर सकूँ। गोदावरी के पानी में स्नान करके मैं अपने जीवन को सफल बना सकूँ, तेरे पानी की एक बूँद भी व्यर्थ न जाने पाये।

विशेष—(1) गोदावरी नदी के प्रति लेखक की अनन्त भक्ति भावना की व्यंजना है।

(2) लेखक गाँधीवादी विचारधारा का अनुयायी है, अतः उनकी कामना भारत में रामराज्य स्थापना की है।

(3) लेखक का उद्देश्य इस गद्यांश में व्यक्त हुआ है।

(4) लेखक की भाषा प्रभावपूर्ण व सार्थक उपमानों से युक्त है।

(3) “संस्कृति के उपासक भारतवासी इस स्थान पर गंगा जल के कलश आधे गोदावरी में उंडेलते हैं और फिर गोदावरी के पानी से भरकर उन्हें ले जाते हैं। कितनी भव्य विधि है, कितना पवित्र भाव प्रधान काव्य है। यह भक्ति भाव प्रत्येक हृदय में भरा हुआ है।”

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्री काका कालेलकर द्वारा रचित यात्रा वृत्त ‘दक्षिण गंगा : गोदावरी’ से लिया गया है। इस अंश में लेखक गोदावरी नदी पर बने मन्दिरों की घंटा ध्वनि के बीच भक्तजनों की भक्ति भावना का चित्रण करते हुए लिखते हैं –

व्याख्या—गोदावरी नदी पहाड़ी रास्तों से चलकर मैदान में आकर अपना वैभव दिखाती हुई आगे बढ़ती है। इसके किनारों पर बने मन्दिर भक्तजनों के आकर्षण के केन्द्र हैं। प्रातः और सायं इन मन्दिरों में घंटों की ध्वनि सुनाई पड़ती है जो भक्ति भावना के साथ मिलकर लहरों के साथ बहती हुई दूर से दूर तक फैल जाती है। सदियों से भक्तजन आकर इस गोदावरी में स्नान करते हैं, अपनी भक्ति भावना व्यक्त करते हैं। भक्तजन गंगा का जल कलश में भरकर लाते हैं। गोदावरी के जल में खड़े होकर कलश का आधा गंगाजल गोदावरी में डालते और कलश के आधे जल में गोदावरी का जल भरकर ले जाते हैं। गंगा और गोदावरी के जल का मिश्रण नहीं है यह बल्कि उत्तर और दक्षिण का मिलन है। वो संस्कृतियों का भव्य मिलन है। भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक भावना है। यह मिलन अलौकिक आनन्द प्रदान करता है। इन दो संस्कृतियों के मिलन से काव्यानन्द की प्राप्ति होती है। भक्त का हृदय गद्गद हो जाता है। वास्तव में उन भक्तजनों द्वारा की गई जल की यह अदली-बदली की प्रक्रिया सारे भारत की एकता का प्रतीक है। उत्तर व दक्षिण की दीवारों को ढहाकर सम्पूर्ण देश में भावात्मक एकता का जबरदस्त प्रयास है। जो काम बड़े-बड़े राजनेता या समाज सेवी नहीं कर सकते वह काम भारतीय संस्कृति के उपासक भक्तजन साधारण भारतवासी सहज ही कर डालते हैं। जिस कलश अथवा घंटे में गंगा एवं गोदावरी का जल भरकर आस्तिक भारतवासी के घर में जाता होगा, तो उस घर के निवासियों के मन में सम्पूर्ण भारत की एकता का स्पष्ट चित्र अंकित अवश्य रहता होगा। वह सोचता रहता होगा कि भारत का उत्तर व दक्षिण अलग-अलग नहीं है वरन् एक ही अखण्ड राष्ट्र के विभिन्न अंगों के समान है – जिसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। वह भाव-विभोर होकर गंगा मैया तथा गोदावरी मैया को अपने सिर पर एक साथ ही बैठी हुई अनुभव करता होगा। परन्तु उसके सिर पर बैठा हुआ कलश कलश न होकर उसके मन में बैठी हुई भावना व उसकी पवित्रता है। इसी कारण यह भाव प्रधान काव्य इतना पवित्र है।

विशेष—1. भारतीय संस्कृति की एक विशिष्टता ‘शायिकता’ के विशिष्ट महल का बड़ा सुन्दर अंकन है।

2. लेखक की सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति का परिचय प्राप्त होता है।

3. लेखक ने अपने उद्देश्यानुकूल मौलिक उद्भावना की है।

4. भारत की भावनात्मक एकता का सुन्दर निदर्शन है।

5. भाषा में सरलता होते हुए भी वह प्रधान हो गई है।

(4) “महाराष्ट्र के साधु-सन्तों ने यदि अपनी मंगल वाणी फैलायी न होती तो जन-स्थान मानो भयानक उजाड़ प्रदेश हो गया होता। गरमी की धूप को टालने के लिए जिस तरह तृण-सृष्टि चारों ओर फैल जाती है, उसी तरह जीवन की विषमता को भुला देने के लिए साधु-सन्त सर्वत्र विचरते हैं, यह कितने बड़े सौभाग्य की बात है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश श्री काका कालेलकर द्वारा रचित ‘दक्षिण गंगा : गोदावरी’ शीर्षक यात्रा वृत्त में से उद्धृत किया गया है। इसमें लेखक ने स्पष्ट किया है कि नासिक स्थित पंचवटी की नीरसता एवं शून्यता को साधु-सन्तों ने अपनी साधना से सरस बना दिया है।

व्याख्या—सीता हरण के पश्चात् पंचवटी में उदासीनता व्याप्त हो गई थी। राम लक्ष्मण को पंचवटी का वातावरण असहनीय था। इतने वर्षों के बाद पंचवटी आज भी उदास दिखती है किन्तु जब से साधु-सन्तों ने इस निर्जन प्रान्त में साधना करना आरम्भ किया है, जब से उनके उपदेश इस भूमि पर सुनाई पड़े हैं, तब से इस निर्जन प्रान्त की शून्यता दूर हो गई है। गरमी के कारण सारी धरती सूखी-सूखी दिखाई देती है, लेकिन जब ग्रीष्म से तपी धरती पर हरी-हरी छोटी घास उग आती है तो उसकी नीरसता समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार पंचवटी के सुन्दर स्थल को साधु-सन्तों ने विचरण करके सरस बना दिया है या स्थली साधु-सन्तों के निवास से भक्ति के मधुर भाव से भर गई है। साधु-सन्तों का विचरण और निवास हमारे लिए कितने बड़े सौभाग्य की बात है क्योंकि उनके विचरण से अनेक निर्जन और जन-शून्य स्थान, जिनके उजाड़ होने में कोई कसर नहीं रहती है, फिर से निवास के योग्य तो हो ही जाते हैं और साथ ही वहाँ के निवासियों को उन साधु-सन्तों की मंगलवाणी सुनने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है, जिसका अनुसरणकर वे अपने जीवन को सफल तथा सार्थक बनाने में समर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार साधु-सन्तों का विचरण व उनकी वाणी हमारे जीवन के लिए आवश्यक है।

विशेष – 1. काका कालेलकर गाँधीवादी विचारधारा के गुजराती लेखक हैं। अतः उन्होंने अपनी भक्ति-भावना का प्रदर्शन गोदावरी के प्राकृतिक सौन्दर्य को आधार बनाकर किया है।

2. लेखक की भाषा आलंकारिक है। पंचवटी में साधु-सन्तों के विचरण को उन्होंने पृथ्वी पर चारों ओर फैली तृष्ण-सृष्टि को उपमान बनाया है।

3. साधु-सन्तों के विचरण व वाणी का उद्देश्य लेखक ने जीवन की विषमता को भुलाना व्यक्त किया है।

4. लेखक की भाषा व शैली दोनों ही प्रभाव सम्पन्न हैं।

10.1 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न- 1. 'दक्षिण गंगा : गोदावरी' शीर्षक निबन्ध का सारांश लिखिये तथा बताइये कि इस यात्रावृत्त के माध्यम से काका कालेलकर क्या कहना चाहते हैं—अपने शब्दों में उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—दक्षिण गंगा : गोदावरी का सारांश—दक्षिण में स्थित कृष्णा तथा गोदावरी नदियाँ भूतकाल के गौरवशाली इतिहास की साक्षी हैं। गोदावरी सलिल, समृद्ध तथा इतिहास समृद्ध है। गोदावरी नदी बहुत लम्बी नदी है। इसने दक्षिण को समृद्ध व उन्नत बनाया है। महाराष्ट्र, मैसूर तथा आन्ध्रप्रदेश इसके बहाव क्षेत्र में आते हैं। गोदावरी नदी का उद्गम स्थान श्रयम्बक के पास पहाड़ की एक बड़ी दीवार है। कृष्णा के किनारे बाइसतारा और गोदावरी के किनारे नासिक पैठम महाराष्ट्र की सच्ची राजधानियाँ हैं। गोदावरी का इतिहास सहनशील श्री रामचन्द्र जी तथा दुःख मूर्ति सीता माता के वृत्तान्त से आरम्भ होता है। श्री रामचन्द्र जी ने यहाँ सुखी तथा दुःखी दोनों प्रकार का जीवन बिताया था। नासिक पंचवटी आज भी श्री रामचन्द्र जी, सीता माता तथा लक्ष्मण जी के वियोग में सूनी-सूनी लगती है। यदि ऋषि मुनियों ने अपनी सरल वाणी यहाँ नहीं बिखेरी होती तो यह स्थान अत्यन्त उजाड़ प्रदेश होता।

गोदावरी की सम्पूर्ण कला भद्राचलम से ही देखी जा सकती है। महापाट लक्ष्मण डेढ़-दो किलोमीटर चौड़ा है। लेकिन एक स्थान से गोदावरी दो गज की खाई में से होकर भी गुजरती है। यहाँ इसकी विस्मय में डालने वाली गर्जना सुनी जा सकती है। गोदावरी के इस संकरे जल-प्रवाह के स्थान से भी साहसी नाविक अपनी नाव खे ले जाते हैं। भद्राचल से राजमहेन्द्री या धवलेश्वर तक अखण्ड गोदावरी बहती है। इसके बाद गोदावरी को त्यागाय संभृतार्थानम् का सनातन सिद्धान्त याद आया होगा। इसलिए उसने अपना जल वितरण करना आरम्भ कर दिया। एक ओर गौमती गोदावरी, दूसरी ओर वशिष्ठ गोदावरी तथा बीच में कई द्वीप हैं एवं अन्तर्वेदी जैसे प्रदेश हैं। यहाँ वेदपाठी ब्राह्मण रहते आये हैं। डच, अंग्रेज तथा फ्रेंच लोगों ने भी गोदावरी के किनारे पड़ाव डाले थे।

निबन्धकार के मद्रास से राजमहेन्द्री जाते समय बैजवाड़े में सूर्योदय हुआ। वर्षा ऋतु के दिन होने से प्राकृतिक दृश्यों की छटा सर्वत्र फैली हुई थी। कोल्बूर स्टेशन के समीप पुल पर से गोदावरी का सुविशाल विस्तार दिखाई पड़ा। राजमहेन्द्री के समीप गोदावरी की शोभा गंगा, सिंधु, शोणभद्र तथा एरावती से भी सुन्दर है। यहाँ पर निबन्धकार ने सर्वाधिक भव्य काव्य का अनुभव किया। पश्चिम की ओर दूर-दूर तक पहाड़ियों का सुन्दर दृश्य था। आकाश में बादल छाये हुए थे। सांवाले बादलों के कारण गोदावरी के जल का सौन्दर्य और भी बढ़ गया था। पहाड़ियों पर सफेद बादल ऋषियों के समान लग रहे थे। गोदावरी का जल-प्रवाह पहाड़ों से निकलता हुआ ऐसी छटा बिखेर रहा था मानो विपत्तियों से विजय के साथ निकला देश अपना वैभव फैला रहा हो।

संस्कृति के उपासक भारतवासी गंगाजल के कलश गोदावरी में उड़ेलते हैं तथा गोदावरी के जल से इन कलश को पुनः भर लेते हैं। यह भव्य विधि आत्तन्ददायक है। निबन्धकार ने पुल पर से गुजरते समय पूर्व की ओर देखा तो उसे गोदावरी का पाट और भी बड़ा दिखाई दिया। इधर वत्तश्री खिली हुई थी, ऊँचे-ऊँचे वृक्ष थे, बाँयी ओर राजमहेन्द्री और धवलेश्वर की सुखी बस्ती थी। नदी के पानी में उन्माद था। कलंगियों का प्रवाह गोदावरी के विशाल प्रवाह से होड़ ले रहा था। निबन्धकार इस दृश्य को देखकर भावना में बह गया। उसने गोदावरी को सम्बोधित करके कहा कि माता गोदावरी तूने राम-लक्ष्मण, सीता से लेकर वृद्ध जटायु तक को स्तन-पान कराया है। तेरे तट पर शूरवीर, तत्त्व चिन्तक सन्त, राजनीतिज्ञ, देशभक्त तथा ईश्वरभक्त आदि पैदा हुए हैं। तू मेरे पूर्वजों की अधिष्ठाती है। दर्शन करके तो मैं कृतार्थ हो गया हूँ किन्तु मैं दुष्ट रावण का अन्त और रामराज्य की स्थापना होते हुए देखना चाहता हूँ तथा तेरे पुनः दर्शन करना चाहता हूँ। तू मुझे कांस की कलंगी के स्थजवर प्रवाह की तरह उन्मत्त बना दे, जिससे संकोच रहित हो मैं तेरी सेवा में रत रह सकूँ तथा अन्य सब कुछ भूल जाऊँ। तेरे नीर में अमोघ शक्ति है। इसकी एक बुँद भी व्यर्थ नहीं जायेगी। यही संकल्प लेकर लेखक काका कालेलकर इस यात्रावृत्त को समाप्त करते हैं।

लेखक क्या कहना चाहते हैं—'दक्षिण गंगा : गोदावरी' शीर्षक यात्रा-वृत्त के माध्यम से लेखक कालेलकर गोदावरी नदी की सलिल-समृद्धि और इतिहास-समृद्धि का चित्रण करके हमें यह कहना चाहते हैं कि गोदावरी गोपाल-कृष्ण के जीवन की विविधताओं

की भाँति विविधता ही विविधता से भरी हुई है और उसके अति-दीर्घ प्रवाह के किनारे सृष्टि के सौन्दर्य की विविधता और विपुलता भरी हुई है। गोदावरी और कृष्णा नदियाँ दक्षिण के उन्नत प्रदेश को तर करके उसे धन-धान्य से समृद्ध करती हैं और ये भूतकाल के गौरवशाली इतिहास की साक्षी होने के साथ ही भविष्य की महान आशाओं की प्रेरक भी हैं। इन दोनों नदियों का उद्गम स्थान पश्चिम समुद्र से सौ-सवा सौ किलोमीटर से अधिक दूर नहीं है, फिर भी ये दोनों नदियाँ हजार-बारह सौ किलोमीटर की यात्रा करके अपना जल-भार या कर-भासर पूर्व समुद्र को ही अर्पित करती हैं और इनके कर भार में महाराष्ट्र, मैसूर और आन्ध्रप्रदेश समा जाते हैं। मिश्र देश की संस्कृति की माना नील नदी इस गोदावरी के सामने कोई चीज नहीं है। गोदावरी का उद्गम त्र्यम्बक के पास पहाड़ की एक बड़ी दीवार में से हुआ है और इसके किनारे पर नासिक पैठण महाराष्ट्र की साँस्कृतिक राजधानी स्थित है। इसका इतिहास रामचन्द्र और दुःख मूर्ति सीता माता के वृत्तान्त से प्रारम्भ होता है और श्री राम ने अपने सुख के दिन तथा दारुण दुःख के दिन भी यहाँ व्यतीत किये थे। इस गोदावरी की सम्पूर्ण कला भद्राचलम से देखी जा सकती है और भद्राचलम से राजमहेन्द्री या धवलेश्वर तक अखण्ड गोदावरी बहती है। इसके बाद उसके दो भाग हो जाते हैं— 1. गोमती गोदावरी और 2. वशिष्ठ गोदावरी। परन्तु जब ऐसे समृद्ध देश को स्वतन्त्र रखने की शक्ति हमारे लोग खो बैठे थे, तब डच, अंग्रेज और फ्रेंच लोग भी इसके किनारे पड़ाव डालने को इकट्ठे हुए थे। राजमहेन्द्री के पास तो गोदावरी की शोभा अनोखी ही है, जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। इस प्रकार गोदावरी तो धीरोदात्त माता है और उसे दक्षिण की गंगा कहना सर्वथा उचित है।

उद्देश्य—प्रस्तुत यात्रा-वृत्त के लेखन में लेखक का जो उद्देश्य निहित रहा है, उसे लेखक के ही शब्दों में व्यक्त करना उचित है, जो इस प्रकार है—

माता गोदावरी, 'राम-लक्ष्मण-सीता से लेकर वृद्ध जटायु तक सबको तूने स्तन्यपाय कराया है। तेरे किनारे शूरवीर भी पैदा हुए हैं और तत्त्वचिन्तक भी। सन्त भी पैदा हुए हैं और राजनीतिज्ञ भी। देशभक्त भी पैदा हुए हैं और ईश भक्त भी। सभी की तू माता है। मेरे पूर्वजों की अधिष्ठात्री है। नयी-नयी आशाएँ लेकर मैं तेरे दर्शन के लिए आया हूँ। दर्शन से तो कृतार्थ हो गया हूँ किन्तु मेरी आशाएँ तूसे नहीं हुई हैं। जिस प्रकार तेरे किनारे रामचन्द्र ने दुष्ट रावण के नाश का संकल्प किया था, वैसा ही संकल्प मैं कब से अपने मन में लिये हूँ। तेरी कृपा होगी तो हृदय में से तथा देश में से रावण का राज्य मिट जायेगा, रामराज्य की स्थापना होते मैं देखूँगा और फिर तेरे दर्शन के लिए आऊँगा। और कुछ नहीं तो कांस की कलगी के स्थावर प्रवाह में माता की सेवा में रत रह सकूँ और बाकी सब कुछ भूल जाऊँ। तेरे नीर में अमोघ शक्ति है। तेरे नीर के एक बिन्दु का सेवन भी व्यर्थ नहीं जायेगा।'

इससे यह स्पष्ट होता है कि लेखक का कालेलक्ष्य का उद्देश्य भारत में रामराज्य की स्थापना करने का है, जो भावात्मक एकता से ही सम्भव हो सकता है और इस भावात्मक एकता की प्रतिष्ठा में हमारे देश की गोदावरी व कृष्णा जैसी अनेक नदियों का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। यही इन नदियों का साँस्कृतिक महत्त्व है। इस प्रकार माता गोदावरी के प्रति कृतज्ञता, राष्ट्र के प्रति प्रेम, सेवा और समर्पण का भाव जाग्रत करना ही लेखक का उद्देश्य है।

प्रश्न-2. गोदावरी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

उत्तर—लेखक का कालेलक्ष्य ने प्रस्तुत यात्रा-वृत्त 'दक्षिण गंगा : गोदावरी' में गोदावरी नदी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन अनेक पद्धतियों से किया है। सर्वप्रथम उन्होंने गोदावरी के प्राकृतिक सौन्दर्य के सन्दर्भ में लिखा है कि— 'गोपाल कृष्ण के जीवन में जिस तरह सर्वत्र विविधता ही विविधता भरी हुई है, एक-सा उत्कर्ष दिख ई देता है, उसी तरह गोदावरी के अति-दीर्घ प्रवाह के किनारे सृष्टि-सौन्दर्य की विविधता और विपुलता भरी पड़ी है।'

उद्गम स्थल का सौन्दर्य—लेखक ने गोदावरी के उद्गम स्थल के सौन्दर्य में कल्पना और असम्भव को सम्भव बनाने का चित्रण किया है। उनका कहना है कि गोदावरी सिर्फ दो गज की खाई में से निकलती है तब वह क्या सोचती होगी? अपनी सारी शक्ति और युक्ति काम में लाकर नाजुक समय में अपनी महाप्रजा को आगे ले चलने वाले किसी राष्ट्र पुरुष की तरह और संसार को विस्मय में डालने वाली गर्जना के साथ वह यहाँ से निकलती है। नदी में आने वाले घोडापुर और हाथीपुर जैसी भारी पुरों की बातें हम सुनते हैं, किन्तु एकदम पन्द्रह मीटर जितना ऊँचा पुर क्या कभी कल्पना में भी आ सकता है? पर जो कल्पना में सम्भव नहीं है, वह गोदावरी के प्रवाह में सम्भव है। सैकरी खाई में से निकलते हुए पानी के लिए अपना पृष्ठ भाग भी सपाट बनाये रखना असम्भव सा हो जाता है। अर्ध्य देते समय जिस प्रकार अंजलि की छोटी नाली-सी बन जाती है, उसी प्रकार खाई में से निकलने वाले पानी के पृष्ठ भाग की भी एक भयानक नाली बनती है। किन्तु अद्भुत रस तो इससे भी आगे अधिक है। इस नाली में से अपनी नाव को ले जाने वाले साहसी नाविक भी वहाँ मौजूद हैं। नाव के दोनों ओर पानी की ऊँची-ऊँची दीवारों को नाव के ही वेग से दौड़ते हुए देखकर मनुष्य के दिल में क्या-क्या विचार उठते होंगे।'

इस प्रकार लेखक ने कहा है कि त्र्यम्बक के पास पहाड़ की एक बड़ी दीवार में से गोदावरी का उद्गम हुआ है। इसकी सम्पूर्ण कला भद्राचलम से ही देखी जा सकती है। यहाँ इसका पाट लगभग दो किलोमीटर चौड़ा है। यही नदी ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों में से होकर अपना रास्ता बनाती हुई सिर्फ दो गज की खाई में से निकलती है, उस समय घोर गर्जना करती है। इसका अपर रूप अर्ध्य देते व्यक्ति की अंजलि के समान होता है। यह भद्राचलम से राजमहेन्द्री तक अखण्ड रूप से बहती है। इसके बाद इसने जीवन (जल) वितरण करना आरम्भ कर दिया। वह गोमती गोदावरी तथा वशिष्ठ गोदावरी कहलाई। राजमहेन्द्री के पास प्राकृतिक दृश्यों की शोभा देखते ही बनती है। पश्चिम की ओर पहाड़ियों का सुन्दर झुण्ड मन को मोह लेता है। सांवले बादलों के कारण गोदावरी की श्यामलता बढ़ जाती है। पहाड़ियों पर उतरते हुए सफेद बादल ऋषियों के जैसे मालूम होते हैं।

राजमहेन्द्री के पास गोदावरी की प्राकृतिक शोभा—राजमहेन्द्री के पास गोदावरी की प्राकृतिक शोभा को लेखक ने अतोखा कहा है और वहाँ काव्य अनुभव किया है। उसने पश्चिम की ओर नजर डाली तो दूर-दूर तक पहाड़ियों का एक झुण्ड बैठा हुआ प्रतीत हुआ। आकाश में बादल छाये हुए थे। इसलिए धूप बिल्कुल नहीं थी। सांवले बादलों के कारण गोदावरी के धूल-धूसरित जल की कालिमा और बढ़ गई थी। पहाड़ियों पर उतरे हुए सफेद बादल तो बिल्कुल ऋषियों जैसे मालूम हो रहे थे। निबन्धकार नदी के आस-पास के सौन्दर्य को देखकर अभिभूत हो गया था।

नदी का किनारा अर्थात् मानवी कृतज्ञता का अखण्ड उत्सव—गोदावरी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लेखक नदी के तट का सामंजस्य मानवीय भावनाओं के साथ करता है और निर्जीव को सजीव का बाना पहनाता है। सलिल-समृद्ध गोदावरी को अपने अंक में समेटते हुए गोदावरी के तट निरन्तर आलिंगन-सुख भोग रहे हैं। अतः वे गोदावरी के कृतज्ञ हैं कि वह अपने वेग को सीमित रखकर उनको जीवनदान दिए हुए हैं। यदि गोदावरी उफन उठे तो इन तटों का पता ही न चले। लेकिन वह ऐसा नहीं करती है, क्योंकि उसकी सहज, स्वाभाविक ममता इन किनारों से हो गई है। वह अपनी सीमा में रहकर किनारों को जीवन-दान दे रही है। इस जीवन-दान के प्रति नदी के तट अर्थात् किनारे कृतज्ञ हैं। लेखक ने नदी के किनारों को मानवी कृतज्ञता का अखण्ड उत्सव कहा है और सफेद प्रासादों व ऊँचे पर्वत शिखरों को एक अखण्ड उपासना, जहाँ भक्त लोग नदी की लहरों पर से मन्दिर के घण्टनाद को उस पार तक भेजते हैं।

जल का सौन्दर्य—इतना ही नहीं लेखक ने गोदावरी के जल के सौन्दर्य का भी चित्रण किया है। सीता की खोज में निकले हुए रामचन्द्र जी की दुःखोन्मत्त आँखें देखकर वहाँ के पशु-पक्षियों के दुःखाश्रुओं से लेखक ने गोदावरी के विमल जल को कषाय होता हुआ चित्रित किया है। गौतमी गोदावरी तथा वशिष्ठ गोदावरी के रूप में तो जल-धाराओं में लेखक ने 'त्याज्य संमृताभारनाम्' के सनातन सिद्धान्त को याद किया है तो उसके सरस जल से पैदा होने वाले शवि धन्त्य पर परिपुष्ट होकर वेदघोष करने वाले ब्राह्मणों का निवास बनाया। गोदावरी का जल-प्रवाह जब पहाड़ों से निकलकर गौरव के साथ आता है तो उसमें स्थित छोटे-बड़े जहाज नदी के बच्चों जैसे दिखाई देते हैं। उसके जल भँवरों को लेखक ने बच्चों की उपमा देने का प्रस्ताव किया है, क्योंकि वे जहाँ-तहाँ पैदा होकर कुछ देर तक दिखाई देते हैं, बड़े तूफान और स्वांग रचते हैं, एकाध क्षण में हंस देते हैं और फिर टूट पड़ते हैं। वे चाहे जहाँ से आते और चाहे जहाँ चले जाते या लुप्त हो जाते हैं। गोदावरी के जल में कासकी सफेद कलशियों का स्थावर प्रवाह दूर-दूर चलता हुआ नजर आता है, जो पवन के साथ षड्यन्त्र रचता है और मनमानी लहरें उछाल सकता है तथा उसे गोदावरी के विशाल जल-प्रवाह से होड़ करते संकोच नहीं होता है। गोदावरी के जल में संस्कृति के उपासक भारतवासी गंगाजल के कलश आधे खाली करते हैं और फिर गोदावरी के जलसे उन्हें भरकर ले जाते हैं। यह भव्य विधि है और एक पवित्र भाव-प्रधान काव्य है और हमारे सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक है।

प्रश्न-3. सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से उत्तर की गंगा और दक्षिण की गोदावरी की महिमा के सम्बन्ध में लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—उत्तर की गंगा और दक्षिण की गंगा गोदावरी के प्रति सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से लेखक का कालेलकर का दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट तथा विशिष्ट महत्वपूर्ण है। वे भारत की इन नदियों में भारतीय सांस्कृतिक की विशेषताओं और विशेषतः समन्वय की प्रवृत्ति के दर्शन करते हैं। गंगा व गोदावरी के किनारों पर भारत की अनेक सांस्कृतिक राजधानियाँ स्थित हैं और देश के गौरवपूर्ण सांस्कृतिक इतिहास की साक्षी हैं। लेखक ने देखा कि संस्कृति के उपासक भारतवासी गंगाजल के कलश आधे गोदावरी में उडेलते हैं और फिर गोदावरी के पानी से भरकर उन्हें ले जाते हैं। जिन्हें वे गंगा के जल में उडेलते हैं। उनकी यह भव्य-विविध पवित्र भाव प्रधान काव्य है। इसमें भक्तित्व प्रत्येक हृदय में भरा रहता है। भक्ति की यह ध्वनि ही सांस्कृतिक समन्वय की प्रतीक है और उत्तर और दक्षिण की तथाकथित दीवारों को ढहाकर सम्पूर्ण भारत की एकता का जबरदस्त प्रयास है। जिस कलश अथवा घट में गंगा एवं गोदावरी का जल भरकर आस्तिक भारतवासी अपने घर जाता होगा तो उसके मन में सम्पूर्ण भारत की एकता का एक स्पष्ट चित्र अंकित रहता होगा और वह भाव विभोर

होकर गंगा मैया और गोदावरी मैया को अपने सिर पर बैठा हुआ कलश न होकर उसके मन में बैठी हुई देश की भावनात्मक एकता की पवित्र भावना है, जो हमें साँस्कृतिक समन्वय की ओर ले जाती है।

साँस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से ही लेखक गंगा और गोदावरी को सभी भारतवासियों की माता बताता है और वह उन्हें अपने पूर्वजों की अधिष्ठा भी मानता है। इनके किनारों पर कितने ही शूरवीर, तत्त्वचिन्तक, देशभक्त, सन्त, राजनीतिज्ञ और अवतारी पुरुष तथा महापुरुष उत्पन्न हुए और उन सबको इन्होंने स्तन्यपान कराया है। इस प्रकार हम सब भारतवासी साँस्कृतिक दृष्टि से गंगा और गोदावरी की सन्तानें हैं और हम सब एक हैं। गंगा और गोदावरी की महिमा के सम्बन्ध में साँस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से लेखक का यही दृष्टिकोण है।

प्रश्न-4. काका कालेलकर की शैली का परिचय सोदाहरण दीजिए।

उत्तर—अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के राष्ट्र-भाषा हिन्दी कवियों में काका कालेलकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने गुजराती होकर भी हिन्दी की प्रशंसनीय सेवा की है। उनकी शैली में गम्भीरता, पाण्डित्य, व्यंग्य, उपदेशात्मकता आदि का सहज ही समावेश दिखाई देता है। उनकी अभिव्यक्ति में सुगमता है तथा विषय का सुन्दर प्रतिपादन है। उनकी भाषा सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। इसके साथ-साथ काका कालेलकर की शैली में अनेक विशेषताएँ हैं, जिनमें से कुछ पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है—

1. भाव-प्रवणता—भाव प्रवणता की दृष्टि से यह यात्रावृत्त बहुत सम्पन्न है। लेखक कई स्थानों पर भावतिरस्क में बहा है। गोदावरी को सम्बोधित करते हुए लेखक कहता है—‘नयी-नयी आशाएँ लेकर मैं तेरे दर्शन के लिए आया हूँ। दर्शन से कृतार्थ हो गया हूँ किन्तु मेरी आशाएँ तूझ नहीं हुई हैं। जिस प्रकार तेरे किनारे रामचन्द्र ने दुष्ट रावण के नाश का संकल्प लिया था, वैसा ही संकल्प मैं कब से अपने मन में लिए हूँ। तेरी कृपा होगी तो हृदय में से तथा देश में से रावण का राज्य मिट जायेगा, रामराज्य की स्थापना होते मैं देखूँगा और फिर तेरे दर्शन के लिए आऊँगा और कुछ नहीं तो घास की कलँग के स्थावर प्रवाह की तरह मुझे उन्मुक्त बना दे, जिससे बिना संकोच के एक ध्यान होकर मैं माता की सेवा में रत रह सकूँ और बाकी सब कुछ भूल जाऊँ। तेरे नीर में अमोघ शक्ति है। तेरे नीर की एक बिन्दु का सेवन भी व्यर्थ नहीं जायेगा।’

तत्सम शब्दावली—इस यात्रा-वृत्त में काका कालेलकर की भाषा में तत्सम शब्दों के प्रयोग का आग्रह अधिक रहा है। यात्रा वृत्तान्त का आरम्भ ही काका कालेलकर इस प्रकार करते हैं—‘कृष्णा और गोदावरी इन दो नदियों ने दो विक्रमशाली महाप्रजाओं का पोषण किया है। यदि हम कहें कि महाराष्ट्र का स्वराज्य और आन्ध्र का साम्राज्य इन्हीं दो नदियों के ऋणी हैं तो इसमें जरा-सी भी अत्युक्ति नहीं होगी। साम्राज्य बने और टूटे, महाप्रजाएँ चढ़ी और गिरी, किन्तु इस ऐतिहासिक भूमि में दो नदियाँ अखण्ड बहती ही जा रही हैं। ये नदियाँ भूतकाल के गौरवशाली इतिहास की जितनी साक्षी हैं, उतनी ही भविष्य की महान् आशाओं की प्रेरक भी हैं। इनमें भी गोदावरी का महत्त्व कुछ अनोखा ही है। यह जितनी ही सलिल-समृद्ध है, उतनी ही इतिहास समृद्ध भी। गोपाल कृष्ण के जीवन में जिस तरह सर्वत्र विविधता भरी हुई है, एक-सा उत्कर्ष दिखाई देता है, उसी तरह गोदावरी के अतिदीर्घ प्रवाह के किनारे सृष्टि-सौन्दर्य की विविधता और विपुलता भरी पड़ी है।’ पूरे वृत्तान्त में अधिकांश स्थलों पर श्री काका कालेलकर ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। किन्तु इनकी भाषा का प्रवाह एवं प्रभाव कहीं कम नहीं हुआ है। सब कुछ सामान्य-सा लगता है।

3. प्राकृतिक दृश्य—इसमें प्राकृतिक दृश्य मनोहारी हैं। लेखक ने इन प्राकृतिक दृश्यों का उपयोग वातावरण की सृष्टि करने के लिए अधिक किया है। वर्षा ऋतु में फैली हरियाली का वर्णन लेखक ने एक स्थान पर इस प्रकार किया है—‘वर्षा ऋतु के दिन थे। फिर पूछना ही क्या था? सर्वत्र बिबिध छटाओं वाला हरा रंग फैला हुआ था और हरे रंग का इस तरह जमीन पर पड़े रहना मानो असह्य लगने से उसके बड़े-बड़े गुच्छे हाथ में लेकर ऊपर उछालने वाले ताड़ के पेड़ जहाँ-तहाँ दीख पड़ते हैं।’

4. चित्रात्मकता—काका कालेलकर ने ‘दक्षिण गंगा : गोदावरी’ शीर्षक यात्रा-वृत्त में अपनी सशक्त लेखनी के माध्यम से सजीव चित्र अंकित किए हैं। इसलिए यह निबन्ध चित्रात्मकता की दृष्टि से प्रभावशाली है। इस निबन्ध में शब्द-चित्रों की बहुलता है। यहाँ केवल एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। ‘छोटे-बड़े जहाज नदी के बच्चों जैसे थे। माता के स्वभाव से परिचित होने के कारण उसकी गोद में चाहे जैसे नावें तो उन्हें कौन रोकने वाला था? किन्तु बच्चों की उपमा तो इन नावों की अपेक्षा प्रवाह में जहाँ-तहाँ पैदा होने वाले भू-भँवरों को देनी चाहिए। वे कुछ देर दिखाई देते, बड़े तूफान का स्वांग रचते, एकाध क्षण में हँस देते और फिर टूट पड़ते। चाहे जहाँ से आते और चाहे जहाँ चले जाते या लुप्त हो जाते।’

10.2 सारांश

इस प्रकार अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के निवासी होने पर भी काका कालेलकर की शैली व भाषा अपनी शब्दावली, प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण, भाव-प्रवणता और चित्रात्मकता के बल पर किसी भी हिन्दी-भाषी क्षेत्र के साहित्यकार से किसी भी रूप में कम नहीं है।

इकाई- 11 : इतिहास से शिक्षा

(पं. जवाहरलाल नेहरू)

संरचना

11.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

11.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

11.2 सारांश

11.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “आदमी का मन भी क्या अजीब खिचड़ी है, जिसमें ऐसे विचार भरे रहते हैं कि जिनका एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं होता और ऐसी तस्वीरें मौजूद रहती हैं, जिनमें कोई तरकीब नहीं पाई जाती—जैसे कोई ऐसी चित्रशाला हो, जहाँ तस्वीरों की सजावट में कोई व्यवस्था न रखी गई हो। लेकिन शायद इसमें हम लोगों का सारा दोष नहीं है।”

प्रसंग व सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण पं. जवाहरलाल नेहरू के पत्र ‘इतिहास से शिक्षा’ से उद्धृत है, जो उन्होंने नैनी जेल से 5 फरवरी, 1931 को अपनी प्रिय बेटी प्रियदर्शिनी इन्दिरा जी के नाम लिखे थे। इसमें उन्होंने अपने जेल-जीवन पर प्रकाश डालते हुए अपनी विचारधारा को स्पष्ट किया है।

व्याख्या—पं. जवाहरलाल नेहरू ने लिखा कि जब वे जेल में पुराने जमाने का खयाल करते हैं तो उनकी आँखों के सामने बहुत-सी तस्वीरें तेजी के साथ घूम जाती हैं और उन तस्वीरों में से कुछ अधिक देर और कुछ थोड़ी देर तक उनके खयाल में ठहरती हैं। नेहरू जी कहते हैं कि वे तस्वीरें उनकी पसन्द की चीजें हैं और उनके बारे में विचार करते हुए वे उनमें ही डूब जाते हैं और अनजाने में ही पिछली घटनाओं का आजकल की घटनाओं का मुकाबला कर उनसे आगे की शिक्षा लेने की कोशिश करते हैं। परन्तु वे लिखते हैं कि आदमी का मन बड़ा अजीब होता है और जिस प्रकार खिचड़ी में सब तरह के अनाज मिलाकर पककर एक हो जाते हैं, उसी तरह आदमी के मन में भी तरह-तरह के विचारों व भावों की खिचड़ी-सी भरी रहती है क्योंकि मन में भरे हुए उन विचारों में एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं होता है और मन में जिन घटनाओं या व्यक्तियों की तस्वीरें मौजूद रहती हैं, उनमें भी कोई तरकीब अर्थात् कम नहीं होता है। अतः मन जैसे कोई चित्रशाला बन जाता है। परन्तु मन एक ऐसी चित्रशाला है, जिसमें तस्वीरों की सजावट में कोई व्यवस्था नहीं रहती है। सजावट की इस अव्यवस्था का सारा द्रेश हमें या हमारे मन को ही नहीं दिया जाना चाहिए। यद्यपि हममें से बहुत से आदमी अपने दिमाग में घटनाओं के क्रम को तरकीब से जमा सकने की शक्ति रखते हैं तो भी कभी-कभी घटनाएँ ही स्वयं इतनी अजीब होती हैं कि उन्हें किसी भी तरकीब या क्रम से ढाँचे में बैठाकर व्यवस्थित करना बड़ा मुश्किल हो जाता है।

विशेष—1. पत्र का प्रारम्भ घटनाओं की विचित्रता से किया गया है, क्योंकि इतिहास में घटनाओं का ही व्यवस्थित वर्णन किया जाता है।

2. नेहरू जी की भाषा संघर्षा प्रचलित व सरल भाषा है, जिसमें उर्दू-फारसी के शब्दों का प्राचुर्य उपलब्ध होता है।

3. शैली में उदाहरण का प्रश्रय विचारों की स्पष्टता में सहायक सिद्ध हुआ है।

2. “कभी-कभी हम इतिहास के उन बीते हुए जमानों के बारे में पढ़ते हैं, जो हमारे जमाने से बेहतर मालूम होते हैं और अधिक संस्कृत व सभ्य भी जान पड़ते हैं। इससे हमें शक होने लगता है कि हमारी दुनियाँ आगे बढ़ रही है या पीछे हट रही है। गुजरे हुए जमाने में खुद हमारे देश में ही ऐसे उज्ज्वल युग अवश्य बीते हैं जो हर बात में वर्तमान से बहुत अच्छे थे।”

प्रसंग व सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण पं. जवाहरलाल नेहरू के पत्र ‘इतिहास साक्षी है’ शीर्षक से उद्धृत है, जिसमें उन्होंने प्राचीन व नवीन ऐतिहासिक युगों व घटनाओं का तुलनात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है। यह पत्र नेहरू जी ने अपनी पुत्री इन्दिरा जी को नैनी जेल से 5 जनवरी, सन् 1931 को लिखा था।

व्याख्या—नेहरू जी ने लिखा कि हम आज की घटनाओं की तुलना यदि इतिहास की प्राचीन घटनाओं से करते हैं तब कभी-कभी जब हम इतिहास में उन बीते हुए युगों के बारे में भी पढ़ते हैं जो हमारे जमाने से अच्छे मालूम पड़ते हैं और अधिक सभ्य व सुसंस्कृत भी प्रतीत होते हैं। ऐसे समय हमें यह शक होने लगता है कि हमारी दुनियाँ आगे बढ़ रही है या पीछे हट रही है क्योंकि आज के जमाने की घटनाएँ हमेशा पिछले इतिहास की घटनाओं से अच्छी व बेहतर होनी चाहिए, तभी हम कह सकते हैं कि हमारी दुनियाँ आगे बढ़ रही है। परन्तु यदि आज की घटनाएँ पिछली घटनाओं से बेहतर नहीं होकर हीन या पिछड़ी या असभ्यतापूर्ण होती हैं तो हमें यह प्रतीत होने

लगता है कि हमारी दुनियाँ पीछे हट रही है। यह सच है कि मिश्र, चीन, यूनान आदि बहुत से देशों के पुराने इतिहास में उज्ज्वल युग हुए हैं और इन देशों में से बहुत-से बाद में पिछड़ गये और गिर गये हैं। हमारा खुद के देश भारत का इतिहास भी इस तथ्य का साक्षी है कि हमारा पुराना इतिहास उज्ज्वल था और भारत जगतगुरु के पद पर आसीन था। यहाँ अनेक महापुरुषों और सन्तों ने मानव जीवन को सुधारा तथा निखारा है। गुप्त युग, बुद्ध, गौतम, महावीर स्वामी के युग की घटनाएँ तथा हर्ष, अशोक, अकबर जैसे सम्राटों का युग आज के युग से हमें अच्छा लगता है। परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि हम पीछे हट रहे हैं और आगे की ओर बढ़ नहीं पा रहे हैं। लेकिन हमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।

विशेष—1. पत्र का प्रारम्भ घटनाओं की विचित्रता से किया गया है, क्योंकि इतिहास में घटनाओं का ही व्यवस्थित वर्णन किया जाता है।

2. नेहरू जी की भाषा सर्वथा प्रचलित व सरल भाषा है, जिसमें उर्दू-फारसी के शब्दों का प्राचुर्य उपलब्ध होता है।

3. शैली में उदाहरण का प्रश्रय विचारों की स्पष्टता में सहायक सिद्ध हुआ है।

(2) “कभी-कभी हम इतिहास के उन बीते हुए जमानों के बारे में पढ़ते हैं, जो हमारे जमाने से बेहतर मालूम होते हैं और अधिक संस्कृत व सभ्य भी जान पड़ते हैं। इसमें हमें शक होने लगता है कि हमारी दुनियाँ आगे बढ़ रही है या पीछे हट रही है। गुजरे हुए जमाने में खुद हमारे देश में ही ऐसे उज्ज्वल युग अवश्य बीते हैं जो हर बात में वर्तमान से बहुत अच्छे थे।”

प्रसंग व सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण पं. जवाहरलाल नेहरू के पत्र ‘इतिहास साक्षी है’ शीर्षक से उद्धृत है, जिसमें उन्होंने प्राचीन व नवीन ऐतिहासिक युगों व घटनाओं का तुलनात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है। यह पत्र नेहरू जी ने अपनी पुत्री इन्दिरा जी को नैनीताल से 5 जनवरी, सन् 1931 को लिखा था।

व्याख्या—नेहरू जी ने लिखा है कि हम आज की घटनाओं की तुलना यदि इतिहास की प्राचीन घटनाओं से करते हैं तब कभी-कभी जब हम इतिहास में उन बीते हुए युगों के बारे में भी पढ़ते हैं जो हमारे जमाने से अच्छे मालूम पड़ते हैं और अधिक सभ्य व सुसंस्कृत भी प्रतीत होते हैं। ऐसे समय हमें यह शक होने लगता है कि हमारी दुनियाँ आगे बढ़ रही है या पीछे हट रही है। क्योंकि आज के जमाने की घटनाएँ हमेशा पिछले इतिहास की घटनाओं से अच्छी व बेहतर होनी चाहिए, तभी हम कह सकते हैं कि हमारी दुनियाँ आगे बढ़ रही है। परन्तु यदि आज की घटनाएँ पिछली घटनाओं से बेहतर नहीं होकर हीन या पिछड़ी या असभ्यतापूर्ण होती हैं तो हमें यह प्रतीत होने लगता है कि हमारी दुनियाँ पीछे हट रही है। यह सच है कि मिश्र, चीन, यूनान आदि बहुत से देशों के पुराने इतिहास में उज्ज्वल युग हुए हैं और इन देशों में से बहुत-से बाद में पिछड़ गये और गिर गये हैं। हमारा खुद के देश भारत का इतिहास भी इस तथ्य का साक्षी है कि हमारा पुराना इतिहास उज्ज्वल था और भारत जगतगुरु के पद पर आसीन था। यहाँ अनेक महापुरुषों और सन्तों ने मानव जीवन को सुधारा तथा निखारा है। गुप्त युग, बुद्ध, गौतम, महावीर स्वामी के युग की घटनाएँ तथा हर्ष, अशोक, अकबर जैसे सम्राटों का युग आज के युग से हमें अच्छा लगता है। परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि हम पीछे हट रहे हैं और आगे की ओर बढ़ नहीं पा रहे हैं। लेकिन हमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।

विशेष—1. नेहरू जी ने इतिहास की घटनाओं की तुलना में वर्तमान के प्रति शंका व उसका निवारण करने का प्रयास किया है।

(3) “हम क्रांति के दरवाजे पर खड़े हैं और यह नहीं जानते कि भविष्य में क्या होने वाला है। लेकिन हमारी मेहनत का फल बहुत काफी मात्रा में वर्तमान ने ही हमारे सामने ला रखा है। भारत की स्त्रियों को देखो कि वे कितने अभिमान के साथ लड़ाई में सबसे आगे बढ़ती जा रही हैं। नम्र लेकिन बहादुर और किसी से न दबने वाली स्त्रियाँ, देखो किस तरह दूसरों को आगे बढ़ने का रास्ता बता रही हैं?”

प्रसंग व सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण नैनी जेल से नेहरू द्वारा प्रियदर्शिनी इन्दिरा जी को 7 जनवरी, 1931 के पत्र ‘इन्कलाब जिन्दाबाद’ से उद्धृत है। इसमें नेहरू जी ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम की दशा का चित्रण करते हुए उसमें स्त्रियों के योगदान को महत्वपूर्ण बताया है।

व्याख्या—पं. जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं कि हम क्रांति व परिवर्तन क्यों चाहते हैं और इन्कलाब जिन्दाबाद का नारा क्यों लगाते हैं? इसका उत्तर है कि हम भारत में बहुत बड़ा परिवर्तन चाहते हैं और भारत आजाद हो जाए तो भी हमें निश्चित नहीं बैठना है। सारी प्रकृति के साथ मनुष्य जाति और राष्ट्र की जिन्दगी बदलनी है, चाहे हम उस बदलाव को पसन्द करें या नहीं। आज हम क्रांति के दरवाजे पर खड़े हैं और हम यह भी नहीं जानते हैं कि हमारी इस क्रांति का भविष्य में क्या परिणाम होगा। परन्तु एक बात इस क्रांति से निश्चित साफ हो गई है कि हमने जो जी-तोड़ मेहनत की है, उसका फल वर्तमान काल ने हमारे सामने काफी मात्रा में लाकर रख दिया है। इसका प्रमाण इस क्रांति में सहयोग देने वाली स्त्रियाँ हैं। जो स्त्रियाँ पहले यहाँ परदे में रहती थी, वे आज तेजी से परदा छोड़ रही हैं और बड़े अभिमान के साथ लड़ाई में सबसे आगे बढ़ रही हैं। वे स्त्रियाँ नम्र स्वभाव से परिपूर्ण होते हुए भी बहादुर हैं और किसी अन्याय व अत्याचार के पाशविक बल के सामने झुकने व दबने वाली नहीं हैं। वे तो आज दूसरों को भी आगे बढ़ने का सही रास्ता बता रही हैं।

विशेष— 1. नेहरू जी ने भारतीय स्त्रियों की प्रगतिशीलता का अंकन किया है।

2. क्रांति का शुभ संकेत चित्रित है।

11.1 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. 'प्रियदर्शिनी' सम्बोधन किसे किया गया है और किस लिए किया गया है ?

उत्तर— 'प्रियदर्शिनी' सम्बोधन— 'प्रियदर्शिनी' सम्बोधन नेहरू जी ने अपनी पुत्री इन्दिरा गाँधी के लिए किया है। इसका कारण उन्होंने नैनी जेल से दिनांक 7 जनवरी, 1931 के लिखे पत्र 'इन्कलाब जिन्दाबाद' में इस प्रकार बताया है—

'प्रियदर्शिनी आँखों को प्यारी, लेकिन जब आँखों से ओझल हो तो और भी प्यारी।'।

नेहरू जी की यह पुत्री इन्दिरा उनकी इकलौती सन्तान थी अतः उसके प्यारी होने में किसी प्रकार की शंका ही नहीं की जा सकती है क्योंकि पुत्र या पुत्री तो आत्मजया तथा आत्मजा होते हैं और वे माता-पिता को आत्मा की भाँति ही प्रिय भी होते हैं। इन्दिरा जी की माता मलाका जेल में बैठी थी। अतः इस परिस्थिति में नेहरू जी उसे बहुत अधिक लाड-प्यार करते थे और वह भी नेहरू जी के स्वप्नों को साकार करने वाली सिद्ध हुई। उसने भारत के प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री के स्वर्गवास के उपरान्त विश्व के सबसे बड़े जनतांत्रिक गणराज्य के प्रधानमंत्री के पद पर बड़ी सफलतापूर्वक कार्य किया और भारत की प्रतिष्ठा को बढ़ाया था।

प्रश्न-2. 'एक विचारक का पत्र सामान्य नहीं होता, वह अगाध ज्ञान का भण्डार होता है।' उक्त कथन की दृष्टि से उक्त दोनों पत्रों से जो ज्ञान आपको प्राप्त होता है, उसका उल्लेख कीजिए।

उत्तर— नेहरू जी एक विचारक थे—वे सामान्य विचारक न होकर महान् विचारक थे और प्रत्येक बात की तह तक पहुँचकर उसका विवेचन व विश्लेषण करने में वे सिद्धहस्त थे। इंग्लैण्ड जैसे देश में शिक्षा ग्रहण करने और भारतीय स्वतन्त्रता की ललक को हृदय में संजोने के कारण उनके पत्र अगाध ज्ञान के भण्डार सिद्ध होते हैं। प्रस्तुत दोनों पत्र— 1. इतिहास से शिक्षा तथा 2. इन्कलाब जिन्दाबाद में नेहरू जी के विचारक रूप के स्पष्टतः दर्शन किये जा सकते हैं और उनके ये पत्र अगाध ज्ञान के भण्डार हैं—यह सर्वथा सत्य प्रतीत होता है। इन दोनों पत्रों से हमें कई प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है, जिसका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

(अ) इतिहास से शिक्षा— 1. **जीवों का सिरताज आदमी—** इतिहास से शिक्षा शीर्षक पत्र से हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि इतिहास केवल पढ़ने व रटने का ही विषय नहीं है वरन् हमें इतिहास की पुरानी घटनाओं की तुलना आज की घटनाओं से करके उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। नेहरू जी ने लिखा है कि 'इतिहास पढ़कर हमें यह सीखना चाहिए कि दुनियाँ ने कैसे आहिस्ता-आहिस्ता लेकिन निश्चित रूप से तरक्की की है। दुनियाँ के आरम्भ के साल जीवों की जगह अधिक उन्नत और पेचीदा जीव कैसे आ गये और कैसे सबसे आखिर में जीवों का सिरताज आदमी पैदा हुआ और अपनी बुद्धि के जोर पर उसने कैसे दूसरों पर विजय पाई। बर्बरता से निकलकर सभ्यता की ओर की प्रगति का हाल इतिहास का विषय माना गया है।'

2. मानव जीवन व सहयोग— इस पत्र से हमें आज की दुनियाँ में सहयोग के अभाव का पता चलता है। नेहरू जी ने लिखा है कि 'एक गुल्क या राष्ट्र दूसरे गुल्क और दूसरे राष्ट्र पर खुदगर्जी से आक्राणण कर रहा है या उसे सता रहा है। एक आदमी दूसरे आदमी से बहुत फायदा उठा रहा है।'

3. हिम्मत न हारना— नेहरू जी ने इस पत्र में यह बताया है कि भारत, चीन, मिश्र, यूनान आदि बहुत से देशों के पुराने इतिहास में उज्ज्वल युग हुए हैं और इन देशों में से बहुत-से बाद में पिछड़ गये और गिर गये हैं लेकिन फिर भी हमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।

4. डींगें मारने वाले बड़े नहीं होते हैं— इस पत्र से हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि जो डींगें मारते हैं वे अक्सर बड़े नहीं हुआ करते हैं। 'आजकल बहुत-से लोग हमारी सभ्यता की ओर विज्ञान के चमत्कारों की डींग मारते रहते हैं। इसमें शक नहीं कि विज्ञान ने बहुत चमत्कार कर दिया है और बड़े-बड़े वैज्ञानिक पूरी इज्जत के योग्य हैं।'

5. मानव ने बहुत-से जीवों की अपेक्षा ज्यादा प्रगति नहीं की है— इस पत्र से हमें यह ज्ञान होता है कि यद्यपि अपने बुद्धि बल से मनुष्य पृथ्वी के जीवों का सिरताज बन गया है, परन्तु बहुत-सी बातों में आदमी ने दूसरे जीवों की अपेक्षा बहुत ज्यादा प्रगति नहीं की है और कुछ बातों में कुछ जीव आदमी से अब भी श्रेष्ठ हैं। नेहरू जी ने मैटरलिंग की लिखी हुई पुस्तक 'शहद की मक्खी, दीमक और चींटी की जिन्दगी' नामक किताब के आधार पर इन जन्तुओं के सामाजिक संगठन को आदमी के सामाजिक संगठन से अच्छा बताया है क्योंकि इन छोटे-छोटे जन्तुओं ने सहयोग व सार्वजनिक हित के लिए त्याग की कला आदमी की अपेक्षा ज्यादा सीख रखी है।

6. भारत के पतन का कारण— नेहरू जी ने इस पत्र में भारत के पतन का प्रमुख कारण सहयोग और सार्वजनिक हित के लिए त्याग करने की असली महानता के राजमार्ग को भूल जाना बताया है।

7. मनुष्य मात्र का हित सबसे बड़ी चीज है—नेहरू जी को इस बात की प्रसन्नता है कि भारत की आजादी के लिए मर्द, औरतें, लड़के और लड़कियाँ हँसते-हँसते बलिदान होने में आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। लेकिन मनुष्य मात्र का हित इससे भी बड़ी चीज है और क्योंकि हम यह महसूस करते हैं कि हमारा संग्राम मनुष्य मात्र की तकलीफों और मुसीबतों को मिटाने के महान् संग्राम का एक हिस्सा है, हम भी इस बात पर खुशी मना सकते हैं कि हम दुनियाँ की प्रगति में मदद करके अपने कुछ फर्ज अदा कर रहे हैं।

(ब) इन्कलाब जिन्दाबाद—यह नेहरू जी द्वारा नैनी जेल से 7 जनवरी, 1931 को अपनी बेटी प्रियदर्शिनी को लिखा गया पत्र है, जिसमें सबसे पहले हमें 'प्रियदर्शिनी' शब्द के अर्थ का सही ज्ञान होता है। इसमें उन्होंने इस नारे का जेल में प्रभाव बताया है कि मनुष्य जाति की और राष्ट्र की जिन्दगी में परिवर्तन सदा होते रहते हैं और भारत में भी आज परिवर्तन की जरूरत है।

1. क्रांतियों के कारण—इस पत्र से हमें क्रांतियों के कारण का ज्ञान होता है कि बहुत से लोग इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं कि दुनियाँ बदलती रहती है और सोच-विचार करने से उन्हें डर लगता है। दुनियाँ तो फिर भी आगे-आगे बढ़ती ही जाती है और क्योंकि कुछ लोग बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने को नहीं ढालते हैं, इसलिए समय-समय पर बड़े-बड़े विस्फोट व बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ हो जाती हैं, जैसे—फ्रांस व रूस की क्रान्तियाँ।

2. हमारी चाह—नेहरू जी ने इस पत्र में बताया है कि हम आजादी चाहते हैं लेकिन हम इससे भी बढ़कर कुछ चाहते हैं। 'हमारा फर्ज है कि हम अपने देश की गन्दगी, गरीबी और मुसीबतों को निकाल फेंकें और जहाँ तक हो सके बहुत से आदमियों के दिमागों में भरे हुए जालों को भी साफ कर दें, जिनकी वजह से कि वे लोग विचार नहीं कर पाते और उस महान् काम में, जो हमारे सामने है, सहयोग नहीं देते।'

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों पत्रों से हमें नेहरूजी के अगाध ज्ञान-भण्डार से कई प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रश्न-3. इन्कलाब का प्रभाव देश की स्वतन्त्रता के पहले क्या था—नेहरू जी के शब्दों के आधार पर वर्णन कीजिए।

उत्तर—'इन्कलाब जिन्दाबाद' का प्रभाव देश की स्वतन्त्रता के पहले स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जेल जाने वालों, स्त्रियों, बच्चों व साधारण जनता में व्याप्त था। नेहरूजी ने अपने इस पत्र के आरम्भ में ही उसे झाड़ल की गर्जना जैसा बताया है, जिसकी जोश भरी ललकार से जेल खाना गूँज उठा और उसे सुनकर समस्त बंदी स्वतन्त्रता सेनानियों के दिल हरे हो उठे थे।

इन्कलाब का स्त्रियों पर प्रभाव—स्वतन्त्रता से पूर्व इन्कलाब का स्त्रियों पर प्रभाव व्यक्त करते हुए नेहरूजी ने लिखा है—

'हम अपनी क्रांति के दरवाजे पर खड़े हैं और यह नहीं जानते कि भविष्य में क्या होने वाला है। लेकिन हमारी मेहनत का फल बहुत काफी मात्रा में वर्तमान ने ही हमारे सामने ला रखा है। भारत की स्त्रियों को देखो कि वे कितने अभिमान के साथ लड़ाई में सबसे आगे बढ़ती जा रही हैं। नम्र, लेकिन बहादुर और किसी से न दबने वाली स्त्रियाँ, देखो किस तरह दूसरों को आगे बढ़ने का रास्ता बता रही हैं। और कहाँ गया आज वह परदा, जिसने हमारी बहादुरी और सुन्दर स्त्रियों को छिपा रखा था, और इनके देश के लिए एक अभिशाप था। क्या वह तेजी के साथ हट नहीं रहा कि अजायब घरों की अलमारियों में, जहाँ कि बीते जमाने की निशानियाँ रखी जाती रहती हैं, जाकर अपनी जगह ले।'

बच्चे-बच्चियों व लड़के-लड़कियों पर प्रभाव—इन्कलाब का प्रभाव बच्चे-बच्चियों व लड़के-लड़कियों पर बताते हुए नेहरू जी ने लिखा है—

'बच्चों को—लड़के और लड़कियों को—वानर सेना और बाल-बालिका सभाओं को भी देखा। इनमें से बहुत से बच्चों के माता-पिता ऐसे होंगे जो शायद पहले कायरों और गुलामों की तरह आचरण करते रहे हों। लेकिन क्या अब कोई यह शक करने की हिम्मत कर सकता है कि हमारी पीढ़ी के बच्चे गुलामी या कायरता को कभी भी बरदाश्त करेंगे।'

इन्कलाब को कोई रोक नहीं सकता—अपने इस पत्र के अन्त में नेहरू जी ने यह बताया है कि अब इस परिवर्तन चक्र या इन्कलाब जिन्दाबाद को कोई रोक नहीं सकता है। ये इन्कलाब में अपना अखण्ड विश्वास व्यक्त करते हुए लिखते हैं—

'और इस तरह परिवर्तन का चक्र चल रहा है और जो नीचे थे, वे ऊपर आ रहे हैं और जो ऊपर थे, वे भी नीचे जा रहे हैं। हमारे देश में भी इस चक्र के चलने का समय आ गया है लेकिन इस बार हम लोगों ने इसे ऐसा धक्का दिया है कि अब कोई उसे रोक नहीं सकता।'

'इन्कलाब जिन्दाबाद।'

11.2 सारांश

अस्तु 'इतिहास से शिक्षा' पाठ से हमें विशेष शिक्षा मिलती है।

इकाई- 12 : पर्यावरण और सनातन दृष्टि

(डॉ. छगन मोहता)

संरचना

- 12.0 निबन्ध परिचय
- 12.1 निबन्ध का सारांश
- 12.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्या
- 12.3 महत्त्वपूर्ण प्रश्न
- 12.4 सारांश

12.0 निबन्ध-परिचय

प्रस्तुत निबन्ध 'पर्यावरण और सनातन दृष्टि' शीर्षक निबन्ध बीकानेर, राजस्थान के निवासी डॉ. छगन मोहता की पुस्तक 'संक्रांति और सनातनता' नामक पुस्तक से लिया गया है। इस निबन्ध में डॉ. मोहता ने पर्यावरण को व्यापक अर्थ में ग्रहण कर उसकी विवेचना की है, जो पर्यावरण को भारतीय सनातन दृष्टि अर्थात् दार्शनिकता से जोड़ती है। पर्यावरण के सम्बन्ध में उन्होंने भारतीय दृष्टि और पश्चिमी दृष्टि का अंतर भी स्पष्ट किया है और पर्यावरण प्रदूषण के अनेक आयामों को राजनीति, धर्मग्रन्थ व राजस्थानी परिवेश के उदाहरणों से स्पष्ट करते हुए पर्यावरण को संतुलित व सामंजस्यपूर्ण बनाने के हमारे कर्तव्य पर पाण्डित्यपूर्ण व सहज भाषा-शैली में प्रकाश डाला है।

12.1 निबन्ध का सारांश

पर्यावरण की परिभाषा—आजकल पर्यावरण को प्राकृतिक पर्यावरण तक ही सीमित मानकर पर्यावरण असंतुलन के खतरों को विज्ञान व मानव के लिए चुनौती माना जा रहा है। परन्तु पर्यावरण का अर्थ केवल प्राकृतिक पर्यावरण ही नहीं होता है—इसकी सीमाएँ तो बहुत व्यापक हैं। परिवार, समाज, राज्य, राष्ट्र के बहिरंग व अन्तर्गम सभी पक्ष पर्यावरण की सीमाओं में आते हैं। भारत की पर्यावरण से सम्बन्धित शास्त्रीय परम्परा है जो यह स्पष्ट करती है कि मनुष्य का जन्म, पोषण व मृत्यु पर्यावरण में ही होते हैं। अतः पर्यावरण वास्तव में केवल प्राकृतिक ही न होकर हमारे जीवन के समस्त पक्षों व पहलुओं से सम्बन्धित होता है।

पर्यावरण के स्तर—पर्यावरण की व्यापकता को समझने के लिए पर्यावरण के सारों को जान लेना आवश्यक है। सार की दृष्टि से पर्यावरण बहु-आयामी होता है। परिवार, समाज पर्यावरण के अंग हैं जो आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आदि अनेक आयामों को धारण करते हैं और इसके अतिरिक्त इस बहु-आयामी पर्यावरण के इर्द-गिर्द पशुपक्षियों और जीवधारियों का एक सजीव पर्यावरण होता है और उसके चारों ओर पर्यावरण के इन सब सारों में ओत-प्रोत भौतिक तत्वों अर्थात् भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि का पर्यावरण होता है, जिसका ज्ञान हम इन्द्रियों द्वारा करते हैं। यह सब पर्यावरण का दृष्ट स्तर है—जिसे हम अपनी आँखों से देखकर या अन्य इन्द्रियों द्वारा अनुभव कर सकते हैं। परन्तु पर्यावरण का एक अदृष्ट स्तर भी होता है, जिससे हमारा दृष्ट पर्यावरण प्रभावित होता है और दृष्ट पर्यावरण उस अदृष्ट पर्यावरण को भी प्रभावित करता है। यह अदृष्ट पर्यावरण जैविक, प्राणावरण एवं मानसिक या चित्तावरण कहा जाता है। इन समस्त अवतरणों में हमारे जीवन-व्यापारों का आदान-प्रदान होता है और उससे हमारा प्रतिक्षण सम्बन्ध बना रहता है। इसीलिए हमारे धर्म की व्याख्या में यह कहा जाता है कि धर्म से ही प्रजा का धारण होना है—हम धर्म की रक्षा करें, धर्म हमारी रक्षा करेगा। 'धर्मो रक्षति रक्षितः'—अर्थात् हम पर्यावरण धर्म के इन विभिन्न स्तरों को शुद्ध बनावें और उनमें आपस में सामंजस्य बनाए रखें तो हमारी रक्षा होगी अन्यथा इस सामंजस्य के टूटने पर जो विषमता पैदा होती है, उसका मनुष्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

पर्यावरण विषमता का कारण—भारत की शास्त्रीय परम्परा मनुष्य को ही इस पर्यावरण की विषमता अर्थात् सामंजस्य तोड़ने का कारण मानती है। वही अपने विचारों, वाणी व कर्मों द्वारा पर्यावरण को दूषित करके उसके समस्त स्तरों में असंतुलन पैदा करता है और स्वयं व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से उस असंतुलन के परिणामों को भी भोगता है। अतः मनुष्य का धर्म ही है कि वह पर्यावरण के प्रत्येक स्तर में सामंजस्य बनाये रखे।

ऋणशोधन—भारतीय धर्म में ऋणशोधन मानव का एक आवश्यक कर्तव्य माना गया है। इस धार्मिक दृष्टि से पर्यावरण के अन्तर्गत आने वाले प्राणियों और पदार्थों का हमें ऋणी समझकर ऋणशोधन का प्रयास करना चाहिए। यह हमारा प्रथम कर्तव्य है।

दो परस्पर भिन्न दृष्टियाँ—पर्यावरण के सम्बन्ध में दो दृष्टियाँ हैं—पहली भारतीय और दूसरी पश्चिमी। ये दोनों दृष्टियाँ परस्पर

भिन्न हैं व एक-दूसरी के विपरीत हैं। पश्चिमी दृष्टि में पर्यावरण को मनुष्य का शत्रु और उसके अस्तित्व में विकास में बाधक मानकर उसका प्रत्येक स्तर पर दमन व शोषण करके उसे वश में रखना स्वीकार किया जाता है। डार्विन के 'सर्वाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' का सिद्धान्त ही वहाँ अपनाया जाता है। परन्तु भारतीय दृष्टि में इसके विपरीत पर्यावरण से संतुलन व सामंजस्य बनाये रखकर ही व्यक्ति को सुखी व शांति से रहने की याचना की गई है। भारत में पर्यावरण का दमन, शोषण करने के स्थान पर उसका सहयोग व उपयोग प्राप्त करके स्वाभाविक सम्बन्धों पर बल दिया गया है। यहाँ मानव व पर्यावरण का 'ऑर्गेनिक रिलेशनशिप' अर्थात् अंगोअंगी सम्बन्ध माना जाता है और जगत को जगदीश्वर का शरीर मानकर प्रत्येक मानव व पदार्थ को उसके घट मानकर परस्पर सामंजस्य व सहयोग स्वीकार करते हुए पर्यावरण के साथ कटाव या पर्यावरण को मनुष्य का शत्रु मानने जैसी प्रवृत्ति को मानव-जाति के लिए आत्म-घातक कहा गया है।

पश्चिमी दृष्टि में यह माना गया है कि हमें प्रकृति से संघर्ष करके 'फिट' होना है, नहीं तो प्रकृति हमें मार देगी। इसलिए प्रकृति को अपने वश में करना और उसका शोषण करना आवश्यक है। इस दृष्टि से प्रकृति एक तेज नाखूनों वाली राक्षसी है, जो हमें हर हालत में मार देना चाहती है। अतः हमें उससे संघर्ष करके, अपने आपको 'फिट' करना है। पश्चिमी की यह दृष्टि कोई नई दृष्टि नहीं है क्योंकि उसका उद्गम बाइबल की एक कथा है, जिसमें मानव और प्रकृति को अलग-अलग माना गया है। यहीं से यह जो मनुष्य में मूलभूत द्वैत या द्वन्द्व पैदा हुआ और जिस प्रकार बिल्ली से चूहे आतंकित रहते हैं, प्रकृति से मनुष्य भी आतंकित होने लग गया और इस आतंक ने प्रकृति व मनुष्य के बीच तनाव या शत्रुता पैदा कर दी और वह प्रकृति के शोषण की ओर उन्मुख हुआ, जिसका परिणाम पश्चिम के उद्योग और व्यापार जनित आज का पर्यावरण प्रदूषण है, जो सम्पूर्ण मानवता के सामने खतरा बन गया है।

प्रकृति से सम्बन्ध—भागवत में एक कथा है—राजा वेणकी, जो चक्रवर्ती था और अत्याचारी था। उसके बाद उसका पुत्र पृथु राजा हुआ। उस समय प्रकृति बंध्या हो गई तो उसने प्रजापालन के लिए प्रकृति रूपी गाय का दोहन किया। इस दोहन में पोषण भी सम्मिलित था। बच्चा माँ का दूध पीता है, यह शोषण नहीं है क्योंकि दोहन में पहले पोषण रहता है। दोहन और पोषण का पारस्परिक पूरक एक सम्बन्ध है, जो इनमें संतुलन बनाये रखता है। अतः हमें पोषण, दोहन, शोषण और प्रदूषण शब्दों को भली प्रकार समझ लेना चाहिए और प्रकृति से अपने सम्बन्धों का निर्धारण करना चाहिए। दोहन व पोषण की क्रिया स्थायी व शाश्वत होती है और इससे संतुलन गड़बड़ाता नहीं है, जबकि शोषण का परिणाम प्रदूषण, असामंजस्य व असंतुलन होता है क्योंकि जिस पदार्थ का हम शोषण करना चाहते हैं, उसे बिल्कुल नष्ट कर देना चाहते हैं। बीकानेर में फोग नामक लकड़ी के ईंधन का व्यापारिक शोषण इसका उदाहरण है कि हम ट्रक के ट्रक फोग को जड़ से काटते जा रहे हैं, फिर फोग आयेगा कहाँ से। हमें यह चाहिए कि फोग को जड़ से नहीं काटते, ताकि वे कटे वृक्ष फिर से हरे-भरे होकर जड़े होते रहते और हमारे उपयोग में आते रहते या जो जड़ से काटे गये पेड़ों के स्थान पर दूसरे पेड़ लगाते।

परिवेश में संतुलन—परिवेश में संतुलन तभी बचा रह सकता है, जब हम व्यापारिक वृत्ति से थोड़ा हटकर अपने उपयोग में आने वाली वस्तु का दोहन करें, न कि शोषण कर उसे जड़ मूल से ही नष्ट करने पर उतारू हो जायें। प्रकृति का अपना एक संतुलन होता है। हमें उसमें ज्यादा फेर-बदल नहीं करना चाहिए। चीन में गोरियों और चूहों को मारने का अभियान चलाया क्योंकि ये अनाज को नुकसान पहुँचाते हैं। परन्तु परिणाम यह हुआ कि गोरियाँ और चूहे तो मर गये किन्तु जिन कीड़ों को ये खा जाते थे वे न खाये जाने के कारण इतने बढ़ गये कि उनसे रोग फैलने लग गये। यह है प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ने के प्रयत्न का फल। अतः हमें चाहिए कि हम प्रकृति के अपने संतुलन को न बिगाड़ें और यह तभी सम्भव है, जब हम प्राकृतिक पदार्थों का दोहन करें, शोषण नहीं।

शारीरिक संतुलन—हमारे शरीर में विभिन्न अंगों का संतुलन बना हुआ है, रक्त संचार, श्वास, पाचन आदि क्रियाओं में एक संतुलन है। इस संतुलन को बिगाड़ने पर हम अस्वस्थ व बीमार हो जाते हैं और कोई चीज बढ़ जाती है तो कोई घट जाती है और स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। इसी प्रकार आज के उद्योग प्रधान ढाँचे ने हमारे सामाजिक व साँस्कृतिक शरीर में ऐसी द्यूमर उत्पन्न कर दी है जो दूसरे अंगों के रस का शोषण करके बढ़ती जा रही है और प्रदूषण को जन्म देती है।

शूम्कर का मत—अगर उद्योग शोषण द्वारा प्रदूषण को जन्म देते हैं तो यहाँ एक प्रश्न उभरता है कि हमें उद्योग-धन्धे बन्द कर देने चाहिए। इसका उत्तर शूम्कर ने अपनी पुस्तक 'स्माल इन ब्यूटीफुल' में यह दिया है कि हमें उद्योग-धन्धे चलाने चाहिए लेकिन उनका परिवेश के साथ संतुलन आवश्यक है और परिवेश में आर्थिक, प्रशासनिक, सामाजिक व साँस्कृतिक सम्बन्धों के सामंजस्य पर ध्यान देने से उनमें शोषण की प्रवृत्ति नहीं पनपेगी। वरन् उनके माध्यम से पोषण होगा और परस्परिकता बढ़ेगी। इसके विपरीत यदि हमने परिवेश का ध्यान किसी भी कारण से नहीं रखा तो सत्ता, उत्पादन, धन, जनसंख्या व प्रभाव का केन्द्रीकरण होगा और एक की जब मोटी होगी तो अनेक जेबें खाली हो जायेंगी और इस शोषण से असंतुलन, असामंजस्य व प्रदूषण उत्पन्न होगा। अतः उद्योग-धन्धों के विकास करने में हमें परिवेश के संतुलन की ओर ध्यान देना चाहिए।

गुलाब के पौधे का उदाहरण—लेखक ने मानव को प्राकृतिक प्राणी कहा है और उसके मन और बुद्धि को भी प्रकृति का एक बहुत

ही सूक्ष्म भाग बताया है। उन्होंने प्राकृतिक शक्तियों के साथ मनुष्य के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए गुलाब के पौधे का उदाहरण दिया है कि जिस प्रकार खिले हुए गुलाब के फूल के लिए गुलाब की टहनियाँ, पत्ते, काँटे, तना, खाद, मिट्टी, पानी आदि के पोषण की आवश्यकता होती है, उसी तरह हमारी बुद्धि और हमारा मन गुलाब के फूल की तरह खिला हुआ रखने के लिए प्राकृतिक परिवेश व सामाजिक, साँस्कृतिक परिवेश के पोषण की आवश्यकता निरन्तर बनी रहती है और परिवेश के जितने भी भौतिक तत्व – हवा, पानी, मिट्टी, प्रकाश उनके साथ हमारा संतुलन होना आवश्यक है। आजकल इसी संतुलन की दृष्टि से एक नया साइन्स पर्यावरण का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाता है।

मानव के जन्म व मरण का प्रश्न—आप पर्यावरण की रक्षा कीजिये तो पर्यावरण आपकी रक्षा करेगा और आप यदि पर्यावरण की उपेक्षा करेंगे, उसको शोषित व जहरीला होने देंगे तो हम शीघ्र ही मृत्यु की ओर प्रयाण करने की तैयारी करेंगे क्योंकि इस स्थिति में वायु, भूमि, जल व आकाश हमारे लिए जहरीले हो जायेंगे। अतः पर्यावरण, पर्यावरण का संतुलन व पर्यावरण का असंतुलन या प्रदूषण केवल एक व्यक्ति के लिए ही नहीं वरन् मानव जाति के जीवन व मरण का प्रश्न बन गया है और पर्यावरण संतुलन का सामंजस्य मानव का स्वाभाविक धर्म बन गया है। जिस वस्तु का जो धर्म है, उससे अपना संतुलन व उसका संतुलन न बिगाड़े, अन्यथा सामाजिक संतुलन बिगड़ जावेगा। आज की भोग-प्रधान अर्थव्यवस्था के युग में हमारी अर्थ-केन्द्रित दृष्टि इस संतुलन को बिगाड़ने की ओर अग्रसर हो रही है अतः हमें इस पर रोक लगानी है।

निष्कर्ष—पर्यावरण संतुलन व पर्यावरण धर्म की रक्षा केवल नारेबाजी व विज्ञान बाजी से नहीं हो सकता है वरन् इसके लिए हमें प्राकृतिक पर्यावरण के साथ ही सामाजिक, आर्थिक व साँस्कृतिक पर्यावरण के क्षेत्रों में उतरकर उनका संतुलन बनाये रखना पड़ेगा और इसके लिए हमें पर्यावरण प्रदूषण के खतरों से बहुत सावधान होना पड़ेगा क्योंकि ये जीवन के प्रत्येक स्तर व क्षेत्र तथा पहलू का संस्पर्श करते हैं।

12.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

“पर्यावरण को भारतीय दृष्टि से समझने की कोशिश करें। इसके साथ हमारी हजारों वर्षों की मित्रता है, जिसके अनुसार पर्यावरण का क्षेत्र प्राकृतिक पर्यावरण का क्षेत्र नहीं है। हमारे यहाँ प्रकृति का बहुत व्यापक अर्थ लिया गया है, संसार की कोई चीज ऐसी नहीं है, जो प्रकृति से अलग हो।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ‘निबंध-भिचय’ में डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी द्वारा संकलित तथा डॉ. छगन मोहता द्वारा लिखित निबंध ‘पर्यावरण और सनातन दृष्टि’ से उद्धृत है। इसमें श्री मोहता ने पर्यावरण के विषय में भारतीय दृष्टि का स्पष्टीकरण करते हुए उसकी व्यापकता पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या—डॉ. मोहता की मान्यता है कि आज से इस पर्यावरण संकुल व पर्यावरण प्रदूषित युग में पर्यावरण असंतुलन मानव के समक्ष चुनौती के रूप में उपस्थित हो गया है, जिससे भावी संकट की आशंका होने लगी है। इस अनिष्ट की आशंका से बचने के लिए हमें यह चाहिए कि हम पर्यावरण के विषय में भारतीय दृष्टि को समझने का प्रयास करें। भारतीय दृष्टि में पर्यावरण मानव का आदिम सहचर है और इस साहचर्य के कारण उसके साथ मानव की हजारों वर्षों की मित्रता है। हजारों वर्षों का इतिहास व मानव के कार्य-कलाप यह बताते हैं कि हम पर्यावरण की आजकल जो तस्वीर अपने मस्तिष्क में बनाये हुए हैं। वह पर्यावरण की सच्ची तस्वीर नहीं है, जिसमें केवल प्राकृतिक पर्यावरण अर्थात् जल, थल, नभ आदि प्राकृतिक पदार्थों को ही पर्यावरण की परिधि में लिया जाता है। पर्यावरण का क्षेत्र प्राकृतिक पर्यावरण से बहुत आगे बढ़ा हुआ है। दूसरी बात यह है कि भारत में प्रकृति का अर्थ भी बहुत व्यापक है और उसे समझाने के लिए प्रकृति में बहिरंग व अन्तरंग-प्रकृति नामक भेद किये गये हैं। हमारी यह मान्यता है कि संसार में ऐसी कोई चीज नहीं है, जो प्रकृति से अलग है। मनुष्य का बाहरी प्राकृतिक वातावरण, मनुष्य का स्वयं का स्वभाव, प्रवृत्ति व निवृत्ति, सुख-दुःख हर्ष-विषाद आदि भाव, परिवार, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र तथा उसका राजनीतिक, आर्थिक, साँस्कृतिक रूप और पशु-पक्षी, कीट-पतंग, सभी जीवधारी व पेड़-पौधे हमारी प्रकृति के अंग हैं। प्रकृति के विभिन्न स्तरों में कुछ दृष्ट होते हैं और कुछ अदृष्ट होते हैं, जिनसे हम और हमारा पर्यावरण प्रभावित होता रहता है। हम चाहकर भी पर्यावरण के इस प्रभाव से बच नहीं सकते हैं और इस पर्यावरण के बहु-आयामी स्वरूप के प्रत्येक स्तर को परिशुद्ध व सामंजस्यपूर्ण बनाये रखने को ही हमने धर्म की संज्ञा प्रदान की है तथा यह कहा है कि ‘धर्मो रक्षति रक्षितः।’

विशेष—ऐतिहासिक व दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में लेखक ने पर्यावरण व प्रकृति विषयक भारतीय दृष्टिकोण का सुन्दर विवेचन किया है। संक्षिप्तता होते हुए भी इस कथन में अर्थ की गहनता युक्त विस्तृति है व पाण्डित्य की गरिमा है। सरल व सीधी भाषा में पर्यावरण (परि + आवरण) का अर्थ स्तर व विविध आयामों के स्पष्टीकरण के साथ ही उसके प्रति भारतीय दृष्टिकोण का सम्यक् दिग्दर्शक हुआ है।

12.3 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न- 1. पर्यावरण का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए पर्यावरण के विभिन्न आयामों का परिचय दीजिए।

उत्तर—पर्यावरण का अभिप्राय—‘पर्यावरण’ शब्द दो शब्दों पर + आवरण के मेल से बना है। परि का अर्थ है हमारे चारों ओर से जो हमें घेरे हुए हैं और आवरण का अर्थ है पर्दा या ढक्कन। अतः व्युत्पत्तिपरक अर्थ में जो आवरण हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं, पर्यावरण कहलाता है। परन्तु आज पर्यावरण का अर्थ प्राकृतिक पर्यावरण तक ही सीमित कर दिया गया है क्योंकि वैज्ञानिकों, औद्योगिक और तकनीकी ज्ञानके विकास ने प्रकृति में असंतुलन व असामंजस्य उत्पन्न कर मानव के जीवन को खतरों में डालने की चुनौती दे दी है। अतः इस चुनौती का सामना करने के लिए वैज्ञानिकों ने पर्यावरण-प्रदूषण के केवल एकमात्र अंग या आयाम प्राकृतिक पर्यावरण को अपना आधार बनाया है और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस पर्यावरण प्रदूषण के खतरों से बचने का प्रयास किया जा रहा है। परन्तु पर्यावरण के अन्तर्गत केवल यह दृष्ट या प्रत्यक्ष प्रकृति ही नहीं आती है वरन् इसमें अनेक अदृष्ट या अप्रत्यक्ष सार भी है, जो जाने-अनजाने हमें प्रभावित करते रहते हैं।

इस प्रकार पर्यावरण का अस्तित्व दृष्ट प्रकृति या प्राकृतिक पर्यावरण से भी अधिक व्यापक है और इसकी सीमा में जगत् का प्रत्येक पदार्थ आ जाता है और साथ ही मानव की आन्तरिक प्रकृति अर्थात् विचार, भावनाएँ व आध्यात्मिक सम्बन्ध भी। इतना ही नहीं पर्यावरण बहु-आयामी है और इसके अनेक स्तर होते हैं, जैसे—व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय आदि और इनमें भी आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक आदि स्तर होते हैं। भौगोलिक दृष्टि से प्राकृतिक पर्यावरण भी अनेक क्षेत्रीय विभिन्नताओं को धारण किये हुए है और मानवीय क्रिया-कलापों में भी सर्वत्र एकरूपता नहीं पाई जाती है। इस प्रकार पर्यावरण भूमि, जल, वायु, अग्नि और आकाश का चुम्बकीय पर्यावरण अर्थात् भौतिक पर्यावरण तो है ही परन्तु साथ ही उसके अन्तःस्तरों में जैविक या प्राणावतरण एवं मानसिक या चित्तावरण की गणना भी की जाती है, जो व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पहलुओं को भी अपने में समेटे हुए है। इस प्रकार भारतीय दृष्टि से पर्यावरण का अर्थ केवल प्राकृतिक पर्यावरण ही नहीं है, वरन् इसकी बड़ी व्यापक परिभाषा है और भारत की शास्त्रीय परम्परा तो यह कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण में ही पैदा होता है, पर्यावरण में ही वह जीता और पर्यावरण में ही वह लीन हो जाता है।

पर्यावरण के विभिन्न आयामों का परिचय—डॉ. छगन मोहता ने ‘पर्यावरण और सनातन दृष्टि’ शीर्षक निबन्ध में पर्यावरण के स्तरों व आयामों का चित्रण करते हुए कहा है कि मनुष्य परिवार में पैदा होता है, परिवार में जीता है, परिवार में मरता है या विलीन हो जाता है। आज उसे चुनौती नहीं दी जा सकती है क्योंकि पर्यावरण बहु-आयामी है। एक व्यक्ति का पारिवारिक पर्यावरण होता है, जिसमें वह जन्म लेता है, जीवित रहता है और मरता है। इस पारिवारिक पर्यावरण के भी कई आयाम होते हैं, जिनमें एक आर्थिक आयाम होता है, दूसरा राजनीतिक आयाम और तीसरा सांस्कृतिक आयाम। इन प्रत्येक आयामों का अपना एक केन्द्र होता है, जहाँ से वह क्रियाशील रहता है। इस समस्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक पर्यावरण के चारों ओर, आस-पास एक पशु-पक्षियों तथा जीवधारियों का पर्यावरण होता है और इसके चारों ओर इन समस्त स्तरों में ओत-प्रोत भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि भौतिक तत्वों का पर्यावरण होता है। ये प्रत्यक्ष आवरण हैं, जिनका ज्ञान हम इन्द्रियों द्वारा करते हैं।

पर्यावरण के इन प्रत्यक्ष स्तरों के अतिरिक्त पर्यावरण के अप्रत्यक्ष और अदृष्ट स्तर भी होते हैं, जिनसे हम और हमारा पर्यावरण प्रभावित होता है। इनको जैविक या प्राणावरण एवं मानसिक या चित्तावरण कहते हैं, जिससे हमारा प्रतिक्षण सम्बन्ध बना रहता है और हमारे जीवन व्यापारों का इन समस्त पर्यावरण के स्तरों या आयामों से आदान-प्रदान होता रहता है।

प्रश्न- 2. पर्यावरण के सम्बन्ध में भारत की और पश्चिम की दृष्टियों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—पर्यावरण के विषय में भारतीय व पश्चिमी दृष्टियाँ परस्पर भिन्न-भिन्न हैं और एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत हैं। पश्चिम की दृष्टि में पर्यावरण को मनुष्य का शत्रु माना जाता है और उसके अस्तित्व को मानव के विकास के लिए बाधक और घातक समझा जाता है और इसलिए पर्यावरण के प्रत्येक स्तर को अपने वश में किया जाता है ताकि वह उसका दमन, शोषण करके उससे अधिक से अधिक दीर्घ समय तक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करके जीवित रह सके। इस दृष्टि को विकसित करने का श्रेय प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन को है, जिसने पश्चिम के हाथों ‘सर्वाइवल ऑफ दी फिटिस्ट’ का सिद्धांत पकड़ा दिया, जिससे इस पर्यावरण-विषयक दृष्टि का वहाँ पूरे देश से प्रचार व प्रसार हुआ।

इस पश्चिमी दृष्टि से विपरीत भारतीय दृष्टि में पर्यावरण को किसी भी स्तर पर मानव का शत्रु नहीं माना जाता है वरन् उससे समस्त स्तरों पर प्राणी और पदार्थों की पारस्परिक निर्भरता का एक सामंजस्यपूर्ण समन्वय स्थापित किया जाता है और पर्यावरण के साथ संतुलन बनाये रखा जाता है। पर्यावरण से सहयोग और उसका उपयोग करना ही भारत में पर्यावरण के साथ सहज, स्वाभाविक सम्बन्धों की स्थापना का प्रतीक है। भारतीय दृष्टि में यह समस्त जगत् जगदीश्वर का शरीर है और हम सब उसके विभिन्न घटकों के रूप में जी रहे हैं और उस समग्र के साथ पर्यावरण से हमारा जो सम्बन्ध है वह अगोअंगी अर्थात् ‘आर्गेनिक रिलेशनशिप’ है। इस प्रकार हम एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी व पर्यावरण के स्तर भी एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी, एक-दूसरे से कटे व पृथक् नहीं हैं वरन् एक ही समग्र के अंग होने से हममें मित्रता, सहयोग व पारस्परिक निर्भरता के भाव विद्यमान हैं। इसीलिये हम पर्यावरण को अपना शत्रु मानकर उसके प्रति

घातक व्यवहार करने को मानव जाति के लिये आत्मघातक मानते हैं।

प्रश्न-3. 'पश्चिमी दृष्टि में पर्यावरण मनुष्य का शत्रु और भारतीय दृष्टि में मनुष्य का सहयोगी एवं उपयोगी है।' इस कथन का आशय समझाइये।

उत्तर—पश्चिमी दृष्टि में पर्यावरण को मनुष्य का शत्रु मानकर उसका शोषण करके नाश किया जाता है। उनका विचार है कि प्रकृति एक तेज नाखूनों वाली राक्षसी है, जो हर हालत में मनुष्य को मारना चाहती है, नष्ट करना चाहती है अतः हमें उससे संघर्ष करना चाहिए और यदि इस संघर्ष में हम फिट नहीं हुए या जिन्दा नहीं रह सके तो प्रकृति रूपी राक्षसी हमें मार देगी। इसलिए पश्चिम का दृष्टिकोण संघर्ष द्वारा प्रकृति को वश में करके उसका शोषण करने का है और यह दृष्टि उनको बाइबल की एक कथा से मिली है, जिसका विकास चार्ल्स डार्विन ने अपने सिद्धांत 'सर्वाइवल ऑफ़ दी फिटेस्ट' में किया है। वही पर्यावरण को मानव से अलग मानकर उससे द्वेष भाव रखा जाता है और जैसे भयभीत बिल्ली जोर से आक्रमण करती है, उसी तरह प्रकृति व पर्यावरण के डर ने उसे इतना भय और तेजोव से भर दिया कि वह हर हालत में उस पर विजय प्राप्त करने और उसका शोषण करने में अग्रसर हुआ है और पश्चिम ने इस मामले में दुनिया का नेतृत्व किया, जिससे पर्यावरण का प्रदूषण उत्पन्न हो गया है।

प्रकृति के दोहन के विषय में पश्चिम की दृष्टि और भारतीय दृष्टि के अन्तर—पश्चिमी दृष्टि में प्रकृति को मानव का शत्रु मानकर उस पर हर तरह से विजय प्राप्त करने के लिए उसका शोषण किया जाता है, जो प्राकृतिक प्रदूषण को जन्म देता है। परन्तु भारतीय दृष्टि में प्रकृति को मानव की सहयोगी व मित्र मानकर उसका दोहन किया जाता है और दोहन के लिए उसका पोषण भी। भारत में राजा पृथु की कथा यह बतलाती है कि उस समय माना प्रकृति बाँझ हो गई थी, जब राजा पृथु ने प्रकृति रूपी माता का दोहन किया। इस दोहन व पश्चिमी दृष्टि में स्वीकृत शोषण में बुनियादी अन्तर है। दोहन में पोषण सम्मिलित रहता है क्योंकि जिसका दोहन किया जाता है, यदि उसका पोषण नहीं किया जाता है तो वह वस्तु नष्ट हो जाती है, बंध्या हो जाती है। अतः दोहन में पहली शर्त पोषण की है—जो सहयोगी व मित्रता के पारस्परिक आत्मीय भावों पर निर्भर करती है। श्रीकृष्ण ने गाता यशोदा का दोहन किया, दूध पिया और वे पलकर बड़े हुए। परन्तु उन्होंने श्रीकृष्ण ने पूतना नामक राक्षसी का शोषण किया और इतना किया कि वह मर गयी। वह पूतना राक्षसी थी, हमारी शत्रु थी। अतः उसका शोषण किया गया। परन्तु यशोदा जो माता थी, सहयोगी थी अतः श्री कृष्ण ने उसका दूध पिया जो उसका दोहन था। इस प्रकार दोहन में सदा पोषण का स्वरूप रहता है। पोषण पहले होता है और उसके बाद दोहन होता है और यह पोषण व दोहन का सम्बन्ध पारस्परिक पूरक सम्बन्ध है और सहयोगी सम्बन्ध है, जिससे इसमें संतुलन बना रहता है।

परन्तु पश्चिमी दृष्टि में जो प्रकृति को मानव को शत्रु मानकर उसका शोषण किया जाता है, उससे प्रकृति का नाश होता है, पोषण नहीं, वहाँ तो पोषण का कोई चिन्त ही शेष नहीं रखा जाता है और प्रकृति को जड़ मूल से ही नष्ट करने का लक्ष्य रहता है, जिससे असंतुलन उत्पन्न होता है जो प्रदूषण को जन्म देता है और फिर मानव इस प्रदूषण के खतरों से बचने के लिए प्रयास करता है।

इस प्रकार पश्चिम में शोषण और प्रदूषण है तो भारत में दोहन और पोषण है। इन चार शब्दों अर्थात् शोषण, दोहन, प्रदूषण व पोषण के अर्थों का अन्तर ही पर्यावरण या संस्कृति के प्रति पश्चिमी व भारतीय दृष्टियों का अन्तर स्पष्ट करता है।

गाय के दोहन के लिए कोई व्यक्ति गाय पालता है, वह उसका दोहन करता है लेकिन बिना पोषण किये वह गाय का दोहन नहीं कर सकता है। अतः दोहन के लिए उसे गाय का पोषण करना पड़ेगा। यह दोहन, पोषण की दृष्टि भारतीय है जो संस्कृति व मानव में संतुलन बनाये रखती है।

अब पश्चिमी दृष्टि में दोहन के स्थान पर शोषण को महत्व दिया गया है। गाय को पालने वाला व्यक्ति गाय का इस हद तक दोहन करता है कि गाय के घ्राण ही निकल जायें। महात्मा गाँधी ने कलकत्ता में देखा कि कुछ पेशेवर दूध बेचने वाले लोग गाय के पेट में बाँस की एक नली से फूँक देकर इस तरह से दूध की ग्रन्थियों पर दबाव डालते थे कि दूध के साथ खून भी आने लगता था। इस हद तक गाय का दूध निचोड़ता गाय का दोहन करना नहीं है, वरन् शोषण करना है और यही पश्चिम की प्रकृति व पर्यावरण के प्रति दृष्टि है।

12.4 सारांश

लेखक ने बीकानेर का एक उदाहरण देकर फोग को जड़ों से काट-काटकर ट्रकों की ट्रकें भरकर व्यापार करने को शोषण बताया है क्योंकि इस क्रिया से फोग का वंश ही समाप्त हो जाता है। इस प्रकार पश्चिमी दृष्टि में शोषण और उसके फलस्वरूप उत्पन्न विनाश या प्राकृतिक प्रदूषण है।

इकाई- 13 : हल्दी-दूब और दधि-अच्छत

(विद्यानिवास मिश्र)

संरचना

- 13.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 13.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 13.2 सारांश

13.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “मेरे घर की संस्कृति के मांगलिक उपादान मूर्तरूप में हल्दी-दूब और दधि-अच्छत ही हैं, इसलिए शहर में एक लम्बे अरसे तक बसने के बाद भी मन इन मंगल-द्रव्यों की शोभा के लिए ललक उठता है। बहुत दिनों से कोई अर्चन-पूजा नहीं की है, जिसे अर्चना का अधिकार सौंप दिया है, उससे भी कोसों और महीनों का व्यवधान है। बसन्त की उदास बयार की ललक एक अजीब-सा अनमनापन भर रही है, वर्षा के कार्य का बोझ सिर पर लदा हुआ है। जिसे लोग उल्लास कहते हैं, वह जैसे पथरा गया है। पर क्या बात है कि हल्दी से रंगी हथेली दूब से पुलकित पूजा की थाली, अक्षत से भरा चौक और दधि से शोभित झील—ये चित्र मन में उभर आते हैं। हृदय का वह प्रथम अनुराग बासा पड़ गया, उस नव प्रणय की भाषा जूठी हो गयी, उसके अन्तर की वह रस सीठ गया। उस रस का वह आपूरित आनन्द रीत गया जिन नवदुग्ध पल्लवों का वन्दन वार लगी, वे दुग्ध पल्लव मुरझा गये ‘नयन सलोने अधर मधु’ दोनों ही करुवा गये, पर क्या जादू है कि मन की कोर में लगी हल्दी नहीं छूटी जीवन-प्रान्तर में उगी हुई दूब और परिसर में बिछी अच्छत राशि क्षत-विक्षत नहीं हुई।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यावतरण में विद्वान् लेखक श्री विद्यानिवास मिश्र जी ने अपने भारतीय घर की संस्कृति के उपादानों का प्रभाव ज्यों का त्यों बना रहता है, चाहे काल-क्रम कितना ही परिवर्तित हो जाए, यही सब सजीव करने का प्रयत्न किया है।

व्याख्या—श्री विद्यानिवास मिश्र जी का कथन है कि मेरे भारतीय घर की संस्कारित सभ्यता के मंगलमय उपादान साकार रूप में हल्दी-दूब और दही-चावल ही हैं। आशय हुआ कि इन्हीं चारों वस्तुओं से हमारे घर की मंगलमयी शोभा होती आई है। यद्यपि मैं शहर में बहुत काल से निर्वासित हूँ, फिर भी मेरा मन उक्त चारों मंगलमय वस्तुओं के लिए लालायित हो उठता है।

मैंने इस शहर के घर में बहुत समय के अर्चन-पूजा का आयोजन नहीं किया है, क्योंकि जिसे मेरी धर्मपत्नी को मैंने एवं समाज की मान्यताओं ने अर्चन पूजन का अधिकार सौंप दिया है, वह भी गम में यहाँ से कोसों दूर है एवं बहुत समय के अन्तराल में भी उससे नहीं मिल पाया हूँ। इसके बिना बसन्ती वायु निरुत्सुक एवं अन्यमनस्कता भरने वाली प्रतीत होती है। वर्षा के काम का भार भी उसके बिना सिर पर बोझ जैसा आभासित हो रहा है। इन दोनों बसन्त व वर्षा ऋतुओं में जो लोग शरीर में उल्लास भर लिया करते हैं, वह मेरे लिए जड़ के समान अप्रभावी हो गया है। परन्तु यह कैसा प्रभाव है कि हल्दी से अनुरंजित युवती की हथेली अर्थात् विवाह के समय का हल्दात (हल्दी से रंजित हाथ) उसी समय दूर्वा-दल से हरी-भरी पूजा की थाली, मंगल हेतु बिखरे गये चावलों से भरा-पूरा अंगन, दही से सुशोभित ललाट ये मांगलिक चित्र इस शहर में भी मेरे मानस में उभरने लगते हैं। यह लगता है कि सब कुछ प्रभाव मेरे भारतीय घर की संस्कृति का है।

चाहे उम्र पकने पर मेरे हृदय का पहला प्यार पूर्व काल में उपनुक्ति के कारण बासा पड़ गया, उस नवीन प्यार की भाषा अब जूठी-सी प्रतीत होने लगी है, उस प्यार भरी भाषा का आन्तरिक रस सूख गया है, उस रस से जो पहले आनन्द भरता था, वह रीता हो गया है। जिन नये नयनों के पलक कभी मेरी ओर बन्दनवार सदृश सीधे टकटकाये रहा करते थे वे नयन पल्लव अब चाहे मुरझा गये हैं। मेरे लिए जो पहले आँखें, सलोंनी व अधर मधुरता का आभास देते थे वे अब कसैले स्वाद की तिक्तता दे रहे हैं।

फिर भी यह तो एक जादुई प्रभाव मानूँगा कि इस लम्बी उम्र में भी मन के किसी कौने में लगी हल्दी का प्रभाव ज्यों का त्यों बना है, जीवन के आंगन में उगी दूब आज भी जीवन को हरीतिमा देती नहीं चूती है तथा जीवन के क्षेत्र में चावलों के समूह का प्रभाव क्षत-विक्षत नहीं हुआ है। आशय यह है कि अब भी हल्दी-दूब और दधि-अक्षत मेरे जीवन में मंगलमयी भावना सदैव जगाते रहते हैं।

विशेष—भारतीय संस्कृति के उपादान हल्दी-दूब और दधि-अक्षत भारत के लोगों के अन्तराल में इतरी गहरी पैठ पा चुके हैं कि उसके बिना उन्हें घर के किसी भी मांगलिक आयोजनों में परिपूर्णता एवं आनन्दानुभूति नहीं हो पाती है। यह भारत की उच्च संस्कृति का ही प्रभाव है।

(2) “यह जानते हुए भी कि गाँव की उस मांगलिक कल्पना से शहरी जीवन का कोई मेल नहीं हो सकता, मेरा अनागर मन उस कल्पना का पल्ला नहीं छोड़ना चाहता। किसी ने प्रतिगामी कहा और किसी ने अपनी कॉफी-हाफस या कोका-कोला सभ्यता में ‘अखपनीय’ मानकर दुराग्रही जनवादी या शिष्ट शब्दों का प्रयोग कर प्रगतिशील कहा। पर वह गँवर चरवाहा ही बना रहा। उसकी काली कमली पर दूसरा रंग न चढ़ा। उनकी पुरानी बाँसुरी में दूसरी टेर नहीं आयी, गीतों में दूसरे गोपाल नहीं आये। उसकी प्रत्येक नयी प्राप्ति अपने शुभ के लिए अब भी हल्दी का वरदान माँगती है। उसकी प्रत्येक नयी यात्रा दही का सगुन चाहती है। उसकी प्रत्येक नयी साधना दूर्वा का अभिषेक माँगती है और उसकी प्रत्येक नयी आपूर्ति अक्षत से पूर्णता का आशीष चाहती है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में लेखक श्री विद्या निवास मिश्र ने अपने ग्रामीण घर की संस्कृति चाहे शहरी सभ्यता से अनमेल बनी रहे, फिर भी उनका ग्रामीण-मनरूपी ग्वाला कृष्ण उसे त्याज्य नहीं कर पाता। इसके बदले में उसे (मन को) पुरातन हठी, आदिम जन प्रेमी, व्यंग्य में प्रगतिशील अर्थात् उल्टी अवनतिका पथिक की उपाधियाँ चाहे मिल जाएँ तथापि वह हल्दी-दूब और दही-चावल की कामना अपने नये आयोजनों के लिए करता रहेगा।

लेखक श्री विद्या निवास मिश्र जी का कथन है कि यद्यपि मैं यह जानता हूँ कि मंगलमयी उस ग्रामीण कल्पना, शहरी जीवन से अनमेल रहेगी तथापि मेरा अशहरी (ग्रामीण) मन इस कल्पना का साथ नहीं छोड़ना चाहता है। ऐसा करते हुए चाहे मेरे उस मन को कोई पुरातन हठी, कॉफी हाऊस की या कोका-कोला की सभ्यता में नहीं खप सकने वाला तथा सिर्फ शब्दों में प्रगतिशील कहे तथापि वह ग्रामीण ग्वाला कृष्ण ही बना रहेगा। उसकी काले रंग की कमली (घुग्गी) पर दूसरा रंग अर्थात् आधुनिकता का प्रभाव नहीं चढ़ पाया। उनकी पुरानी बाँसुरी में दूसरी धुन, प्यार किया तो डरना क्या, जैसी नहीं आ पाई। उसके गीतों में दूसरे गोपाल, ‘हम हैं सीधे-साधे अक्षय-अक्षय’ जैसे नहीं आ पाये।

उस मेरे मन की प्रत्येक नयी सिद्धि हल्दी का वरदान माँगती है, प्रत्येक यात्रा दही का सगुन चाहती है, प्रत्येक नयी साधना को दूर्वा का सेचन अभिप्रेत है और उसकी प्रत्येक नयी आवश्यकता अक्षतों (चावलों) से परिपूर्णता का आशीष चाहती है। आशय यह हुआ कि उस मेरे मन की गहराइयों में हल्दी-दूब, दही-अक्षत की मांगलिकता सदैव रची-बसी है। यही उसकी शुभ फल कल्याणमयी संस्कृति है।

विशेष—ग्रामीण मांगलिक कल्पना का चाहे शहरी जीवन से मेल-मिलाप ‘अखपनीय’ हो तथापि उसकी नयी प्राप्ति, नयी यात्रा, नयी साधना एवं नवीन आपूर्ति उन मांगलिक वस्तुओं का संस्कार सदैव चाहते रहते हैं, यही उनकी भारतीय संस्कृति के शुभ लक्षण हैं।

(3) “मैं अवश हूँ। फिरोज़ी, सुरमई, मूँगिया और चम्पई इन रंगों से घिरा होकर भी नवांकुरित दूब की हरित-पीत आभा की ओर मन दौड़ ही जाता है और धरती माटी, मानव और आस्था, ईमान, सत्य, चेतना और युग मानस इन सभी उपासना-मंत्रों के कोलाहल में ‘हरद, दूब, दधि, अच्छत मूला’ की गीतियों की स्फूर्ति के पीछे वह भटक जाता है। चारों ओर से लोग मुझसे प्रश्न पर प्रश्न करते हैं कि तुम अपनी प्रतिभा को क्यों बिखरा रहे हो, क्यों नहीं हमारे पंक्ति बन्धन में आकर उसको एक दिशा में आगे बढ़ाते, युग-पथ छोड़कर किन पिच्छल पग-चीथियों पर विभ्रान्त हो ? मैं किस-किस को क्या-क्या जवाब दूँ ? उन्हें कैसे समझाऊँ कि मेरे संस्कार ही मेरे अस्तित्व हैं, मैं इनको छोड़कर कुछ नहीं। इस अनन्त शून्य में तिरते हुए ये तिनके मिले हैं, उन्हें छोड़कर चलने पर मेरा आसरा टूट जायेगा। उन्हें कैसे दिखाऊँ कि तुम्हारी योजना, तुम्हारा यज्ञ, तुम्हारी क्रान्ति, तुम्हारी वाद, तुम्हारी आस्था और तुम्हारा ईमान मुझे ही नहीं मेरे जैसे हल्दी-दूब और दधि-अच्छत तो अपने मन की मनौती पूरी करने वाले असंख्य गँवार भाइयों को छू नहीं पाते। तुम लोक-गीत के तर्ज अपनाते हो, तुम गाथाओं की शैली अपनाते हो, पर तुम लोक का साक्षात्कार नहीं कर पाते, तुम से क्या अपने घर की बात कहूँ, तुम समझ नहीं पाओगे। भाई तुमने तो वसन-आभूषण ही देखे हैं, तुम शरीर तक नहीं देख पाये, आत्मा तो बहुत दूर की चीज है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में लेखक श्री विद्या निवास मिश्र जी कहने जा रहे हैं कि संसार में विद्यमान अनेक रंग दूर्वा के हरितपीत उत्तमा के समक्ष फीके हैं क्योंकि वह दूर्वा हर उपासना में स्फूर्ति प्रदान करती है। अतः मैं ‘हरद दूब दधि अच्छत’ जिस उपासना में प्रधानता रखते हैं, उससे विलग नहीं हो सकता।

श्री मिश्रजी का कथन है कि मैं विवश हूँ। इस संसार में फीरोज़ी हल्का नीला, सुरमई, मूँगिया और चम्पई अनेक रंग हैं किन्तु नई-नई उगी दूब का हरा-पीला रंग मुझे बरबस अपनी ओर खिंच लेता है। धरती, माटी, मानव की पूजा-उपासना और उस मानव की आस्था,

ईमान, सच्चाई, चेतना और युग-मानस इन सभी उपासना-मन्त्रों के कोलाहल में 'हरद, दूब, दधि, अच्छत' की प्रधानता रहती है। मेरा मन उनके प्रति अवश्य आकर्षित होता है।

मेरे इस आकर्षण को देखकर मुझसे सब तरफ से लोग प्रश्न करते हैं कि तुम अपनी प्रतिभा को इनके पीछे क्यों नष्ट कर रहे हो। तुम हमारी पंक्ति के बन्धन में आकर उस प्रतिभा को नवीन मार्ग की ओर क्यों नहीं अग्रसर करते। तुम संसारी मार्ग को छोड़कर कौन-सी पीछे ढकेलने वाली पगडंडी पर भटक रहे हो? इसके उत्तर में लेखक श्री मिश्रजी कहते हैं कि मैं किसे-किसे क्या-क्या जवाब दूँ? उन्हें मैं कैसे विश्वास दिलाऊँ कि इन संस्कारों से ही मेरा अस्तित्व है। इन्हें यदि मैंने त्याग दिया तो मैं मानता हूँ कि मेरा सहारा ही टूट जाएगा। उन्हें कैसे प्रत्यक्ष करवाऊँ कि तुम्हारी योजना, यज्ञ, क्रान्ति, वाद, आस्था और ईमान मुझे ही नहीं अपितु मेरे जैसे असंख्य ग्रामीण भाइयों को जो कि हल्दी, दूब और दही-अक्षत से अपनी मनोकामना पूरी करते हैं, उन्हें तुम्हारे नये विचार छू तक नहीं पाएँगे।

तुम लोक गीतों की लय अपनाते हो तथा पुरानी गाथाओं की शैली को भी अपनाते हो किन्तु तुम लोगों का साक्षात्कार नहीं कर पाते हो। अर्थात् जन-साधारण के अन्तर मन में नहीं पैठ पाते। अरे मेरे नवीन-चकाचौंध से विभोहित भाइयों तुम्हें मैं मेरे भारतीय घर की क्या बात बताऊँ, तुम्हारी वे समझ के बाहर होंगी क्योंकि तुम तो ऊपरी सौन्दर्य वस्त्र व आभूषण ही देखते हो वे उसके नीचे कैसा शरीर है, दुबला-पुष्ट या स्फूर्तिदायी—दैन्य भावोत्तेजक, यह तुम नहीं देख पाये हो फिर तुम्हारे लिये उस शरीर में निर्वासित आत्मा को देख पाना तो बहुत परे की वस्तु है।

विशेष—हल्दी-दूब और दधि-अच्छत के मूल वाली संस्कृति मानव की आत्मा तक को प्रावन बना देती है, शरीर का संस्कार तो वह उनसे अभियान्त्रित करने पर ही हो जाता है। अतः भारतीय संस्कृति का सीधा सम्बन्ध आत्मा से है, ऊपरी दिखावे से उसका कोई सरोकार नहीं।

(4) “भारतीय संस्कृति का मूल आधार तितिक्षा है, जिसकी सही अर्थ में मूर्त व्यंजना ही दूर्वा है। दूर्वा चढ़ाने का जो वैदिक मन्त्र है, वह भी इसी सत्य को दुहराता है। काड़ात्काडात्प्ररोहन्ति पुरुषः पुरुषस्परि। एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च।’ तितिक्षा ही के कारण उस संस्कृति की एक शाखा उच्छिन्न होते ही दूसरी शाखा निकल आयी है। जितने ही उस पर मार्मिक आघात हुए उतनी ही शत सहस्र उमंगों के साथ वह पनपी है। इसी के कारण उसे अप्रतिहत मंगल स्वरूप प्राप्त हुआ है और इसी के कारण भारत की धरती से इतनी हिचलगी बन रही है कि बिना उसके उसका कोई मांगलिक छिड़काव नहीं सम्पन्न होता है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में विद्वान् लेखक श्री विद्यानिवासजी मिश्र ने बताया कि दूर्वा अपनी सहनशीलता ही के कारण भारतीय संस्कृति के मांगलिक कार्यों में प्रधानता पा गई है। अतएव उसके बिना कोई भी पूजा का मंगलमय छिड़काव सम्पन्न नहीं हो पाता है।

श्री मिश्रजी का कथन है कि भारत की संस्कृति का मूल आधार तितिक्षा अर्थात् दूसरों के हित-कष्ट सहिष्णुता है। इसकी सही व्यंजना दूर्वा में निहित है। दूर्वा को प्रत्येक देव पर चढ़ाने का वैदिक मन्त्र भी इसी कष्ट सहिष्णुता को दोहराता है। वह कहता है कि दूब का हरा ताँतू अपने पर कठोर आघात को सहकर ही अन्य तन्तुओं के रूप में उत्पन्न हो जाता है। अतएव अरी, दूब! हमें तुम कष्ट सहिष्णु बनाकर सैकड़ों व हजारों उमंगों से भर दो। इसी कष्ट सहिष्णुता के कारण ही उस भारतीय संस्कृति में प्राधान्य पाई दूब की एक शाखा के उखाड़ फेंकने पर दूसरी शाखा निकल आया करती है, जितने ही उस पर कठोर आघात हुए हैं, उतनी ही सैकड़ों-हजारों उमंगों के साथ वह दूब पनपी है। इसी कष्ट-सहिष्णुता की वजह से उसे कभी-भी नष्ट नहीं होने वाला मांगलिक स्वरूप मिला है और इसी विशेष कारण से वह भारत के लोगों की इतनी प्रिय बन गई है कि उन भारतीयों का कोई भी मंगलमय छिड़काव उस दूब के बिना परिपूर्ण नहीं होता। हर मांगलिक कार्य में दूब से जल के छँटि उड़ाये जाते हैं।

विशेष—परहित कष्ट परायणता का गुण भारतीय संस्कृति के मूल में सदैव से संश्लिष्ट रहा है। यही गुण दूर्वा दल भी अपने में समूहित रखे हुए है, तभी तो वह भारतीय संस्कृति के साथ इतने प्यार से मांगलिक कार्यों में छिड़काव का समादन पाये हुए है।

(5) “हल्दी जब तक नहीं लगती, तब तक श्वेत से श्वेत वस्त्र अपरिधेय ही बना रहता है। हल्दी जब तक नहीं तब तक कौमार्य अपरिणय ही रहता है। हल्दी जब तक नहीं पड़ती तब तक रसवती अप्रेय ही रहती है। इसलिए अक्षय तृतीया को पहला हल खेत में जाने लगता है, तब हल, बैल और हलवाहा—तीनों ही हल्दी से टीके जाते हैं। जब पहला बीज धरती में पड़ने जाता है तब खेतिहर, खेत, बीज और कुदाली चारों हल्दी से छिड़के जाते हैं। जब मातृत्व की सफलता में नारी उतरने को होती है, तब उसके नैहर से आयी हुई हल्दी रंगी पियरी और हल्दी रंगी झंगुली उसको तथा उसके लाल को कुल के समक्ष प्रस्तुत करती है। जब कुमारी सुहागिन बनने को होती है, तब उसके अंग-अंग को हल्दी ही असीम देती है और नख-शिखा हल्दी से रंगकर ही सौन्दर्य

सौभाग्य का सिंदूरदान पाता है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में श्री मिश्रजी ने हल्दी, भारतीय संस्कृति में कहाँ-कहाँ अपना स्थान जमाए हुए है और क्यों इसका विवेचन किया है।

व्याख्या—श्री मिश्रजी का कथन है कि जिस श्वेत से श्वेत वस्त्र के हल्दी के छोटों का संस्कार नहीं हुआ, उसे पहनने लायक नहीं समझा जाता है। हल्दी से असंस्कारित श्वेत वस्त्र या तो विधवा पहनती है या फिर मृतक के शव का कफन ही बन पाता है। इसी भाँति जब तक किसी बालक या बालिका को हल्दी नहीं लगी तब तक उसका कुंवारापन अविवाहित ही समझा जाता है। इसी भाँति भोज्य पदार्थों में भी जब तक हल्दी नहीं पड़ती तब तक रसवती (झोल की सब्जी या रबड़ी) प्रिय नहीं लगती है। हल्दी के इसी महत्त्व को देखते हुए आखा तीज के दिन जब पहला हल खेत में जाने लगता है तब हल, बैल और हल जोता को हल्दी के टीके लगाये जाते हैं। इसी प्रकार जब पहला बीज धरती में बोया जाता है तब किसान, खेत, बीज व कुदाली को हल्दी के पानी का छिड़काव लेना होता है।

ऐसे ही जब कोई नारी पुत्र पैदा करके माता बनने को होती है तब उसके पीहर से आई हुई हल्दी रंगी पीली-चुनर तथा उसके लाल को हल्दी रंग-रंजित झंगुली धारण कराकर कुल के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। जब कोई कुंवारी कन्या सुहागिन बनने को जाती है तब उसके प्रत्येक अंग-अंग को हल्दी ही आशीर्वाद देती है तथा उसे नख से शिखा तक हल्दी के उबटन से रंगकर ही उसकी सुन्दरता सुहागिन का सिंदूर-वान पाने योग्य बनता है।

इस प्रकार से आज भी यह हल्दी भारतीय संस्कारों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान अटल बनाए हुए है।

विशेष—हल्दी का अपरिहार्य प्रयोग भारतीयों के जीवन की एक संस्कृति समन्वित उपदान बन गया है। उसे वे अपने जीवन के हर मोड़ पर सादर संयोग पाते हैं तथा इससे अपने को मांगलिक एवं साशीष आकलित करते हैं।

(6) “दही उस संस्कृति की कपिला वाणी की साक्षात् रसमयी प्रतिभा है। दूध से यौवन में उफान का बोध भले ही होता रहे, मक्खन से मन की एकता भी और घृत से आयु की लक्षणा भी बनती रहे, पर दही की प्राप्ति दही में ही आयी है और इसीलिए सही माने में गोरस केवल दही ही है। जिस दही के दान के लिए इस देश के परब्रह्म हाथ पसारते रहे हों, जिस दही के मटके के लिए मंगल-विधि तरसती हो, वह दही अपने समस्त गुणों में उस देश की सांस्कृतिक विवर्तनशीलता तथा अन्तर्ग्रहणशीलता का प्रतिमान है। दूध में खटाई पड़ने ही वह फट जाता है, दूध में नमक की एक छोटी-सी डली भी पड़े तो वह विष तुल्य हो जाता है। पर दही खटाई, मिठाई, लुनाई सभी स्वादों से समरस होने वाला एक विलक्षण अस्वास्व है। उसमें दूध के उफान वाली के पिघलने से अधिक धीमी आँच में तपने के कारण एक स्थिर रूपता है। ठीक यही बात उस दही के अभिव्यंजनमान संस्कृति के बारे में भी कही जा सकती है। सभीरसों से मेल रखती हुई भी अपने रस में सबको समविष्ट करती हुई और क्षणिक उत्ताप या द्रवण से अप्रभावित रहकर साम्य निदर्शन करती हुई वह सच्चे अर्थ में दधि से अधिक ‘उर ईंठी’ बन गयी है। उसकी ऐसी महिमा है कि उसके छाछ के लिए इन्द्र तक तरसते हैं, स्वयं सचिदानन्द तक को ‘अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पर’ नाच नचा देती हैं। उसके मन्थन से केवल अमृतमय नवनीत निकलता है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में उद्भट बिद्वान् लेखक श्री विद्यानिवास मिश्र जी ने दही पदार्थ एवं उसका भारतीय संस्कृति में महत्त्वपूर्ण योगदान तथा उसका गुणकारी प्रभाव प्रकट किया है।

श्री विद्यानिवास मिश्र जी का कथन है कि भारतीय संस्कृति की पवित्र कपिला नामक गाय की वाणी का साक्षात् आनन्द विधायी प्रतिरूप दही है। दूध से चाहे जवानी में उद्रेष पैदा हो जाए, मक्खन से मन की एकाग्रता बनी रहे तथा घी से आयु-वर्धन का विलक्षण चमत्कार प्रकट होता रहे तथापि अभीष्ट वांछा की प्राप्ति दही से ही होती आयी है और इसीलिए सत्यार्थ में दही को ही गोरस की उपाधि मिली है।

जिस दही को दान रूप में पाने हेतु इस भारत देश के परब्रह्म श्री कृष्ण ग्वालिनों के सामने हाथ फैलाते हों, जिस दही के मटके को हस्तगत करने हेतु मांगलिक-उपचार लालायित रहता आया हो, वह दही अपने सभी गुणों में, उस भारत देश की संस्कृति की अपरिवर्तनीयता तथा सभी अन्य संस्कृतियों को समाहित करने की क्षमता रखकर उस संस्कृति का एक प्रतिमान बन गया है।

दूध में खटाई पड़ने से वह फट जाता है, दूध में नमक की एक डली पड़ने पर वह जहर के समतुल्य हो जाता है पर एक दही ही ऐसा पदार्थ है, जिसमें खट्टा, मीठा या नमकीन कोई भी पदार्थ डालो, वह सभी स्वादों से मेल खाने वाला विलक्षण भोज्य पदार्थ बना रहता है। उसके स्वाद में समरसता है। इस दही में दूध के उफान या घी के पिघलने से अधिक धीमी आँच में तप्तता पाने पर एक स्थिर-रूपता आ जाती है। ठीक यही बात स्थिर रूपता की उसके संस्कृति में झलकने वाले रूप में भी आ जाती है। सभी रसों से मेल रखती हुई भी अपने रस में सबको सन्निहित करती हुई और थोड़े समय के उन्ताप या द्रवण से प्रभावहीन रहकर समता का पाठ पढ़ाती हुई वह सच्चे अर्थ में दही से अधिक ‘उर-ईंठी’ अर्थात् हृदयग्राही बन गयी है। तभी तो उस दही की ऐसी महिमा है कि उसकी छाछ के लिये देवराज

इन्द्र भी तरसते हैं, स्वयं सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण तक को 'अहीर की छोछरियाँ छछिया भरि छाछ पै' नाच नचा देती हैं। उस दही के मंथन से अमृतमय नवनीत निकलता है, जिससे आयुष्य की वृद्धि होती है।

विशेष— भारतीय संस्कृति में दही की प्रधानता द्रापर युग से लेकर आज पर्यन्त अपना अक्षत ऐकाधिकार जमाये हुए है। यह उसके विशेष गुण समरसता के कारण ही ऐसा हो पाया है। तभी तो स्वर्ग के अधिष्ठाता इन्द्र भी उसके एक रूप छाछ को तरसते हैं तथा स्वयं श्रीकृष्ण भी कुलड़ी भरी छाछ पर अपना नाच अहीरों की कन्याओं के समक्ष दिखाने को विवश हो जाते हैं।

(7) "सौभाग्य, तितिक्षा, स्नेह तथा परिपूर्णता के लिए आग्रह-रूप में उस संस्कृति की पूजा की थाली हल्दी-दूब और दधि-अच्छत से सजाई जाती रही है और सजाई जाती रहेगी। पर पूजा का मर्म उसी को खुलेगा, जो लोक जीवन की मंगल साधना में अपने को तन्मय कर सकेगा और यह तन्मयता ग्राम सेवक या गाँव सार्थी बनने में नहीं आयेगी, उसे पाने के लिए मन में गँवार बचना होगा, शहरी संस्कारों को एकदम धो देना होगा। बिना उसके हल्दी, दूब और दधि अर्थ शून्य ही लगेंगे। ये सभी मंगलमय द्रव्य अभिव्यंजन हैं, अभिधान हैं। अभिधान को प्रकट करने में हम दोष मानते हैं और अभिव्यंजन के लिए सहृदयता की जरूरत पड़ती है, बिना उसके उसका अर्थ रस बनकर आस्वाद्य नहीं होता। आज संस्कृति का अभिधान तो है, जो न होता तो अच्छा होता, पर उसका अभिव्यंजन नहीं है। उस अभिव्यंजन को न पाकर ही साहित्य रिक्त है, सांस्कृतिक जीवन भी मृत्तंग की भाँति मुखर होते हुए भी खोखला है। आज जीवन में उसे अभिव्यंजना को मरने की ललक इसीलिए सबसे अधिक है और इसी से हल्दी, दूब और दधि अच्छत का मान अधिक दिलों तक अपेक्षित नहीं रह सकता।"

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश में लेखक श्री विद्यानिवास जी मिश्र ने भारतीय संस्कृति के अनुसार पूजा की थाली हल्दी-दूब और दधि-अच्छत से किनके यहाँ सजती रहेगी तथा क्यों इसी का सकारण उत्तर प्रस्तुत किया है।

श्री मिश्रजी कहने जा रहे हैं कि अच्छा भाग्य, कष्ट परायणता, प्यार, मनोकामना पूर्ति हेतु आग्रह करके भी भारतीय संस्कृति में पूजा की थाली हल्दी-दूब और दही-अक्षत से सजाई जाती रही है एवं भविष्य में भी सजाई जाती रहेगी। किन्तु इस पूजा का रहस्य उसे ही स्पष्ट होगा, जो लोक-जीवन की मंगलमयी साधना में अपने को तल्लीन कर सकेगा और वह तल्लीनता ग्राम सेवक या गाँव के साक्षी बनने में नहीं आएगी। उस तन्मयता की प्राप्ति हेतु मन से ग्रामीण बनना होगा तथा शहरी संस्कारों को एक दम धोकर मिटाना होगा। बिना शहरी संस्कारों के मिटायें हल्दी-दूब और दही-अक्षत बेमानी, दोंगें ही प्रतीत होंगे।

ये चारों मांगलिक द्रव्य हृदय की अभिव्यक्ति चाहते हैं, केवल इनके नाम लेने से कोई लाभ नहीं होने का। लेखक का कहना है कि इन चारों मांगलिक द्रव्यों का नाम मात्र ही प्रकट करना दोष ही गिना जाएगा। इनके साथ तो हृदय की अभिव्यंजना चाहिए। बिना हृदय की अभिव्यक्ति के उन चारों पदार्थों का भाव, रस बनकर आस्वाद्य नहीं हो जाएगा। वर्तमान में संस्कृति का नाम तो हर किसी की जबान पर है, पर यह नहीं होता तो श्रेष्ठ था क्योंकि केवल नाम-मात्र से क्या बनने का है। यदि उसका हृदय से प्रकटीकरण नहीं तो सब व्यर्थ है। तब तो सांस्कृतिक जीवन भी मृत्तंग की भाँति शब्दायित होते हुए भी खोखला है। आजकल के मानव जीवन में उस अभिव्यंजन को भरने की लालसा इसीलिए सबसे अधिक है तभी कहीं जाकर हल्दी-दूब और दधि-अच्छत का मान अधिक दिनों तक उपेक्षा की वस्तु नहीं रह जाएगा।

सारांश यह हुआ कि उक्त चारों पदार्थों का सच्चे दिल से अभिव्यंजन करना है, केवल नाम लेकर छुट्टी नहीं पा लेनी है। तभी हमारी पूजा में भारतीय संस्कृति झलकेगी नहीं तो हम विदेशी संस्कृति के पिछलग्गू ही बनकर रह जाएँगे। अपना गवाँ करदूसरों की भी सही अनुकृति हमसे नहीं हो पाएगी।

विशेष— हल्दी-दूब और दधि-अच्छत वाली भारतीय संस्कृति हृदय की, अभिव्यंजना से ही महत्ता पाती है। केवल अभिधान मात्र से नहीं, वह रस रूप में तभी आस्वाद्य प्रतीत होगी जब उसे हम दिल से अभिव्यक्ति देंगे।

13.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. ललित निबन्ध और निबन्ध में क्या अन्तर होता है, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—निबन्ध की परिभाषा— थोड़े किन्तु चुने हुए शब्दों में किसी विषय पर अपने विचार प्रकट करने को निबन्ध कहते हैं। निबन्ध के विषय की कोई निश्चित सीमा नहीं। चींटी से लेकर स्पूतनीक तक किसी भी विषय को निबन्ध की परिधि में लिया जा सकता है।

निबन्ध के प्रकार— निबन्ध के मुख्य रूपेण तीन प्रकार कहे गये हैं— 1. वर्णनात्मक, 2. आख्यानात्मक, 3. विचारात्मक।

1. **वर्णनात्मक**—इस प्रकार में किसी वस्तु, पदार्थ, स्थान, यात्रा, घटना या दृश्य आदि का वर्णन किया जाता है। इसमें युक्ति व प्रमाण नहीं दिये जाते, केवल वर्ण्य विषय का यथार्थ चित्रण किया जाता है।

2. **आख्यानात्मक**—इसमें किसी प्रसिद्ध या बदनाम व्यक्ति के जीवन को आधार बनाकर निबन्ध लिखा जाता है। आख्यानात्मक निबन्ध में केवल व्यक्ति का शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक परिचय ही नहीं दिया जाता, अपितु उसके व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला जाता है और उसके गुणावगुणों का संक्षेप में परिचय दिया जाता है। जैसे—रावण, कंस, हिटलर, जवाहरलाल आदि।

3. **विचारात्मक**—इसमें किसी विचार अथवा भाव को लेकर रचना की जाती है। दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीति, धर्म, संस्कृति, सभ्यता, विज्ञान, इतिहास आदि से सम्बन्ध रखने वाले विषय विचारात्मक निबन्ध के अन्तर्गत आते हैं।

विचारात्मक निबन्ध के भेद—इसके दो भेद होते हैं— 1. भावना प्रधान, 2. तर्क प्रधान।

1. **भावना प्रधान**—इसमें रचनाकार अपने मन की भावनाओं में बहता हुआ भावुक शैली में रचना करता है। वह अपने भावों को सही मानता हुआ जो कुछ मन में तरंग आए, उसी को शब्दावली में गुम्फित कर देता है।

2. **तर्क प्रधान**—इस प्रकार के निबन्ध में रचनाकार अपने विचारों को तर्क अथवा युक्ति प्रमाणों से सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। कभी-कभी किसी विचार का विश्लेषण या विवेचन किया जाता है। इसमें किसी भाव या विचार पर बाद-विवाद भी किया जाता है। इसमें किसी वस्तु, विषय या रचना की आलोचना भी की जाती है या आलोचना की प्रत्यालोचना भी की जाती है।

ललित निबन्ध की परिभाषा—धर्म, संस्कृति, सभ्यता आदि विषयों पर ललित भाव व भाषा में की गई रचना ललित निबन्ध की कोटि में आती है। यह विचारात्मक निबन्ध का ही अन्यतम प्रकार है। उदाहरण के रूप में श्री विद्यानिवास मिश्र जी ने तो 'हल्दी-दूब और दधि-अच्छत' रचना की है, वह इसी ललित निबन्ध का सुन्दरतम निदर्शन है।

इस निबन्ध में लालित्य—इस निबन्ध में विद्वान् लेखक श्री मिश्रजी ने भारतीय संस्कृति में, जो आजकल गाँवों में ही देखने को मिलती है, उसमें हल्दी-दूब और दधि-अच्छत मांगलिक उपादानों से मूर्तरूप है। इनके बिना भारतीय घर की कोई भी पूजा-अर्चना परिपूर्ण व शुभ नहीं मानी जाती है।

षष्ठी (छठी) पूजन में दूर्वा और अक्षतों का उपयोग—मिश्र जी कहते हैं कि मेरे मन में अब भी वह याद ताजी है, जब मेरी षष्ठी का पूजार्चना हो रही थी। उसमें मैं दूर्वाक्षतों से सौ बार चूमा गया था। तीस-पैंतीस कुल कन्याओं की सेना मस्तक से लेकर जानु तक अपनी अंगुलियों से दूब-अक्षत लेकर वय, शक्ति और उमंग के अनुरूप बल लगा-लगाकर एक के बाद एक दबाती जा रही थी। इस व्यापार को चूमते की संज्ञा देकर गीत गाये जा रहे थे। मैं इस चूमने से खीजता जा रहा था, पर भीतर मुझे ऐसा लग रहा था कि जैसे दूब-अच्छत के संयोग से अक्षय हरियाली की शुभकामना मेरे अंग-अंग को अभिमंत्रित कर रही हो।

उसे चूमने में अधर नहीं मिले पर न जाने कितने बाल, किशोर, तरुण और प्रौढ़ हृदयों को अपने-अपने ढंग से मंगल चेतना का संस्पर्श अवश्य मिला। उसे चूमने से मादकता नहीं आयी, पर न जाने विश्वभर के सहयोग का एक ऐसा आश्वासन मिल गया कि मन में मीठी-सी सिहरन पैदा हुई। उस चूमने में शोले नहीं भड़के, नसें नहीं पिघली और प्यार की प्यास नहीं चढ़ी अपितु एक ऐसी शीलता, जड़िमा और परितृप्ति आई कि लगा, व्यक्ति को प्रणय समष्टि की स्नेह छाया के लिए युगों से तरसता आया हो और अब उसे पाकर परितुष्ट हो गया हो।

उक्त प्रकार से दूर्वा और अक्षतों का उपयोग भारतीय संस्कृति में केवल अभिधान रूप में ही नहीं लिया जाता है अपितु उन मंगलमयी भावनाओं को बढ़ाकर मन को सन्तुष्टि प्रदान करता है, जिसके बिना आज की शहरी सभ्यता में पल-बढ़ मानव अपने को रिक्त समझता है।

निबन्ध व ललित निबन्ध में अन्तर—निबन्ध तो गद्य की वह सशक्त विधा है, जो किसी भी विषय पर चुने हुए शब्दों में विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। इसके साथ चींटी से लेकर वैज्ञानिक आविष्कार स्पूतनीक (रॉकेट) तक हो सकते हैं। किसी भी क्षेत्र से सही-सही विचारों की अभिव्यक्ति मात्र निबन्ध के क्षेत्र में आ जाती है।

किन्तु ललित निबन्ध, धर्म, संस्कृति, सभ्यता आदि भावना-प्रधान विषयों पर ललित भाव एवं भाषा में की गई अभिव्यक्ति को ही कहेंगे। इस प्रकार से ललित, निबन्ध अपने में मानव की मंगलमयी भावनाओं को परितृप्ति देने वाले सशक्त साधन हैं। उनका साधारण निबन्धों से बस यही अन्तर है कि साधारण निबन्ध तो विषय का प्रतिपादन मात्र ही होते हैं जबकि ललित निबन्ध विषय को प्रतिपादित करते हुए उसकी उपयोगिता भी प्रदर्शित करते हैं। जैसे मिश्र जी ने 'हल्दी-दूब और दधि-अच्छत' निबन्ध में ये वस्तुएँ भोज्य पदार्थ

होते हुए भी भारतीय सभ्यता में मानव की मंगलमयी एवं शुभ भावना को बढ़ा कर उसके मन को संतुष्टि देते हैं।

प्रश्न- 2. 'हल्दी-दूब और दधि-अच्छत' निबन्ध में भारतीय संस्कृति की किस स्थिति का उल्लेख लेखक ने किया है ?

उत्तर— भारतीय घर की ग्रामीण संस्कृति— 'हल्दी-दूब और दधि-अच्छत' निबन्ध में विद्वान् लेखक श्री विद्यानिवास मिश्र जी ने भारतीय घर की ग्रामीण संस्कृति का उल्लेख किया है। वह निम्नानुसार है—

मेरे घर की संस्कृति के मांगलिक उपादान मूर्तरूप में हल्दी-दूब और दधि-अच्छत ही हैं, इसलिए शहर में एक लम्बे अरसे तक बसने के बाद भी मन इन मंगल द्रव्यों की शोभा के लिए ललक उठता है। बहुत दिनों से कोई अर्चना-पूजा नहीं की है, जिसको अर्चन का अधिकार सौंप दिया है, उससे भी कोसों और महीनों का व्यवधान है। बसन्त की उदास बयार की लहक एक अजीब-सा अपनापन भर रही है, वर्षात् के कार्य का बोझ सिर पर लदा हुआ है, जिसे लोग उल्लास कहते हैं वह पथरा गया है, पर क्या बात है कि हल्दी से रंगी हथेली, दूब से पुलकित पूजा की थाली अक्षत से भरा चौका और दधि से शोभित भाल ये चित्र मन में उभर आते हैं।

हृदय का वह प्रथम अनुराग बासा पड़ गया, उस नव-प्रणय की भाषा जूठी हो गयी, उसके अन्तर का वह रस सीठ गया, उस रस का वह आपूरित आनन्द रीत गया, जिन नवदृग पल्लवों की वन्दनवार लगी, वे दृग पल्लव मुरझा गये, नयन सलौने अधर मधु दोनों को करूँवा गये, पर क्या जादू है कि मन की कोरों में हल्दी नहीं छुटी, जीवन प्रान्तर में उगी दूब और परिसर में बिछी हुई अच्छत राशि क्षत-विक्षत नहीं हुई।

शहर में रहते हुए भी ग्रामीण संस्कृति की ललक— उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि विद्वान् लेखक श्री विद्यानिवास मिश्र जी यद्यपि उस समय शहर में दीर्घकाल से निवास कर रहे थे, फिर भी उन्हें अपने घर की ग्रामीण संस्कृति के मांगलिक उपादान हल्दी-दूब और दधि-अच्छत की स्मृति हो ही जाती है।

शहर में रहते हुए उन्हें बसन्त की बयार, उदास व एक अजीब अन्य मनस्कता का भाव भरने वाली प्रतीत होती है। वर्षा का मौसम क्रम का सिर पर बोझ जैसा मालूम देता है। शहर में रहते हुए उनके मन का उल्लास पथराया सा लगता है, किन्तु फिर भी ज्योंही उनमें अपने घर की ग्रामीण संस्कृति की याद आती है तो उनके मानस-पटल पर हल्दी से रंगी हथेली, दूब से पुलकित पूजा की थाली, अक्षत से भरा चौक और दधि से शोभित भाल के चित्र उभर आते हैं।

चाहे इस पकी उम्र में मिश्रजी के हृदय का वह पहला प्यार बासा पड़ गया, उस नये प्यार की भाषा 'जूठी सी लगने लगी, उनके प्रणय का आन्तरिक रस चाहे सीठ गया, उस प्यार के रस का वह भरा हुआ आनन्द खाली हो गया, जिन नये-नयनों की वन्दनवार रूपी टकटकी कभी उनकी ओर लगी रहती थी, वे नयन इस उम्र में उन्हें देखने को भी शरमाते हैं, कभी उन्हें जो नयन सलौने व ओठ मीठे लगा करते थे वे अब कसाय से लगते हैं, फिर भी घर की ग्रामीण संस्कृति का जादू तो देखिए कि उनके मन की कोरों में हल्दी नहीं छुटी है, जीवन प्रान्तर में उगी दूब और उनके आंगन में बिछी हुई अच्छत राशि क्षत-विक्षत नहीं हुई है।

आशय यह हुआ कि उस पकी उम्र में भी उन्हें अपने घर की ग्रामीण संस्कृति अब भी तृप्ति प्रदान करती ही रहती है।

ग्रामीण संस्कृति का दूसरा चित्र—हल्दी जब तक नहीं लगती, तब तक श्वेत से श्वेत वस्त्र अपारिधेय ही बना रहता है। हल्दी जब तक नहीं, तब तक कौमार्य अपरिणय ही रहता है। हल्दी जब तक नहीं पड़ती तब तक रसवती अप्रेय ही रहती है। इसीलिए जब अक्षय तृतीय को पहला हल खेत में जाने लगता है, तब हल, बैल और हलवाला—तीनों ही हल्दी से टीके जाते हैं। जब पहला बीज धरती में पड़ने जाता है तब खेतिहर, खेत, बीज और कुदाली—चारों हल्दी से छिड़के जाते हैं। जब मातृत्व की सफलता में नारी उतरती है, तब उसके नैहर से हल्दी रंगी पियरी और हल्दी रंगी झंगुली उसको तथा उसके लाल को कुल के समक्ष प्रस्तुत करती है। जब कुंवारी सुहागिन बनने को होती है, तब उसके अंग-अंग को हल्दी ही असीस देती है और नख-शिख हल्दी में रंग कर ही सौन्दर्य सौभाग्य का सिन्दूरदान पाता है। क्योंकि हल्दी के गर्भ में ही धरती का सच्चा अनुराग तत्त्व छिपा रहता है, हल्दी की गांठ में स्नेह का अशेष हृदय से आमन्त्रण बंधा रहता है। इसी में लोक के अन्ता का आग्रह था अतः वह हल्दी मंगल विविध में अपरिहार्य बन गयी।

उक्त ग्रामीण संस्कृति के दूसरे चित्र में श्री मिश्रजी ने हल्दी की लोक जीवन में, अपरिहार्य आवश्यकता प्रतिपादन की है। यह प्रायः गाँवों में देखने को मिल जाता है, जब आखातीज को प्रथम हल खेत में जाने को होता है तब हल, बैल, हलवाला—तीनों हल्दी से टीका संस्कार किये जाते हैं। धरती में बीज पड़ने के समय भी खेतिहर, खेत, बीज और कुदाली को हल्दी के जल से अभिषिक्त किया जाता है। इसी भाँति नारी के माता बनने पर पियरी व झंगुली हल्दी से रंगी नैहर से आती है। ये सभी दृश्य हमें ग्रामीण संस्कृति में देखने को मिल जाते हैं। इनके पीछे उनकी मंगलमयी हृदय भावना जुड़ी हुई रहती है तो उनके तत्-तत् कार्यों की पूर्ति में मंगलमय आशीर्वाद देते हैं।

ग्रामीण संस्कृति का मर्म किसे खुलेगा ?— यह ग्रामीण संस्कृति किस व्यक्ति को सौभाग्य, तितिक्षा, स्नेह तथा परिपूर्णता देगी।

इस पर भी विचार कर लेना अतिआवश्यक है। हल्दी-दूब और दधि-अच्छत से सजाई गई पूजा की थाली केवल उन्हीं लोगों को मनोकामना की परिपूर्णता देगी जो लोक जीवन की मंगल साधना में अपने को तन्मय कर सकेंगे। वह तन्मयता ग्राम सेवक या गाँव वालों के साथी बनने मात्र से नहीं आयेगी। उस तन्मयता को पाने के लिए मन से गँवार बनना होगा, शहरी संस्कारों को एकदम धो डालना होगा। बिना उसके हल्दी-दूब और दधि-अच्छत सभी अर्थ शून्य एक ऊपरी दिखावा लगेगा।

यह समझ लेना चाहिए कि ये चारों द्रव्य मंगलमय अभिव्यंजन हैं अर्थात् इनको अपनाने हेतु सहृदयता की आवश्यकता है। तुम्हारा दिल यदि इन्हें मंगलमय मानेगा तो ही ये फलदायी होंगे। आज संस्कृति का अभियान (नाम) तो है, पर उसका अभिव्यंजना अर्थात् हृदय में समर्थन नहीं है। उस अभिव्यंजना को न पाकर साहित्य खोखला रह गया है। संस्कृति जीवन की मूर्त की भाँति मुखरित होते हुए भी प्रभाव-शून्य है। आज जीवन में उस अभिव्यंजन को भरने की लालसा इसीलिए सबसे अधिक प्रतीत होती है ताकि भारतीय जीवन में हल्दी-दूब और दधि-अच्छत का मान अधिक दिनों तक उपेक्षित नहीं रह सके।

प्रश्न-3. श्री विद्या निवास मिश्र जी की शैली पर प्रकाश डालते हुए लोक जीवन की मंगल साधना से उनका क्या आशय है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—श्री मिश्रजी की शैली—निबन्धों की शैली गवेषणात्मक, व्याख्यात्मक, विवरणात्मक आदि उनके विषयानुसार विभिन्न प्रकार की होती हैं। निबन्धों के विषयों के वर्गीकरण की दृष्टि से यदि विचार करें तो वे विषय होंगे—साहित्यिक, आर्थिक, राजनीतिक, वाणिज्यिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक।

संस्कृति से सम्बन्धित विषय वाले निबन्ध विचारात्मक भेद के अन्तर्गत आते हैं। इन विचारात्मक निबन्धों के भी दो उपभेद हैं—
(क) भावना प्रधान, (ख) तर्क प्रधान।

श्री विद्यानिवास मिश्रजी के निबन्ध 'हल्दी-दूब और दधि-अच्छत' भारत की ग्रामीण संस्कृति को प्रत्यक्ष करता है। इसमें उन्होंने अपनी गवेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने 'हल्दी-दूब और दधि-अच्छत' में भारत के ग्रामीणों की संस्कृति की गवेषणा कर उन्हें मांगलिक उपादान के मूर्त रूप में चित्रित किया है। इन चारों द्रव्यों से अर्चना-पूजा की थाली भारत में आदिकाल से सजाई जाती रही है तथा भविष्य में भी सजाई जाती रहेगी।

श्री मिश्रजी का कहना है कि उस पूजा का मर्म उसे ही ज्ञात होगा जो लोक जीवन की मंगल-साधना में अपने को तन्मय कर सकेगा और वह तन्मयता ग्राम सेवक या गाँव साथी बनने में नहीं आयेगी उस तन्मयता को पाने हेतु मन से गँवार बनना होगा, शहरी संस्कारों को एक-दम धो देना होगा। बिना उन संस्कारों के त्याग के हल्दी-दूब और दधि-अच्छत अर्थ शून्य आडम्बर ही लगेंगे क्योंकि ये सभी मंगलमय दृश्य अभिव्यंजन हैं, अभिधन यानि नाम-मात्र नहीं हैं। अभिव्यंजना, सहृदय व्यक्ति ही प्रकट कर सकता है। जब इन चारों द्रव्यों से दिली लगाव होगा तभी कहीं से मनोकामना पूर्ण हेतु आशीष दे पाएँगे।

उक्त विवेचन से श्री मिश्रजी की गवेषणात्मक शैली का स्पष्टीकरण स्फुट हुआ। हल्दी-दूब और दही-अक्षत जैसे साधारण द्रव्यों में उन्होंने अनेक उदाहरण देकर भारतीय ग्रामीण संस्कृति की भली-भाँति खोजकर के हमारे सामने रखी है। उदाहरणार्थ अक्षय तृतीया को जब खेत में पहला हल जाने लगता है, तब हल, बैल और हलवाहा—तीनों को हल्दी से टीके जाते हैं। दूसरे जब पहला बीज धरती में जाता है तब खेतिहर, खेत, बीज और कुदाली चारों हल्दी से छिड़के जाते हैं।

सामाजिक उदाहरणों में नारी जब माता बनती है तब नैहर से हल्दी रंगी पियरी और हल्दी रंगी झंगुली उसको तथा उसके लाल को कुल के समक्ष प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार कुंवारी को सुहागिन बनने के समय हल्दी ही नख से शिखा तक रंगकर सौभाग्य-सिन्दूर पाने की अधिकांशिता बनाती है। इसका कारण मिश्र जी के विचार से यह है कि हल्दी के ही गर्भ में धरती का सच्चा अनुराग-तत्त्व छिपा है। हल्दी को गाँठ में स्नेह का अशेष हृदय से आमन्त्रण बंधा रहता है।

लोक जीवन की मंगल-साधना का आशय—श्री विद्यानिवास जी मिश्र ने लोक-जीवन की मंगल-साधना का आशय स्पष्ट करते हुए कहा है, अरे शहरी सभ्यता वाले लोगों तुम लोक गीत के तर्ज अपनाते हो, तुम उन लोक गाथाओं की शैली अपनाते हो पर तुम लोक का साक्षात्कार नहीं कर पाते। अर्थात् ग्रामीण लोगों से साक्षात्कार करके तन्मयता का अनुभव नहीं कर पाते हो। यह लोक-जीवन की मंगल-साधना तुम्हें तभी आ पाएगी जब तुम अपने को मन से गँवार बनाओगे। केवल ग्राम सेवक या ग्राम साथी बनने से काम नहीं चलेगा। तुम्हें भी ग्रामीणों के साथ गँवार कहलाने या अनुभव करने में जब गवानुभूति होगी तभी तुम लोक जीवन की साधना में योगदान दे पाओगे। तभी कहीं जाकर तुम्हें उन ग्रामीणों के मांगलिक उपादान हल्दी-दूब और दधि-अच्छत सार्थक लगेंगे एवं तुम्हारे भी मांगलिक कल्याण में उनका योगदान हो पायेगा।

मिश्रजी को शहरी सभ्यता वालों का आमन्त्रण—शहर की कॉफी हाऊस या कोका-कोला सभ्यता में रचे बसे लोग मिश्रजी को

कहते हैं कि तुम अपनी प्रतिभा ग्रामीणों पर क्यों बिखेर रहे हो ? क्यों नहीं हमारी पंक्ति में आकर अपनी प्रतिभा को एक दिशा में आगे बढ़ाते हो ? युग पथ छोड़कर किन पिच्छिल पग-वीथियों पर भटक रहे हो ? इन प्रश्नों का श्री मिश्रजी के पास एक ही उत्तर है और वह है कि, 'मेरे ये ग्रामीण संस्कार ही मेरे अस्तित्व के विधायी अंग हैं। मैं इनका त्याग करके अपने में स्वयं को अर्थहीन अनुभव करता हूँ। उन्हें छोड़कर चलने पर मेरा आसरा ही टूट जाएगा।'

उक्त उत्तरों में श्री विद्यानिवास मिश्र जी की ग्रामीणों के प्रति तन्मयता बोलती है। तभी वे लोक जीवन की मंगलमयी साधना में अपने को सम्मिलित कर पाते हैं। लोक जीवन से मिश्र जी का आशय है गाँव के भोले-भाले लोगों की जिन्दगी से। मंगलमयी साधना से उनका भाव है कि वे जैसे मांगलिक उत्पादन 'हल्दी-दूब और दधि-अच्छत' द्वारा अपने सभी करणीय कार्यों, खेती सम्बन्धी, समाज सम्बन्धी तथा धर्म सम्बन्धी में इनका दिल से उपयोग करते हैं, वैसा सभी करें। यदि लोग ऐसा नहीं करेंगे तो साँस्कृतिक जीवन भी मृदंग की भाँति मुखरित होते हुए भी खोखला रह जाएगा।

13.2 सारांश

आज के इस व्यस्त जीवन में भारतीय ग्रामीण संस्कृति के प्रति सहृदय अभिव्यंजना की आवश्यकता है। तभी हम हल्दी-दूब और दधि-अच्छत का मान अधिक दिनों तक उपेक्षित नहीं देख सकेंगे। यही होगी हमारी लोक जीवन की मंगलमयी साधना।

इकाई- 14 : भारतीय चिन्तन में धर्म-निरपेक्षता

(डॉ. शंकरदयाल शर्मा)

संरचना

- 14.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 14.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 14.2 सारांश

14.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “मुझे उस धर्म का अनुयायी होने में गर्व महसूस होता है, जिसने दुनियाँ को सहिष्णुता और सर्व-समावेशकता की शिक्षा दी है। हम सबके प्रति सहिष्णु बनने में ही विश्वास करते हैं। हम तो सभी धर्मों को सत्य मानकर उनको स्वीकार करते हैं। मैं गर्व के साथ कहना चाहता हूँ कि हमने अपने हृदय में इस्त्राइलियों के शुद्धतम स्वरूप को धारण किया है, जो ब्रिश्चण भारत के किनारे पर आये और यहाँ पर पनाह ली। ठीक उसी साल जब उधर पश्चिम में उनके पवित्र मन्दिर को रोमन तानाशाही ध्वस्त कर रही थी। मुझे उस धर्म का व्यक्ति होने पर गर्व महसूस होता है, जिसने महान् जरथुष्ट्र के देश के बचे हुए हिस्से को आश्रय दिया था।”

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश भारत के राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के व्याख्यान का अंश है, जो हमारी पाठ्य-पुस्तक में भारतीय चिन्तन में धर्म-निरपेक्षता शीर्षक पाठक में मुद्रित है। ग्यारह सितम्बर, 1893 को शिकागो के वर्ल्ड पार्लियामेंट ऑफ रिलिजन्स के अधिवेशन में स्वामी विवेकानन्द ने अपनी ओजस्वी वाणी में हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को वर्णित करते हुए कहा था कि मैं उस धर्म का अनुयायी हूँ, जिस धर्म ने दुनियाँ को सहनशीलता का परिचय दिया और सबको समाहित करने का उपदेश दिया था। हमारी विशेषता केवल यही नहीं रही कि हम सबके प्रति सहनशील बने रहें बल्कि हमारी विशेषता यह भी रही है कि हम सभी धर्मों को सत्य मानकर उनको सहर्ष स्वीकार करते हैं। कहने का भाव यह है कि हमने हमेशा ही सभी धर्मों को समान आदर की दृष्टि से देखा, किसी के भी प्रति अपनी दृष्टि को कुंठित नहीं किया। इसका परिणाम यह रहा कि जो भी बाहर से आये उनको सहजता के साथ अपने में समाहित कर लिया। स्वामी विवेकानन्द ने गर्व व्यक्त करते हुए इस्त्राइलियों को सहिष्णुता के आधार पर ही उन्हें पनाह दी जबकि रोमन तानाशाहियों द्वारा उनके मन्दिर को उसी साल नष्ट कर दिया गया। इसलिए मुझे ऐसे धर्म का अनुयायी होने पर गर्व महसूस होता है, जो अपनी सहिष्णुता और सभी धर्मों के प्रति समान आदर भाव रखता है। इसी भावना के आधार पर जिस धर्म ने जरथुष्ट्र के देश के बचे हुए हिस्से को आश्रय दिया था।

विशेष— 1. स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की सहिष्णुता और सभी धर्मों के प्रति समादर भाव की ओर संकेत करते हुए इसकी श्रेष्ठता और महानता का प्रतिपादन किया है।

2. गद्य की भाषा शुद्ध साहित्यिक हिन्दी तथा अर्थ गाम्भीर्य को समाहित किए हुए है।

2. “पण्डित जवाहरलाल नेहरू इसे स्पष्टता के साथ जानते और मानते थे कि भारत एक राष्ट्र के नाते केवल धर्म-निरपेक्षता की बुनियाद पर ही टिक सकता है। उन्होंने कहा था—“भारत ऐसा देश है, जहाँ अनेक धर्म हैं, जिनको मानने वाले अनेकों पीढ़ियों से भारी संख्या में मौजूद हैं। इस देश की सरकार आज की दुनियाँ में धर्म-निरपेक्षता की बुनियाद से अलग हटकर कभी भी ठीक तरह से चल नहीं सकती।”

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश भारतीय चिन्तन में धर्म-निरपेक्षता पाठ से उद्धृत है। डॉ. शंकरदयाल शर्मा धर्म-निरपेक्षता के प्रति पं. जवाहरलाल नेहरू का दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि पं. जवाहरलाल नेहरू इस बात को स्पष्ट रूप से जानते और मानते थे कि भारत एक राष्ट्र के रूप में केवल धर्म-निरपेक्षता की बुनियाद पर ही टिका हुआ है। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा था कि भारत विभिन्न धर्मों का देश है जिनको मानने वाले अनेक पीढ़ियों से अत्यधिक संख्या में अपनी-अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता के साथ मौजूद हैं। उन्होंने धर्म-निरपेक्षता के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा कि भारत देश इस संसार के देशों के समक्ष अपनी धर्म-निरपेक्षता नीति के आधार पर ही अपने अस्तित्व को कायम रख सकता है, इसके अभाव में इस देश की स्थिति अस्थिर हो सकती है।

विशेष— 1. पं. जवाहरलाल ने स्पष्ट किया है कि भारत धर्म-निरपेक्ष की भाव-भूमि पर ही अडिग खड़ा हुआ है।

2. भाषा सरल, सुबोध एवं प्रवाह युक्त हैं।

(3) “लेकिन यह भी समझाना चाहिए कि कथनी और करनी की दोगली नीति से देश का भारी नुकसान हो रहा है। चुनाव की राजनीति में साम्प्रदायिकता को लाने से हमारे देश के अस्तित्व को बनाये रखने वाली धर्म-निरपेक्ष मनोभूमिका के लिए भयंकर विनाशकारी खतरा पैदा हो जायेगा। धर्म-निरपेक्षता की आवश्यकता पर बल देना और साथ-साथ चुनाव की राजनीति इस प्रकार बनाना कि हर क्षेत्र में जिस जाति के या सम्प्रदाय वालों की बहुलता है, यह देख उम्मीदवार तय करना और वहाँ पर उसी आधार पर अपनी पार्टी की बात चलाना यह निरा होंग है।”

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश डॉ. शंकरदयाल शर्मा द्वारा ‘भारतीय चिन्तन में धर्म-निरपेक्षता’ विषय पर दिये गए भाषण का अंश है। डॉ. शर्मा ने बताया है कि एक ओर साम्प्रदायिकता के विरुद्ध कड़ा रुख अपनाया जा रहा है और दूसरी ओर राजनैतिक पार्टियों द्वारा स्वार्थ सिद्धि के आधार पर चुनाव के समय साम्प्रदायिकता को महत्व प्रदान किया जाता है। इसके परिणाम की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि आज हमारे देश के समक्ष साम्प्रदायिकता एक विकराल समस्या के रूप में उपस्थित हो गयी है। इस समस्या के समाधान के लिए सरकारों द्वारा बराबर प्रयत्न किए जा रहे हैं। बहुत कुछ इस समस्या पर नियन्त्रण भी किया जा चुका है लेकिन इस समस्या के सम्बन्ध में राजनीतिक पार्टियों द्वारा दोगली नीति अपनायी जा रही है। इस कथनी और करनी के अन्तर से देश को भारी नुकसान हो होने वाला है क्योंकि हमारी राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव की राजनीति में साम्प्रदायिकता को विशेष महत्व प्रदान करती हैं। इसका परिणाम यह होने जा रहा है कि हमारी धर्म-निरपेक्ष भावना को बहुत बड़ा खतरा पैदा होने वाला है क्योंकि जब जन-प्रतिनिधित्व ही इसे चुनावी माहौल में बढ़ावा देगा और इसका खुलकर उपयोग करेगा तो इसके समूल नष्ट होने के भाव की कल्पना नहीं की जा सकती है। चुनावी राजनीति माहौल की ओर डॉ. शर्मा संकेत करते हुए कहते हैं कि चुनाव के समय हर क्षेत्र में जिस जाति या सम्प्रदाय के लोगों की संख्या सबसे अधिक है, यह देखकर ही उसी सम्प्रदाय के उम्मीदवार को चुनकर उस क्षेत्र से खड़ा किया जाता है जो जातिवाद और सम्प्रदायवाद के बल पर चुनाव जीतने की पुरजोर कोशिश करता है। इस दृष्टि से पार्टी का संचालन कोरा-ढोंग के अलावा कुछ भी नहीं है। इससे साम्प्रदायिकता की जड़ें फिर से हरी होने लगती हैं।

विशेष— 1. लेखक ने साम्प्रदायिकता पर प्रकाश डालते हुए ‘हमारी कथनी-करनी के वैषम्य पर सटीक प्रहार कर, धर्म-निरपेक्षता की भावना पर प्रहार करने वाला बताया है।

2. भाषा सहज, सरल एवं प्रवाह युक्त है।

(4) “मेरे लिए धर्म के बिना कोई राजनीति है ही नहीं। धर्म के मानी वह धर्म नहीं, जो अंध श्रद्धा वाला हो और ड्रेष और लड़ाई की बात करता हो बल्कि धर्म के मानी है सहिष्णुता का वैश्विक धर्म। उस राजनीति को दूर रखना चाहिए, जिसमें नैतिकता न हो।”

प्रसंग— प्रस्तुत गद्य खण्ड डॉ. शंकरदयाल शर्मा के भाषण ‘भारतीय चिन्तन में धर्म-निरपेक्षता’ से अवतरित किया गया है। राजनीति और धर्म के सम्बन्ध में लेखक ने महात्मा-गाँधी के विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि महात्मा गाँधी ने बहुत पहले 27 नवम्बर, 1924 में यंग इण्डिया में लिखा था कि मैं अपने जीवन में धर्म को ही महत्व देता हूँ। धर्म के बिना कोई राजनीति नहीं होती है। धर्म का अर्थ स्पष्ट करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा है कि धर्म का अर्थ उस धर्म से नहीं लिया जाना चाहिए जो अन्धी श्रद्धा से युक्त हो, जिसमें ईर्ष्या-द्रेष का भाव विद्यमान हो और जो एक-दूसरे को लड़ाई के लिए प्रेरित करता हो। वास्तविक धर्म वह धर्म होता है कि मनुष्य को सत्कर्म करने के लिए प्रेरित करे। इसलिए उसमें सहिष्णुता भाव की प्रधानता होनी चाहिए। महात्मा गाँधी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि उस राजनीति को दूर रखना चाहिए, जिसमें नैतिक दृष्टिकोण समाहित न हो। इसलिए सबसे अधिक आवश्यकता नैतिकता की है।

विशेष— 1. राजनीति नैतिकता से युक्त होनी चाहिए तभी वह संकीर्णता से हटकर जन-कल्याणकारी सिद्ध हो सकती है।

2. भाषा सहज और साहित्यिकता का पुट लिए हुए है।

14.1 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. धर्म-निरपेक्षता से क्या तात्पर्य है? मानव ने धर्म-निरपेक्षता को क्यों अपनाया?

उत्तर—सामान्य परिचय— ‘भारतीय चिन्तन में धर्म-निरपेक्षता’ शीर्षक पाठ के लेखक भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा हैं। आपका अध्ययन और चिन्तन व्यापक है। इसी कारण एक विचारक तथा शिक्षाविद् के रूप में आपकी छवि अन्य सामान्य राजनेताओं से भिन्न बनी हुई है।

प्रस्तुत पाठ आपका एक भाषण है जो आपके द्वारा शान्ति निकेतन में डॉ. जाकिर हुसैन व्याख्यान-माला के अन्तर्गत दिया गया था। यह निबन्ध आज के वातावरण में बहुत ही प्रासंगिक है क्योंकि हमारे देश को साम्प्रदायिकता की ज्वलन्त समस्या से जूझना पड़ रहा है। इस व्याख्यान में डॉ. शर्मा ने धर्म के सच्चे स्वरूप की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है कि भारतीय धर्म चिन्तन का मूल रूप ही धर्म-निरपेक्ष रहा है।

1. धर्म-निरपेक्षता से तात्पर्य—धर्म-निरपेक्षता से तात्पर्य सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता, समानता तथा आदर का भाव है। धर्म-निरपेक्षता को स्पष्ट करते हुए स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 28 जनवरी, 1981 में अपने भाषण में कहा था कि 'किसी भी धर्म को मानने वालों के बीच हम किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं करते हैं। सभी धर्म समान आदर और सम्मान रक्षा पाने के अधिकारी हैं। हमने इसे धर्म-निरपेक्षता का नाम दिया है। जिससे हर भारतीय अपने धर्म पर चलकर उसका अधिक अध्ययन कर सकता है। पर इसी के साथ उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह दूसरे धर्म वालों को भी इसी अधिकार को पाने दें।

अतः सभी धर्मों के प्रति समान दृष्टिकोण बनाये रखना, स्वतन्त्रतापूर्वक उनके पालन में किसी भी प्रकार का पक्षपात न करना ही धर्म-निरपेक्षता है। इसी आधार पर भारतीय संविधानके अनुच्छेद 25 में व्यक्ति के विचार की स्वतन्त्रता तथा अपने धर्म पर चलन तथा उसके प्रचार करने की स्वतन्त्रता का जिक्र किया गया है। जो हमारी धर्म-निरपेक्षता भाव का द्योतिक है।

2. धर्म-निरपेक्षता के प्रति दृष्टिकोण—धर्म-निरपेक्षता को हमारे देश में अति प्राचीनकाल से स्वीकारा गया है, इससे स्पष्ट प्रमाण विभिन्न धार्मिक ग्रन्थ जैसे गीता और कुरान से मिलते हैं। इसकी उपादेयता इस बात से और अधिक स्पष्ट हो जाती है कि भारत की आजादी में सभी विभिन्न धर्मावलम्बियों ने सब धर्मों को निरपेक्ष कर राष्ट्रीय भावना से पूरित होकर धर्म-निरपेक्षता के आधार पर लड़ाई लड़ी जबकि अंग्रेजों ने साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाकर अनेक तरह से षड्यन्त्र रचे। इन सब के बावजूद हमारी आजादी की लड़ाई के नेता आखिर तक धर्म-निरपेक्ष भूमिका पर बने रहे। यद्यपि लोकमान्य तिलक ने हिन्दू त्योहारों और प्रतीकों को ऐसा रूप देकर संगठन चलाये कि अंग्रेजों के खिलाफ जनता जाग उठे लेकिन उनका दृष्टिकोण हमेशा ही धर्म-निरपेक्ष और उदारतापूर्ण ही रहा, जब उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया तो उन्होंने मुहम्मद अली जिन्ना को अपना वकील बनाया।

प्रायः सभी धर्मों में धर्म-निरपेक्षता को ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी ने अपने विचार हरिजन नामक पत्र में वर्णित करते हुए कहा था कि, 'कहा जाता है कि इस्लाम मानव बन्धुत्व में विश्वास करता है लेकिन वह केवल मुसलमानों के भाईचारे में नहीं बल्कि मानव मात्र के भाईचारे की बात करता है। मुसलमानों का अल्लाह, ईसाई का प्रभु और हिन्दुओं का ईश्वर एक ही है। जैसे हिन्दू धर्म में ईश्वर के अनेक नाम गिनाये गये हैं, वैसे ही इस्लाम में भी गिनाये हैं। उस भगवान् में सच्ची श्रद्धा के मानी हैं मानव मात्र की एकता और भाईचारे को स्वीकार करना।'

राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए 24 जनवरी, 1948 को अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी में जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि, 'भारत सभी धर्मों को देश रहेगा, जैसा कि वह प्राचीनकाल से रहा है। यहाँ पर सभी धर्मों के प्रति समान आदर और सम्मान बना रहेगा। साथ-साथ हमारी एक ही राष्ट्रीय भावना रहेगी, हमारा राष्ट्रवाद दूसरों से अलग-अलग संकुचित राष्ट्रवाद नहीं है बल्कि सहिष्णु तथा वर्धिष्णु राष्ट्रवाद है, जिसको अपने में, अपनी जनता में पूरी श्रद्धा रहेगी, पर साथ-साथ विश्व के स्तर पर विश्व की एकता पर आधारित रचना के निर्माण में भी पूरा योगदान करेंगे।'

अतः कहा जा सकता है कि भारतीय जनों का हमेशा से ही धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण रहा है। सभी धर्मावलम्बी एक-दूसरे के साथ भाई-चारे का व्यवहार करते आये हैं और एक-दूसरे के धर्म के प्रति श्रद्धा। इसी भावना को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 अंक में कहा गया है कि 'भारत के हर नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह भारत के सभी नागरिकों के मध्य परस्पर सौहार्द और बंधुता को बढ़ाने का काम करे धार्मिक, भौतिक, विभागीय तथा जमातों की विभिन्नताओं से ऊपर उठे, महिलाओं के प्रति अनादर प्रकट करने वाले व्यवहार का त्याग करे, भारत की सम्मिलित तथा समृद्ध संस्कृति की विरासत की रक्षा करे तथा उसकी महिमा को समझे, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवता की खोज की वृत्ति तथा सुधारवादी वृत्ति को विकसित करें।' अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उपर्युक्त दृष्टिकोणों के आधार पर ही मानव ने धर्म-निरपेक्षता को अपनाया।

प्रश्न-2. 'भारतीय चिन्तन में धर्म-निरपेक्षता' पाठ में डॉ. शंकरदयाल शर्मा द्वारा व्यक्त विचारों को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

भारतीय चिन्तन में धर्म-निरपेक्षता पाठ का संरांश लिखिए।

अथवा

उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए कि मानवीय चिन्तन में धर्म-निरपेक्षता को प्रश्रय दिया गया है।

उत्तर—सामान्य परिचय— 'भारतीय चिन्तन में धर्म-निरपेक्षता' पाठ डॉ. शंकरदयाल शर्मा द्वारा शान्ति निकेतन में डॉ. जाकिर हुसैन व्याख्यान माला में दिया गया व्याख्यान है। आज हमारे देश में साम्प्रदायिकता का ज्वर तेजी से और बे-दुंग रूप में चढ़ रहा है। इसलिए ऐसे वातावरण में पाठ की उपादेयता स्वयं सिद्ध हो जाती है। पाठ में आये मुख्य विचारों को निम्न शीर्षकों के माध्यम से व्यक्त किया जा रहा है—

1. अंग्रेजों की चाल-बाजी— हमारे देश में धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण की ठोस बुनियाद प्राचीनकाल से अबाधित गति के साथ प्रवाहित होती चली आ रही है। यही कारण है कि जब भी हमारे देश को किसी प्रकार के खतरे का सामना करना पड़ा सभी जन राष्ट्रीय भाव में प्रवाहित होकर स्वधर्म से ऊपर निकलकर राष्ट्रहित के कन्धे से कन्धा मिलाकर एक साथ निकल पड़े हैं। स्वतन्त्रता संग्राम इसका अनूठा उदाहरण है। एकता की इस बात को देखकर अंग्रेजों ने बंगला बंटवारा और साम्प्रदायिकता का जहर फैलाकर भारतीय जनों में अपनी चाल-बाजी से फूट डालने की पूरी-पूरी कोशिश की। उन्होंने सामुदायिक विद्वेष को भड़काने के लिए इतिहास की राजनीतिक घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर लिखा धार्मिक आधार पर विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा छात्रावासों का निर्माण किया ताकि हर जमात के शिक्षित लोग एक-दूसरे के खिलाफ खड़े हो जाएँ।

2. स्वतन्त्रता सेनानियों की भूमिका— अंग्रेजों द्वारा साम्प्रदायिकता का विष घोलने के बावजूद भी हमारे आजादी के दीवाने आखिर तक धर्म-निरपेक्ष भूमिका पर बने रहे। स्वामीविवेकानन्द ने 11 सितम्बर, 1963 में शिकागो के 'वर्ल्ड पार्लियामेंट ऑफ रिलिजन्स' के अधिवेशन में कहा था, 'मुझे उस धर्म का अनुयायी होने का गर्व महसूस होता है, जिसने दुनियाँ को सहिष्णुता और सर्व समावेशकता की शिक्षा दी है। हम केवल सबके प्रति सहिष्णु बनने में ही विश्वास नहीं करते हैं। हम तो सभी धर्मों को सत्य मानकर उनको स्वीकार करते हैं।' इस प्रकार उन्होंने भारतीय धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

महात्मा गाँधी ने भी कहा भारत धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण का बढ़ावा देने वाला एक अति वैशिष्ट्यपूर्ण तथा शक्तिशाली देश रहा है। उन्होंने हरिजन पत्रिका में लिखा—कहा जाता है कि इस्लाम मानव-बन्धुत्व में विश्वास करता है। लेकिन वह केवल मुसलमानों के भाईचारे में ही नहीं बल्कि मानव मात्र के भाईचारे की बात करता है। मुसलमानों का अल्लाह, ईसाइयों का प्रभु और हिन्दुओं का ईश्वर एक ही है। इसी प्रकार 25 सितम्बर, 1924 के अंक में उन्होंने लिखा—“भिन्न-भिन्न धर्म एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाले अलग-अलग मार्ग हैं।” इसी प्रकार मौलाना अब्दुल कलाम ने इस्लाम के सच्चे सन्देश का निचोड़ प्रस्तुत किया है।

(3) जहरीला प्रचार— हमारी स्वतन्त्रता के प्रति आस्थावान राष्ट्रीय काँग्रेस के नेतागण धर्म-निरपेक्ष भूमिका पर अडिग बने रहे। इस स्थिति को देखकर अंग्रेजों ने मुस्लिम लीग के नेताओं में संकीर्णता भरकर और साम्प्रदायिकता को उभारकर धर्म-निरपेक्ष भूमिका वाली शक्तियों को कमजोर कर दिया। इसके बाद अंग्रेजों ने काँग्रेस को कमजोर करने के लिए एक और चाल चली। जिसमें वे यह बताने का प्रयत्न करने लगे कि काँग्रेस सभी हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व न करके केवल सवर्णों का ही प्रतिनिधित्व करती है। इसके साथ अंग्रेजों ने अनुसूचित जाति का एक अलग संगठन बनाने का भरसक प्रयास किया। इस जहरीले प्रचार का मुकाबला करते हुए गाँधीजी ने कहा था—“काँग्रेस कोई वह संगठन नहीं है, जो सिर्फ हिन्दुओं का हो। वह मुस्लिम, पारसी, ईसाई आदि की भलाई के यानी उन सभी के लिए प्रतिबद्ध है, जो भारत को अपना देश मानते हैं।”

अन्ततोगत्वा अंग्रेज साम्प्रदायिकता के आधार पर इस देश का बंटवारा करवाने में सफल हो गये। लेकिन भारत की सेक्यूलर मनोभूमिका का जीवन्त सबूत है कि देश के विभाजन के बाद जहाँ पाकिस्तान एक सुधर्मीय राष्ट्र घोषित हुआ, वहीं भारत ने अपनी प्राचीनकाल से प्रस्थापित धर्म-निरपेक्ष आदर्शों की भूमिका पर बने रहने का निर्णय लिया।

4. राष्ट्रीय दृष्टिकोण— राष्ट्रीय दृष्टिकोण के सम्बन्ध में भाषण देते हुए पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि “भारत सभीधर्मों का देश रहेगा, जैसा कि वह प्राचीनकाल से रहा है। यहाँ पर सभी धर्मों के प्रति समान आदर और सम्मान बना रहेगा। साथ ही हमारी एक

ही राष्ट्रीय भावना रहेगी। हमारा राष्ट्रवाद दूसरों से अलग-थलग संकुचित राष्ट्रवाद नहीं है बल्कि सहिष्णु तथा वर्धिष्णु राष्ट्रवाद है, जिसको अपने में, अपनी जनता में पूरी श्रद्धा रहेगी। पर साथ-साथ विश्व स्तर पर विश्व की एकता पर आधारित विश्व रचना के निर्माण में भी पूरा योगदान करेंगे।”

5. धर्म-निरपेक्षता के प्रति वचनबद्धता—हमारा देश प्राचीनकाल से ही धर्म-निरपेक्षता की छाया में पलता हुआ चला आ रहा है। भारतीय संविधान में भी धर्म-निरपेक्षता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को दोहराया गया है। संविधान के 25, 26, 27, 28 व 30वें अनुच्छेद में इसी प्रकार के तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही 1977 को जनवरी में भारत के संविधान की प्रस्तावना में परिवर्तन कर भारत को प्रभुसत्ता सम्पन्न समाजवादी धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्रीय गणराज्य घोषित किया गया, जिसमें समाजवादी और धर्म-निरपेक्ष के दो नये शब्द जोड़े गये।

6. साम्प्रदायिकता की समस्या—आज हमारे देश के समक्ष साम्प्रदायिकता की जटिल समस्या उपस्थित हो गयी है। यद्यपि हमारे देश के सभी तबकों में परस्पर बन्धुता तथा एकता की भावना सर्वत्र पाई जाती है। लेकिन दुर्भाग्य से समाज में कुछ ऐसे चन्द शरारती तत्व होते हैं जो अपने स्वार्थ के वातावरण को जहरीला बना देते हैं। इसी से आतंकवाद की समस्या पैदा हुई। ऐसी परिस्थिति में भी लेखक अपना विश्वास व्यक्त करता है कि भारत की हजारों वर्षों की विभिन्न जमातों और धर्मों के बीच परस्पर समावेश की सहिष्णुता तथा विश्वास की प्रेरणा बनी रहेगी।

साम्प्रदायिकता की समस्या को बढ़ावा देने के लिए लेखक ने दोगली नीति को भी दोषी ठहराया है। हमारे चुनावी कार्यक्रमों में साम्प्रदायिकता को महत्व दिया जाता है। यह देखकर उम्मीदवार तय किया जाता है कि किस क्षेत्र में किस जाति या सम्प्रदाय के लोग ज्यादा हैं।

7. राजनीति और धर्म—हमारे यहाँ यह बात स्वीकार कर ली गई है कि राजनीति से धर्म को अलग किया जाए। इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी ने 27 नवम्बर, 1942 में यंग इण्डिया में लिखा था—“मेरे लिए धर्म के बिना कोई राजनीति है ही नहीं। धर्म के माने वह धर्म नहीं जो अंधश्रद्धा वाला हो और द्वेष और लड़ाई की बात करता हो। बल्कि धर्म के माने है, सहिष्णुता का वैश्विक धर्म को उस राजनीति से दूर रखना चाहिए, जिसमें नैतिकता न हो।”

8. साझी धरोहर—भारतीय चिन्तन में विद्यमान धर्म-निरपेक्षता को प्रत्येक नागरिक के द्वारा अपनी सभी क्रियाओं के द्वारा विकसित करना चाहिए। हमारी राष्ट्रीय राजनीति की जो विशेषता है, उसका केवल हमारे देश के लिए ही महत्व नहीं है। उसमें सारी दुनियाँ के लिए सन्देश दिया गया है, जिसमें मानवता के उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाने वाला पथ दिखाया जा रहा है।

14.2 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर डॉ. शर्मा ने कहा है कि हम चाहते हैं कि सभी राष्ट्रों में व्यक्ति और समूहों के बीच शान्ति हो। यदि सरमन आनंद माउन्ट की आत्मा, बुद्ध का करुणा दर्शन, हिन्दू धर्म का अहिंसा विचार और ईश्वर की इच्छा के प्रति समर्पण का इस्लाम का आग्रह, इन सभी को एकत्र किया जाए तो हम विश्व शान्ति का सबसे कारगर उपाय ढूँढने में सफल हो जायेंगे।

इकाई- 15 : राजस्थान की साँस्कृतिक धरोहर

(अगरचन्द जी नाहटा)

संरचना

15.0 निबन्ध का परिचय

15.1 पाठ का सारांश

15.2 महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

15.3 महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

15.4 सारांश

15.0 निबन्ध का परिचय

श्री अगरचन्द जी नाहटा ने इस निबन्ध में राजस्थान की साँस्कृतिक धरोहर के रूप में विद्यमान यहाँ के साहित्य और कला की सुदीर्घ परम्परा का परिचय दिया है। एक समृद्ध पुस्तकालय बीकानेर निवासी नाहटा जी के घर पर ही है। श्री अगरचन्द जी नाहटा प्राचीन हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वानों में आते हैं। तभी तो राजस्थानी भाषा की विभिन्न बोलियों, शैलियों, जैन विद्वानों तथा अन्य कवियों द्वारा रचित काव्यों, नीति व भक्ति परक मुक्तक काव्यों, रासों काव्यों, ऐतिहासिक एवं लोक-साहित्य के विशुद्ध प्रेम काव्यों की भाषागत तथा विषयगत विशेषताओं को इस निबन्ध में प्रस्तुत किया है। राजस्थानी ललित कलाओं, स्थापत्य कलाओं, स्थापत्य कला की बारीकियों, मूर्तिकला व चित्रकला की विभिन्न शैलियों का सूक्ष्म चित्रण उपस्थित किया है। नाहटा जी ने इस निबन्ध में लोक-जीवन से सम्बन्धित वेशभूषा, आभूषण, मांड़ने-मेंहदी आदि की भी विशेषताएँ बतायी हैं। इतना ही नहीं राजकीय व अराजकीय पोथीखानों, पुस्तक भण्डारों में संग्रहित हस्तलिखित पुस्तकों को सुरक्षित रखने के प्रचार के साथ ही विभिन्न साहित्य अकादमियों का भी उल्लेख किया है, जो साँस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने व प्रचार करने में सहायक हैं।

15.1 पाठ का सारांश

संस्कृति का तात्पर्य—निबन्धकार ने अपने निबन्ध का आरम्भ संस्कृति शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए किया है। मनुष्य को मनुष्यत्व सिखाना भी जीवन की एक शैली है। यह शैली मनुष्य को सोच-विचार और रहन-सहन व शिष्टाचार का सौन्दर्य देती है। सौन्दर्य का संस्कार जीवन में आते ही व्यक्ति सुसंस्कृत बनने लगता है। सुसंस्कृत कहलाने की यह इच्छा और इसकी क्रियान्विति संस्कृति का ही अंग हैं। संस्कृति शब्द तो अपने आप में गहन और व्यापक है।

राजस्थान की धरोहर—राजस्थान का इतिहास शौर्यपूर्ण कार्यों से भरा है। जीवन में रोमांच और बलिदान की अभिव्यक्ति यहाँ साहित्य व कलाओं में देखी जा सकती है। राजस्थानी समाज में बालक माँ के गर्भ में आते ही संस्कार गीत सुनने लगता है तो उस संसार सागर से विदा हो जाने तक जारी रहता है। यहाँ तो मानव जीवन की सभी घटनाओं और कार्यों को गीतों के माध्यम से पूर्ण किया जाता है, फिर चाहे वह जन्म, ब्रह्मोपवीत, शिक्षा, विवाह, वार-त्योहार आदि कुछ भी क्यों नहीं हो। राजस्थानी संस्कृति के विभिन्न रूपों को मूर्तिकला व चित्रकला ने जीवित रखा है।

राजस्थान का इतिहास—राजस्थान पुरातत्त्व की दृष्टि से काफी प्राचीन प्रदेश है। यह सिन्धु घाटी सभ्यता के अवशेषों को संजोये हुए है। यह क्षेत्र वीर भूमि के रूप में प्रसिद्ध है। यह प्रदेश पहले मरू, जांगल, मत्स्य, मेदपाट, सपाद लक्ष, माड, गुर्जर-बागड़ आदि विभिन्न राज्यों में विभक्त था। प्रान्त की सीमाएँ घटने-बढ़ने के साथ ही वर्तमान रूप स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बना है। यहाँ के वीरों, संतों, साहित्यकारों, कलाकारों, समृद्ध व्यक्तियों ने प्रसिद्धि को विदेशों तक फैलाया है। साहित्य व कला की समृद्धि इस प्रदेश की विशेषता है।

राजस्थान का साहित्य—राजस्थान में अभी सरस्वती नदी का प्रवाह था, जिसके किनारे बैठकर ऋषि-मुनियों ने वैदिक रचनाओं एवं अनेक ग्रंथों की रचना की थी। यहाँ पर मध्य काल में प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी व हिन्दी में साहित्य का निर्माण हुआ। यहाँ के कई ग्रंथ तो विश्व भर में बेजोड़ हैं। इनमें श्रीमाल नगर का महाकवि माघ था, जिसने प्रसिद्ध 'शिशुपाल वध' महाकाव्य रचा और चित्तौड़ निवासी महान् जैनाचार्य हरिभद्र सूरि ने योग आदि अनेक विषयों पर मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया। जालौर में लिखी गई उद्बोधन सूरि की 'कुवलय

माला' चम्पू शैली की महत्वपूर्ण रचना है। श्रीमाल नगर के ही सिद्धसि ने सबसे अद्वितीय रूपक 'ग्रंथ उपमित्रि भव प्रपचा कथा' की रचना की। सांचोर के महोपाध्याय समय सुन्दर ने विश्व में आदर्श प्रस्तुत करते हुए 'राजानोद्गते सोरम्भम्' के 10 लाख से भी अधिक अर्थ किये। उपाध्याय मेघ विजय ने ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पाश्वनाथ और महावीर पाँच तीर्थंकरों के साथ ही राम और कृष्ण जैसे महापुरुषों का चरित्र एक साथ गुम्फित करके 'सप्त संधान' नामक विलक्षण महाकाव्य की रचना की।

जन-साधारण की बोली का साहित्य—जन-साधारण की बोली में विविध विषयों व शैली में जैन कवियों व अन्य विद्वानों के रचनाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ पर प्राकृतिक साहित्य का विशाल भण्डार है, साथ ही अपभ्रंश से निकली मरुभाषा और प्राचीन राजस्थानी के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस भाषा में गद्य और पद्य में अनेक विषयों, विधाओं व शैलियों में लाखों रचनाएँ हुई हैं। राजस्थानी भाषा केवल राजस्थान तक ही सीमित नहीं रही वरन् यहाँ के व्यापारी, संतजन के साथ भारत के प्रत्येक प्रान्तों में फैली।

हिन्दी भाषा में साहित्य—हिन्दी भाषा का प्राचीन व महत्वपूर्ण रासो काव्य 'पृथ्वीराज रासो' राजस्थान में ही लिखा गया है। लोक-काव्य 'बीसलदेव रासो' की रचना भी यहीं पर हुई। हिन्दी साहित्य के आदिकाल की सभी रचनाओं का लेखन राजस्थान में ही हुआ। ब्रजभाषा और खड़ी बोली में सैकड़ों कवियों की हजारों रचनाएँ यहाँ मिलती हैं। यहाँपर लिखी गई 'बिहारी सतसई' और 'वृन्द-सतसई' बेजोड़ कृतियाँ हैं। मध्यकाल की भव्य कवयित्री मीरा के भजन तो आज समस्त भारत में सभी जगह गाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त भी अनेक चरित काव्य, नीति भक्ति सम्बन्धी ग्रंथों की रचनाएँ हुई हैं।

राजस्थानी भाषा का साहित्य—राजस्थानी भाषा की बोलियों में भी यहाँ पर काफी साहित्य की रचना हुई है। मरू-प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध होने के कारण यहाँ की भाषा मरू भाषा या मारवाड़ी कहलाती है। प्रारम्भिक रचनाओं में कुछ फुटकर दोहे मिलते हैं। जो 11वीं शताब्दी में लिखे गये थे। 14वीं शताब्दी में गद्य की रचनाएँ व 15वीं-16वीं शताब्दी में गद्य की विविध शैलियों तुकान्त व वर्णनात्मक गद्य पाया जाता है। जन-साधारण की समझ से बाहर हो गये प्राकृत-संस्कृत ग्रंथों पर बाला व बोध टीकाएँ लिखी गयी।

भक्ति-नीति व चरित साहित्य—जन-साधारण के जीवन-स्तर को उच्च बनाने के लिए भक्ति-नीति व चरित साहित्य की रचना जैन सिद्धान्तों व संतों ने की। सन्त दादू के सम्प्रदाय में लाखों पद सधुक्की भाषा में रचे गये। चारण कवियों द्वारा रचित दोहे, गीत, काव्य व ख्यातों का ऐतिहासिक महत्व है। प्रेम काव्य के रूप में 'ढोला मारू रा दूहा', श्रृंगार की श्रेष्ठ रचना, 'कृष्ण-रूकमणि री वेलि' राजस्थानी साहित्य के गौरव में वृद्धि करती है। जैन कवियों ने लोक-प्रचलित कथाओं का आधार बनाकर अनेक ग्रंथों की, जिसमें कुशल लाभ का ढोला मारू, माधवानल, काम-कन्दला चौपाई, कीर्तिवर्धन रचित सप्यवत्स शावलिंगा आदि हैं। चारण कवियों ने भी राजरूपक, गजरूपक, विजय श्रृंगार ऐतिहासिक काव्य रचे।

ख्यात और बात साहित्य—राजस्थान के ख्यात और बात साहित्य की अपनी विशेषताएँ हैं। मुणोत नैणसी की ख्यात राजस्थान के इतिहास में ही नहीं गुजरात व अन्य प्रदेशों की भी अच्छी जानकारी प्रदान करती है। 'राठौड़ों री ख्यात', 'बीकानेर री ख्यात' की रचना बीकानेर के दयालदास सिद्धमच ने की। अप्रकाशित 'गजनामा ख्यात' मुहता भीमसिंह द्वारा लिखित है। राजस्थानी बातों की संख्या सैकड़ों है, जो विविध शैलियाँ लिए हुए हैं। राजस्थानी बातों के कहने की अपनी विशिष्ट शैली है, जो अन्यत्र नहीं मिलती है।

राजस्थानी स्थापत्य कला—राजस्थानी स्थापत्य कला के नयनाभिराम दृश्य हमें रणकपुर के मन्दिर, आबू, जैसलमेर के मन्दिर में बारीक कोरणी, चित्तौड़ के विजय स्तम्भ में देखने को मिलते हैं। यह देखकर ऐसा लगता है मानो कठोर पाषाण को भी मोम बना दिया गया है। यहाँ पर जैन व वैदिक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भव्य हैं। यहाँ पीतल की मूर्तियाँ, पशु-पक्षियों के मनोहर खिलौने बड़ी संख्या में मिलते हैं। यहाँ के कला-पूर्ण मन्दिरों में छतों, स्तम्भों, तोरणों, जालियों, द्वारों में जो बारीक खुदाई हुई है, वह अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलती है।

राजस्थानी चित्रकला—राजस्थान में चित्र शैलियों के नाम यहाँ के राज्यों व ठिकानों के नाम पर हैं, यथा—बूँदी, अलवर, जयपुर, मारवाड़, बीकानेर, कोटा, किशनगढ़ चित्र-शैली। बीकानेर की पुश्तों की शैली काफी उच्च स्तर की है। इन शैलियों के हजारों चित्र, भित्ति-चित्र व ग्रंथ मिलते हैं।

जैनों द्वारा विकसित मध्यकाल की चित्र-शैली को 'अपभ्रंश शैली' पुकारा गया। इस शैली की अनेक सचित्र काष्ठ-पत्रिकाएँ जैसलमेर के जिनभद्र सूरि ज्ञान भण्डार में उपलब्ध हैं। यहाँ पर कागज के अतिरिक्त ताड़-पत्र पर अपभ्रंश चित्र-शैली के चित्र मिलते हैं। यहाँ के राजाओं और जैनो ने चित्रकला को काफी प्रोत्साहन दिया। यहाँ हर राग मालाओं, बारह मासों और भोगासनों के चित्र के साथ ही कृष्ण, राम, शिव, तीर्थंकरों, देवी-देवताओं आदि के भक्ति प्रधान चित्र भी मिलते हैं। कृष्ण की विविध लीलाओं के साथ ही राजाओं, रानियों और उनके विविध कार्य-कलापों एवं विलास सम्बन्धी सैकड़ों मित्र मिलते हैं।

सचित्र विज्ञप्ति-पत्र—राजस्थानी चित्रकला की अपनी एक विशेषता है, जो यहाँ पर हमें सचित्र विज्ञप्ति-पत्र के रूप में देखने को मिलती है। यह विज्ञप्ति-पत्र श्रावकों ने अपने गुरुओं को अपने यहाँ पधारने के लिए प्रेषित किये थे अतः इनमें किस समय में किस नगर में कौन-सा उल्लेखनीय स्थान, मन्दिर, चौहटा आदि कहाँ स्थित थे की सचित्र जानकारी मिलती है। ऐतिहासिक दृष्टि से वे बड़े महत्व के हैं। उदयपुर से प्रेषित एक सचित्र विज्ञप्ति पत्र तो अगरचन्द जी के पिताजी के नाम से स्थापित सेठ शंकरदान नाहटा कला भवन में है। इसमें राजमार्ग पर महाराणा की सवारी चित्रित है। दोनों ओर मन्दिर-दुकानें, मन्दिर के नीचे नाम, राजमहल, पिछौला, उसमें बने मकान तथा तालाब के किनारे की पहाड़ियों के दृश्य अंकित हैं। इसी प्रकार के विज्ञप्ति-पत्र जयपुर, सिरौही व अन्य नगरों में भी प्राप्त हैं।

ऐतिहासिक चित्र—राजस्थान में हजारों राजाओं, ठाकुरों, सन्तों, सेठ-साहूकारों के चित्र नाम सहित पाये जाते हैं। कई चित्रों के पीछे उनका समय व चित्रकार का नाम भी है। नाथद्वारा तो चित्रकला के लिए प्रसिद्ध है। सैकड़ों परिवार चित्र बनाते हैं। किलों में कृष्ण-लीलाओं की भरमार है। आश्रयदाताओं को भेंट होने वाले चित्रों में पीछे वह चित्र कब, किसको, किसने भेंट किया लिखा रहता था।

लोक जीवन की कला—राजस्थानी लोक-जीवन में मांडने व भित्ति-चित्र मिलते हैं। हाथ-पैरों पर मेहवी लगाने की कला काफी विकसित है। राजस्थान का विश्व में यह रिकॉर्ड है कि यहाँ पर जितने भी रंग मिलते हैं, सभी काम में आते हैं। पगड़ी व साफे बाँधने की भी विभिन्न कला व शैलियाँ हैं। स्त्रियों की वेश-भूषा में चून्दड़ियाँ, ओढ़ने में जैसी बन्धेज का काम यहाँ पर होता है, अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

साहित्य व कला को संरक्षण—राजस्थान में प्रारम्भ से ही साहित्य और कला को संरक्षण, प्रोत्साहन व प्रचार मिलता रहा है। यही कारण है कि यहाँ इतनी अधिक हस्तलिखित प्रतियाँ व ग्रन्थ भण्डार मिलते हैं। जैसलमेर के ज्ञान-भण्डार में प्राचीनतम ताड़पत्रीय कागज की प्रतियाँ, अनेक दुर्लभ व महत्वपूर्ण ग्रन्थ मिलते हैं। बीकानेर में अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, अभय जैन ग्रन्थालय, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में उल्लेखनीय ग्रन्थ संग्रहित हैं। जोधपुर में राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर महाराजा का संग्रह पुस्तक प्रकाश, केशरियानाथ जैन मन्दिर में ग्रन्थ भण्डार महत्वपूर्ण हैं। जयपुर में भी श्वेताम्बर पंचायती भण्डार, दिगम्बर शास्त्र भण्डार, महाराजा का पोथी खाना, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, लाल भवन का विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार में एक लाख हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं। इसके अलावा अन्य जिलों में भी काफी ग्रन्थ सुरक्षित हैं। टोंक में अरबी-फारसी की हस्तलिखित प्रतियों का उत्कृष्ट संग्रह है। जयपुर, उदयपुर, बीकानेर, जोधपुर के शस्त्रागारों में कलात्मक शस्त्र मिलते हैं।

राजस्थान की संस्कृति के संरक्षण एवं विकास के लिए राजस्थान साहित्य अकादमी, राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, ललित कला, लोक कला, संगीत, नाटक कला अकादमी स्थापित हैं। इतना होने पर भी जैसा सम्मान व सुविधाएँ मिलनी चाहिए वह नहीं हो पा रहा है। फिर भी राजस्थान अपने अतीत की साहित्य और कला की सुदीर्घ परम्परा को जीवन्त रखते हुए आगे बढ़ा रहा है।

15.2 महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “जीवन अपने आप में एक अस्तित्व मात्र है, किन्तु जीवन की शैली एक ऐसी विद्या है, जो मनुष्यत्व सिखाती है। उसे रहन-सहन, सोच-विचार और शिष्टाचार का सौन्दर्य प्रदान करती है। जीवन में सौन्दर्य का संस्कार आते ही वह अपने को सुसंस्कृत कहने लगता है। यह सुसंस्कृत कहलाने की स्पृहा और इसकी क्रियान्विति संस्कृति का ही अंग है। यद्यपि संस्कृति अपने आप में बहुत व्यापक और गहन है।”

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित पाठ ‘राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर साहित्य और कला की गौरवपूर्ण परम्परा’ से अवतरित है। इस निबन्ध के लेखक श्री अगरचन्द जी नाहटा हैं। नाहटा जी ने इन पंक्तियों में संस्कृति शब्द को स्पष्ट किया है और यह बतलाया है कि किस प्रकार मनुष्य सुसंस्कृत होता है। मनुष्य को मानवता कौन सिखाती है।

लेखक जीवन को स्पष्ट करते हुए कर रहा है कि जीवन अपने आप में एक अस्तित्व मात्र है अर्थात् प्राणी मात्र का अस्तित्व ही उसके जीवन से जुड़ा है, उसके जीवित होने पर ही यह कहा जाता है कि इसमें जीवन है। किन्तु जीवन को जीने की शैली एक ऐसी विद्या है, जो मनुष्य को मानवता का ज्ञान कराती है। अर्थात् जीवन को सत्य, अहिंसा, धर्म के साथ जीने से ही प्राणी ऐसा ज्ञान अर्जित करता है जो उसे मानव के साथ ही मानवता को समझाती है। मानव तो कई मिल जाते हैं पर मानवता वाले मानव गिनती के ही मिलते हैं। जीवन को जीने की कला ही मनुष्य को रहन-सहन, सोच-विचार और शिष्टाचार का सौन्दर्य देती है। अर्थात् मानव को सोच-विचार, रहन-सहन और शिष्टाचार से अवगत कराती है। जब व्यक्ति के जीवन में सौन्दर्य के संस्कार आ जाते हैं तो वह अपने आपको सुसंस्कृत कहने लगता है अर्थात् जीवन में सौन्दर्य की अनुभूति होते ही व्यक्ति सुसंस्कृत

हो जाता है। व्यक्ति में सुसंस्कृत कहलाने की यह होड़ और इसकी क्रियान्विति संस्कृति का ही एक अंग है। जबकि संस्कृति शब्द अपने आप में बहुत व्यापकता व गहनता को ग्रहण किये हुए है।

15.3 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न- 1. राजस्थानी साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—राजस्थान का एक बड़ा भू-भाग मरुप्रदेश के नाम से मशहूर होने के कारण यहाँ की भाषा का नाम मरु भाषा या मारवाड़ी हो गया है। राजस्थानी साहित्य की 11वीं शताब्दी से 1000 वर्षों तक गौरवपूर्ण परम्परा रही है। आरम्भ में फुटकर दोहे आदि लिखे गये। 15वीं-16वीं शताब्दी तक गद्य की विविध शैलियाँ विख्यात हो गयी, जिनमें तुकान्त और वर्णनात्मक गद्य की रचना हुई। इस समय जन-साधारण की समझ से बाहर हो गयी प्राकृत संस्कृत की पुस्तकों की बालावबोध टीकाएँ लिखी गयी। भारत के अन्य किसी प्रान्त में गद्य की ऐसी समृद्धशाली परम्परा नहीं पाई जाती है। आम जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सन्तों, जैन विद्वानों ने, भक्ति के पद, नीति के दोहे व भजन और चरित्र काव्यों की रचना की। राजस्थानी प्रेम काव्य 'ढोला मारू रा दूहा' काफी प्रसिद्ध है। इसकी रचना कुशल लाभ ने की थी। 'कृष्ण-रूकमणि री वेलि' नामक श्रृंगार का श्रेष्ठ काव्य बीकानेर के भक्त कवि राठौड़ पृथ्वीराज ने लिखा था। यह राजस्थानी साहित्य के गौरव को बढ़ाता है। लोक-प्रचलित कथाओं पर आधारित अनेक काव्यों की रचना जैन कवियों ने भी की है। कुशल लाभ रचित 'माधवानल काम-कन्दला' कीर्तिवर्द्धन काव्यों की रचना की है, इनमें गजरूपक, राजरूपक, विड़द श्रृंगार आदि विख्यात हैं। 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' तो विश्व प्रसिद्ध है। इसमें राजस्थान की नहीं आस-पास के अन्य राज्यों का इतिहास भी वर्णित है। इसी प्रकार बीकानेर के दयादलदास सिद्धयन्त्र ने 'राठौड़ों री ख्यात' और 'बीकानेर री ख्यात' व अन्य ग्रन्थों का निर्माण किया। ख्यात में गुहता भीमसिंह की गजनामा प्रसिद्ध है। राजस्थान में प्रायः सभी राजाओं, ठाकुरों ने छोटी-मोटी कई ख्यातें लिखाई हैं। राजस्थान का 'बात साहित्य' जन-साधारण में काफी लोकप्रिय हुआ क्योंकि बातों के कहने की अपेक्षा एक विशिष्ट शैली है, जो दूसरी जगह पायी ही नहीं जाती है। यहाँ पर कई प्रेम-कथाओं की रचना केवल दोहों में हुई। इस प्रकार की भाषा की विभिन्न बोलियों, शैलियों, जैन विद्वानों द्वारा अन्य कवियों द्वारा रचित काव्यों, रासों, ग्रन्थों, नीति एवं भक्ति के मुक्तक काव्यों के साथ ही ऐतिहासिक ग्रन्थ और लोक-साहित्य के विशुद्ध प्रेम काव्य भी रचे गये हैं।

प्रश्न- 2. राजस्थान की ललित कलाओं की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—राजस्थान की ललित कलाएँ उत्तम श्रेणी की होने के साथ ही मानव मन को आकर्षित करने की विशेषताओं से युक्त हैं। राजस्थान की मूर्ति व कला के पाषाण पीतल आदि की मूर्तियाँ और स्थापत्य कला में भवन-मन्दिर आदि व चित्रकला में विविध शैलियों के ताड़पत्र, भित्ति चित्र, कागज व वस्त्र पर अंकित चित्र और विविध विषयों के फुटकर चित्र मिलते हैं। संगीत कला में गीत-वाद्य, नृत्य-नाट्य आदि हैं।

स्थापत्य व मूर्तिकला—राजस्थान की उत्कृष्ट स्थापत्य कला के दर्शन हमें रणकपुर, देलवाड़ा, जगत शिरोमणी के मन्दिरों और चित्तौड़, कुम्भलगढ़, उदयपुर, बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर के किलों, अनेक बावड़ियों, छतरियों, राज परिवारों के शमशान स्थलों में होते हैं। इनमें से आबू व जैसलमेर के मन्दिर तो अपनी बारीक कुराई के लिए जगत प्रसिद्ध हैं। इन कलापूर्ण मन्दिरों में छतों, स्तम्भों, जालियों, द्वारों, तोरणों पर जो बारीक खुदाई देखने में आती है, वैसी अन्य जगह देखने को नहीं मिलती है। चित्तौड़ का कीर्ति-स्तम्भ और विजय-स्तम्भ स्थापत्य और मूर्तिकला का अद्भुत नमूना प्रस्तुत करता है। ऐसा लगता है मानो कठोर पत्थर को ही मोम बना दिया हो। मूर्तिकला में फल्लू की जैन सरस्वती, अनेक वैदिक एवं जैन देवी-देवताओं की मूर्तियाँ आकर्षक एवं भव्यता लिए हुए हैं। पत्थर और पीतल दोनों ही प्रकार की मूर्तियाँ सुन्दरता से परिपूर्ण हैं। मूर्तियों में जैन भगवान के अलावा राम-सीता-लक्ष्मण, हनुमान, कृष्ण, दुर्गा व अन्य देवी-देवताओं की मिलती हैं। मूर्तियाँ भव्यता व सजीवता से ओत-प्रोत हैं।

चित्रकला—राजस्थान में अनेक चित्र-शैलियों का विकास हुआ है, जिनमें बीकानेर, मारवाड़, किशनगढ़, जयपुर, बूंदी, कोटा और अलवर इत्यादि काफी प्रसिद्धि प्राप्त हैं। बीकानेर की पुश्तों की शैली वाली चित्रकला काफी उच्च स्तर की है। इन सारी चित्र-शैलियों के हजारों चित्र, चित्रित ग्रन्थ और भित्ति-चित्र मिलते हैं।

मध्यकाल की चित्र-शैली को अपभ्रंश-शैली के नाम से पुकारा जाता है। जैसलमेर स्थित जिनभद्र सूरि ज्ञान भण्डार में अनेक प्राचीन सचित्र काष्ठपत्रिकाएँ उपलब्ध हैं। राजस्थान की चित्रशैली में अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ विविध प्रकार की लेखन-शैलियों व बोंडों के साथ चित्रों से सुसज्जित

एवं सुशोभित मिलती हैं। विविधता और रंगों की अनेकता एवं सामंजस्य इनकी विशेषताएँ हैं। यहाँ के फुटकर चित्रों की विशेषता है कि ये कई राग-मालाओं, बारह मासों और भोगासनों को चित्रित करते हैं। कृष्ण की विविध लीलाओं के साथ ही कृष्ण, राम, शिव, तीर्थंकरों, देव-देवियों के भक्ति-प्रधान चित्र भी हैं। राजा-रानी के विविध कार्य-कलापों व विलास के चित्र भी मिलते हैं। या यों कह सकते हैं कि राजस्थानी चित्रकला ने जीवन के किसी भी प्रसंग को नहीं छोड़ा जो चित्रित नहीं किया गया हो। यहाँ अनेक प्रसंगों व विविध भावों के चित्र उपलब्ध हैं। केवल राजस्थान की चित्रकला ने ही सचित्र विज्ञप्ति पत्र भी मिलते हैं। यह विज्ञप्ति-पत्र श्रावक अपने गुरुओं के पास भेजते थे और उन्हें अपने यहाँ बुलाते थे। इनमें किस समय में, किस में कौनसा उल्लेखनीय स्थान, मन्दिर चौहटा आदि कहाँ पर स्थित थे, इसकी जानकारी मिलती है। यहाँ के ऐतिहासिक चित्रों के पीछे जिसका चित्र है, उसका नाम, उनका समय व चित्रकार का नाम भी मिलता है। आश्रयदाताओं को भेंट देते समय चित्रकार चित्र के पीछे वह चित्र कब, किसको, किसने भेंट किया लिखा रहता है। यहाँ अनेक प्रकार के चटकीले रंगों का प्रयोग चित्रों की विशेषता है।

प्रश्न-3. राजस्थान की लोक-संस्कृति का संक्षेप में परिचय देते हुए संस्कृति और सभ्यता का आशय बताइये।

उत्तर—लोक-संस्कृति का परिचय—राजस्थान की लोक-संस्कृति लोक-जीवन में सहज विकसित एवं स्फुरत होती रहती है। यहाँ के लोग अनेक प्रकार के मांडने अपने आंगनों में और अनेक प्रकार के भित्ति चित्र बनाते हैं, जिनमें हमें लोक-संस्कृति का रूप देखने का मिलता है। यहाँ स्त्रियों में हाथ-पैरों में गेहन्दी लगाने की कला काफी विकसित है, जो देश के सभी कोनों में प्रसिद्धि पा रही है। यहाँ के गाँवों में साधारण लोग जिस विविध शैली में माचे (पलंग) बुनते हैं, उनको देखकर उनकी कला प्रियता व सूझ-बूझ पर आश्चर्य होता है। यहाँ पर जीवन के प्रत्येक अंग और प्रसंग में कलात्मकता को देखा जा सकता है। विश्व भर में राजस्थान का यह रिकॉर्ड है कि यहाँ पर जितने भी रंग पाये जाते हैं, उन सभी का प्रयोग किया जाता है। यहाँ के पुरुषों की फगड़ियाँ और साफे विविध रंगों के साथ ही, बाँधने की विभिन्न कला, फगड़ियों की शैलियाँ देखते ही बनती हैं। स्त्रियों की वेश-भूषा में ओढ़ने, चून्दड़ियाँ आदि के बंधेज का जैसा काम राजस्थान में होता है, अन्यत्र कहीं नहीं देखा जा सकता है। मूर्तियाँ बनाने में यहाँ के सैकड़ों परिवार लगे हुए हैं। संगमरमर के सफेद पत्थर की छोटी-बड़ी इतनी मय्य और आकर्षक मूर्तियाँ और वहाँ नहीं बनती हैं। यहाँ जन्म, यज्ञोपवती, शिक्षारम्भ, विवाह, सगाई, वार-त्योहार आदि दैनिक जीवन की घटनाएँ व कार्य सभी गीतों को सरगम में पिरोये हुए हैं।

संस्कृति से तात्पर्य—संस्कृति में किसी देश, राज्य, समाज के खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म, परम्पराओं तथा अन्य साँस्कृतिक धरोहर की बातें आती हैं।

सभ्यता से अर्थ—सभ्यता इतिहास मानव के मौलिक पक्ष से सम्बन्धित होती है। मानव अपने रहने के लिए मकान, कृषि कार्यों के लिए खेत, विश्राम के लिए बिस्तर व पलंग तथा खाने के लिए भोजन सामग्री आदि का निर्माण व उपयोग करता है। अतः ये मौलिक सुख-प्रदान करने वाली सामग्रियाँ या पदार्थ सभ्यता के अन्तर्गत गिने जाते हैं। इनमें केवल उपयोग का ही दृष्टिकोण रहता है, सौन्दर्य का नहीं।

15.4 सारांश

जब मानव में अपने उपयोग की वस्तुओं अर्थात् सभ्यता में रुचि-परिष्कार के कारण सौन्दर्य का आधान करने की इच्छा का जन्म होता है तो संस्कृति का प्रारम्भ होता है और वह इस संस्कृति के बल पर अपने अतीत से लेकर अधुनाम रूप व ज्ञान का उपयोग करता है—और इन ज्ञानोपयोग में उसकी आत्मा का प्रकाश भी मिला रहता है—तब वह संस्कृति बनती है। अतः संस्कृति आत्मिक प्रकाश है तो सभ्यता भौतिकता की चकाचौंध।

इकाई-16 : पंचलाइट

(फणीश्वरनाथ रेणु)

संरचना

- 16.0 महत्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 16.1 महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 16.2 सारांश

16.0 महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) पंचलैट के सिवा और कोई गप नहीं, कोई दूसरी बात नहीं। सरदार ने गुड़गुड़ी पीते हुए कहा—दुकानदार ने पहलू सुनाया पूरे पांच कौड़ी पांच रुपया! मैंने कहा कि दुकानदार साहिब, यह मत समझिये कि हम लोग एक दम देहाती हैं। बहुत—बहुत पंचलैट देखा है। इसके बाद दुकानदार मेरा मुँह देखने लगा। बोला, लगता है, आप जाति के सरदार हैं। ठीक है, अब आप सरदार होकर खुद पंचलैट खरीदने आये हैं तो जाइये, पूरे पांच कौड़ी मैं आपको दे रहे हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत अंश हिन्दी गद्य साहित्य और विधाओं में आंचलिक कहानी 'पंचलाइट' से अवतरित है, यह कहानी ग्रामीण परिवेश पर आधारित है। गांव की अपनी अलग पंचायत है। महतो टोली का सरदार दण्ड जुर्माने के द्वारा एकत्र पैसे से पंचलाइट (पेट्रोमैक्स) खरीदे हेतु बाजार में जाता है उसके उत्साह और रूतवे को इस अंश में स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या— पंचलैट को खरीदने के लिए पंचों ने पन्द्रह महीने तक 'दण्ड जुर्माने' के पैसे जमा किये और रामनवमी के मेले से सभी ने पंचलैट खरीदने का निर्णय लिया। टोली का सरदार स्वयं मेले में जाकर पंचलैट का भाव पूछता है किन्तु दुकानदार के द्वारा बताये गये पैसे सरदार को स्वीकार नहीं होते हैं। वह गांव का होने के बावजूद अपने सरदार होने का रूखा बताते हुए पूरे आत्म विश्वास के साथ अन्यत्र से पंचलैट खरीदने की बात करता है किन्तु दुकानदार अपनी पंचलैट को बेचने के लिए अपने कुशल व्यापारी होने का परिचय देते हुए और गांव के सरदार की गरिमा को बनाये रखते हुए पांच कौड़ी और पांच रुपये के स्थान पर मात्र पांच कौड़ी में ही पंचलैट बेच देने के लिये तैयार हो जाता है।

विशेष— प्रस्तुत अंश में व्यापारी और ग्राहक की स्वाभाविक मनोदशा का चित्रण किया गया है। गांव वालों की सरलता भोलापन और उत्साह स्पष्ट हुआ है। यह बात नहीं है कि गांव भर में कोई पंचलैट जलाने वाला नहीं है। हर एक पंचायत में पंचलैट है, उसे जलाने वाले जानकार हैं। लेकिन सवाल है कि पहली बार टेम करके, शुभ-लाम करके, दूसरी पंचायत के आदमी की मदद से पंचलैट जलेगा। इससे तो अच्छा है कि पंचलैट प्रदीप्त रहे। जिन्दगी—भर ताना कौन सहे। बात—बात में दूसरे टीले के लोग कूट करेंगे—तुम लोगों का पंचलैट पहली बार दूसरे के हाथ से.....। न.न। पंचायत की इज्जत का सवाल है दूसरे टीले के लोगों को मत कहिये।

प्रसंग— प्रस्तुत अंश फणीश्वर नाथ रेणु की आंचलिक कहानी 'पंचलाइट' से लिया गया है जिसमें महतो टोली के पंचों व सरदार के द्वारा पंचलाइट के उपयोग के श्रीगणेश किये जाने की कशमकश को स्पष्ट किया है। महतो टोली में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो कि पंचलाइट (पेट्रोमैक्स) का उपयोग करना, उसे जलाना जानता है।

व्याख्या— प्रस्तुत अंश में स्पष्ट किया है कि गांव की अपनी अलग पंचायत है। अपने नियम—कानून सिद्धान्त और अपना अनुशासन है। गांव के महतो टोली के लोग अभाव में रहकर भी नगरों में होने वाले परिवर्तनों से अनभिज्ञ नहीं है। गांव वाले क्षेत्रीय मेलों का इन्तजार करते हैं अपनी—अपनी जरूरत के अनुसार आधुनिकतम वस्तुएं खरीदने के इच्छुक रहते हैं। महतो टोली के पंचों द्वारा दण्ड जुर्माने के फल स्वरूप एकत्र पैसे से एक पेट्रोमैक्स खरीदने का निर्णय लिया गया। वहां पर इसे पंचलैट के नाम से पुकारा जाता है। गांव में सभी की जुबान पर सिर्फ इसी पंचलैट का जिक्र है। सभी बच्चे, स्त्रियां और बूढ़े पूरी तरह उत्साहित हैं। पंचलैट की पूजा के लिए सामग्री तैयार की जाती है।

कीर्तन करने के लिए ढोल आदि जुटाये जाते हैं। इसे जलाने के लिए केरोसिन तेल मंगाया जाता है। गांव में महतो टोली के लोगों के अतिरिक्त बहुत से ऐसे हैं जो पंचलैट को जलाना अच्छी तरह से जानते हैं, लेकिन इस टोली में कोई भी व्यक्ति यह कार्य नहीं जानता है। गांव की टोली के अपने कायदे—कानून और नियम हैं वे नहीं चाहते हैं कि नवीन उपकरण का श्रीगणेश किसी अन्य टोली के अन्य व्यक्ति से कराया जाये। उनका सोचना है कि यदि ऐसा किया गया तो जिन्दगी भर की बात खराब हो जायेगी। लोग

सोचेंगे कि जिस पंचलाइट को अति उत्साह और स्वाभिमान से लाया गया है उसे जलाना भी नहीं आता है और यह तो पंचायत की इज्जत का सवाल है। सभी लोग उदास हो जाते हैं।

विशेष— लेखक ने ग्रामीण परिवेश में रहने वाले अशिक्षित और भोले लोगों के विश्वास तथा उनके अनजानपन को स्पष्ट किया है। गांव में अनुशासन भी है और अनुशासनहीनता पर दण्ड भी। अपनी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा की चिन्ता भी है।

16.1 महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1. 'पंचलाइट' गाँव के सामाजिक जीवन में आ रहे बदलाव की कहानी है, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर— 'पंचलाइट' कहानी ग्रामीण परिवेश पर आधारित प्रभावशाली कहानी है। गाँव वालों की सरलता, भोला विश्वास और उत्साह इस कहानी का केन्द्रीय बिन्दु है। गाँव की अपनी पंचायत होती है, अपने नियम कानून, अपने सिद्धान्त और अपना अनुशासन, अतः न्याय, ईमानदारी और विश्वास भी भरपूर होता है। 'रेणु' ने कहानी का आरम्भ ही इसी सामाजिक व्यवस्था से किया है कि गाँव में किसी भी प्रकार की अव्यवस्था, अनैतिकता अनुशासनहीनता होने पर गाँव की पंचायत दण्ड-जुर्माना लगाती है और उसका पालन सबको करना पड़ता है। सबसे बड़ा दण्ड ही यह है कि दण्डित व्यक्ति का हुक्का-पानी बन्द कर दिया जाये अर्थात् उसे जाति-बिरादरी के पास व्यवहार करने से रोक दिया जाये। गाँव में प्रत्येक जाति की अलग पंचायत होती है, जिसे 'सभाचट्टी' कहा गया है। सभी पंचायतों में दरी, जाजिम, शतरंजी और पैट्रोमैक्स सम्मान और महत्व के प्रतीक माने जाते हैं।

गाँव के महतो टोले के लोग अभावों में रहकर भी बाहर नगरों में होने वाले परिवर्तनों से अनभिज्ञ नहीं हैं। शहरों में त्योहार पर बड़े-बड़े मेलों का आयोजन होता है तब बहुत-सी वस्तुओं का विक्रय होता है। गाँव वाले इन मेलों की प्रतीक्षा करते हैं और अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार नई वस्तुओं की खरीद करते हैं। अतः महतो टोले के पंचों ने भी रामनवमी के मेले में दण्ड-जुमाने से एकत्र किये गए पैसों से पैट्रोमैक्स खरीदा। गाँव में अन्य टोलों की पंचायतों में भी ये सब वस्तुएँ थीं। राजपूत टोले के लोग तो पैट्रोमैक्स से भली-भाँति परिचित थे क्योंकि उनका विश्वास है कि 'बिना नेम टेम के कल कब्जे वाली चीज का आरम्भ पूजा के बिना नहीं होना चाहिए।'।

रेणु ने कथन के आरम्भ से ही ग्राम्य जीवन की झाँकी दिखा दी है। ग्रामीण जीवन उनकी कहानियों में एकदम साकार हो जाता है। वस्तु विन्यास कहानी के वातावरण निर्माण में पूर्णतया सहायक होता है। वस्तुतः रेणु की कहानियों में जीवन के चित्र काल्पनिक या आरोपित नहीं प्रतीत होते, अपितु वे पूरी चेतना से उसमें रचे बसे हैं।

यह सच है कि प्रेमचन्द ने भी ग्रामीण जीवन के बहुत यथार्थ और संघर्षपूर्ण चित्र अपनी कहानियों में उकेरे हैं। एक प्रकार से भारतीय किसान और मजदूर का पूरा जीवन सामन्तों, जमींदारों और उद्योगपतियों के समानान्तर वहाँ जीवन्त हो उठा है। प्रेमचन्द की पूरी सहानुभूति किसानों, मजदूरों और शोषितों को मिली है, किन्तु रेणु उनके प्रति दयाभाव नहीं रखते, आत्मीय भावना रखते हैं। वे उन लोगों के जीवन में धीरे-धीरे आने वाले बदलावों को महसूस करते हैं और अभिव्यक्त करते हैं। 'पंचलाइट' कहानी में भी यह बदलाव बहुत हल्की पदचाप के साथ परिलक्षित होता है। कहानी का शीर्षक ही इसी बदलाव का सूचक है। 'पंचलाइट' का उच्चारण भी 'पंचलैट' हो गया है। कल कब्जे वाली 'पैट्रोमैक्स' की स्वीकार तो गाँव वाले कर लेते हैं किन्तु उसका जलाना जानने वाला गोर्धन फिल्मी गीत गाता है। गाँव वाले उसका हुक्का-पानी बन्द कर उसे दण्डित करते हैं किन्तु 'पंचलाइट' जला देने पर वे बिरादरी की इज्जत बचाने के लिए उसे माफ भी कर देते हैं। सरदार उसे प्यार से पास बुलाकर कहते हैं—तुमने जाति की इज्जत रखी है, तुम्हारे सात खून माफ। खूब गाओ सलीमा का गाना।

इस प्रकार अंग्रेजी शब्दों के साथ शहरी सभ्यता का रूप भी स्वीकार लिया जाता है। इस कहानी में गाँवों के द्वार पर और ग्रामीण सामाजिक जीवन में शहरी सभ्यता की दस्तक सुनाई देती है। यह धीमा परिवर्तन ही गाँवों को शहर से जोड़ने वाला बन जाता है। रेणु ने इस धीमी दस्तक को सहज रूप में प्रस्तावित किया है।

प्रश्न-2. 'पंचलाइट' कहानी की मूल-संवेदना पर विचार कीजिये।

उत्तर— 'पंचलाइट' कहानी फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा लिखित ग्रामीण परिवेश की कहानी है। इस कहानी में कोई विशिष्ट पात्र या नायक नहीं है। यह कहानी समस्त गाँव की भावना का प्रतिनिधित्व करती है। गाँव वालों द्वारा चुने गए मुखिया सरपंच हों, चाहे गाँव वालों का समूह। महतो टोले की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है 'पैट्रोमैक्स' या 'पंचलाइट', जिसे गाँव वाले 'पंचलैट' कहते हैं। इस 'पंचलैट' को खरीदने के लिए पंचों ने पन्द्रह महीने तक 'दण्ड-जुमाने' के पैसे जमा किये और रामनवमी के मेले से खरीदकर, 'पंचलैट' को सिर पर रखकर गाँव में लाये। सारी कहानी इसी के इर्द-गिर्द बुनी गई है। पंचलैट की पूजा के लिए सामग्री तैयार की जाती है, कीर्तन करने

के लिए ढोल आदि जुटाये जाते हैं। इसे जलाने के लिए 'केरोसिन तेल बनिये की दुकान से लाया जाता है, किन्तु फिर भी यह जल नहीं पाता। रेणु ने गाँव के गरीब, अशिक्षित और भोले लोगों के विश्वास और अनजानपन को उजागर कर दिया है। गाँव में अनुशासन भी है और अनुशासनहीनता का दण्ड भी, शहरी प्रभाव से उत्पन्न अनैतिकता अभी गाँव वालों को स्वीकार नहीं किन्तु गुण ग्राहकता अवश्य है अतः उदारता भी है।

गोर्धन नामक युवक गाँव की गुलरी काकी की बेटी मुनरी को देख 'सलीमा' के गीत गाता है अतः गुलरी काकी की शिकायत पर पंचों ने उसका हुक्का पानी बंद कर उसे दण्डित किया है। किन्तु गोर्धन 'पंचलैट' जलाकर टोले-पंचायत की इज्जत रख लेता है, अतः उसके सात खून माफ हो जाते हैं। रेणु ने गाँव वालों की उत्सुकता और गोर्धन की कुशलता का बड़ा चित्रात्मक वर्णन किया है— 'पंचलैट की रेशमी थैली में धीरे-धीरे रोशनी आने लगी। गोर्धन कभी मुँह से फूँकता, कभी पंचलैट की चाबी घुमाता। थोड़ी देर के बाद पंचलैट से सर्वसनाहट की आवाज निकलने लगी और रोशनी बढ़ती गई। लोगों के दिल का मैल दूर हो गया। गोर्धन बड़ा काबिल लड़का है।'

'पंचलाइट' कहानी अपनी, जमीन, परिवेश से जुड़ी कहानी है। गाँव का जन-जीवन जीवंत हो उठा है।

इसमें जीवन ठहरा हुआ नहीं है, गतिमान दिनचर्या के अनुभव हैं— भले ही वैज्ञानिक उड़ानें, भौतिक चकाचौंध और सतर्क बौद्धिकता न हो, किन्तु गाँव का पूरा इतिहास बोलता है, इसलिए प्रामाणिकता की खोज की जरूरत नहीं है। यहाँ ईमानदारी है, मन की भी और विश्वास की भी। एक उदाहरण काफी है— 'जाति की बन्दिश क्या, जबकि जाति की इज्जत ही पानी में बही जा रही है।

'पंचलाइट' में केवल सामाजिक यथार्थ ही नहीं है, मन का भी ना रस बोध भी है। जिस गुलरी काकी ने गोर्धन के खिलाफ अपनी बेटी को छेड़ने की शिकायत की थी, वही गुलरी काकी अपने गाँव की इज्जत की खातिर पंचों की सहमति से गोर्धन को बुलाकर भी लाती है और उसके गुण कौशल से सभी के साथ-साथ मुनरी भी अभिभूत है— गोर्धन ने सबका दिल जीत लिया। मुनरी ने हसरत भरी निगाह से गोर्धन की ओर देखा। आँखें चार हुई और आँखों ही आँखों में बातें हुई— कहा सुना माफ करना। मेरा क्या कसूर ?

कहानी में यद्यपि गिने-चुने पात्र हैं। उनमें से भी बोलते तो बहुत कम हैं, पर उन कम संवादों में ही पूरा गाँव, गाँव की व्यवस्था, इतिहास और बेबसी बोलती है। रेणु की लेखन कला यहाँ मुखर है—

'मेले से सभी पंच दिन दहाड़े ही गाँव लौटे, सबसे आगे पंचायत का छोड़ीदार पंचलाइट का डिब्बा माथे पर लेकर और उसके पीछे सरदार, दीवान और पंच वगैरह। गाँव के बाहर की ब्राह्मण टोले के फुहंसी, झा ने टोक दिया— "कितने में लालटेन खरीद हुआ महतो ?"

'.....देखते नहीं है, पंचलैट है। बामन टोली के लोग ऐसे ही बात करते हैं। अपने घर की ढिबरी को भी बिजली बत्ती कहेंगे और दूसरों को पंचलैट को लालटेन।'

रेणु ने इस कहानी के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है कि गाँव वालों की छोटी-छोटी खुशियाँ हैं लेकिन वे सब एक साथ हैं। उनकी जिंदगी एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई है। जीवन के संघर्षों को एक साथ झेलने का विश्वास है। यहाँ संस्कृति और पारस्परिक मूल्य हैं, ईश्वर के प्रति आस्था और भावना है और समष्टि भावना है, मगर जड़ नहीं, गतिशील। यही इस कहानी की मूल संवेदना है।

प्रश्न-3. आँचलित कहानी के रूप में 'पंचलाइट' कहानी का मूल्यांकन कीजिये।

उत्तर— 'आँचलिक' शब्द का सीधा अभिप्राय है जनपद या किसी विशिष्ट क्षेत्र के जन-जीवन का समग्र बिम्बात्मक चित्रण। ऐसी रचना में परिवेश की सजीवता पर विशेष आग्रह रहता है अतः रचनाकार प्रादेशिक रंग भरने के लिए धार्मिक विश्वास, रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, रीति-रिवाज, त्योहार, पर्व, नृत्य-गीत, लोक-भाषा, राजनैतिक चेतना आदि का भरपूर उपयोग करता है। इस प्रकार से 'लोक-संस्कृति' का सजीव रूपांकन होता है। फणीश्वरनाथ रेणु इस दृष्टि से सर्वाधिक सफल आँचलित रचनाकार हैं। रेणु गाँव की जातियों का वर्गीकरण 'टोले' के नाम से अभिहित करते हैं। 'पंचलाइट' कहानी में गाँव के आठ वर्गों के आठ टोले हैं और आठ पंचायतें। 'हरेक जाति की अलग-अलग-सभाचट्टी' है। आर्थिक हीनता होते हुए भी गाँव वालों के अपने विश्वास और सिद्धान्त हैं। कथा का आरम्भ करते हुए 'रेणु' एक जीवंत परिवेश साकार करते हैं।

फिछले पन्द्रह महीने से दण्ड जुमाने के पैसे जमा करके महतो टोली के पंचों ने पैट्रोमैक्स खरीदा है, इस बार रामनवमी के मेले में। गाँव में सब मिलकर आठ पंचायतें हैं। हरेक जाति की अलग-अलग सभाचट्टी है। सभी पंचायतों में दरी, जाजिम, सतरंजी और पैट्रोमैक्स है— पैट्रोमैक्स, जिसे गाँव वाले पंचलाइट कहते हैं।'

कीर्तन और लोक गीत रेणु की कहानी में लोक-संस्कृति के हिस्से बनकर आये हैं। भारतीय लोक-जीवन उत्सव प्रिय है, अतः थोड़ी-सी खुशी इसी रूप में अभिव्यक्ति पाती है। पंचलाइट गाँव में आते ही टोले की कीर्तन मण्डली सक्रिय हो जाती है—

'औरतों की मण्डली में गुलरी काकी गौसाई का गीत गुनगुनाने लगी स्थानीय लोक भाषा का प्रयोग ग्राम्य वातावरण के लिए किया गया है। ठेस, पच्छक, आखर, डेढ़-बेढ़, कोड़ी, धुरखेल जैसे शब्द वातावरण के लिए किया गया है। ठेस, पच्छक, आखर, डेढ़-बेढ़,

कोड़ी, धुरखेल जैसे शब्द वातावरण को स्वाभाविक बनाते हैं। इनके साथ दण्ड, जुमनि, पैट्रोमैक्स, नेम टेम, इज्जत आदि शब्द तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज सभी प्रकार के हैं। लेखक ने पात्रों के वार्तालाप में भी स्थानीय रंगत दी है—पंचों ने भी एक स्वर से कहा—ठीक है। गोर्धन को खोल दिया जाए सरदार ने घड़ीदार को भेजा। घड़ीदार वापस आकर बोला—गोर्धन आने को राजी नहीं हो रहा है। कहता है, पंचों की क्या परतीत है? कोई कल कब्जा बिगड़ गया तो मुझे ही दण्ड-जुमाना भरना पड़ेगा।

इस कहानी में पात्रों के क्रिया-कलापों के वर्णन द्वारा भी आँचलिक स्पर्श मुखर हो उठा है। रेणु बहुत थोड़े शब्दों में बहुत गहरे रंगों वाला दृश्य उपस्थित करने में सक्षम हैं—

‘गुलरी काकी उठकर गोवर्धन के झोंपड़े की ओर गयी और गोर्धन को मना लायी। सभी के चेहरे पर नई आशा की रोशनी चमकी। गोर्धन चुपचाप पंचलैट में तेल भरने लगा। सरदार की स्त्री ने पूजा की सामग्री के पास चक्कर काटती हुई बिल्ली को भगाया। कीर्तन मण्डली का मूलगैन मुरछल के बालों को सँवारने लगा। गोवर्धन ने पूछा—इस्परिट कहाँ है। बिना इस्परिट के कैसे जलेगा?’

यद्यपि इस कहानी में बहुत दुर्लभ शब्दों और भौगोलिक स्थितियों का चित्रण नहीं है। सामान्य बोल-चाल के ही शब्द हैं फिर भी यह कहानी अपनी स्थानीय पहचान बनाने में सफल है। वैसे तो हर रचना कोई-न-कोई प्रयोजन लिये होती है और आँचलिक रचना विशेष रूप से ग्राम्य जीवन से सम्बद्ध होने के कारण एक विशेष प्रभाव की संवाहक होती है। रेणु की ‘पंचलाइट’ भी बिहार के गाँवों के अलग-अलग टोलों की पंचायत और आम आदमी का जीवन, खास-तौर पर महतो टोले के उत्साह, महत्वाकांक्षा और उदारता को प्रकट करने वाली कहानी है। लघु आकार की होते हुए भी बहुत आदर्शवादी नहीं है, अनैतिकता के प्रति यदि कठोर है तो गाँव-पंचायत-जाति का सम्मान रखने के प्रति उदार भी है। शहरी सभ्यता के क्षीण झोंके गाँव में आने लगे हैं—ऐसे बदलाव के प्रति गाँव के लोग अब बहुत संकीर्ण नहीं हैं। गाने-बजाने के कार्यक्रम रेणु की प्रायः सभी रचनाओं में मिल जाते हैं किन्तु इस कहानी में उनका विवरण बोझिल नहीं है। ‘पंचलैट’ के प्रति अति-उत्साह और प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए गाँव के लोग कीर्तन की तैयारी करते हैं।

समग्रतः यह कहानी अपने आँचलिक प्रभाव और कलात्मक दृष्टि से सफल कही जा सकती है।

प्रश्न-4. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी-कला की प्रमुख और उल्लेख्य विशेषताओं को सोदाहरण विवेचित कीजिए।

उत्तर—सामान्य विवेचन—हिन्दी कहानी-साहित्य में रेणु का उतना ही महत्त्व है, जितना कि उपन्यास-साहित्य में। रेणु की कहानियों में जिस कलात्मकता और जिस कथ्य का निरूपण हुआ है, वही उनकी कहानियों की विशेषता कह सकते हैं कि रेणु की कहानी कला ग्रामीण परिवेश, आँचलिक भाषा, लोक-जीवन, लोक-संस्कृति और उसमें विकसित सामाजिक सम्बन्धों एवं व्यक्तिगत सम्बन्धों के दायरे में फैली हुई है।

कहानी-कला की विशेषताएँ—फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी-कला की विशेषताओं को निम्नांकित शीर्षकों के सहारे स्पष्ट किया जा सकता है—

लोक-संस्कृति और समाज—कथ्य की दृष्टि से रेणु की कहानियों को देखने पर सबसे पहली बात तो हमारा ध्यान आकर्षित करती है, वह लोक संस्कृति मूलक समाज की तस्वीर है। रेणु समाज के विघटन से दुःखी रहते हैं। इसका कारण यही रहा है कि वे गाँव में जन्मे और पढ़-लिखकर भी यहाँ तक कि कलाकार बनकर भी गाँव से जुड़े रहे। एक समीक्षक ने लिखा है कि शहर में रहते समय उनकी स्थिति एक अकहानी का सुपात्र के उस छोटे लाल के समान रही, जो नगर में खोया हुआ ग्राम्य कथा-पात्र है। गाँवों के प्रति रेणु का आकर्षक विवेक शून्य, मोह मात्र नहीं है। गाँव के समाज में ही मनुष्य का मनुष्य से हार्दिक सम्बन्ध बना होता है। शहर के लोकारण्य में व्यक्ति का व्यक्तित्व गायब हो जाता है। इसलिए शहर में असामाजिकता की समस्या सबसे अधिक परेशान करती है। आधुनिक सभ्यता के प्रकार के साथ शहर के अर्ध-केन्द्रित दृष्टिकोण का प्रभाव गाँव पर पड़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप मनुष्य की सामाजिकता को दृढ़ मूल बनाने वाली लोक संस्कृति की उपेक्षा गाँव में भी होने लगी है। तीसरी कसम कहानी का हीरामन इसी कारण कहता है—‘जा रे जमाना, कहाँ चला गया वो जमाना।’ हीरामन की यही भावना रेणु की अनेक कहानियों में देखने को मिलती है। ग्रामीण जीवन और ग्रामीण संस्कृति के प्रति यह आकर्षण रेणु की सभी कहानियों में आदि से अन्त तक व्याप्त है।

ललित कलाओं का महत्त्व—लोक संस्कृति से अनुराग होने के कारण रेणु की कहानियों में लोक-संस्कृति के उपादान ललित कलाओं को विशेष अनुराग से चित्रित किया गया है। ललित कलाओं में भी गीत और नृत्य की कलाएँ सामाजिक व साँस्कृतिक जीवन की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती हैं। अनेक कहानियों में लोक गीतों के सुर में बजती हुई या लोक नृत्य की लहर पर थिरकती हुई जिन्दगी का चित्रण किया गया है। कहीं सुरजीवी गीतालीदास हैं तो कहीं ‘चंपाकली’ का तुनुक पंखुड़ियों के टूटने के शब्द को कुशलता से प्रस्तुत कर देने वाला लोक नायक शिवनाथ है। पंचकौड़ी मिरदंगिया जनपद के वातावरण में गीतों को गूँजता हुआ न पाकर सोचने लगता है—‘अब तो दोपहरी नीरस ही कटती है, मानो किसी के पास एक शब्द भी नहीं रह गया है। वह उद्विग्न है क्योंकि जेठ की चढ़ी दोपहरी में खेतों में काम करने वाले भी अब गीत नहीं गाते हैं—‘कुछ दिनों बाद कोयल भी कूकना भूल जाएगी क्या? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे

काम किया जाता है? पहले तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती थी—रस की डाली। वे गाने लगते थे विरहा, चांचर, लगनी।' पंचकौड़ी ही नहीं अपितु दस-बारह साल का मोहना भी गीतों का समय-असमय ध्यान रखता है, इसीलिए यह पंचकौड़ी से कहता है— 'प्रातकी मुझे बहुत याद है, लेकिन अभी तो उसका समय नहीं।' और तो और, महुआ घटवारिन के गीत में तो न जाने ऐसी चीज क्या है कि उसे सुनने पर हीरामन के बैल भी 'थसथसा' जाते हैं, जैसे सौ मन बोझ उस पर लाद दिया हो किसी ने।

भारतीयता की तलाश—आँचलिकता की भारतीयता की तलाश रेणु के कथा-साहित्य में इसी धरातल पर सम्पन्न हुई है। कहानियों के पात्र बदलते सन्दर्भों को जीत जाते हैं और अचानक ही वह क्षण दस्तक दे जाता है, जिसमें जीवन की मनोरमता है, भव्यता है, हिन्दुत्व का उदार और विशिष्ट अर्थ प्रतिभासित है। जीवन के उन उदात्त क्षणों से रेणु को प्यार है और उसके विभिन्न कला-चरित्र इन्हीं क्षणों का संधान करते हैं। उस क्षण में ही यथार्थ और आदर्श की पारस्परिकता बिजली की कौंध की तरह सम्पूर्ण व्यक्तित्व को झकझोर बेती है। 'तीर्थोदक' कहानी की लल्लू की माँ, 'जो माया ममता बिसा कर' तीर्थ यात्रा के चल दी थी, दशाश्वमेध-घाट पर गंगा के स्पर्श को पाते ही जैसे द्रवित हो जाती है। प्रार्थना करती है, उनके लिए भी, जो नहीं आए हैं, जो नहीं आ सके और फिर आखिरी सीढ़ी पर पैर रखते ही तलुओं में गगन-माटी का परस लगा। लल्लू की माँ के मन की उमड़ती हुई गंगा आँखों की राह धार बनकर चह चली।' यही ममता 'तीर्थोदक' है। 'लाल पान की बेगम' बिरजू की माँ भी इसी गंध की वाहक है और 'ठेस' के सिरचन के सृजन का धरातल भी यही है। मार्मिकता की दृष्टि से यह बेजोड़ है।

आस्था और आत्मीयता—आस्था के स्वर कथाकार रेणु की आत्मीयता का आधार है, इसीलिए रेणु की कहानियों में मानव की व्याप्ति नहीं है। आत्मीयता की भावना उसे सुकून की खोज के लिए व्याकुल कर देती है। कलाकार-सिरचन की भी क्या यही स्थिति नहीं है? सिरचन व्याकुल है, रेणु भी व्याकुल है, उसकी व्याकुलता को देश-भर में फैले निराशा के वातावरण ने और भी उद्दीप्त कर दिया है। 'आजादी के बीस साल हो गये, लेकिन आदमी अभी तक आदमी नहीं बना। बिगड़ा ही है और भी ज्यादा।' 'परती परिकथा' के सन्दर्भ में 'धरती की पपड़ी टूट गयी है, मन की परती ज्यों की त्यों पड़ी है। लगता है मन को झूने वाला मन्त्र ही हम भूल गये हैं।' रेणु का आस्तिक हिन्दू उसी मन्त्र को पुनर्जाँवित करना चाहता है और इसीलिए वह शहर से गाँव की ओर दौड़ता है। 'मैं निराश नहीं हूँ। गाँव में अब भी सुकून है, शहर में नहीं है, गाँव में मैं एक प्रकार का आश्वासन पाता हूँ।' लल्लू की माँ हो या बिरजू की माँ या सिरचन। सब इसी आश्वासन के प्रतिरूप हैं। रेणु आदमी को आदमी बनने देखने के लिए सजग है। मनुष्य की सामर्थ्य में उनका अडिग विश्वास है, जिसके पीछे लगती है रामकृष्ण परमहंस की आध्यात्मिक आस्था। परमहंस में उनकी श्रद्धा का संकेत 'तीन बिन्दिया' और 'जलवा' जैसी कहानियों में भी उपलब्ध होता है।

आँचलिक जीवन का सांस्कृतिक पक्ष—प्रायः रेणु की कहानियाँ मैथिली अँचल से सम्बन्धित हैं। मैथिल अँचल अपने गीतों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसलिए इन कहानियों में कहीं बारहमासा की 'एहि प्रीत कारन सेत बाँधले' की पंक्तियाँ सुनाई देती हैं, तो कहीं बिरहा की 'अरे साँवरी सुरतिया पर चमके टिकुलिया' की पंक्तियाँ। इनमें कहीं विदेसिया नाच का वंदना गीत सुन पड़ता है तो कहीं सिरपंचमी की रात में होली-गीत। रेणु की अधिकांश कहानियाँ गीतिधर्मा हैं। उन्होंने अपने पहले कहानी संकलन को 'ठुमरी' नाम दिया। इस संकलन में 'ठुमरी' नाम की कोई कहानी नहीं है, किन्तु उसमें संकलित कहानियाँ ठुमरीधर्मा हैं। जिस प्रकार ठुमरी को आँचलिक संगीत के प्रभाव ने ही पुष्ट किया है, उसी प्रकार इन कहानियों को आँचलिक जीवन के स्पर्श से प्राणवत्ता प्रदान की है। लेखक ने लोक गीतों को फैशन के रूप में नहीं अपनया है। यहाँ तो लोक-गीतों के स्वर प्राणों के संगीत के स्वर हैं। महुआ घटवारिन के गीत को गाते-गाते हीरामन को लगने लगता है कि वह खुद सौदागर का नौकर है और इस गीत को सुनने मीता? महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है 'गुरुजी'! कहने का आशय यह है कि आँचलिक जन-जीवन के सांस्कृतिक पक्ष को रेणु ने विभिन्न कोणों से अपनी कहानियों में अंकित किया है। इनमें कहीं 'पंचलाइट' में जाति की प्रतिष्ठा को बनाये रखने में सहायक जाति बहिष्कृत गोर्धन को सरदार बुलाकर कहता है— 'तुमने जात की इज्जत रखी है। तुम्हारा सात खून माफ। खूब गाओ सलीमा का गाना।' तो कहीं सिनेमा का गाना गाने पर बिगड़ उठने वाली बिरजू की माँ अपने ऐश्वर्य के प्रदर्शन की लालसा के पूरी होने पर बलरामपुर के मेले का नाच देखने की ओर से उदासीन होकर ऊँघने लगती है। रेणु ने आँचलिक जीवन के केवल सद्पक्ष को ही चित्रण किया हो, ऐसी बात नहीं है। कहीं-कहीं उन्होंने उनके असतृ पक्ष को भी सामने रखा है। 'अकल और भैंस' आदि ऐसी ही कहानी है।

आर्थिक चेतना—यद्यपि रेणु ने अपनी कहानियों में लोक-संस्कृति के पक्षों की ओर विशेष ध्यान दिया है, किन्तु वे आर्थिक पहलू को सर्वथा भूले नहीं हैं। गाँव में हलवाहे को साल भर में वेतन मिलता ही कितना है? इसलिए वे अगर शहर भाग जाते हैं तो स्वाभाविक ही बात है। इसके अतिरिक्त गाँव में महान का 'जहरदां' पीड़ित करता है सो अलग। ऐसी गरीबी में बीमारी अलग लग जाए तो इलाज

भी नहीं कराया जा सकता। इसीलिए 'मोहना' जैसे लड़कों के पेट की तिल्ली चिता पर ही गलती है। इन लोगों को कभी कहीं से सहायता मिलती भी है तो उस सहायता के कारण उनकी आत्माएँ दब जाती हैं।

घटनात्मकता—रेणु की कहानियाँ कथानक की दृष्टि से घटनाहीन नहीं हैं। लेखक को यह नहीं लगता कि समाज का जीवन कहानीहीन या घटनाहीन हो गया है। छोटेलाल जैसे पात्रों का अस्तित्व जब तक है, तब तक कहानी के घटनाहीन होने के कारण मरने की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। इसलिए रेणु के कहानी-साहित्य में घटनाएँ मौजूद हैं। इन घटनाओं में रस डालने की अद्भुत शक्ति लेखक के पास विद्यमान है। हम कह सकते हैं कि तीसरी कसम कहानी के हीरामन के समान लेखक 'गप रसाने का भेद' जानता है। उसे गीत और कथा दोनों का शौक है। वह कहीं कालक्रम विपर्यय के बिना कहानी कहता चलता है और कहीं वर्तमान कथा की घटनाओं पर 'फ्लेश बैक' की पद्धति से अतीत के चित्र 'सुपर इम्पोज' करता चलता है। इस दृष्टि से 'अग्निखोर' कहानी को देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं उसने सपनों और आभासों के सहारे सुहावने कथानकों को आगे बढ़ाया है। 'रेखाएँ वृत्त चक्र' में बेहोशी के आभासों का सुन्दर प्रयोग किया है।

ग्रामीण जीवन के पात्र—चरित्र-निर्माण की दृष्टि से विचार करने पर यह दिखाई देता है कि रेणु की कहानियों के अधिकांश पात्र मैथिल अंचल के ग्रामीण भागों में रहने वाले हैं। उनके नाम सिरचन, गोर्धन, हीरामन आदि ग्रामीण नाम हैं। लेखक ने एक ही स्थान पर पात्रों के परिचय एवं रंग-रूप का वर्णन न करके कहानियों में बात-चीत के बीच अपने पात्रों के इतिवृत्त और परिचय दिये हैं। रूप-रंग का वर्णन करने की विशेष प्रवृत्ति यहाँ नहीं दिख पड़ती। जहाँ-तहाँ कुछ-एक बातों को वे रखते चले गये हैं। 'अग्निखोर' कहानी की आभारानी का रंग-रूप वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है—'त्रिभुजाकार, ऊँचा कपाल और चमकती हुई माँ, ऐसी देह की बनावट जिसकी हो, तनिक अधिक 'एनर्जेटिक' होती है—भत्ता, प्रमत्ता, अतिमत्ता, महामत्ता।' तीसरी कसम की हीराबाई का रूप वर्णन अंशों में जहाँ-तहाँ चित्रण हुआ है, उसका गुजर-गुजर हेरना, होठों की लालिमा आदि का वर्णन भिन्न-भिन्न सीनों पर हुआ है। पात्रों की मुद्राओं का वर्णन तो स्वभावतः ही अलग-अलग सीनों पर होता है। हँसते समय हीराबाई की देह दुलकती है और हीरामन की देह दुहरी हो जाती है। 'तीन बिंदिया' में मैनेजर का मुँह माइक की तरह गोल खुला रह जाता है। इसी प्रकार 'शीर्षक-हीन' के रूप की फ्रीज छवि हमारी आँखों के आगे तैर जाती है और तो और बैलों तक के चित्र आँखों के सामने दिखने लगते हैं। बाघगाड़ी में जुतते समय हीरामन के एक बैल ने ढेर-सा पेशाब कर दिया था। वे ही बैल हीराबाई को एकान्त मार्ग पर ले जाते समय महुआ घटवारिन के गीत के पिछड़ने पर दुलकी चाल छोड़कर कदम चाल पकड़ लेते हैं।

कथोपकथन का महत्व—रेणु के पात्रों के स्वरूप को उभारने में कथोपकथनों का महत्व सबसे अधिक है। 'लाल पान की बेगम' में मखनी फूआ के 'नाच देखने जाएगी क्या?' पूँछते पर जाने के इन्तजाम के न होने से चिढ़ी हुई बिरजू की माँ कहती है—'बिरजू की माँ के आगे नाथ और पीछे पगहिया न हो तब न।' इसी प्रकार 'भित्ति चित्र की मयूरी' में फुलपतिया का बरसना देखिए—'देखिए हाकिम साहेब रैस्ट करना है हमको करिए। जेहल से चलना है, हमको ले चलिए। अपनी माँ को इस बुढ़ीती में हथकड़ी नहीं लगने दूँगा—इसके चलते जो भी हो जाए.....।' विघटन के क्षण की चुरनिया का 'लौंगी मिर्च' का रूप कथोपकथनों के द्वारा ही उभरता है। कहने का आशय यह है कि रेणु की कहानियों के पात्र यथार्थ जीवित पात्रों के रूप में हमारी आँखों के सामने आ खड़े होते हैं। 'ठेस' का 'सिरचन' भी जीवन्त स्वाभाविक और भावुक पात्र है।

प्रगतिशील चेतना—रेणु की कहानियों में प्रगतिशील चेतना का रंग दिखलाई देता है। उनके कहानी लेखन में सिद्धान्तों की दुर्वह गन्ध नहीं है, एक मौलिक मासूम ममता है, जिसने गाँवाँ गाँवों के उन बीसियों चरित्रों को पहचान से योग्य बना दिया है। चाहे वह विदापत-नाच की मरती हुई परम्परा का दसदुआरी पंचकौड़ी मिरदंगिया हो या पार्टी के अधिकार वर्ग की दृष्टि में नगण्य कामरेड गनपत हो। 'एक आदिम रात्रि की महक' चिह्न वाला करमा और 'विघटन' के क्षेत्र को जबरदस्त अनुभूति से सहने वाले चुरमुन—जो केवल वर्तमान को नहीं भविष्य की भी जी रहे हैं—समाज के उसी उपेक्षित वर्ग से आये हैं, जिसे अपेक्षित संवेदना प्रदान करना प्रगतिशील चेतना का लेखकीय दायित्व था। इन जीवन्त पात्रों की तलाश के लिए जमीन तोड़ना रूढ़ि-विद्रोह की भावना से ही प्रेरित था।

सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों का विरोध भी रेणु की कहानी में है, पर वह प्रायः मुखर अथवा वाचाल नहीं है। रूढ़ि-विरोध का अन्य प्रमुख स्तर धार्मिक अन्धविश्वास और शकुनापशकुन के विश्लेषण का है। 'काकचरित' पूर्णरूपेण शकुनापशकुन विचार की कहानी है। जो कुछ भी बुरा-भला होता है, उसे भारतीय समाज कर्म-फल न समझकर शकुन के कन्धों पर डालता आता है। गाँव पर नगर और यंत्र पहुँचे इन रूढ़ियों को सगुन कहानी में हुआ है।

यथार्थ बोध—आँचलिक कहानी का उदय ही वास्तव में यथार्थ की ग्रहणशीलता का एक नये आयाम के साथ हुआ था। यह आयाम था सामान्य जीवन के स्तर से लेकर राजनीतिक स्तर के यथार्थ की लयात्मता। रागात्मकता ने यथार्थ के विभिन्न स्तरों को एक लय में बाँध दिया था और रेणु की ग्रहणशीलता ने उसे पूरी तन्यमता में पकड़ा है। भौतिक एवं अन्तर्वैयक्तिक परिवेश को उसकी कलम ने दृढ़ता से सहेजा है। उसकी दृष्टि यथार्थ की पकड़ में पूर्णतः सजग है। 'रसप्रिया' के गायक को अच्छी तरह याद है कि 'पाँच साल पहले तक लोगों के दिल में हुलास बाकी था।' पर अब किसके दिल में है? सिरचन कारीगर है, ग्रीन शीतल पाटी और झिलमिलाती चिक बुनने में माहिर है, पर ये काम अब 'बेकाम की बात है' और 'दो-दो पटेर की पाटियों का काम सिर्फ खंसारों का सत्तू खिलाकर।' प्रगतिशील यथार्थ चेतना का स्रोत जन-जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार की प्रतिक्रिया रही है।

शिल्प सौन्दर्य—रेणु की कहानियों में शिल्प-सौन्दर्य का विशेष महत्त्व है। उनकी कहानी-कला संवेदना और शिल्प के समुचित सामंजस्य को लेकर चली है। भाषा-प्रयोग के अन्तर्गत आँचलिक, ग्रामीण, लोक जीवन की शब्दावली, आँचल विशेष में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग, प्रकृति, सौन्दर्य का काव्यात्मक निरूपण तथा बिम्बों का आकर्षक प्रयोग विशेष महत्त्व रखता है। किसी भी कहानी को उठाकर देख लीजिए, उसमें रेणु की ये शैलिक विशेषताएँ आसानी से मिल जाएँगी। रेणु की कहानी कला में आये शिल्प-सौन्दर्य के विषय में डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है— 'रेणु के शिल्प की एक अन्य मुखर विशिष्टता है, उसकी बिम्ब योजना और शब्द-चयन योजना। योजना के दोनों रूप उसकी शिल्प-चेतना और यथार्थ से जोड़कर प्रगतिशील स्वर दे देते हैं। अँकन की सहजता, उसकी शैली का प्राण है। चटकीले रंगों को उभारने का यत्न उसमें बिल्कुल नहीं है। बिम्ब सीधे परिवेश से उभरते हैं। बिरजू का बाप घूँघट में झुकी दोनों पतोहुओं को देखता है तो उसे 'अपने खेत की झुकी हुई बालियों की याद आती है।' करमा 'बेनहाई हुई देय की गन्ध' वाली सरसतिया के घर से लौटता है तो लगता है कि 'तीन जोड़ी आँखें उसकी पीठ पर लगी हुई हैं। आँखें नहीं—डिसटन सिंगल, होम-सिंगल और पैट-सिंगल की लाल-लाल गोल-गोल रोशनी।' पर शायद ये रोनी 'सिंगल' की भी नहीं है, रेणु की संवेदना, शिल्प और भाषा की है, जो हिन्दी कहानी में सहसा 'सिंगल' बनकर मचक उठी थी और तब से न जाने कितने कथाकारों का पथ-निर्देश करती रही है।

16.2 सारांश

संक्षेप में कह सकते हैं कि रेणु आँचलिक कहानीकार है, उनकी कला-रूप में आँचलिक परिवेश, भाषा, संस्कृति, शिल्प, यथार्थ-बोध और आँचलिक संवेदना को विशेष रूप से अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। लोक-संस्कृति का ऐसी पारखी और आँचलिक जीवन का ऐसा कुशल चित्रकार रेणु के अलावा हिन्दी साहित्य जगत में दूसरा नहीं है।

इकाई- 17 : प्रवास की डायरी

(डॉ. हरिवंशराय बच्चन)

संरचना

- 17.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 17.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 17.2 सारांश

17.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “कला का आनन्द लेने की भी एक कला होती है, जो शिक्षण और अभ्यास से आती है। जब कला का पारखी कलाकृति के सामने खड़ा होता है तभी वह अपने को मुक्त रूप से उभारती है। यह कहना गलत है कि कला सबके लिए समान रूप से उपलब्ध होती है। केवल अधिकारी उसको देखता है, पाता है, उसका रस लेता है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश डॉ. हरिवंशराय बच्चन जी की प्रवास की डायरी से उद्धृत है। इसमें उन्होंने कला का आनन्द कौन ले पाता है, इस रहस्य का उद्घाटन किया है।

श्री हरिवंशराय बच्चन ने अपनी पार्टी को लंदन की फिट्ज विलियम्स म्यूजियम दिखावा दी, तब उन साथियों के बारे में टिप्पणी करते हुए वे कहते हैं कि वे केवल म्यूजियम के कमरों में घूम लिये कला का आनन्द नहीं ले पाये क्योंकि कला का आनन्द ले पाने की भी एक कला होती, जन-साधारण उसे नहीं ले पाता है। वह आनन्द लेने की कला, शिक्षण और अभ्यास से आया करती है। जब कला का मर्मज्ञ व्यक्ति किसी कला-कृति के समक्ष खड़ा होता है तभी वह कलाकृति अपने को निर्बाध रूप से उसके समक्ष प्रकट करती है। यह कहना गलत ही है कि कला सबके लिए समान रूप से उपलब्ध होती है। उसे तो केवल उस समय का अधिकृत कलाकार ही देखता है, पाता है एवं उसके आनन्द का आस्वादन कर पाता है। साधारण लोग ऐसा नहीं कर पाते क्योंकि उनमें दृष्टि रीति रीतिशिल्लरीली अर्थात् कला को समझकर उसकी प्रशंसा करना नहीं जानते हैं।

विशेष—कला की तारीफ कला का पारखी ही कर सकता है। साधारण व्यक्ति उसे समझ भी नहीं पाते हैं, आनन्द उठाना तो अलग रहा।

(2) “परिचय होने पर बतलाने लगी कि भारत में भी हमारे कई नगर हैं, और संसार भर की जगह गिना गई, जहाँ पुर्तगालियों ने अपना राज्य बसाया है। बोली, हमने बम्बई अंग्रेजों को दिया था, जैसे मुम्बई को उसके बाप ने ही बसाया था। उसकी बात मुझे अच्छी नहीं लगी। दूसरे देशों पर अधिकार करने को कितने अभिमान से ये लोग बताते हैं शर्म आनी चाहिए तुमने अपने स्वार्थ के लिए और जातियों को गुलाम बना रखा है। यह इसी ढिग में रही तो किसी दिन इससे मेरी लड़ाई होके रहेगी। पुर्तगाली विद्यार्थियों को शुरू से यह शिक्षा दी जाती है कि जिन स्थानों को पुर्तगाल विजय कर लेता है वे सब पुर्तगाली हो जाते हैं।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में श्री हरिवंशराय बच्चन ने पुर्तगाली महिला की मनोवृत्ति पुर्तगाली-साम्राज्य-वृद्धि की छात्रावस्था में ही भावना भरने की दूषित प्रवृत्ति प्रदर्शित की है।

श्री बच्चनजी का कथन है कि ब्रेकफास्ट के समय किसी पुर्तगाली महिला ने अपने परिचय में बतलाया कि भारत में भी पुर्तगालियों के कई नगर हैं। इसके बाद वह संसार भर के नगरों में भी जहाँ पर पुर्तगालियों ने राज्य बसाया है, उन्हें गिना गई। आगे कहने लगी कि उन्होंने बम्बई अंग्रेजों को दिया था। यह कथन वह ऐसे गर्व से कह रही थी मानो मुम्बई उसके बाप ने बसाया हो। श्री बच्चन भी कहते हैं कि उस पुर्तगाली महिला की बातें अच्छी नहीं लगी क्योंकि उनमें उसकी दूसरे देशों पर अधिकार करने की भावना में घमंड झलक रहा था। वे अपने मन में कहते हैं कि उन्हें तो ऐसा करने में लज्जा का अनुभव होना चाहिए क्योंकि अपने स्वार्थ के लिए दूसरे देश के लोगों को गुलाम बनाना कोई अच्छा कार्य नहीं है। इस पर बच्चन जी सोचते हैं कि यदि यह पुर्तगाली महिला इसी ढिग में रही, जहाँ में रहा हूँ तो इससे मेरी लड़ाई अवश्य हो जाएगी। क्योंकि पुर्तगाली छात्रों के शुरू से ही यह शिक्षा दी जाती है कि जिन स्थानों को पुर्तगाल जीत लेता है वे सभी पुर्तगाल राज्य के अन्तर्गत आ जाते हैं। यही अपने साम्राज्य वृद्धि की दूषित मनोवृत्ति इनमें छात्रावस्था से भी भरना प्रारम्भ हो जाता है। यह अच्छी बात नहीं है। अतएव बच्चन जी को उससे लड़ाई होने की सम्भावना अवश्यंभावी लगने लगी थी।

विशेष—पुर्तगाल के छात्रों में विद्यार्थी काल से ही ऐसी भावना भरी जाती है कि जिन स्थानों को पुर्तगाल जीत लेता है, वे उसके राज्य के अन्तर्गत आ जाते हैं। यह एक गुलाम बनाने की मनोवृत्ति है, जो छात्र जीवन में दूषित भावना का सृजन करती है। अतः बच्चन जी को यह बात अच्छी प्रतीत नहीं हुई।

(3) “भारतीय कला-कौशल की एक प्रदर्शनी इण्डिया हाऊस सजाई गई थी, सोचा कुछ समय वहीं काटूँ। प्रदर्शनी कुछ खास नहीं थी। कृष्ण मेनन ने भारत की 1952 की उन्नति पर एक पेम्पलेट जरूर लिखकर छपवाया था। आत्म विज्ञापन उसमें अधिक था। पहला चित्र गाँधी का था, दूसरा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का, तीसरा श्री कृष्ण मेनन का स्वयम्, चौथा जवाहरलाल नेहरू का। खुद ही रिपोर्ट लिख रहे हैं, खुद ही अपनी तस्वीर छाप रहे हैं। लोग साधारण शील-शिष्टाचार कब सीखेंगे। पिछली पार्टी पर भी श्री कृष्ण मेनन का तरीका देखा था। अपने को झूठी महत्ता देने का प्रापेगेंडा और कुछ नहीं। पार्टी में स्वयं मौजूद थे और सभा होने को हुई तो डॉ. रोजारियो ने उठकर ऐसी तमहाद बाँधी, जैसे सम्राट अकबर मुगल दरबार में पधारने वाले हों। घंटे भर से अधिक लोगों को खड़े होकर उनका भाषण निगलना पड़ा। साधारण समझते हैं कि जिसे बुलाओ उसे बिठाने का प्रबन्ध तो रखो। ज्यादा लोगों का प्रबन्ध न कर सको तो कम लोगों को बुलाओ। इण्डिया हाऊस अपने विद्यार्थियों के लिए न कुर्सीयाँ दे सकता है, न फर्श पर बैठने की जगह। बेवकूफ है, जो आते हैं, पता नहीं क्या पाते हैं? रिपोर्ट जो श्रीकृष्ण मेनन ने रखी थी, वह इस टोन में थी कि जैसे भारत के प्रधानमंत्री मेनन महोदय ही हैं।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में श्री बच्चन जी ने लंदन में स्थित इण्डिया हाऊस में लगी भारत की कला-कौशल की प्रदर्शनी श्रीकृष्ण मेनन के आत्म-विज्ञापन मात्र थी तथा पूर्व समय में भी लंदन में उनका ऐसा ही स्वयं का विज्ञापन का तरीका था। यही सबका मीठी चुटकी के साथ वर्णन किया है।

श्री हरिवंशराय बच्चन कहते हैं कि उस समय लंदन में स्थित इण्डिया हाऊस में भारत की कला-कौशल प्रदर्शनी सजाई गई थी। वैसे स्वयं में कुछ मत्त्वपूर्ण नहीं थी। श्रीकृष्ण मेनन ने भारत की 1952 में की गई प्रगति पर एक पेम्पलेट जरूर लिखकर छपवा दिया था। उनमें मेनन जी का स्वयं का विज्ञापन मात्र था। वह इस प्रकार कि उस पेम्पलेट में पहला चित्र गाँधी जी का था, दूसरा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का, तीसरा श्रीकृष्ण मेनन का स्वयं, चौथा जवाहरलाल नेहरू का।

इस पेम्पलेट पर अपनी प्रतिक्रिया स्वरूप श्री बच्चन जी कहने चार रहे हैं कि भारत के लोग साधारण-सा शील शिष्टाचार कब सीखेंगे। देखो खुद ही रिपोर्ट लिख रहे हैं तथा खुद ही अपनी तस्वीर छाप रहे हैं। पिछली पार्टी में भी जब श्री कृष्ण मेनन साहब भारत की ओर से लंदन में आये थे तब भी उनका कुछ ऐसा ही आत्म-प्रदर्शन का तरीका रहा था। उस समय भी उन्होंने स्वयं को झूठी महत्ता देने का प्रापेगेंडा किया था।

उदाहरण स्वरूप श्री बच्चन जी कहते हैं कि श्री मेनन साहब उस पार्टी में स्वयं मौजूद थे और सभा होने को जब हुई तो डॉ. रोजारियो ने उठकर मेनन साहब की ऐसी भूमिका बाँधी, जैसे सम्राट अकबर मुगल दरबार में पधारने वाले हैं। पुनः मेनन साहब ने एक घंटे भर भाषण दिया, उसे लोगों को अनिच्छा पूर्वक खड़े-खड़े सुनना पड़ा। इण्डिया हाऊस अपने विद्यार्थियों को न बैठने हेतु कुर्सी दे सकता है तथा न ही फर्श। बेवकूफ है, जो यहाँ आते हैं, मालूम नहीं उन्हें यहाँ आकर क्या मिलता है।

इस समय मेनन साहब ने जो रिपोर्ट प्रदर्शनी में रखी थी, वह इस टोन में थी कि जैसे भारत के प्रधानमंत्री मेनन महोदय ही हैं।

विशेष—आत्म-प्रदर्शन करना विद्वानों को शोभा नहीं देता है। तभी श्री बच्चन जी ने स्वयं भारत के तत्कालीन विद्वान् श्रीकृष्ण मेनन की मीठी आलोचना की थी। उन्हें साधारण शील-शिष्टाचार का अभाव श्रीकृष्ण मेनन में नजर आया, जिसे वे अपनी प्रवास की डायरी में लिखते नहीं चूके। लगता ऐसा है कि श्री हरिवंश राय बच्चन जी साफ दिल के मानव थे, जिन्हें अपने मुँह मिया मिट्टू बनना कभी भी अच्छा नहीं लगता था।

(4) “पाँच अगस्त को लंदन होते झा साहब से मिलकर निराशा हुई। मैंने सोचा था जरा सहृदयता, अपनत्व से मेरी पत्नी और बच्चों का हाल बताएँ। वे ऐसे बोले, जैसे तेजी और अमित-अजित किसी तरह जी रहे हैं। इस आदमी में भावना की गर्मी कहीं है ही नहीं। खैर वे प्रयाग में रहे चाहे लंदन में अपने जीवन-भर की आदत से मजबूर है। पर दूसरों को उनके पास बैठकर कोफ्त होती है। मूर्तियों, चित्रों, पुस्तकों से ठसा ड्राइंगरूम और उसकी लम्बी-चौड़ी मेज और ऊँची कुर्सी प्रयाग में जो ‘एरोमा’ उनके चारों ओर रखी हैं, उनके बगैर वे स्वयं मुझे बड़े श्रीहत लगे।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में श्री बच्चन जी अपनी प्रवास की डायरी से एक ऐसे मित्र का उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो सहृदयता की गर्मी से रहित है, प्रयाग के रहने वाले हैं, लन्दन में भी उनसे मिलने पर बच्चन जी को कोफ्त ही हुआ।

श्री हरिवंशराय बच्चन जी ने अपनी प्रवास डायरी में पाँच अगस्त को लन्दन में झा साहब से मिलकर निराशा का ही अनुभव किया। ये श्री बच्चन जी के प्रयाग के मित्र हैं। लन्दन में प्रयाग से आये हैं तथा ग्रीवेनर होटल के एक छोटे से कमरे में ठहरे हैं। उनसे जब मिलने गये तब श्री बच्चन जी ने अपनी पत्नी तथा बच्चों का प्रयाग में क्या हाल है, यह पूछा तो उन्होंने अपने भावनाविहीन हृदय से यही उत्तर दिया कि उनकी पत्नी तेजी और अजित व अमित किसी तरह जी रहे हैं। झा साहब का यह उत्तर कुछ अटपटा भी लगा।

उनके इस प्रकार के उत्तर पर अपनी प्रतिक्रिया दर्शाते हुए श्री बच्चन जी कहते हैं कि इन झा साहब में भावना की गर्मी तो कहीं है ही नहीं, ऐसा प्रतीत होता है। बाद में बच्चन जी अपने मन को समझाते हुए कहते हैं कि ये झाँ साहब प्रयाग में रहे या लन्दन में अपने जीवन-भर की आदत से लाचार है। इनमें व्यवहार कुशलता तो मानो अपना स्थान जमा ही नहीं पाई है। परन्तु दूसरों को इनके पास बैठकर कोफ्त होती है। वह इनकी नीरसता से बोरीयत महसूस करता है।

प्रयाग में तो ये मूर्तियों, चित्रों, पुस्तकों से उसे ड्राइंग रूम में अपनी लम्बी-चौड़ी मेज व ऊँची कुर्सी पर विराजमान ऐसे भले प्रतीत होते थे किन्तु लन्दन में उन सभी 'एरोमा' विहीन छोटे से कमरे में अकेले बैठे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो श्रीहत हो गये हों।

विशेष—अपने मित्र झा साहब की जीवन-भर की आदतों से भरी लाचारी एवं व्यवहार-कृपणता का चित्र श्री हरिवंशराय बच्चन जी ने अपनी प्रवास डायरी में भी बखूबी उतारा है।

17.1 महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1. 'जब कला का पारखी कला-कृति के सम्मुख खड़ा होता है, तभी वह अपने को मुक्त-रूप से उभारती है।' लेखक श्री हरिवंशराय बच्चन जी के इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—लेखक श्री हरिवंशराय बच्चन जी ने अपनी प्रवास डायरी में शनिवार, 12 जुलाई, 1952 के दिन लन्दन में अपने अन्य साथियों के साथ फिट्ज-विलियम म्यूजियम देखने गये। उसके बारे में बच्चन जी कहते हैं कि मेरे भारतीय अन्य साथी उस म्यूजियम में विभिन्न कमरों में घूम भर लिये क्योंकि उनकी दृष्टि कला की परख करने में असमर्थ थी अतएव श्री बच्चन जी ने उनके म्यूजियम दर्शन को मात्र एक स्थान पर भ्रमण ही बतलाया है।

उनका कहना है कि कला का आनन्द लेने की भी एक कला होती है। वह कला शिक्षण व अभ्यास द्वारा ही मानव में पनपती है। जब कला की परख जानने वाला किसी कलाकृति के सम्मुख खड़ा होता है, तभी वह कलाकृति स्वयं को स्वतंत्र रूप में उसके सामने प्रत्यक्ष करती है। या यूँ कहें कि वह कला-पारखी ही उस कलाकृति की बारीकियों को समझने की क्षमता रखता है।

आगे इसे अधिक स्पष्टता देने हेतु श्री हरिवंशराय बच्चन जी कह रहे हैं कि यह कहना गलत है कि कला सबके लिए समानरूपेण उपलब्ध हो जाती है। किन्तु केवल उस कला पर अधिकार रखने वाला व्यक्ति ही उस कला को देखने की दृष्टि रखता है, उससे कुछ ग्रहण कर सकता है तथा उसमें चित्रित भावों का आनन्द ले पाता है। जन-साधारण के लिए यह आड़ी-तिरछी खिंची हुई लाइन मात्र ही प्रतीत होती है।

अतः यह कथन कि जब कला का पारखी कलाकृति के समाने खड़ा होता है, तभी वह अपने को मुक्त रूप से उभारती हैं, सर्वथा सत्य लगता है।

प्रश्न-2. 'Esoteric Buddhism' पुस्तक को लेखक ने भ्रामक क्यों कहा है ?

उत्तर—'Esoteric Buddhism' यह पुस्तक भारतीय धर्म के विषय से सम्बन्धित है। यह पहली किताब है, जिसे ईट्स ने भारतीय धर्म के ज्ञानार्जन हेतु पढ़ी थी। ईट्स के तथा दूसरों के लेखों में भी इसके सबूत मिलते हैं। उक्त पुस्तक ईट्स ने अपने एक मित्र को दी थी, जो उसे पढ़कर थियोसोफिस्ट हो गया।

इसके पश्चात् ईट्स ने मैडम ब्लावाट्स्की की किसी भतीजी से शादी की। ऐरिंशीलल ईववहली के लेखक सिनेट थे। ये कुछ समय तक 'पायनियर' पत्र, जो इलाहाबाद से निकलता था, के सम्पादक थे। पुस्तक का नाम श्री बच्चन जी ने भ्रामक इसलिए कहा है कि इसमें बौद्ध धर्म के विषय में कुछ भी नहीं है। यह पुस्तक तो मैडम ब्लावाट्स्की की फिलासफी पर आधारित है, जिसे उसने पूर्व व पश्चिमी के अध-कचरे ज्ञान पर तैयार किया था। ईट्स महोदय एक समय, अस्पष्ट, अद्भुत, रहस्यमय, अतार्किक, परा-प्राकृतिक जो भी विचार सामने आता था, उस पर विश्वास करने को तैयार रहते थे। इन विषयों के प्रति ईट्स का थोड़ा बहुत लगाव-झुकाव आमरण बना रहा।

उक्त विवेचन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि सिनेट की ईसोटेरिक बुद्धि एक भ्रामक पुस्तक है। इसमें बुद्ध के धर्म के विषय में लेशमात्र भी प्रतिपादित नहीं किया गया है। इसका विषय तो मैडम ब्लवाव्स्ट्स्की की विचित्र फिलासफी मात्र है। अतः यह पुस्तक नाम नहीं। अतः यह पुस्तक श्री बच्चन जी ने भ्रामक कही है।

प्रश्न- 3. डेनिस के उपन्यास को पढ़कर बच्चन जी ने उपन्यास के पाठकों के लिए जो राय प्रकट की क्या उससे आप सहमत हैं? यदि नहीं तो क्यों?

उत्तर—केम्ब्रिज से लंदन जाते समय—बुधवार 16 जुलाई, 1952 को अपनी प्रवास की डायरी में श्री हरिवंशराय बच्चन जी 11.50 बजे केम्ब्रिज से लंदन की गाड़ी में बैठे। उस समय को बिताने हेतु उन्होंने उपन्यासकार डेनिस का एक उपन्यास पढ़ना प्रारम्भ किया। उसके बारे में टिप्पणी करते हुए श्री बच्चनजी कह रहे हैं कि इस उपन्यास में न तो कथा सूत्र में आकर्षण था तथा इसके पात्रों में भी कोई सजीवता नहीं प्रतीत होती थी।

इस प्रकार के उपन्यास को पढ़ने वाले पाठकों के लिए निम्नलिखित सम्मति प्रकट की है। श्री बच्चन जी कहते हैं कि उपन्यास के पाठकों को किसी उपन्यास के 40-50 पेज पढ़ डालने चाहिए अर्थात् नीरस हो तो भी पढ़ लेना चाहिए पर उसके बाद भी वह उपन्यास अपने पाठक में उसे पढ़ने के प्रति रुचि न जगा पाए तो उसे बन्द करके रख देना चाहिए।

बच्चन जी की राय से सहमति व असहमति—वैसे मैं श्री हरिवंशराय बच्चन जी की दी गई राय से असहमति ही प्रकट करता हूँ। कारण यह है कि उपन्यास तो वही श्रेष्ठ व रोचक कहलाता है, जिसे प्रारम्भ से ही पढ़ने पर उत्सुकता जग जाये कि अब आगे क्या होगा। किन्तु पाठक में शुरू के 40-50 पेज पढ़ने तक का धीरज रह पाता है? पाठक तो उपन्यास में रोचकता के कारण ही उसे पढ़ने की उत्सुकता रखता है। यदि 40-50 पेज के पश्चात् रोचकता जगी तो पाठक का धैर्य टूट जाता है और वह उसे बन्द कर देने को तत्पर हो जाता है।

बच्चन जी से सहमति—मेरी दृष्टि में बच्चनजी ने डेनिस के उपन्यास को 40-50 पेज तक पढ़ लेने की हिम्मत दिखाई थी, उसका कारण उपन्यासकार के नाम की प्रसिद्धि ही कारण प्रतीत होता है। वे समझते होंगे कि इतना बड़ा नाम और कृति में 40-50 पेज तक कथा-सूत्र अनाकर्षक एवं पात्र भी निर्जीव से लग रहे हैं तब प्रथमतः उसे बन्द कर देने को उनका मन हुआ होगा किन्तु पुनः विचार आया होगा कि इतने प्रसिद्ध उपन्यास के उपन्यासकार श्री डेनिस महोदय हैं, तो सम्भव है कि चालीस-पचास पेज के बाद रोचकता का सृजन करे तथा तब ही पात्रों में जान डालने की बात उनके विचार में आए। इसी विचार से श्री बच्चन जी ने उपन्यास के पाठकों के धैर्य को परखने हेतु ऐसा कह दिया होगा कि 40-50 पेज तक यदि रोचकता नहीं भी प्रतीत हो तो भी उस उपन्यास को पढ़ते जाना चाहिए।

17.2 सारांश

किन्तु मेरी सम्मति तो प्रथम बार वाली ही है। उपन्यास एक रोचक विद्या है। यदि उसके दर्शन उसमें इतनी कंजूसी के बाद हो तो उसे छूने का भी मन मेरे जैसे पाठक को नहीं हो पाएगा। अतः प्रारम्भ से ही रोचकता नहीं तो ऐसे उपन्यास को बन्द करके रख देना ही न्याय संगत है।

इकाई- 18 : सिंधी साहित्यकार ईश्वर चंदर से साक्षात्कार

(मनोहर वर्मा)

संरचना

18.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

18.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

18.2 सारांश

18.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1) “सिंधी भाषा के शीर्षस्थ युवा कथाकारों में राजस्थान के ईश्वर चंदर का नाम सर्वोपरि है, क्योंकि उनकी कहानियों में ताजगी है, नयापन है, उनमें लेखन की क्षमता है, खूब छपते हैं और खूब चर्चित होते हैं, उनके लेखन में सहजता है, उनके पाठक उन्हें प्यार करते हैं, छीलते हैं, वह बहुत स्पष्ट और बेबाक हैं, उनमें सच्चाई है, सादगी है और यह सब अन्य सिंधी कथाकारों में नहीं है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश मनोहर वर्मा जी के ‘ईश्वर चंदर से साक्षात्कार’ नामक साक्षात्कार से उद्धृत किया गया है। इसमें श्री वर्मा जी ने ईश्वर चंदर जी के कथाकार रूप को विविध दृष्टिकोण से देखा व परखा है।

श्री मनोहरजी वर्मा का कथन है कि सिंधी के अग्रणी कथाकारों में राजस्थान के ईश्वर चंदर जी का नाम सबसे ऊपर आसीन है। इसका कारण है कि उनकी कहानियों में सदैव ताजी रहने की क्षमता, उनका नयापन। श्री ईश्वर चंदर जी में लेखन का सामर्थ्य है, उनकी कहानियाँ खूब प्रकाशित होती हैं, खूब चर्चा का विषय बनती हैं। उनके लेखन में स्वाभाविकता है, उनके पाठक श्री ईश्वर चंदर जी को प्यार करते हैं। वे उनके दिलकी गहराइयों तक उन्हें देखना चाहते हैं। श्री ईश्वर चंदर जी बहुत साफ एवं स्पष्टवादी हैं। उनमें सत्यता है, सादगी है। यह सब बातें किसी दूसरे सिंधी कथाकार में देखने को नहीं मिलती हैं।

विशेष—एक कथाकार में जो सादगी, सच्चाई, स्पष्टवादिता होनी चाहिए वह सब हमें श्री ईश्वर चंदर जी में उनकी कहानियों के माध्यम से बिना खोजे ही उपलब्ध हो जाती है। यही उनकी शीर्षस्थ सिंधी भाषा की कहानीकारिता का मापदण्ड है।

(2) “ईश्वर चंदर सिंधी कथा साहित्य का एक ऐसा नाम है, जो हिंदी में भी उतना ही जाना-पहचाना और सम्मिलित है, जितना सिंधी में”, कमलेश्वर जी ने ईश्वर के कहानी संग्रह (हिन्दी) की भूमिका में आगे लिखा है—और इस तथ्य में ही ईश्वर चंदर के कथा लेखन में एक बड़ा राज छुपा हुआ है, हिन्दी कहानी आज देश की सबसे विकसित और महत्त्वपूर्ण विधा है और जिस लेखक की कहानियों का मिजाज हिन्दी कहानी के साथ मेल खा सकता है, उसमें निश्चित ही अपनी भाषा में एक बड़ी मंजिल तय की होगी।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश ‘ईश्वर के कहानी संग्रह (हिन्दी)’ की भूमिका, जो कमलेश्वर जी ने लिखी है, उसका एक अंश है। इसमें उन्होंने ईश्वर की कहानियों का शिल्प हिन्दी कहानियों से मेल खाने के कारण दोनों भाषाओं, सिंधी व हिन्दी में एक समान प्रसिद्धि पाये हुए हैं यही चित्रित किया है।

व्याख्या—‘ईश्वर के कहानी संग्रह’ की भूमिका में लेखक श्री कमलेश्वर जी कहने जा रहे हैं कि सिंधी कथा-साहित्य में एक ऐसा प्रसिद्ध नाम है—श्री ईश्वर चंदर जी का जो हिन्दी भाषा की कहानियों में उतना ही प्रसिद्ध एवं सम्मानित है। उस सत्यांश में श्री ईश्वर चंदर जी का लेखन का एक बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। वह है इनकी कहानियों का मिजाज (शिल्प) हिन्दी कहानी के साथ मेल खा सकता है। इससे पता चलता है कि ईश्वर चंदर जी को अपनी सिंधी भाषा में एक बड़ी मंजिल तय करनी पड़ी होगी।

विशेष—श्री ईश्वर चंदर जी की कहानियाँ जितनी सिंधी भाषा में प्रसिद्धि पा चुकी हैं, उतना ही हिन्दी में भी उनका मान-सम्मान उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है। आशय यह हुआ कि दोनों ही भाषाओं में इनकी कहानियाँ चर्चित हैं।

(3) “ईश्वर भाई, किसी वर्ग विशेष को लेकर कहानी लिखने का मोह रखते हैं क्या ? नहीं, ऐसा कोई विशेष मोह नहीं है, लेकिन यह भी सच है कि वह वर्ग जिसमें मैं जी रहा हूँ, या पला हूँ, उस वर्ग के साथ मोह जरूर है। वैसे मैंने यह अनुभव किया है कि जिन कहानियों में अपने वर्ग को लेकर चला हूँ, मेरी वे कहानियाँ अन्य कहानियों की तुलना में अधिक सफल रही हैं।”

प्रसंग—श्री मनोहरजी वर्मा ने प्रश्न किया कि क्या आप वर्ग विशेष यानी विशेष जाति जैसे सिन्धी को विषय बनाकर कहानी लिखने का मोह रखते हो? इसके उत्तर में स्वीकारात्मकता अपनाते हुए श्री ईश्वरचन्द्र जी ने ऐसी कहानियों में अधिक सफलता मिलने की बात कही।

व्याख्या—श्री मनोहरजी के यह पूछे जाने पर कि क्या आप अपने किसी वर्ग-विशेष को लक्ष्य करके कहानी लिखने का मोह संवरण करते हैं? उसके उत्तर में श्री ईश्वरचन्द्र जी ने पहले तो कहा कि ऐसा कोई विशेष मोह तो नहीं है, किन्तु सत्य यह भी है कि वर्ग-सिन्धी समुदाय, जिससे मैं जी रहा हूँ या पला हूँ उस वर्ग के साथ मोह जरूर है। मैंने यह अनुभव भी किया है कि जिन कहानियों में मैं अपने वर्ग को लेकर चला हूँ वे कहानियाँ अन्य कहानियों की तुलना में अधिक सरल रही हैं। अतः यह पुष्ट हो गया है कि अपने वर्ग का प्रभाव अपने साहित्य में झलके बिना रह नहीं पाता है।

विशेष—साहित्य समाज का दर्पण हुआ करता है। अतः जो साहित्यकार जिस वर्ग विशेष में भी रहा है या पला है, उसका प्रभाव उसके कथा साहित्य में अवश्यमेव अपनी छाप छोड़ेगा।

(4) “वर्मा भाई, तुमने जो नहीं पाया, वही सही है। वैसे ‘ठंडे होठ’, ‘लड़का-लड़की’ व ‘मरा चींटा’ आदि एक-दो ऐसी कहानियाँ हैं, जिनमें कुछ खुलकर कहा गया था। तो मैंने ऐसा पहले भी कहा, वह अश्लील था ही नहीं। अब अगर कोई खुली या बोल्ड बात किसी को अश्लील लगती है, तो मैं समझता हूँ फिर हमें यह भी कहते हुए शर्म आनी चाहिए कि हमें माँ ने जन्म दिया है।”

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में जब मनोहरजी वर्मा ने ईश्वर चन्द्र जी की हिन्दी कहानियों में सेक्स यानी अश्लीलता नहीं देखी तब सिन्धी आलोचक उन पर यह आरोप क्यों लगाते हैं? इसके उत्तर में श्री ईश्वर जी ने स्वीकार है कि खुलकर या बोल्ड बात कहना यदि अश्लीलता है तो ऐसा मैंने अवश्य किया है।

व्याख्या—श्री ईश्वर चन्द्र जी ने वर्मा के कथन का कि उन्होंने उनकी हिन्दी कहानियों में तो सेक्स नहीं पाया, इस पर ईश्वर जी ने कहा वह सही है। वैसे सिन्धी कहानियों में जैसे ‘ठंडे होठ’, ‘लड़का-लड़की’ व ‘मरा चींटा’ एक-दो कहानियाँ थी, जिनमें मैंने कुछ स्पष्ट रूप में कथन कर डाला था। उसके बारे में मैंने कहा था कि वह अश्लील था ही नहीं। किन्तु अब यदि कोई खुली या दमदार बात किसी को सैक्सी लगती है तो मैं तो यही कहूँगा कि फिर तो हमें यह कहते शर्म आनी चाहिए कि हमें माँ ने जन्म दिया है। माँ का जन्म देना एक खूबी व दमदार बात है, उसे भी अश्लील मानें तो मेरे साहित्य में अश्लीलता का आरोप सिन्धी आलोचकों को अवश्य लगेगा। किन्तु ऐसा है नहीं, अब वे आलोचक सन्तुष्ट हैं तथा मुझे अश्लीलता के आरोप से मुक्त करने का उनका मानस पूरा-पूरा बन चुका है।

विशेष—किसी बात को खुलकर कहना या बोल्ड होकर कहना अश्लीलता के घेरे में नहीं आता है। अतएव ईश्वर चन्द्र जी की कुछ एक-दो कहानियाँ अश्लीलता की परिधि से अब बाहर समझी जाने लगी हैं।

18.1 महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1. सिन्धी की नई व पुरानी पीढ़ी के कथा-शिल्प की तुलना ईश्वर चन्द्र जी के कथानुसार करते हुए सिंध पाकिस्तान व भारत के सिन्धी कलाकारों में क्या भेद है?

उत्तर—कहानी की वर्तमान दशा—श्री ईश्वर चन्द्र जी कह रहे हैं कि कहानी आज निश्चय ही एक सुन्दर चौराहे पर खुली है, जहाँ उसके कई रास्ते खुले हैं। सिन्धी कहानी की बहुत पहले की बात तो मैं नहीं जानता, तथापि जब से मैं सिन्धी कहानी पढ़ने समझने लगा था, उस समय प्रगतिवाद का दौर था। उन दिनों कीरत बाबानी, उत्तम आदि कथाकारों का एक तथाकथित गुप था। फिर उस गुप को चक्र-व्यूह करके माना गया। उस समय जो वाद-विवाद पत्रिकाओं में चले थे, उनमें मुझे लगा कि उत्तम, कीरत बाबानी आदि के चक्र-व्यूह को तोड़ने वाला अभिमन्यु मोहन कल्पना ही था। किन्तु आज वह प्रगतिवाद प्रायः समाप्त हो गया है। इस सच्चाई को पुरानी पीढ़ी भी स्वीकार करने लगी है।

नयी पीढ़ी निश्चय ही आगे बढ़ी है, उसने कथा-शिल्प में प्रगति की है। आज नयी पीढ़ी के पास सच्चाई है, नारे नहीं, अगर कोई नारा है भी तो अन्तर इतना-सा है कि पहले नारे महज नारेबाजी के लिए बनाये जाते थे और आज सच्चाई को नंगे रूप में जनता के समक्ष लाने हेतु।

उस प्रकार का कथा-शिल्प पुरानी एवं नई पीढ़ी के सिन्धी कथाकारों में है, जो पुराने में तो नारे केवल दिखावे के रूप में लगाये जाते थे किन्तु आज के कथाकार जीवन की सच्चाई को प्रत्यक्ष रूप में चित्रित करके तथा शिल्प का ताना-बाना बुनते हैं।

सिंध पाकिस्तान व भारत के सिंधी कथाकारों में भेद-काव्य व सम्प्रेषण दृष्टि से अन्तर—श्री ईश्वर चन्दर जी, अपने साक्षात्कर्ता श्री मनोहर जी वर्मा के इस प्रश्न का उत्तर कुछ इस प्रकार से देते हैं कि वर्मा भाई, भेद है किन्तु वह भेद शिल्प के स्तर पर है। कथ्य अर्थात् क्या सम्प्रेषण करना है, इस पर भेद नहीं है वरन् किस भाँति करना है, इस दृष्टि से सिन्ध पाकिस्तान के व सिन्धी भारत के कहानीकारों में भेद है।

मूल कारण—आजादी का न होना—इसका मूल कारण बतलाते हुए श्री ईश्वर चन्दर जी यही कह रहे हैं कि पाकिस्तान के कथाकारों को चिन्तन के स्तर पर इतनी आजादी नहीं है, जितनी हमारे यहाँ भारत में है। वैसे पाकिस्तान के सिंध में भी प्रयोग होते रहे हैं, जिनमें उदाहरण के तौर पर हम अमर जलील और गुलाम नबी मुगल के नाम विशेष-तौर पर लिये जा सकते हैं। इन्हीं ने दबे तौर पर कथा के चिन्तन को उभारा है। पिछले कुछ वर्षों से पाकिस्तान से पुस्तकें आदि भारत में नहीं आ पाती, इसलिए आज की स्थिति का मूल्यांकन करना कठिन हो गया है।

निर्णय—उक्त विवेचन से सिन्ध पाकिस्तान व भारत की सिंधी कथाकारों के भेद चिन्तन की दृष्टि का ही है, संप्रेषणीयता का नहीं। इसमें श्री ईश्वर चन्दर जी ने चिन्तन पर विशिष्ट आजादी का नहीं होना ही बतलाया है। भारत के सिंधी कथाकार कुछ अधिक स्वतंत्र रूप से इस चिन्तन को मूर्तरूप दे पाते हैं जबकि पाकिस्तान वाले कथाकार ऐसा करने में असमर्थ हैं। अन्य भारतीय भाषाओं के बीच सिन्धी कथा साहित्य की ईश्वर चन्दर ने स्थिति बताई—

सिन्धी कथा साहित्य में आधुनिकता—श्री ईश्वर चन्दर जी ने स्पष्ट किया है कि आधुनिकता ने प्रायः हर भाषा के साहित्य को छूआ है। सिन्धी कहानी को जितना स्थान हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने दिया है, अन्य किसी भाषा ने नहीं। वैसे सिन्धी की कहानियाँ अन्य भारतीय भाषाओं में भी छपी हैं।

भारतीय भाषाओं में स्थिति एवं भविष्य—इधर यदि 'सारिका' पत्रिका के ही भारतीय भाषाओं के कथा विशेषांक का अवलोकन करने से पता चलता है कि सिंधी कथा की स्थिति आशाजनक है। यदि युवा सिंधी कथाकार मौलिक सृजन की ओर अधिक आगे आएँ तो कई एक भाषाओं से अच्छा कथा-साहित्य सिंधी भाषा प्रदान कर सकती है।

18.2 सारांश

अस्तु साक्षात्कार हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विद्या है।

इकाई- 1 : राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

संरचना

1.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

1.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

1.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

मातृभूमि

(1)

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्यचन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है ॥
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन है।
बंदी विविध विहंग, शेष-फन सिंहासन है ॥
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेश की।
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश की ॥ 1 ॥

शब्दार्थ—परिधान=ओढ़नी या वस्त्र। हरित पट=हरा अधोवस्त्र, हरे-भरे खेत, हरी-भरी सतह। युग=दो। मेखला=करधनी या कमर बन्द। प्रेम प्रवाह=प्यार का विस्तार। मण्डन=सजाने की सामग्री। बन्दीजन=चारण-भाट, यशोगान करने वाले। खग-वृन्द=पक्षियों का समूह। शेष-फन=शेषनाग का फन। सिंहासन=राज्य सिंहासन। अभिषेक=राज्याभिषेक। पयोद=बादल। बलिहारी=न्यौछावर। सगुण=साकार। मूर्ति=प्रतिमा, बुत। सर्वेश=परमब्रह्म।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविवरण मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित कविता 'मातृभूमि' शीर्षक से अवतरित है, जिसमें भारत-भूमे के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा उसके अलौकिक महत्त्व का वर्णन किया है तथा इसमें कवि ने मातृ-भूमे को परमब्रह्म परमात्मा की साकार मूर्ति बतलाया है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भारत भूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं उसकी महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे मातृ-भूमि, हरे भरे खेत रूपी हरित अधोवस्त्र पर नीले आकाश रूपी ओढ़नी तुम पर बहुत सुन्दर लगती है। तुम्हारे मस्तक पर सूर्य और चन्द्रमा दो मुकुट हैं तथा समुद्र जो तुम्हें घेरे हुए है वह तुम्हरी करधनी है। तेरे ऊपर जो नदियाँ बहती हैं वे तुम्हारे प्यार का मानो प्रवाह है। फूल व आकाश में चमकने वाले तारे साज सजा की बस्तुएँ हैं। पक्षियों का समूह तेरे, यशोगान कतां चारण-भाट हैं। शेषनाग का फन तेरा राज्यासिंहासन है। उस पर तेरा राज्याभिषेक बै बादल करते हैं।

कवि कहते हैं कि मैं तेरे इस वेश पर बलिहारी जाता हूँ। तू तो सचमुच ही परब्रह्म परमात्मा की साकार मूर्ति है।

विशेष—1. यह सान्यता है कि पृथ्वी शेषनाग के फन पर टिकी हुई है तभी श्री गुप्तजी ने इसे मातृभूमि का सिंहासन बताया है।

2. वह राजसी वेशभूषा से सम्पन्न होने के कारण ब्रह्म की सगुण मूर्ति प्रतीत होती है।

3. प्रस्तुत अंश में रूपक उपमा और अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(2)

पालन-पोषण और जन्म का कारण तू ही।
वक्ष-स्थल पर हमें कर रही धारण तू ही ॥
अभ्रकष प्रासाद, और ये महल हमारे।
बने हुए हैं, अहो ! तुझी से तुझ पर सारे ॥
हे मातृभूमि ! जब हम कभी, शरण न तेरी पाएँगे।
बस, तभी प्रलय के पेट में, सभी लीन हो जाएँगे ॥ 2 ॥

शब्दार्थ—वक्ष-स्थल=गोद। धारण=पालन। प्रासाद=महल। लीन=विलीन। प्रलय=विनाश।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित कविता 'मातृभूमि' शीर्षक से अवतरित है। कवि मातृभूमि के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि—

हे मातृभूमि ! हमारे पालन-पोषण का तू ही हेतु है और तेरी गोद में ही हम जन्म लेकर अपना जीवन धारण करते हैं अर्थात् मातृभूमि की धरा पर उपजने वाले अन्न से हम अपना जीवन धारण करते हैं और इसकी पावन गोद में जन्म लेकर जीवन यापन करते हैं। हमारे घरों की संरचना भी इस धरा की कृपा से होती है और दमकते हुए ऊँचे महल भी इसी की देन है। ये सब इसी धरा पर निर्मित हैं।

कवि मातृभूमि के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हे मातृभूमि जब तक तेरी कृपारूपी शरण को हम प्राप्त करते रहेंगे तब तक हम अपना जीवन धारण करते रहेंगे लेकिन जब तेरी कृपा हमसे अलग हो जायेगी तब हम सब प्रलय की गोद में सोकर अपने अस्तित्व को नष्ट कर लेंगे अर्थात् हमारा जीवन तेरी ही कृपा का सुपरिणाम है।

विशेष— 1. कवि ने मातृभूमि के उपकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है।

2. जीवन का हेतु मातृधरा है। उसकी कृपा से हम जीवन धारण करते हैं।

(3)

जिस पृथ्वी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे।

उससे हे भगवान ! कभी हम रहें न न्यारे ॥

लोट-लोट कर वहीं ! हृदय को शांत करेंगे।

उसमें मिलते समय, मृत्यु से नहीं डरेंगे ॥

उस मातृभूमि की धूल में, जब पूरे सन जाएँगे।

होकर भव-बन्धन-मुक्त हम, आत्म-रूप बन जाएँगे ॥ 3 ॥

शब्दार्थ—पूर्वज=पहले पैदा हुए वंशज। उस से=उस मातृभूमि से। न्यारे=अलग, उसे सम्मान न देने वाला। लोट-लोट कर=मातृभूमि की धूल का उपभोग करके। शान्त=सन्तुष्ट। उस में=भूमि में। मिलते समय=पाँचों तत्वों में मिलते समय। मृत्यु=मौत। भव-बन्धन मुक्त=संसार बन्धन से स्वतंत्र। आत्म-रूप=परमात्मा तुल्य।

प्रसंग—कविता की अन्तिम पंक्तियों में कवि भारतवासियों को मृत्यु से निडर बनाते हुए कहना चाहते हैं कि संसार सागर पार करने के पश्चात् तुम ब्रह्ममय बन जाओगे। यदि मातृभूमि का उचित सम्मान कर सकें तभी यह सम्भव होगा।

व्याख्या—कवि कहते हैं कि हे भगवन ! जिस पृथ्वी में हमारे पूर्वज समा गये आप हमें उस मातृभूमि से पृथक् न करें अर्थात् हम सदैव उसकी भलाई करते रहें। उस भूमि की रज में लोट-लोट कर आनन्दित ही नहीं होंगे अपितु उसके पंचतत्वों में समाते समय मृत्यु से भय नहीं खाएँगे।

उस मातृभूमि की रज में पूर्ण रूप से मिल जाने के पश्चात् हम संसार के बन्धनों से स्वतंत्र होकर ब्रह्ममय बन जायेंगे।

विशेष—मानव देह में चैतन्य स्वरूप आत्मा मरण के पश्चात् ब्रह्म में मिल जाती है। यही रहस्य कवि श्री मैथिलीशरण जी प्रकट करना चाहते हैं।

आगे बढ़ो ! ऊँचे चढ़ो !

(1)

बैठे हुए हो व्यर्थ क्यों ? आगे बढ़ो, ऊँचे चढ़ो,

हे भाग्य की क्या भावना ? अब पाठ पौरुष का पढ़ो।

हे सामने का शत्रु भी मुख में स्वयं जाता नहीं।

हाँ, ध्यान उद्यम का तुम्हें तो भी कभी आता नहीं।

जो लोग पीछे थे तुम्हारे बढ़ गये हैं बढ़ रहे,

पीछे पड़े तुम देव के सिर दोष अपना मँढ़ रहे।

पर कर्म-तैल बिना कभी विधि दीप जल सकता नहीं,

हे देव क्या ? साँचे बिना कुछ आप ढल सकता नहीं ॥ 4 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'भारत-भारती' काव्य वाटिका से अवतरित 'उद्बोध' शीर्षक कविता से उद्धृत है। कवि देशवासियों को उद्बोधन देते हुए कहते हैं कि—

हे देशवासियों! तुम अकर्मण्य बने हुए बेकार में क्यों बैठे हुए हो। तुम अपनी स्थिति को समझो और अपने कदमों को आगे बढ़ाकर अपने अस्तित्व को प्राप्त करो। अपने भाग्य के भरोसे को त्यागकर अर्थात् भाग्यवादी भावनाओं को त्यागकर कर्मवादी विचारों से पूरित होकर पौरुष करो। क्योंकि बिना श्रम के भाग्य भला नहीं करता। इसलिए भाग्य को छोड़कर परिश्रम करना चाहिए परिश्रम से ही मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है। बिना मेहनत किये तो सामने थाली में रखा हुआ भोजन का ग्रास भी मुँह में नहीं जाया करता है। उसके लिए भी श्रम करना पड़ता है। यदि यह सत्य है तो क्या तुम्हें श्रम करने का कभी भी ध्यान नहीं आता है। तुम अपनी स्थिति का अवलोकन करो और सोचो कि जो लोग तुम से पीछे थे वे मेहनत करके तुमसे आगे बढ़ गये हैं और बढ़ रहे हैं। तुम भाग्य के भरोसे अपने आपको दोषी ठहरा रहे हो। तुम्हें यह बात अच्छी तरह से अवगत है कि बिना कर्म रूपी तेल के भाग्य रूपी दीप जला नहीं करता है। इसलिए भाग्य क्या है? अर्थात् कुछ भी नहीं है, क्योंकि बिना कर्म के वह भी नहीं बना करता है। जिस तरह साँचे के माध्यम से ही वस्तुएँ सुन्दर आकार को प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी कर्म से ही सुन्दर फल प्राप्त किया करता है।

विशेष—(1) कवि ने मनुष्य को कर्म करने की प्रेरणा दी है, भाग्य के भरोसे रहकर बैठने की नहीं।

(2) प्रस्तुत अंश में अनुप्रास एवं रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(2)

रक्खो परस्पर मेल मन से छोड़कर अविवेकता,
मन का मिलन ही मिलन है, होती उसी से एकता।
तन मात्र के ही मेल से है मन भला मिलता कहीं,
है बाह्य बातों से कभी अन्तःकरण खिलता नहीं ॥ 5 ॥

शब्दार्थ—परस्पर=आपस में। मेल=मिश्रित होने की भावना। अविवेकता=श्रेष्ठ व हीनता का अज्ञान। बाह्य=बाहरी, ऊपर की। अन्तःकरण=आत्मा। खिलता नहीं=प्रसन्न नहीं होता है।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक के 'आगे बढ़ो, ऊँचे चढ़ो' नामक पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि श्री गुप्त जी ने एकता-विधायी तत्त्वों का विश्लेषण किया है।

कविवर गुप्तजी कहते हैं कि हे भारतीय बन्धुओं अपने मन में भेदभाव नहीं होना चाहिए। इस भावना से आपस में मेल की भावना रखनी चाहिए। अर्थात् भेद-भाव को त्यागकर एक-दूसरे में घुल-मिल जाने के भाव उत्पन्न करो। मनो का ही आपस में मिलना वास्तविक मिलन है। उसी से एकता का उद्गम हो पाता है। शरीर मात्र के संयोग से क्या भला कभी मन मिले हैं, अर्थात् कभी नहीं मिले। शरीर मात्र का मेल तो ऊपरी दिखावा है। इसे कवि दूसरे शब्दों में कुछ इस प्रकार यहाँ प्रकट कर रहे हैं कि बाह्य चेष्टाओं से अर्थात् ऊपरी दिखावे से अन्दर का दिल कभी प्रसन्न नहीं होता है। यहाँ ऊपरी दिखावा शरीर मात्र का मेल है। इससे कभी एकता के भाव पैदा नहीं हो पाते हैं। मन में उद्भूत विचारों के आपस में मेल खाने पर ही एकता प्रकट होती है।

विशेष—एकता तो मनो के मेल से ही सम्भव है दैहिक लगाव से नहीं। मनो का मेल एकता है जबकि तन का मेल केवल वासना है, जो एकता को कभी नहीं पैदा कर पाती है। क्योंकि वह क्षणिक एवं विनाशी है।

(3)

है कार्य ऐसा कौन-सा साधे न जिसको एकता,
देती नहीं अद्भुत अलौकिक शक्ति किसको एकता।
वो एक एकादश हुए किसने नहीं देखे सुने,
हाँ, शून्य के भी योग से है अंक होते दश गुने।
प्रत्येक जन प्रत्येक जन को बन्धु अपना जान लो,
सुख-दुःख अपने बन्धुओं का आप अपना मान लो।
सब दुःख यों बँटकर घटेगा सौख्य पावेंगे सभी,
हाँ शोक में भी सान्त्वना के गीत गावेंगे सभी ॥ 6 ॥

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पद्य में राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' नामक प्रसिद्ध रचना के 'आगे बढ़ो ऊँचे चढ़ो' 'उद्बोधन' शीर्षक से उद्धृत है। प्रस्तुत अंश में गुप्तजी ने परतंत्रता के युग में भारतवासियों में देश-प्रेम व राष्ट्र-भक्ति जागृत करने का प्रयास किया है।

राष्ट्र की एकता पर बल देते हुए श्री मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं कि ऐसा कोई कार्य इस संसार में नहीं है जिसे पारस्परिक एकता के बल पर पूरा नहीं किया जा सकता हो क्योंकि संगठन व एकता की शक्ति के सामने समस्त बाधाएँ मार्ग छोड़ देती हैं। इस एकता में अद्भुत और अलौकिक शक्ति है। इसीलिए यह कहा गया है कि 'संघे शक्ति कलियुगे।' जगत् में हम देखते हैं कि एक-एक के दो अंक परस्पर मिलकर ग्यारह हो जाते हैं और इतना ही नहीं किसी अंक के आगे शून्य लगा देने से उस अंक का मान दस गुना बढ़ जाता है। यह अंकों की महत्ता हम सबने देखी व सुनी है।

एकता के इस महत्त्व को हृदयंगम करके हमें चाहिए कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति दूसरे प्रत्येक व्यक्ति को अपना भाई समझे। इस प्रकार यदि हम दूसरों के सुख-दुःख के सहभागी बनकर एकतापूर्वक कार्य करेंगे तो हमारे दुःख आपस में बैठकर कम हो जायेंगे और हम सभी को सुख की प्राप्ति होगी और यदि कोई स्थायी विरह या शोक का अवसर भी संयोगवश आ गया तो हम परस्पर सान्त्वना के माध्यम से उस भीषण शोक के अवसर पर भी शांति व सुख पा सकेंगे।

विशेष—(1) श्री गुप्तजी की प्रसिद्ध कृति 'भारत-भारती' से उद्धृत इस काव्यांश में राष्ट्र उद्बोधन के लिए पारस्परिक एकता व संगठन पर बल दिया गया है।

2. गुप्तजी का प्रिय छन्द 'हरिगीतिका' इसमें प्रयुक्त हुआ है।

3. अंकों के उदाहरण से विषय प्रतिपादन को बल मिला है तथा उदाहरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

1.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. कवि मैथिलीशरण गुप्त की काव्य कला पर प्रकाश डालिए।

अथवा

कवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के भाव एवं कलापक्ष को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

गुप्तजी के काव्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—सामान्य परिचय—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रमुख कवि थे। द्विवेदी जी ने गुप्त जी को अँगुली पकड़कर काव्य के क्षेत्र में चलना ही नहीं सिखाया अपितु उनके भावों और विचारों को भी हमेशा अपने विचारों के अनुकूल ढालने का प्रयास किया और उन्हीं की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त काव्य जगत में इतना आगे बढ़कर जन-प्रिय एवं राष्ट्रकवि बन पाये।

गुप्तजी की आरम्भिक समस्त रचनाएँ द्विवेदी युग का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करती हैं। उनमें नैतिकता, आदर्शवादिता, उपदेशात्मकता एवं इति वृत्तात्मकता विद्यमान है। इसके साथ ही वे साहित्य जगत में छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी युग के अन्तिम चरण पर विद्यमान रहकर अपने राष्ट्र प्रेम के भावों को युगानुकूल अभिव्यक्त करते रहे। गुप्त वरदहस्त कवि थे इसलिए उनकी काव्य कला में भाव एवं कला दोनों ही पक्षों की प्रधानता रही है। उनके काव्य की विशेषताओं को भाव एवं कलापक्ष के माध्यम से निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

भाव पक्ष—गुप्तजी के महाकाव्य का भाव पक्ष गरिमा और गौरव से युक्त है। उसमें राष्ट्रप्रेम का सबल स्वर मुखरित हुआ है। उनके काव्य की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर वर्णित किया जा सकता है—

1. भारतीय सभ्यता और संस्कृति—गुप्तजी का काव्य भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विशेषताओं से पूरित है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से जन-मानस में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति प्रेम पैदा किया है। उन्होंने जन-जीवन को भारत के प्राचीन गौरव से परिचित कराया है और उसे राष्ट्र भाव से पूरित होने की प्रेरणा प्रदान की है क्योंकि उन्होंने अपने काव्य में पौराणिक युग से लेकर वर्तमान युग तक की सभी प्रकार की आवश्यक बातों का समावेश किया है। यद्यपि गुप्तजी वैष्णव धर्म के अनुयायी थे लेकिन उनके मानस में संकीर्णता को कोई स्थान नहीं था। उनके लिए सभी धर्म और सम्प्रदाय समान थे तथा सबके प्रति उनके मन में प्रेम था। उन्होंने समाज के निम्न वर्गों को भी श्रेष्ठ एवं महान बनाने के लिए सचेत और सावधान किया तथा उन्हें उत्तरोत्तर प्रेरणा प्रदान करने के लिए कहा कि—

पूत कर्मकर मातृभूमि के बनो विशेष सपूत।

छूत बुरी है अहो भाग्य है यदि हम हुए अछूत ॥

हिन्दू और मुसलमानों के मन में व्याप्त मनोमालिन्य को समाप्त करते हुए उन्होंने आपस में प्रेम से रहने का सन्देश देते हुए कहा कि—

हिन्दू मुसलमान सब भाई, नित नवीन जयगान उदार ।

वैष्णव बौद्ध जैन आदि हम उस पर हिंसा करें कि प्यार ॥

2. राष्ट्रीय भावना—गुप्तजी को राष्ट्रीय कवि के रूप में स्मरण किया जाता है क्योंकि उनके काव्य में राष्ट्र प्रेम के भावों की प्रधानता विद्यमान है। गुप्तजी ने सर्वप्रथम 1912 ई. में 'भारत-भारती' लिखकर देशवासियों का ध्यान उनकी वर्तमान दुर्दशा की ओर आकृष्ट किया और अतीत की गौरवमयी झाँकी प्रस्तुत करके उन्हें पराधीनता की ब्रेडियों से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके साथ वैतालिक के जागरण गीतों के द्वारा उन्होंने भारतवासियों को प्रगति की ओर उन्मुख किया तथा भारतीय संस्कृति का पाश्चात्य संस्कृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का संदेश दिया है। उन्होंने अतीत वर्णन के साथ वर्तमान का भी रूप प्रस्तुत किया है। विरहिणी उर्मिला भी अपने विरह में राष्ट्र को नहीं भूलाती हैं और वह कहती हैं कि—

धुनवणि या वेणु लो श्याम रूप रे संग ।

गुप्त जी राम के भक्त इसलिए नहीं हैं कि राम ईश्वर के अवतारी अंश हैं अपितु वे राम भक्ति में इसलिए श्रद्धा रखते हैं कि उनके राम इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने की आकांक्षा से अवतरित हुए हैं। तभी वे उनके इस रूप को साकेत में वर्णित करते हुए कहते हैं कि—

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?

विश्व में रमे हुए सभी कहीं नहीं हो क्या ?

तो मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करें ।

मुझमें न रमो राम, तो मन में रमा करें ॥

इस प्रकार गुप्त जी के मन में राम के प्रति अपार श्रद्धा और प्रेम है।

4. सामाजिक दृष्टिकोण—गुप्तजी ने सामाजिक क्षेत्र के प्रति अपना नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों के प्रति अपना विरुद्ध मत व्यक्त किया। वह समाज के पतित, दलित एवं निम्न वर्ग को भी समान आदर एवं समान प्रतिष्ठा दिलाने के लिए पुकार उठते हैं—

उत्पन्न हो तुम प्रभू-पदा से जो सभी का ध्येय हैं ।

तुम हो सहोदर सुरसरी के चरित जिसके गेय हैं ॥

इतना ही नहीं कवि ने यहाँ तक कहा है कि यदि समाज में कहीं अन्याय एवं अतिचार दिखाई दे तो उसके विरुद्ध निर्भय होकर आवाज उठाओ और आन्दोलन करो—

न्याय धर्म के लिए बढ़ो तुम, ऋत हित समझो-बूझो ।

अनय राज, निर्दय समाज में निर्भय होकर जूझो ॥

वर्तमान भारतीय समाज में नारी की हीन दशा देखकर उनका हृदय करुणा से द्रवित हो उठा और यशोधरा में उन्होंने नारी का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहा है कि—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥

5. विविध भाव गरिमा—गुप्तजी का काव्य वृहत मानवीय भावनाओं का आगार है। इसलिए उसमें मानव हृदय के विविध भावों का मर्मस्पर्शी प्रत्यक्षीकरण हुआ है। जयद्रथ-वध में वीरता और करुणा के भावों का, पंचवटी में क्रोध, जुगुप्सा और प्रेम का, साकेत में प्रेम, आत्मग्लानि, शोक, क्रोध, उत्साह आदि की चित्ताकर्षक व्यंजना हुई है। विरहिणी यशोधरा की यह उक्ति कितनी मार्मिक है—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में, प्रियतम को प्राणों के पण में ।

हर्मी भेज देती हैं रण में क्षात्र धर्म के नाते ।

कला पक्ष—गुप्त जी के काव्य का भावपक्ष जितना प्रबल और सशक्त है उतना ही कलापक्ष भी प्रभावी है। उन्होंने अपने काव्य का सफल परिपाक किया है। भावों की मृदुल व्यंजना और मर्म स्थानों का ज्ञान उनकी कुशलता का परिचायक है। गुप्त जी ने खण्डकाव्य, महाकाव्य तथा मुक्तककाव्य तो लिखे ही हैं, साथ ही आधुनिक शैली के आधार पर गीत काव्य में भी पीछे नहीं रहे हैं। गुप्त जी ने पुरातन के उपासक होते हुए भी प्रगतिवादी दृष्टिकोण को भी अपनाया है। मेरी मिट्टी, ऐटमबम नामक कविताएँ प्रगतिवादी ही हैं। गुप्त जी ने प्रारम्भ में ही हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया है लेकिन साकेत महाकाव्य में छन्द प्रयोग में बहुलता दृष्टव्य है। उनकी विशेषता यह है कि उनके वर्ण वृत्त भी तुकान्त होने से मात्रिक लगते हैं। उनकी भाषा में प्रसाद, नाधुर्य और ओज—तीनों गुणों का यथा स्थान प्रयोग हुआ है। आपकी काव्य भाषा विशुद्ध प्रवाहमयी खड़ी बोली है। जिसमें एक ओर तत्सम शब्दों का प्राधान्य है तो दूसरी ओर तुकबन्दी के मोह में शब्दों की विकृति भी पाई जाती है। कहीं-कहीं तुक के लिए व्याकरण के नियमों की अवहेलना तक की है। अलंकार प्रयोग की दृष्टि से गुप्त जी का काव्य धनी है। वे सर्वत्र भावों की अभिव्यंजना में सहायक हुए हैं।

गुप्तजी ने मुख्य रूप से प्रबन्ध काव्य रचना में विशेष सफलता प्राप्त की है। उसमें वस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद सभी अच्छे एवं खरे उतरे हैं। साकेत उनका सबसे उत्तम प्रबंध काव्य है। कैकेयी और उर्मिला का चरित्र बहुत ही सुन्दर चित्रित हुआ है। प्रचवटी में लक्ष्मण-शूर्पणखा का संवाद, साकेत में लक्ष्मण-उर्मिला संवाद उच्चकोटि के हैं। उदाहरणार्थ—

‘पाप शान्त हो, पाप शान्त हो,
कि मैं विवाहित हूँ बोले।
पर क्या पुरुष नहीं होते हैं।
वे दो दाराओं वाले ॥’

निष्कर्ष—उपर्युक्त वर्णनाधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का काव्य राष्ट्रीयता, उच्चादर्श और भारतीय संस्कृति की गौरव और गरिमा से पूरित है। उनके काव्य में जहाँ अर्वाचीन भावनाओं का पावनप्रवाह प्रवाहित है, वहीं उसमें प्राचीन आदर्श भी उपस्थित है। वे समाज में व्याप्त बुराइयों के कटु आलोचक हैं और भारत को वर्तमान दासता से मुक्त कराने के लिए आतुर हैं। इस प्रकार उनके काव्य में प्राचीन व अर्वाचीन का सुन्दर समन्वय है।

प्रश्न-2. ‘मातृभूमि’ कविता के भाव को सरल शब्दों में स्पष्ट करते हुए उसका महत्त्व बताये।

उत्तर—मैथिलीशरण गुप्त की मातृभूमि कविता में उनकी वे भावनाएँ प्रकट हुई हैं, जिनमें धरती प्रेम, संस्कृति प्रेम, मानव प्रेम और देश प्रेम के उद्गार हैं। कवि ने दूरा कविता में मातृभूमि के सौन्दर्य, मिट्टी के महत्त्व, धरती के पोषक रूप, उपकारी स्वरूप, सात्विक भावों को बढ़ाने वाले रूप का वर्णन किया है।

कविता का मूल भाव

‘मातृभूमि’ कविता के मूलभाव को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

1. मातृभूमि साक्षात् ईश्वर की प्रतिमूर्ति है। उसका गुणगान करना ईश्वर के गुणगान करने के समान है। यह मातृभूमि न केवल हमारी माता है, बल्कि माता की भी माता है।
2. मातृभूमि आनन्द की वर्षा करने वाली और बच्चे को पूर्ण मनुष्य बनाने में मदद करने वाली शक्ति है।
3. मातृभूमि ही मनुष्य के जन्म और मृत्यु का कारण है। वही हमारे जीवन का आधार भी है। उसी से सब-कुछ निर्मित भी होता है और अन्त में सभी कुछ उसी में विलीन भी हो जाता है।
4. मातृभूमि के कारण ही मनुष्य प्रेम, आत्मीयता और आनन्द जैसे भावों से भरपूर सुख प्राप्त करता है। मातृभूमि ही हमें अन्न, धन, नीर, पत्त, फल-फूल और अनेक आवश्यक पदार्थ देती है, जिनसे हमारा जीवन चलता है।
5. मातृभूमि का सौन्दर्य सबसे ऊपर है इसी की गोद में नदियाँ बहती हैं, आकर्षक वृक्ष जन्म लेते हैं और इसी के ऊपर पर्वत और घने-घने बादल मँडराया करते हैं। यही धरती मनुष्य के हृदय में पवित्र भावों को जन्म देती है।
6. मातृभूमि क्षमामयी, दयामयी, कल्याणकारिणी, वात्सल्य प्रदान करने वाली, भय को दूर करने वाली, शक्ति का स्रोत, वैभव और समृद्धि को बढ़ाने वाली तथा दुःखों का हरण करने वाली व सुखों की वर्षा करने वाली है।
7. मातृभूमि भक्ति और श्रद्धा के भावों को प्रेरित करने वाली तो है ही, मनुष्य को दुःख से सुख की ओर ले जाने वाली भी है।
8. मातृभूमि का स्वभाव समदर्शी का स्वभाव है। यह सभी को एक दृष्टि से देखती है और सभी का उपकार करती है।
9. मातृभूमि ही मनुष्य को सांसारिक बन्धनों से मुक्त करके उसे अक्षय आनन्द की ओर ले जाने वाली है।

‘मातृभूमि’ कविता के आधार पर मातृभूमि का महत्त्व – प्रस्तुत कविता धरती प्रेम को स्पष्ट करनेवाली सांस्कृतिक चेतना से युक्त कविता है। इसमें एक ओर तो गुप्तजी की देश के प्रति प्रबल आस्था अभिव्यक्त हुई है और दूसरी ओर भविष्य के प्रति एक संयत आशा के संकेत भी मिलते हैं।

इसमें मातृभूमि के जो गुण बतलाये गये हैं, वे ही उसके महत्त्व को भी स्पष्ट करते हैं। इसके महत्त्व के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. मातृभूमि देश प्रेम की भावना को विकसित करने वाली है। इसमें यह भाव छिपा है कि धरती ही सबसे अधिक महत्त्व रखती है। कारण वही जन्म देती है, व्यक्ति के भावों का विकास करती है और उसे पवित्र भावों से भर देती है।
2. मातृभूमि के महत्त्व का दूसरा कारण उससे प्राप्त होने वाली लोकोन्मुखता की भावना है।
3. मातृभूमि की आकर्षक छवि हमारे मन में सर्वेश-ईश्वर के प्रति श्रद्धा और कवि के विश्वास के भावों को जागृत करती है। कवि ने इसे सर्वेश की साक्षात् मूर्ति कहा है।
4. मातृभूमि के महत्त्व का चौथा कारण इसका पालक और पोषक रूप है। कवि ने बतलाया है कि मातृभूमि ही पालन-पोषण और जन्म का प्रमुख कारण है।
5. मातृभूमि के महत्त्व का एक कारण यह भी है कि इसमें धरती और उस पर उत्पन्न होने वाले अन्न को एकमात्र जीवन का आधार बताया गया है। मातृभूमि ही मनुष्य के मन में प्रेम, सुख और शान्ति के भावों का विकास करती है।
6. मातृभूमि का महत्त्व उसके अनेक गुणों के कारण भी है। कवि ने क्षमामयी, क्षेममयी, सुधामयी, वात्सल्यमयी, प्रेममयी, विश्वपालिनी, भयनिवारिणी, शक्तिकारिणी, सुखदायिनी और वैभवशालिनी बतलाकर उसके महत्त्व को स्पष्ट किया है।
7. मातृभूमि के महत्त्व का एक कारण यह भी है कि वह समदर्शी है। वह सभी मनुष्यों को समान दृष्टि से देखती है फिर भी यदि लोग अलग-अलग स्थितियों में दिखाई देते हैं तो यह उनके कर्मों का ही फल है।
8. कविता के प्रारम्भ में कवि ने मातृभूमि की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए जो पंक्तियाँ लिखी हैं, वे भी इसके महत्त्व की परिचायक हैं। देखिए—

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर हैं,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है
नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल चारे मण्डल हैं,
बन्दीजन खग वृन्द शेषफन सिंहासन हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि मातृभूमि का असौम्य महत्त्व है। वह सभी की पोषक, जीवनाधार और सौन्दर्यमयी होने के कारण भी अधिक महत्त्व रखती है।

प्रश्न-3: मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित ‘मातृभूमि’ कविता का सारांश लिखिए।

उत्तर—हिन्दी साहित्य के प्रतिभाशाली कवियों ने अपनी रचनाओं में भारतीय संस्कृति और देशभक्ति की भावनाओं को उजागर किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने 40 से भी ऊपर ग्रंथों की रचना की। जिनमें अनेकानेक विषय संग्रहीत हैं। प्रस्तुत कविता में मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भूमि के प्रति अपनी भक्ति भाव दर्शाते हुए प्रेम भावना को प्रस्फुटित किया है। उन्होंने मातृभूमि के सौम्य सौंदर्य, पालन पोषण रूप और उपकारी स्वरूप का वर्णन करते हुए इस भूमि की मिट्टी के महत्त्व को बताते हुए सात्त्विक भावों का बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

1. **भक्ति भावना**— प्रस्तुत कविता में गुप्त जी ने भारतीय संस्कृति की विशेषताओं के प्रति अपनी निष्ठा एवं मातृभूमि के प्रति अपनी भक्ति भावना, समर्पण भावना को व्यक्त किया है। इसलिए वे कहते हैं कि—

जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुए हैं।
घुटनों के बल सरक-सरककर खड़े हुए हैं।।
परमहंस सम बाल्यकाल में सब सुख पाये।
जिसके कारण ‘धूल भरे हीरे’ कहलाये।
हम खेले-कूदे हर्षयुत, जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि! तुमको निरख, मग्न क्यों न हो गोद में।।

भगवान् से यही प्रार्थना करते हैं जिस भारतभूमि की मिट्टी में हम लोट-लोट कर बड़े हुए। इसी मातृभूमि में रहकर हमने परमहंस के समान सारे सुखों को प्राप्त किया है। हे मातृभूमि! तुम्हारी गोद में हम खेलकूद कर हर्ष विभोर हुए हैं जो तुमने हमको प्यार दिया उसे देखकर हम आनन्दित क्यों न हो। इसी मातृभूमि पर हमारे पूर्वजों ने अपना गरिमामय जीवन को व्यतीत किया है अतः हम भी इस भूमि से कभी अलग होना नहीं चाहेंगे तथा अन्त समय में अपनी भक्ति भाव के साथ इसी में विलीन हो जायेंगे।

कवि का आशय है कि यदि हम मातृभूमि के प्रति पूर्णतया समर्पण भावना रखेंगे तभी हम आत्मतत्त्व को प्राप्त कर सकते हैं। मातृभूमि के साथ जब हमारा एकाकार हो जायेगा तभी हमारा जीवन धन्य हो सकता है।

2. मातृभूमि का सौम्य सौन्दर्य रूप- कविता का प्रारम्भ कवि ने मातृभूमि के प्राकृतिक सौम्य सौन्दर्य के साथ किया है। मातृभूमि भारत के ऊपर नीला आकाश और धरती पर हरियाली इसके सुन्दर वस्त्र हैं। सूर्य और चन्द्रमा इसके मुकुट हैं तथा समुद्र इसकी मेखला (करधनी) है। इस भूमि पर बहने वाली नदियां प्रेम प्रवाह का सलिल है तथा फूल और तारे इसके आभूषण हैं। विविध पक्षी वृक्ष की डालियों पर बैठकर इसका गुणगान करते हैं तथा शेषनाग का फन इसका सिंहासन है। जल से भरे बादल इस पर वर्षा करके अभिषेक करते हैं। मातृभूमि भारत का यह स्वरूप सर्वेश का रूप धारण किये हुए लगता है।

3. पालनकर्ता का रूप- कवि गुप्तजी ने भारतभूमि को माँ के तुल्य पूजनीय बताया है। जैसे माता अपने बच्चे को जन्म देकर उसका पालन-पोषण करती है तथा अपने वक्षस्थल से चिपकाकर रखती है वैसे ही ये मातृभूमि भी हमारे जन्म तथा पालन-पोषण का कारणभूत है। मातृभूमि अपने वक्षस्थल पर हमें आश्रय देती है। इस भूमि पर हमने ऊँचे-ऊँचे भवन तथा महल बनाये हैं। कवि की भावना है कि यदि जब हम मातृभूमि की शरण नहीं पायेंगे तो प्रलय में समा जायेंगे। जिस दिन हमें मातृभूमि का सहारा नहीं मिलेगा तो हमारा जीवन समाप्त हो जायेगा।

4. उपकारी रूप- प्रस्तुत कविता में गुप्तजी ने मातृभूमि के उपकारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है-

पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा।
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा।
तेरी ही यह देह, तुझी से बनी हुई है।
बस, तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है।।
हा, अन्त समय तू ही इसे, अचल देख, अपनायेगी।
हे मातृभूमि! यह अन्त में, तुझमें ही मिल जायेगी।।

हे मातृभूमि तुम्हारे उपकारों को हम कैसे भूल सकते हैं। तुझसे ही सभी सुखों को प्राप्त करके भोगा है। यह देह भी तुझी से ही बनी हुई है तथा अन्त समय में भी तू ही इसे अपनायेगी। हमें विश्राम देगी। अतः हम तेरे उपकारों को कभी नहीं भूल सकते।

निष्कर्ष- गुप्तजी ने इस कविता के माध्यम से मातृभूमि को पालन-पोषण करने वाली साक्षात् मूर्ति बताया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तजी के रचनाओं में सर्वत्र देश भक्ति, प्रेम भक्ति की भावना दिखाई देती है। इस कविता में जननी के समान मातृभूमि के प्रति भावना रखने का संदेश व्यक्त हुआ है।

प्रश्न-4: 'आगे बढ़ो! ऊँचे चढ़ो!' इस कविता के माध्यम से मैथिलीशरण गुप्त जी देशवासियों को क्या संदेश देना चाहते हैं?

उत्तर- प्रस्तुत कविता राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'भारतभारती' काव्य वाटिका से अवतरित 'उद्बोध' शीर्षक से उद्धृत है। कवि इस कविता के माध्यम से नव चेतना का संचार करना चाहते हैं। कर्मठता का बोध देकर आलस्य को छोड़ने की प्रेरणा देते हैं। भाग्य के भारोसे मत बैठो अपितु उद्यम करो जिससे भाग्य स्वयं जग जायेगा। साम्प्रदायिकता के कटहरे से निकल कर एकता की सुगन्ध से अपने आस-पास के वातावरण में शांति प्रेम और माधुर्य का वातावरण पैदा करो। 'आगे बढ़ो! ऊँचे चढ़ो' कविता का तभी सार्थक रूप हो सकता है। इन्हीं भावों को लिए हुए सुन्दर वर्णन किया गया है।

1. **जागरण की भावना**- गुप्तजी कहते हैं -हे देशवासियों आलस्य रूपी चादर को ओढ़कर सोये हुए बहुत समय बीत गया है। अब तुम अपनी दशा देखो। सोये-सोये कुछ भी मिलने वाला नहीं है। सोकर तुमने सब कुछ खो दिया है। अब भी समय है सजग बनो और उठकरके अपने कदमों को बढ़ाओ। इस प्रकार इस कविता के माध्यम से जागृति की भावना को प्रेषित कर रहे हैं।

2. **पुरुषार्थ की भावना**- कवि कहना चाहता है कि हाथ पे हाथ देकर बैठने वालों को कुछ भी प्राप्त नहीं होता। इन्हीं भावों को गुप्तजी इन शब्दों में व्यक्त करते हैं-

बैठे हुए हो व्यर्थ क्यों? आगे बढ़ो ऊँचे चढ़ो,
है भाग्य की क्या भावना? अब पाठ पौरुष का पढ़ो।
है सामने का ग्रास भी मुख में स्वयं जाता नहीं,
हाँ, ध्यान उद्यम का तुम्हें तो कभी आता नहीं।।

इन पंक्तियों के माध्यम से गुप्तजी कहते हैं कि समय को बैठे-बैठे व्यर्थ में क्यों खो रहे हो? भाग्य के भरोसे बैठे रहने से कुछ भी मिलने वाला नहीं है। अपने सोये हुए पौरुष को जगाओ। यदि सामने भोजन की थाली परोसी हुई है मगर हाथ का उद्यम नहीं होगा तो ग्रास अपने आप मुख में नहीं आएगा। पुरुषार्थ, मेहनत की ओर अपना ध्यान अब आकृष्ट करो। तुम्हारे इस तरह बैठे रहने से जो लोग पीछे थे वे पुरुषार्थ कर आगे बढ़ गये हैं और तुम पीछे रहकर भाग्य के सिर पर दोष मढ़ रहे हो। कर्म रूपी तैल को जलाकर अपने भाग्य रूपी दीप को जलाओ। कोई भी वस्तु साँचा पाकर ही आकृति प्राप्त करती है। पुरुषार्थ की पगड़ड़ी पर चलने से ही तुम भी मंजिल को प्राप्त कर सकते हो।

3. **संगठन की भावना**- प्रस्तुत कविता में गुप्त जी संगठन के सूत्र को दर्शाते हुए कहते हैं-

आओ, मिले सब देश बान्धव हार बनकर देश के,
साधक बने सब प्रेम से सुख शान्तिमय उद्देश्य के।

अगर संगठन को मजबूत बनाना है तो साम्प्रदायिकता के भेद को मिटाना ही होगा तथा सम्पूर्ण देश के बन्धुओं को इस प्रकार से मिलना होगा जैसे एक-एक कड़ी जुड़कर हार बन जाती है। अगर संगठन को मजबूत बनाना है तो हमारा एक उद्देश्य प्रेम और शान्तिमय जीवन का होना चाहिए जिससे हम सुख को प्राप्त कर सकें। सुख शान्ति की प्राप्ति तभी हो सकती है जब हम सभी मिलकर माला का आकार लें। जिस प्रकार विविध फूलों को एक धागे में गूँथने से माला का रूप धारण कर लेती है। वैसे ही हम विविध साम्प्रदायिक में रहते हुए भी प्रेम और शान्ति के धागे में गूँथ जाएँ तो हम सुखद जीवन जी सकते हैं।

4. **एकता की भावना**- प्रस्तुत कविता में एकता के सूत्र बताते हुए कहा गया है-

रक्खो परस्पर मेल मन से छोड़कर अविवेकता,
मन का मिलन ही मिलन है, होती उसी से एकता।

कवि इन पंक्तियों के माध्यम से भारतीय बन्धुओं को कहना चाहते हैं कि अपने मन में भेदभाव नहीं होना चाहिए जो बिबेकी होता है वह भेदभाव से दूर रहता है। अतः मन से अविवेकता को निकालकर परस्पर में मेलजोल के भाव को पैदा करा है। एक दूसरे के मन जब मिलते हैं तभी वास्तव में मिलन होता है! हाथ से हाथ मिला लेने मात्र से एकता नहीं होती और न ही बाह्य बातों से एकता होती है। अपने अन्तःकरण को विकसित करना है तो मन के दीप को जलाना होगा।

5. **बन्धुत्व की भावना**- वास्तव में एकता एक ऐसी अलौकिक शक्ति है जो बिगड़ते हुए कार्य को भी साध देती है। जहाँ एकता होती है वहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे को अपना बन्धु मानता है। इसलिए हमें प्रत्येक जन को अपना बन्धु जान लेना चाहिए। सुख-दुख में बन्धु ही काम आते हैं। जब हम एक-दूसरे को अपना बन्धु मान लेते हैं तो सारे दुख समाप्त हो जाते हैं और सुख का अनुभव होता है। एक दूसरे को सान्त्वना मिलती है।

इकाई- 2 : जयशंकर प्रसाद

संरचना

- 2.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 2.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 2.2 सारांश

2.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

भारत महिमा

(1)

हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक-हार ॥
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम तम-पुंज हुआ तब नाश, अखिल संसृति हो उठी अशोक ॥ 1 ॥

शब्दार्थ—आँगन=आँगण, चौक। उपहार=भेंट। उषा=प्रातःकाल में। अभिनन्दन=स्वागत। हीरक हार=हीरों का हार, ओस की बूंदों का हार। जगे=आध्यात्मिक ज्ञान पाया। जगाने विश्व=दूसरे देश के लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान देने लगे। विश्व=संसार में। आलोक=ज्ञान का प्रकाश। व्योम-तम-पुंज=आकाश पर्यन्त अज्ञानान्धकार समूह का है अखिल=समस्त। संसृति=संसार। अशोक=शोक रहित।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत अंश हमारी पाठ्य-पुस्तक काव्य संचय के 'भारत महिमा' नामक पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि प्रसाद जी ने प्रस्तुत कवितांश में भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए यहाँ के निवासियों को आध्यात्मिक ज्ञान एवं समग्र संसार के दुःख विमोचन की प्रेरणा दी है।

कवि प्रसाद जी कहते हैं कि हमारा भारत हिमालय के में बसा है। उसे प्रातःकाल सूर्य की किरणों ने अपने स्वर्णिम प्रकाश से आलोकित किया है, यही उसकी भेंट, भारत का स्वागत है तथा ओस की बूंदों रूपी हीरों का हार भेंट किया जाता है। प्रातःकाल ओस की बूंदों में सूर्य किरण मिलती हैं, तब वे हीरे सदृश चमकती हैं।

उषा काल में भारतवासियों ने आध्यात्मिक ज्ञान (आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध ज्ञान) पाया एवं संसार के अन्य प्राणियों को भी उस ज्ञान से परिचित कराया। उस ज्ञान से सारे विश्व में ज्ञान का प्रकाश फैला जिससे आकाश पर्यन्त अज्ञानान्धकार समूह का नाश हो गया है तथा समस्त संसार दुःख-रहित हो सुखी रहने लगा है।

विशेष—आध्यात्मिक ज्ञान भारतवासियों ने पहले पाया व उसे समस्त सांसारिक प्राणियों को देकर उनके दुःखों को मिटाया है।

(2)

सुना है दधीचि का वह त्याग, हमारी जातीयता-विकास।
पुरन्दर ने पवि से है लिखा, अस्थि-युग का मेरे इतिहास ॥
सिन्धु-सा विस्तृत और अथाह, एक निर्वासित का उत्साह।
दे रही अभी दिखाई भग्न, मग्न रत्नाकार में वह राह ॥ 2 ॥

शब्दार्थ—त्याग=शरीर की हड्डियों का दान। जातीयता=श्रेष्ठ जाति का। विकास=परोपकार में विकास पाना। पुरन्दर=इन्द्र ने। पवि=वज्र, ऋषियों की हड्डियों द्वारा निर्मित। अस्थि युग=हड्डियों का चमत्कार। सिन्धु-सा=सागर जैसा। विस्तृत=विशाल। अथाह=असीम। निर्वासित=वनवास दिये हुए का। उत्साह=साहस। भग्न=टूटी हुई। मग्न=डूबी हुई। रत्नाकर=समुद्र राह=राम द्वारा समुद्री बांध।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत कवितांश में प्रसाद जी ने ऋषि दधीचि के अस्थियुग के प्रभाव व वनवासी राम के विशेष उत्साह से समुद्र-बन्धन कर्मों को चित्रित किया है तथा वीर प्रसूता भारत की महिमा का वर्णन किया है।

हमारे भारतवर्ष में ऋषि दधीचि के त्याग के बारे में सुना है, जो निस्पृह ऋषि जाति की परोपकारिता चरमोत्कर्ष हैं। उन्होंने देवगणों को वृत्रासुर के भयंकर संकट से बचाने हेतु जीवन त्याग कर अपनी अस्थियों को दान कर दिया। उन अस्थियों से इन्द्र ने वज्र बनाया व दुर्दान्त असुर को मारकर देवगणों को निर्द्वन्द्व किया।

वनवासी श्री राम के अपरिमेय उत्साह को चित्रित करते हुए प्रसाद जी कहते हैं कि यद्यपि राम को वनवास दिया गया था किन्तु रावण द्वारा सीता का अपहरण करके उन्हें संकट में डालने पर उन्होंने लंका के समुद्र पर सोत्साह पुल बाँधा, वह पुल आज भी टूटा हुआ व समुद्र में कुछ-कुछ डूबा दिखाई दे रहा है, जो सेतु बन्ध रामेश्वर के नाम से विख्यात है।

विशेष—भारतवासियों में परोपकार वृत्ति को प्राणोत्सर्ग करके भी अपना रही है व विशेष संकट में भी निरुत्साह न होकर संकट को नाष्ट करने हेतु विशेष निर्माण कर डालने की शक्ति हमेशा-हमेशा से विद्यमान रही है।

(3)

यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि।
मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न, शील को सिंहल को भी सृष्टि।
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्मभूमि थी यही, कहीं से हम आये थे नहीं ॥ 3 ॥

शब्दार्थ—यवन=मुगल सम्राट सिकन्दर। दया का दान=दया कर छोड़ दिया। चीन=चीन देशवासियों को। धर्म=बौद्ध धर्म की। दृष्टि=विचार। स्वर्ण भूमि=भारत। रत्न=बुद्ध जैसे नर रत्न। सिंहल=नाम के देश को। शील=शील आचार की। सृष्टि=रचना, बनाये रखना। छीना=अपने अधिकार में किया। प्रकृति=प्राकृतिक वैभव का। पालना=पलकर बढ़ते जाना। हमारी=आर्यों की, भारतीयों की। कहीं और से=मध्य एशिया से।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में प्रसाद जी ने भारतवासियों के दयालु स्वभाव, धर्मोपदेशिता, शीलाचार का दिग्दर्शन करवाया है। साथ ही भारतवासी दूसरे देश से आकर भारत में नहीं बसे यह स्पष्ट किया है।

इस भारत वर्ष में सारे विश्व को अपने अधीन करने की इच्छा रखने वाले सिकन्दर महान् को भी यहाँ के सम्राट पोरस ने दया कर कैद न करके छोड़ दिया था। चीन देश को बौद्ध धर्म के उपादेय विचार मिले। इस भारत भूमि को श्रेष्ठ नर रत्न गौतम बुद्ध मिला एवं सिंघल देश को शीलाचरण के विचार मिले।

अग्रिम पंक्तियों में कवि प्रसाद भारतीयों के सह-अस्तित्व के विचारों का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि हम भारतवासियों ने किसी भी राष्ट्र के भू-भाग को हड़पने की कामना नहीं रखी। तभी तो हमारी भूमि पर प्राकृतिक संपदाएँ नित नये रंग रूप में अवतरित होती रहती हैं।

अन्त में कवि प्रसाद इस ध्रुव सत्य को प्रकट करते हैं कि हम आर्य लोग किसी दूसरे देश अर्थात् मध्य एशिया से नहीं आये हैं अपितु हमारी जन्म-भूमि तो यही भारत वर्ष है।

विशेष—दया, धर्म-वृष्टि, श्रेष्ठ मानवता, शीलाचरण एवं सह-अस्तित्व आदि ऐसे श्रेष्ठ विचार हैं जो भारतीयों में कूट-कूट कर भरे हुए हैं। उनका प्रचार-प्रसार वे देश देशान्तरों में करते आये हैं, तभी वे नररत्न रहे हैं।

प्रयाण गीत

हिमाद्रि तुङ्ग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं-प्रभा समुज्ज्वलास्वतंत्रता पुकारती
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी।
सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी ॥ 4 ॥

शब्दार्थ—हिमाद्रि=हिमालय। तुङ्ग शृङ्ग=ऊँची चोटी। प्रबुद्ध=जागरूक सजीव। स्वयंप्रभाव=अपने आप में कान्ति मयी। समुज्ज्वल=उज्ज्वल। अमर्त्य=अमर। प्रशस्त=श्रेष्ठ, उत्तम। विकीर्ण=बिखरी हुई। अराति=शत्रु। बाढ़वाशि=समुद्र की अग्नि।

प्रसंग—प्रस्तुत अंश हमारी पाठ्य-पुस्तक काव्य संचय के 'प्रयाणगीत' नामक पाठ से अवतरित है। इस कविता को चन्द्रगुप्त नामक नाटक से लिया गया है। चन्द्रगुप्त नाटक में तक्षशिला की राजकुमारी अलका के माध्यम से प्रसाद इस गीत का गान करते हैं। आक्रान्त

सिकन्दर को भारत भूमि से खदेड़ कर चाणक्य के इंगितों पर चलते हुए सम्राट चन्द्रगुप्त सम्पूर्ण आर्यावर्त को एक सूत्र में बाँधने के अपने उद्देश्य में सफल होते हुए दिखायी पड़ते हैं। तभी पुनः यूनानी वीर सेल्युकस का भारत भूमि पर आक्रमण होता है। चन्द्रगुप्त उसे धराशायी करने के लिए प्रयाण करते हैं। राजकुमारी अलका देश भक्ति का अलख जगाती है—वह गाती है—

“हिमालय के ऊँचे शिखरों से स्वयं ज्योतिष्मती, उज्ज्वल भारतीय स्वतंत्रता सजीव होकर तुम्हें पुकार रही है। तुम मातृभूमि के सच्चे सुपुत्र हो, वीर हो, साहसी हो अतः रुको मत! देश की प्रतिभावान स्वतंत्रता को अधुण बनाये रखने के लिए प्राणों की बाजी लगाने का समय आ गया है। तुम मातृभूमि के अमर वीर पुत्र हो, वृद्ध प्रतिज्ञावान हो, भली प्रकार से सोच समझ लो। सामने विशाल पुण्य पंथ खुला पड़ा है। देश की रक्षा करना पुण्य का काम है और मातृभूमि पर मर-मिटने वाले शहीद अमर हुआ करते हैं वही पवित्र पुण्य का पंथ स्वतंत्रता की रक्षा का राजमार्ग तुम्हारे सामने है। इस मार्ग पर निरन्तर बढ़ते चलो। आकाश की लालिमा के रूप में असंख्य यश किरणें बिखरी हुई हैं। भारतीय वीरों ने अतीत में स्वतंत्रता के लिए जो रक्त बहाया है उसी कीर्ति के रंग ने मानो सम्पूर्ण आकाश को लाल कर दिया है वही लालिमा तुम्हें प्रेरित कर रही है कि तुम भी मातृभूमि पर बलिदान होने वाले शूरवीर सुपुत्र हो अतः तू रुको मत। शत्रु की सेना रूपी विशाल समुद्र में भयंकर बड़वाग्नि (समुद्र में लगने वाली अग्नि) के समान धधक उठो। सारे शत्रुओं को अपनी क्रोधाग्नि से भस्म कर डालो। हे वीरों! तुम शूरवीर हो! विजयी बनो। बढ़े चलो, बढ़े चलो।”

विशेष—प्रस्तुत अंश में कवि ने युद्धवीरों को निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। स्वतंत्रता को प्राणों से बढ़कर बताया है।

2.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—परिचयात्मक भूमिका—जयशंकर प्रसाद का जन्म 1889 में काशी के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। उनके पितामह उदार और धार्मिक वृत्ति के महात्मा थे। वे विद्वानों के भक्त थे। उनके पिताजी भी विद्या-व्यसनी थे। अतः उनके घर पर प्रायः विद्वानों का जमघट लगा रहता था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही प्रसाद जी को अपने पिता के साथ भारत के कई प्रसिद्ध तीर्थों के भ्रमण का अवसर मिला। अमर कण्टक की पर्वत-माला के बीच नर्मदा नदी में एक बार चांदनी रात में उन्होंने नौका विहार भी किया। बाद में पुरी और भुवनेश्वरी आदि स्थानों की यात्रा की। सम्भवतः यही उनका परिचय समुद्र की विशालता और गम्भीरता से हुआ। यही कारण है कि ‘कामायनी’ में प्रलय का वर्णन इतना सजीव और मर्मस्पर्शी हो सका है। जीवन के बाद के वर्षों में उन्हें भ्रमण का अवकाश नहीं मिला। बचपन का यह भ्रमण ही उनके मन में प्रकृति की मनोरमता, मधुरता, पृष्ठता और पैभक्ता आदि शक्तियों का साक्षात्कार करवा गया। बाद की लोक आवेक्षण की कमी उन्होंने शास्त्र-चिन्तन से दूर की।

इसके बाद बारह वर्ष की अवस्था में उन्हें पिता के और पन्द्रह वर्ष की अवस्था में माता के असीम वियोग को भी सहना पड़ा। उन्हें स्कूल की नियमबद्ध शिक्षा ग्रहण करने का अवकाश नहीं मिल सका। अतः घर पर ही उन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया। संस्कृत का अध्ययन उन्होंने पर्याप्त परिश्रम से किया जिसने उनकी विचारधारा को दर्शन की ओर मोड़ दिया और उनके मन में भारतीय संस्कृति के लिए श्रद्धा-भावना का संचार किया।

प्रसाद का जीवन निरन्तर संघर्षमय रहा है। सत्रह वर्ष की अवस्था में उनके एक मात्र आश्रय बड़े भाई भी इस संसार से चल बसे और एक विशाल सम्पत्ति के वे एक मात्र उत्तराधिकारी थे। उनका दाम्पत्य जीवन भी कोई विशेष सुखी नहीं था। उन्होंने तीन विवाह किये। पारिवारिक कलह ने भी उन्हें चैन न लेने दिया। चिन्ता का उन्हें गहन अनुभव था, सम्भवतः इसीलिए कामायनी में चिन्ता का अनूठा चित्रण किया है। इस पर भी वे कभी म्लान मुख नहीं हुए, वे सदैव फूलों की तरह मुस्कराते रहते थे। उनके व्यक्तित्व का निर्धारण करने में डॉ. नगेन्द्र के ये शब्द अत्यन्त ही सार्थक हैं—‘शान्त गम्भीर सागर अपनी आकुल तरंगों को दबाकर धूप में मुस्करा उठा या फिर गहन नील नीरव झंझ और विद्युत को सजाकर चाँदनी की हँसी हँस रहा है—ऐसा ही कुछ प्रसाद का व्यक्तित्व था।’

प्रसाद संक्रान्ति काल के कवि थे। संक्रान्ति काल के कवि को एक ओर तो ‘प्राचीनता की प्रतिष्ठा’ से संयत विद्रोह करना पड़ता है और दूसरी ओर नवीनता को नियन्त्रित रूप में अपनाना पड़ता है। परम्परा के राजमार्ग से अलग एक पगडण्डी पर चलना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। भाषा, भाव, छन्द आदि की प्राचीन रूढ़ियों को छोड़कर एक नये मोड़ की ओर मुड़ना पर्याप्त श्रम साध्य कार्य था। भाषा का प्रश्न उस समय बहुत भयानक हो चुका था, परन्तु प्रसाद जी ने समय की आवाज को पहचाना और द्विवेदी जी के प्रभाव से बाहर रहकर भी भाषा के विषय में उनके साथ रहे। वैसे वे सभा सोसायटीज से सदैव अलग रहते थे। सन् 1937 में उनका देहान्त हो गया। जब तक प्रसाद जी में शक्ति रही तब तक वे नियमित रूप से पाँच छः घण्टे अध्ययन करते रहे। वे शिव के उपासक, पक्के निरामिष भोजी, फूलों के प्रेमी, स्वाभिमानी और विनम्र थे।

प्रसाद जी की रचनाएँ— प्रसाद जी का लगभग सारा साहित्य भारतीय संस्कृति के उद्धार में सजग दिखाई देता है और उनके साहित्य में मानवता की महाविजय की कामना है। आंतरिक भावनाओं और मानसिक हलचल को उन्होंने अपनी छोटी-छोटी कहानियों और कविताओं में व्यक्त किया है। नाटककार, कथाकार, निबन्धकार और कवि सभी रूपों में ये अपने युग का नेतृत्व करते हैं। प्राचीन पृष्ठ भूमि का आधार लेकर उन्होंने आधुनिक समस्याओं पर विचार किया है और जिन विषयों को कविता या नाटक का विषय नहीं बना सके, उन्हें उपन्यासों द्वारा व्यक्त किया है।

प्रसाद जी की कविताओं का क्रम इस प्रकार है— 'चित्राधार', 'कानन कुसुम', 'करुणालय', 'महाराणा का महत्त्व', 'प्रेम पथिक', 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी'।

चित्राधार— 'चित्राधार' उनकी प्रारम्भिक प्रगति को स्पष्ट करता है। इतिवृत्तात्मक और पौराणिक कविताओं के साथ-साथ प्रकृति के सौन्दर्य की कविताओं का छायावादी रूप भी इसमें मिलता है।

कानन कुसुम— 'कानन कुसुम' कवि का सुमन संग्रह है। उसमें उसी के अनुसार 'रंगीन और सादे, सुगन्ध वाले निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुए व अनुपम पराग से लिपटे हुए सभी प्रकार के कुसुम संग्रहित हैं। इसमें कवि के प्रेम और प्रकृति सम्बन्धी विचारों का पता चलता है।

करुणालय— 'करुणालय' भावों से भरी रचना है। धर्म के नाम पर होने वाले पाशविक अत्याचारों को इसमें वाणी दी गई। इसमें काव्य-कला का विकास स्पष्ट लक्षित होता है।

महाराणा का महत्त्व— महाराणा का महत्त्व कवि की इतिहास उन्मुखता को स्पष्ट करता है। ये रचनाएँ मुक्त छन्द में हैं। इस प्रकार यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कवि की भाषा, प्रकृति, इतिहासोन्मुखता, छन्द आदि से सम्बन्धित दृष्टिकोण स्वतंत्र होते दिखाई देते हैं।

प्रेम पथिक— भावों के विकास और विचारों की उच्चता की दृष्टि से 'प्रेम पथिक' कवि की प्रौढ़ रचना है। इसमें कथावस्तु तन्तु का भी आश्रय लिया गया है। प्रेम का उच्चतम स्वरूप भारतीय संस्कृति के अनुरूप प्रकट हुआ है। आशा और उत्साह का सन्देश सशक्त भाषा में मिलता है।

झरना— 'प्रेम पथिक' में कवि के जिस विकास की अस्पष्ट झलक मिलती है 'झरना' में उसका स्पष्ट आभास मिल जाता है। हिन्दी में छायावाद का प्रारम्भ इसी कृति से माना जाता है। इसमें भाव प्रकाशन पर ही अधिक आग्रह है। इस संग्रह की कविता 'किरण' प्रसाद जी की एक प्रसिद्ध कलाकृति है। पीड़ा से यदि किसी ने शौचन का स्वर सुना हो तो उसे झरना पढ़कर संतोष लाभ होगा।

आँसू— 'झरना' में अनुभूति की तीव्रता का सकेल मात्र था, परन्तु उसका पूर्णरूप 'आँसू' में देखने को मिलता है। 'आँसू' के माध्यम से कवि ने स्वयं आँसू बहाए हैं। उसके हृदय की वेदना सहस्र धाराओं में बह निकलती है। प्रसाद की इस कृति ने हिन्दी साहित्य में हलचल मचा दी। यह एक स्मृति काव्य है जिसमें व्यक्ति के विरह का समाजोत्तरण हुआ है। 'आँसू' में ही कवि ने 'कामायनी' की मूल मानवीय भावनाओं के चित्रण की लालसा दिखाई देती है।

लहर— आँसू के पश्चात् 'लहर' में फिर विविधता है। उसमें अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों प्रकार की कविताएँ हैं। 'लहर' में प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया गया है। 'बीती विभावरी जाग रही' इसी में संग्रहीत है। लहर में मधुरता और सरसता बहुत अधिक है।

कामायनी— इस प्रकार कवि ने चिन्तन और मनन द्वारा कई नई धाराओं और छन्दों का प्रयोग करने के बाद कामायनी की रचना की है। हिन्दी साहित्य में कामायनी की रचना एक आश्चर्यमयी घटना है। कामायनी की कथा के लिए कवि ने ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, उपनिषद् आदि ग्रन्थों का अवगाहन किया और चिन्तन के बल से एक स्वतन्त्र धारा निश्चित करने के बाद ग्रन्थ की रचना की। 'कामायनी' में प्रकृति के वर्णन का विशाल स्वरूप मिलता है। इसमें बाह्य प्रकृति, पहाड़ों, नदियों प्रातः-सायं के चित्र तो हैं ही मानव की अन्तःप्रकृति का सूक्ष्म वर्णन भी है। चित्तवृत्तियों का महाकाव्य कहा जाता है। मनोविज्ञान को ही इसमें काव्यत्व दिया गया है। कामायनी में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा है।

इस प्रकार ब्रज भाषा में अपनी काव्य रचना करने वाले प्रसाद ने कामायनी तक काव्य की कई सीढ़ियाँ चढ़ी हैं। उनका विकास शनैः-शनैः हुआ है। इनकी रचनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि उन्होंने साहित्य शास्त्र, धर्मशास्त्र और दर्शन के गहन अध्ययन द्वारा अपनी प्रतिभा को विकसित किया था।

प्रसाद जी का कृतित्व अपने आप में बहुरंगी और प्रेरणादायी है। उनकी काव्यकला अनोखी है। संक्षेप में यदि देखा जाये तो उनकी काव्यकला में निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं—

उनकी काव्य-कला की सबसे पहली विशेषता यह है कि कवि रीति-कालीन कविता के विषयों के विपरीत प्रकृति वर्णन में अत्यधिक नजदीक है क्योंकि कवि प्रकृति वर्णन में ही अत्यधिक आनन्दानुभूति करता है। इसीलिए वे प्रकृति को अपनी सुख-दुःख की सहचरी के रूप में अपनाते हैं। 'औसू' में प्रकृति व कवि हृदय की एकता अच्छी तरह से दिखाई पड़ती है। 'कामायनी' में प्रकृति पुरुष व कवि का मनु (मन) एक ही सत्य के भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई पड़ते हैं। इसके साथ ही उनकी काव्यकला की दूसरी विशेषता यह है कि कवि अपनी निजी मनोवृत्तियों के वर्णन में भी पीछे नहीं रहता है। उनका सौन्दर्य वर्णन अति आकर्षक और लज्जा भाव से युक्त है क्योंकि कवि इसी भावधारा में सुन्दरी रूप को देखने का आकांक्षी है। इसी कारण उनका सौन्दर्य वर्णन रहस्यमय भी हो गया है।

प्रसाद की काव्यकला की एक श्रेष्ठ विशेषता यह भी है कि मूल रूप से प्रसादजी रसवादी कवि हैं। इसीलिए उनमें तन्मय करने की शक्ति अधिक है। प्रसाद जी का सम्पूर्ण काव्य रस साहित्य का प्रतीक है। इसके साथ ही वह सांस्कृतिक चेतना से भी अनुप्राणित हैं।

प्रश्न- 5. प्रसाद कोमल कल्पना के कवि हैं। इस कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

अथवा

प्रसाद जी की काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

प्रसाद के काव्य सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—सामान्य परिचय— जयशंकर प्रसाद बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने साहित्य के विविध क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाकर साहित्य की अविस्मरणीय सेवा की है। उनकी रचनाओं का श्रीगणेश ब्रजभाषा के प्रवाह में बहकर खड़ी बोली की ओर प्रवाहित हुआ। खड़ी बोली उनकी लेखनी में पड़कर परिष्कृत हुई। इसीलिए प्रसाद जी का शब्द चयन अद्वितीय है।

प्रसाद जी छायावाद के प्रमुख उन्नायक कवि के रूप में स्मरण किये जाते हैं। छायावादी काव्य का समस्त भाव सौन्दर्य एवं कला वैभव उनकी काव्य रचनाओं में अपने समुन्नत एवं समुज्ज्वल रूप में विद्यमान है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में 'औसू', 'झरना' और 'लहर' उल्लेखनीय हैं। 'कामायनी' तो प्रसाद की रचनाओं में ही नहीं समस्त आधुनिक हिन्दी काव्यों में सर्वश्रेष्ठ स्थान का अधिकारी महाकाव्य है। प्रसाद ने ऐतिहासिकता को आधार बनाकर इस महाकाव्य में दर्शन और काव्य का अद्भुत सामंजस्य किया है। मनु, श्रद्धा और इड़ा के माध्यम से कवि ने मानवता के विकास की कथा का वर्णन किया है। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों के अन्तर्गत आये गीतों का भी काव्यत्व की दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व है। इनकी कविताओं को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. रहस्यवादी भावनाओं की कविताएँ
2. प्रेम भाव से पूरित कविताएँ
3. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त कविताएँ
4. मर्म भेदिनी ऐन्द्रियजालिक कविताएँ।

प्रसाद जी के काव्य सौन्दर्य को भाव पक्ष और कला पक्ष के अन्तर्गत भी देखा जा सकता है—

भाव पक्ष— भाव पक्ष का सम्बन्ध काव्य के अनुभूति या हृदय पक्ष से होता है। प्रसाद प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। उनके काव्य में प्रेम और सौन्दर्य का उज्ज्वल स्वरूप देखने को मिलता है। उनका प्रेम अथवा श्रृंगार स्थूल एवं शारीरिक न होकर सूक्ष्म व आन्तरिक है। उनके काव्य में निम्नलिखित विशेषताएँ देखी जा सकती हैं—

1. प्रेम भावना— प्रसाद का काव्य प्रेम व सौन्दर्य से पूरित है। इसमें रीतिकालीन काव्य की सरलता और मादकता थी और पावनता की वह दिव्य ज्योति भी थी जो नवीन पीढ़ी को ग्राह्य थी। प्रेम को प्रसाद ने रूढ़ि की गूल प्रेरणा तथा जगत की प्रथम रांचालिका शक्ति माना है। प्रेम शक्ति को वर्णित करते हुए कवि ने 'कामायनी' में कहा है कि—

यह लीला जिसकी विकस चली वह मूल शक्ति थी प्रेमकला

उसका सन्देश सुनाने को संस्कृति में आई वह अमला।

जीवन का यह स्रोत प्रेम साहित्य का भी प्रमुखतम प्रेरक है। प्रसाद के काव्य में प्रेम का विशद और उदात्त रूप में चित्रण हुआ है। डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल के शब्दों में 'प्रेम प्रसाद काव्य का अत्यन्त वजनदार तत्त्व है। प्रसाद के प्रेम निरूपण को देखकर उनकी अनुभूति की तीव्रता, हृदय की विदग्धता, भाव विचार की उदात्ता, कल्पना की रमणीयता और शैली की प्रौढ़ता व मौलिकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता।' प्रसाद की प्रेम सम्बन्धी धारणा रसवादी कवि की मौलिक विचारधारा है। वे न तो तप को ही जीवन का सत्य मानते हैं और न ही विलासिता का समर्थन करते हैं। 'कामायनी' में इस विचारधारा का प्रतिपादन है।

प्रसाद जी ने नारी और प्रकृति दोनों का सौन्दर्य अंकित किया है। उनके सौन्दर्य चित्रों में स्थूलता एवं अश्लीलता का अभाव है। कामायनी में श्रद्धा का सौन्दर्यांकन इस तथ्य का द्योतक है—

‘नीलपरिधान बीच सुकुमार।
खिल रहा मृदुल अधखिला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल।
मेघ घन बीच गुलाबी रंग।’

प्रसाद के सौन्दर्य के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन दृष्टव्य है— ‘प्रसाद के समान सौन्दर्य के प्रेमी कवि बहुत विरले ही मिलते हैं और पार्थिव सौन्दर्य को स्वर्गीय महिमा से मण्डित करके प्रकट करने का सामर्थ्य तो किसी और में है ही नहीं।’

2. प्रकृति प्रेम—प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति चित्रण का विशेष महत्त्व है। इसकी अभिव्यक्ति कवि के प्रारम्भिक काव्यों में ही हो गयी थी। यही प्रकृति प्रेम आगे विकसित होता चला गया था। ‘चित्रधारा’ से लेकर ‘कामायनी’ तक प्रसाद के समस्त काव्य में प्रकृति के विविध आयाम और रूप हैं। उन्होंने प्रकृति को आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, रहस्यात्मक, उपदेशिका अप्रस्तुत विधान, संवेदनात्मक आदि विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः प्रकृति प्रसाद के कव्य के समस्त सौन्दर्य का प्राण है। प्रकृति के आलम्बनगत कोमल रूप ‘कामायनी’ में बिखरे पड़े हैं।

बाह्य एवं आन्तरिक प्रकृति का सामंजस्य सबसे अधिक प्रसाद के काव्य में ही दिखाई पड़ता है। आन्तरिक प्रकृति को उन्होंने अधिक महत्त्व दिया है। ‘झरना’ और ‘आँसू’ में प्रकृति का उज्ज्वल स्वरूप देखने लायक है। ‘होली की रात’ कविता में इसके भव्य रूप को देखिये।

बरसते हों तारों के फूल छिपे हो नील परी में कौन ?
उड़ रही सौरभ की धूल कोकिला कैसी रहती मन ?

प्रसाद की प्रकृति भी हँसती है, कभी वह विकराल लगती है तो कभी रहस्यात्मक संकेत देती है और कभी हमारा ध्यान विराट सत्ता के प्रति आकर्षित करती है। हम प्रकृति के कार्यों को नियमित रूप से चलते देखकर जिज्ञासा कर उठते हैं—

महानील इस परम व्योम में, अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान।
ग्रह नक्षत्र और विद्युत कण, जिसका करते थे संधान।
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुए।
तृण विरुध लहलहे हो रहे, जिसके रस में खिंचे हुए।

यहाँ प्रकृति हमें अपने विराट स्वरूप का आभास देकर आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करती है। ‘कामायनी’ में प्रकृति का मानवीय रूप बिल्कुल स्पष्ट हो गया है। ‘कामायनी’ में प्रकृति रमणी श्रृंगार भी करती है।

3. राष्ट्रीय भावना—प्रसाद काव्य में राष्ट्रीय भावनाओं को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। उनके हृदय में स्वाधीनता एवं राष्ट्रीयता के प्रति भी अपार प्रेम था। उनका यह राष्ट्रीय प्रेम उनके नाटकों में अधिक प्रकट हुआ। चन्द्र गुप्त नाटक में ‘अरुण यह मधुमय देश हमारा’ तथा स्कन्द गुप्त में निम्नलिखित भीत उनकी राष्ट्रीय भावना का द्योतक है—

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हंस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक हार।
जगे हम लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योमतम पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक।

राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त कविताएँ ‘लहर’ में भी वर्णित हैं।

4. नारी भावना—प्रसाद का नारी के प्रति कोमल दृष्टिकोण रहा है। इसीलिए उन्होंने नारी के अनेकानेक गुणों का उद्घाटन अपने काव्य में किया है। कामायनी में नारी को उन्होंने अनेक आदर्शों से सुसज्जित किया है—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो।
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष, स्रोत सी बहा करो।
जीवन के सुन्दर समतल में ॥

5. रहस्यवादी भावना—प्रसाद के काव्य में रहस्यवादी भावना मुखरित हुई है। जो छायावाद की सीढ़ी बतायी गयी है। प्रकृति के क्रिया कलापों में कौतूहल, जिज्ञासा और एक शक्ति का आरोपण है—

क्यों जुगनू का दीप जला है, पथ में पुण्य और आलोक।

किस समाधि पर बरसे आँसू किसका है वह शीतल शोक॥

कलापक्ष—प्रसाद के काव्य का भावपक्ष जैसा सबल और सशक्त है, वैसा ही उनके काव्य का कलापक्ष भी प्रौढ़ और प्रभावी है। उनका काव्य रूप, भाषा, अप्रस्तुत विधान, छन्द, प्रतीकात्मक आदि सभी दृष्टियों से पर्याप्त कला समृद्ध है।

भाषा—प्रसाद की भाषा खड़ी बोली का अत्यन्त परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप प्रस्तुत करती है। यद्यपि उन्होंने अपनी काव्य यात्रा ब्रजभाषा से प्रारम्भ की है। लेकिन बाद में उन्होंने युगानुकूल खड़ी बोली को ही अपनी काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनकी भाषा मधुर, कोमल एवं सुसंस्कृत है एवं प्रसाद गुण सम्पन्न है। समग्रतः उनकी भाषा को प्रवाहपूर्ण, प्रांजल, समर्थ और संगीतात्मक कहा जा सकता है।

प्रसाद के काव्य की भाषा की एक प्रमुख विशेषता है—लाक्षणिकता। हृदय की सूक्ष्म अनुभूतियों को साकार रूप देने के लिए लक्षणा का प्रयोग सर्वाधिक उपयोगी रहता है। लाक्षणिक प्रयोगों के द्वारा विरोधाभास, मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, प्रतीक आदि उपकरणों में सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है। प्रसाद के लाक्षणिक प्रयोग का एक उदाहरण देखिए—

‘हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल रेखा।

हरी भरी-सी दौड़ धूप-ओ-जलमाया की चल रेखा॥’

‘विरोधाभास’ में विरोधी बातों के मिश्रण द्वारा अभिव्यक्ति में चमत्कार आ जाता है। छायावाद की, ‘विशेषण-विपर्यय’ शैली भी लाक्षणिक प्रयोगों के अन्तर्गत आती है। प्रसाद के ‘लहर’ काव्य में विशेषण-विपर्यय के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ‘मानवीकरण’ की प्रकृति भी छायावादी काव्यशैली का एक प्रमुख तत्त्व है। प्रसाद की ‘कामायनी’ में भावों का सुन्दर मानवीकरण हुआ है। प्रकृति के मानवीकरण में भी प्रसाद सिद्धहस्त हैं। मानवीकरण का एक उदाहरण देखिए—

‘अम्बर पनघट में डुबो रही,

तारा घट उषा नागरी।’

प्रतीकात्मकता छायावादी काव्य का प्राण है। प्रसाद जी ने प्रकृति के प्रायः सभी उपमानों को प्रतीकत्व प्रदान किया है। उनकी सभी रचनाओं में प्रतीकों के प्रभावपूर्ण प्रयोग देखे जा सकते हैं। प्रसाद जी की भाषा में चित्रात्मकता की विशेषता भी सहज मिल जाती है। ‘कामायनी’ में प्रसाद ने विविध भावों और मन-स्थितियों का चित्रवत् अंकन किया है। प्रकृति के कोमल और भयंकर रूपों के अंकन में भाषा की चित्रोपमत्व देखी जा सकती है। ‘लज्जा’ का एक चित्रमय अंकन देखिए—

छूने में हिचक, देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं।

कलरव परिहास भरी गँजें अधरों तक सहसा रुकती हैं।

‘श्रद्धा’ के सौन्दर्यांकन में भी भाषा की चित्रात्मकता मिलती है—

नील परिधान बीच सुकुमार खिल रहा मृदुल अधखिला अंग।

खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ घन बीच गुलाबी रंग॥

भाषा की संगीतात्मकता भी प्रसाद काव्य में अद्भुत रूप से मिलती है।

‘कामायनी’, ‘आँसू’, ‘लहर’ आदि सभी काव्यों में प्रवाहमयी शब्द योजना तथा झंकारमयी वर्ण योजना के माध्यम से भाषा में संगीतात्मकता का सामंजस्य हुआ है। इस प्रकार प्रसाद जी की भाषा में छायावादी काव्यशैली के विविध तत्त्व समन्वित हैं।

अप्रस्तुत विधान (अलंकार-संयोजन) प्रसाद के काव्य में अलंकार संयोजन अथवा अप्रस्तुत-विधान उनकी गम्भीर अनुभूति का परिचायक है। प्रसाद जी की प्रवृत्ति शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों में अधिक रमी है। अर्थालंकारों में भी कवि सादृश्यमूलक अलंकारों का ही अधिक प्रयोग करता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा एवं रूपकातिशयोक्ति ऐसे ही अलंकार हैं। इन अलंकारों में कवि की मूर्तामूर्त विधान की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। उपमा एवं रूपकातिशयोक्ति के प्रयोग उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

1. मृत्यु अरी चिर निद्रा!

तेरा अंक हिमानी-सा शीतल (उपमा)

2. आज तिरोहित हुआ कहाँ

वह मधु से पूर्ण अनन्त बसन्त। (रूपकातिशयोक्ति)

इसके अतिरिक्त विरोधाभास, विशेषण-विपर्यय, मानवीकरण तथा ध्वन्यर्थ व्यंजना जैसे अलंकार भी प्रसाद के काव्य में उनकी भाव-व्यंजना के उत्कर्ष को बढ़ाते हैं।

छन्द योजना— भावों के अनुकूल छन्दों का चयन छायावादी शैली का विशिष्ट गुण है। प्रसाद की छन्द योजना स्वर और लय की मिठास से अनुप्राणित है। 'कामायनी' में ताटंक और पादाकलक छन्दों का प्रयोग हुआ है। 'झरना' और 'लहर' में मुक्त और आतुकांत छन्द भी प्रयुक्त हैं। 'लहर' की शेरसिंह का शस्त्र समर्पण 'प्रलय की छाया' आदि कविताएँ भिन्न तुकांत मुक्तक की विशेषताओं से सम्पन्न हैं।

इस विवेचना के अनन्तर कहा जा सकता है कि प्रसाद का काव्य, रस और भाव की दृष्टि से जितना प्रौढ़ है कलापक्ष की दृष्टि से उतना ही उत्कृष्ट है। लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, अलंकार सौष्टव तथा उपयुक्त शब्द-विन्यास आदि इनके कला पक्ष की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी प्रसाद की मनोरम अभिव्यंजना पद्धति के सम्बन्ध में लिखते हैं— प्रसाद की काव्य शैली में नवीनता और उनके भाषा प्रयोगों में पर्याप्त व्यंजकता और काव्यानुरूपता है। प्रथम बार काव्योपयुक्त पद्यवली का प्रयोग 'कामायनी' में किया गया है। वस्तुतः प्रसाद आधुनिक युग के महान् कलाकार हैं। उनका काव्य अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से किसी भी विश्व कवि के काव्य से तुलनीय है। कवि प्रसाद का प्रकृति, संस्कृति, देश, मानवता आदि के प्रति अनुराग कवि-व्यक्तित्व और काव्य की अमूल्य भाव सम्पदा है। प्रसाद का जीवन दर्शन समरसता पर आधारित आनन्दवादी दर्शन है जिसमें कवि जीवन की सार्थकता मानता है। समन्वय भावना के आधार पर प्रसाद को तुलसी के बाद का मूर्धन्य कवि माना जा सकता है। उन्हें हिन्दी का रवीन्द्र भी कहा गया है। छायावाद के तो वे प्रवर्तक और उन्नायक भी हैं ही। प्रसाद की 'कामायनी' उन्हें मानवता के सच्चे प्रतिष्ठापक कवि के रूप में गौरवान्वित करती है।

प्रश्न-6. 'प्रसाद जी की भारत महिमा' कविता में जिन भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का उल्लेख हुआ है, उन्हें संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—कवि प्रसाद जी ने अपनी कविता 'भारत महिमा' में भारत के अतीत गौरव एवं विश्व के लिए उसकी देन का वर्णन करते हुए भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को प्रकट किया है जिनका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है—

कवि ने भारत की प्राकृतिक शोभा का वर्णन करते हुए बताया है कि हमारे देशवासियों ने आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करके सम्पूर्ण विश्व के आँगन में उसके प्रकाश को फैलाया और अज्ञानान्धकार के समूह को नष्ट कर सुखी बनाने का अपना नैतिक दायित्व का निर्वहन किया। हमने ही प्रलय के समय बीज रूप से संसार को बचाया और जल प्रलय में निडर होकर विचरण किया। हमारे ऋषियों ने परहित के लिए अपने शरीर की हड्डियों का दान किया और असत्य पर सत्य की विजय के लिए तथा मानवता की राक्षसी वृत्तियों से रक्षा करने के लिए राम ने समुद्र पर पुल बाँधकर अपने उत्साह का परिचय ही नहीं दिया बल्कि मानव मात्र को सन्देश दिया कि संकट में निरुत्साहित न होकर उसे नष्ट करने के लिए विशेष निर्माण कर डालना चाहिए। हमारे महापुरुषों ने समाज में व्याप्त कुप्रथाओं को नष्ट किया और दुःखी मानवों को शान्ति का उपदेश दिया। अशोक जैसे सम्राट ने संसार के मानवों को यह शिक्षा दी कि मानव हृदय को तलवार से नहीं धर्मपिण्ड से जीता जा सकता है। हमने अपनी महान् संस्कृति के द्वारा सिकन्दर जैसे महान् योद्धा को दया का दान दिया, चीन जैसे देश को बौद्ध धर्म की शिक्षा दी तथा लंका को शीलाचरण की शिक्षा दी।

कवि ने बताया है कि हमने स्वयं जहाँ सह-अस्तित्व में विश्वास व्यक्त किया वहीं संसार को भी सह-अस्तित्व का पाठ पढ़ाया है। हमारे देशवासियों के चरित्र में पवित्रता भुजाओं में शक्ति सम्पन्न, विनम्र भाव, गौरवशाली व गर्वीला दिल और किसी को भी दुःखी न देख पाने की आदत रही है। हमने हमेशा दान देने में विश्वास व्यक्त किया है और अतिथियों को हमेशा देव तुल्य माना है। हम वचन के सच्चे और प्रतिज्ञा को पूरा करने की आदत वाले रहे हैं। हम हमेशा से ही शान्त स्वभाव वाले और मातृभूमि प्रेमी रहे हैं, यथा—

चरित के, पूत भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न,
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख सके न बिपन्न।
हमारे संचय में था दान, अतिथि सब हमारे देव,
वचन में सत्य, हृदय में वज्र, प्रतिज्ञा में जीवित सी देव।

प्रश्न-7. जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'प्रयाण' गीत का मूल भाव संक्षिप्त में लिखिए।

उत्तर—बहुमुखी प्रतिभा के धनी जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी साहित्य की अपरिमित सेवा विविध विधाओं के माध्यम से की है। उन्होंने अपने काव्य और नाटकों के माध्यम से राष्ट्रभक्ति और स्वदेश प्रेम का अलख जगाया। उनके द्वारा रचित ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' हिन्दी नाटक की विकास परम्परा में मील का पत्थर है। इसी नाटक से यह प्रयाण गीत उद्धृत है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के चतुर्थ अंक छोटे दृश्य में जब आश्वीन चारों ओर से निराश होकर चाणक्य की शरण में आकर क्षमा याचना कर लेता है तब अलका तक्षशिला के वीरों को युद्ध के लिए उत्साहित करती हुई इस प्रयाण गीत का गायन करती है। हिमालय के ऊँचे शिखरों से स्वयं ज्योतिर्मयी उज्ज्वल भारतीय स्वतन्त्रता सजीव हो गयी। तुम इस मातृभूमि के सच्चे सपूत हो और साहसी हो। अतः तुम अपने कर्तव्य पथ पर मत रुको। देश की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए प्राणों की बाजी लगाने का समय आ गया है। तुम मातृभूमि के अमर वीर पुत्र हो, इसलिए अच्छी तरह से सोच-समझ लो। तुम्हारे सामने विशाल पुण्य पथ खुला पड़ा है। देश की रक्षा करना पुण्य का काम है और मातृभूमि घर घर मिटने वाले शहीद अमर हुआ करते हैं। वही पवित्र पुण्य का पंथ स्वतन्त्रता की रक्षा का राजमार्ग तुम्हारे सामने है। इस मार्ग पर बढ़ चलो, बढ़े चलो। आकाश की लालिमा के रूप में असंख्य यश किरणें बिखरी हुई हैं। भारतीय वीरों ने अतीत में भी स्वतन्त्रता के लिए जो रक्त बहाया है मानो उसी कीर्ति के रंग ने सम्पूर्ण आकाश को लाल कर दिया है। वही लालिमा तुम्हें प्रेरित करती है कि तुम भी मातृभूमि पर बलिदान करने वाले शूरवीर सुपुत्र हो अतः तुम रुको मत। शत्रु की सेना रूपी समुद्र में भयंकर वड़वाग्नि के समान धधक उठो। सारे शत्रुओं को अपनी क्रोधाग्नि में भस्म कर डालो। ओ वीर! तुम शूरवीर हो। विजयी बनो। बढ़े चलो, बढ़े चलो।

प्रश्न-8 : जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'भारत महिमा' कविता में छिपे गुणों को व्याख्यायित कीजिए।

उत्तर—: 'भारत महिमा' कविता प्रसाद जी की भारतीय संस्कृति को उजागर करने वाली तथा राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त करने वाली प्रमुख कविता है। प्रसाद जी ने इस कविता में भारत की महिमा एवं उसके गुणवत्ता को स्पष्ट किया है। भारत की जो महिमा है वह उसके गुणों के कारण ही है। भारत की महिमा के निम्न बिन्दु बन सकते हैं।

1. **जागृति का संदेश**—प्रसाद जी ने 'भारत महिम' कविता में बतलाया है कि हमारा भारत इसलिए महान् था कि यह जागृत था। यहां के निवासी केवल मानसिक स्तर पर ही जागृत नहीं थे अपितु अपने व्यवहार में भी जागरण के तत्त्वों को समाहित कर रखा था। जो इन पंक्तियों में उजागर हो रहा है—

जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।

व्योम तम -पुन्ज हुआ तब नारा, अखिल संसृति हो उठी अशोक।।

2. **वाणी में पवित्रता**— अतीतकाल से भारत में वाणी की पवित्रता को महत्त्व देते आए हैं। क्योंकि वाणी की पवित्रता ही हृदय की पवित्रता को स्थापित करती है। हृदय और वाणी की पवित्रता ही व्यवहार में माधुर्य घोलता है। प्रसादजी कहते हैं—कि वाणी की पवित्रता और हृदय की कोमलता जब मिलती है तो भावरूपी समुद्र में तरंगे उठती है तब जीवन व्यवहार में मधुर संगीत छिड़ जाता है। ऐसा जीवन भारतवासी लोग जीते थे।

3. **त्याग भावना**— भारतीय संस्कृति में त्याग को विशेष महत्त्व पूर्व स्थान दिया गया है। हमारे इस भारत भूमि पर अनेक ऐसे ऋषि मुनि हुए हैं जिन्होंने त्याग का मार्ग अपनाकर भारतीय संस्कृति को ऊँचाई तक पहुँचाया है और लोगों को वह संदेश दिया है कि हमें अपने इतिहास को सुरक्षित रखने के लिए त्याग भावना को प्रस्फुटित करना है। उन्होंने लिखा है—

सुना है दधीचि का वह त्याग, हमारी जातीयता-विकास।

पुंरंदर ने पवि से है लिखा, अस्थि युग का मेरे इतिहास।।

धर्म के प्रति आस्था— इस कविता के अन्तर्गत धार्मिक भावना को भी महत्त्व दिया गया है जो लोग धर्म के नाम पर लोगों को गुमराह कर रहे थे। धर्म के नाम बलि का प्रचलन था उस समय ऋषि-मुनियों ने बंद करा दिया था। इस पवित्र सात्त्विक धार्मिक भावना का प्रसार भारत की गुणवत्ता का आधार था। आज भी यह भावना जागृत रहे तभी हमारा भारत विकास की ऊँचाइयों को छू सकता है।

4. **शांतिदायक**— हमारा भारत सदा शांतिदायक रहा है। यहां पर निवास करने वाले ऋषि-महर्षि, राजा-महाराजा ने भी शांतिमय जीवन जिया है तथा शांति का ही संदेश दिया है। सुखमय, आनन्दमय जीवन जीने का राज है शांति

का विकास होना। शांति का झंडा फहराने के लिए ऋषि-मुनि तथा सम्राट लोग भी घर-घर घूमते हुए शांति का संदेश देते रहे हैं। हमारा भारत अस्त्र-शस्त्र को प्राप्त शांति को महत्त्व नहीं देता अपितु धार्मिक भावनाओं से शांति आए ऐसा पाठ पढ़ाता रहा है। भारतवासियों ने यवनों को दया की शिक्षा दी तथा चीन को भी धर्म की एक नई दृष्टि देकर इस धरती को स्वर्ग के समान सुखद बनाया।

5. प्राकृतिक शोभा-भारत-भूमि, प्राकृतिक सौन्दर्य आकर्षण का बिन्दु रहा है। प्रसाद जी लिखते हैं-
हिमालय के आंगन से उसे, प्रथम किरण का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक-हार।।

जब सूर्य की प्रथम किरण हिमालय की चोटी से निकल कर इस भारत भूमि पर पड़ती है तो उसका सौन्दर्य बड़ा मनमोहक होता है। मानो ऊषा हंस-हंस कर उसका अभिनन्दन कर रही है। वास्तव में ऐसी स्वर्णप्रय रत्न भूमि हमें प्राप्त हुई है। भारतवासियों ने अपनी जन्मभूमि के प्रति गहरा अनुराग व्यक्त किया है और उसके सौन्दर्य की हमेशा रक्षा की है। भारतवासी कहते हैं यह हमारी जन्म भूमि थी और है। हम कहीं बाहर से नहीं आये। भले ही इसमें जाति-पात को लेकर उत्थान-पतन हो, भले ही प्रचण्ड हवा चले या आंधियां आए। हम प्रलय में भी वीर की भांति इस भारत भूमि की शोभा की रक्षा करेंगे।

6. चारित्रिक गौरव- भारतवासियों का चरित्र ऊँचा, पवित्र शुरू से ही रहा है। इसी कारण वे हमेशा सदाचरण की ओर ही अपने कदम उठाये हैं। कवि ने भारतवासी के चरित्र को अनेक बिन्दु में रेखांकित किया है-

चरित थे पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा संपन्ना।
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्ना।।
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव
वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान।।

वास्तव में भारतवासी के हृदय से निकलने वाली ऐसी भावनाएं ही भारत को ऊँचाइयों के शिखर पर पहुंचा रही हैं।

2.2 सारांश

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'भारत महिमा' कविता में प्रसादजी ने भारत की महिमा को तथा इसके इस अतीत के गौरव का गुणगान किया है। वास्तव में यह रचना भारतीय गौरव के प्रति आस्था और समर्पण की भावना को व्यक्त करने वाली है।

इकाई- 3 : सुमित्रानन्दन पंत

महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

संरचना

- 3.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 3.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 3.2 सारांश

3.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

भारत माता

(1)

भारत माता।
ग्रामवासिनी।
खेतों में फैला दृग श्यामल
शस्य भरा जनजीवन आँचल,
गंगा यमुना में शुचि श्रम जल
शील मूर्ति
सुख दुःख उपासिनी ॥ १ ॥

शब्दार्थ—ग्राम वासिनी=गाँवों में रहने वाली। श्यामल=सँवला। शुचि=पावन।

प्रसंग—प्रस्तुत कवितांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्य संचय' के 'भारत माता' नामक पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि ने भारतभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं उसकी दयनीय स्थिति की पुष्टि की है।

व्याख्या—कवि सुमित्रानन्द पन्त ने ग्रामवासियों की विपन्न स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि भारत माता गाँव में रहने वाली है। अर्थात् हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती है। इस देश का आँचल धूल से भरा हुआ है, वह मैला है जो खेतों में फैला हुआ है। देशवासियों के दुःखों को देखकर भारत माता की आँखों से निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती है। गंगा-जमुना का पावन जल मानो वही अश्रु हैं जो अनवरत रूप से प्रवाहमान रहते हैं। भारत माता गरीबी के कारण मिट्टी की मूर्ति के समान निरन्तर उदास रहती है। उसमें न तो कोई जीवन है और न ही उत्साह।

विशेष—कवि ने भारत माता के समान मानवीकरण किया है। खेत उसके आँचल और गंगा यमुना उसके नेत्रों से प्रवाहित होने वाली आँसुओं की धाराएँ हैं। कवि ने परतन्त्र भारत का दुःखपूर्ण वर्णन किया है।

(2)

विश्व प्रगति से निपट अपरिचित
अर्ध सभ्य, जीवन रुचि संस्कृत
रूढ़ि रीतियों से गति कुंठित
राहु ग्रसित
शरदेन्दु हासिनी
सदियों का खँडहर, निष्क्रिय मन,
लक्ष्य हीन, जर्जर जन जीवन,
कैसे हो भू-रचना नूतन,
ज्ञान मूढ़ गीता प्रकाशिनी ॥ 2 ॥

शब्दार्थ— निपट=बिल्कुल। कुंठित=अवरुद्ध। निष्क्रिय=अकर्मण्य। गीता प्रकाशिनी=गीता का उपदेश देने वाली।

सप्रसंग—स्वतंत्रता से पूर्व कवि द्वारा रचित प्रस्तुत कविता में तत्कालीन भारत माता की दैन्य स्थिति का निरूपण किया गया है।

व्याख्या—भारत माता विश्व में निरन्तर हो रही प्रगति से बिल्कुल अपरिचित है। सभ्यता के उच्च शिखर पर निरन्तर बढ़ने वाले अर्द्ध-सभ्य भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में अधिक विश्वास रखते हैं। किन्तु उनकी प्रगति अवरुद्ध हो रही है इसका प्रमुख कारण परम्परागत रूढ़ियों का निर्वाह करना है। मानो उनकी बढ़ती हुई कलाओं को मरा हुआ मानकर अवरुद्ध कर देता है उसी प्रकार भारत की प्रगति को यहाँ की रूढ़िवादिता ने रोक दिया है। शरद् ऋतु के चन्द्रमा की चौदनी-सी हँसी वाले भारत की प्रगति को परतन्त्रता रूपी राहू ने मानो ग्रास बना लिया हो।

भारत माता सदियों से खण्डहर रूप को धारण किए हुए हैं अर्थात् अंग्रेजी शासन के कारण भारत माता अपनी स्वाभाविक प्रगति से अवरुद्ध है। उसका मन अकर्मण्य हो गया है। वह लक्ष्यहीन और जर्जरित जन-जीवन से युक्त है। ऐसी स्थिति में भूमि की रचना कैसे हो सकती है। यह ज्ञान से दूर होते हुए भी गीता जैसे कर्म ग्रन्थ का सृजन करने वाली है।

विशेष—विदेशी शासन के कारण भारत माता की दयनीय स्थिति का कवि ने चित्रण किया है।

द्रुत झरो

द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र !
हे त्रस्त ध्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण !
हिमपात-पीत मधुवात-भीत
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन ।
निष्प्राण विगत युग, मृत विहंग
जग-नीड़ शब्द औ' श्वास-हीन
च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों से तुम
झर-झर अनन्त में हो विलीन ॥ 3 ॥

शब्दार्थ—द्रुत=तुरन्त। जीर्ण=पुराना, सूखा। पत्र=पत्ते। त्रस्त ध्वस्त=नष्ट प्रायः। शुष्क=सूखा। शीर्ण=निर्बल। हिम=बर्फ, सदी। ताप-गर्मी। मधुवात=बसन्त का पवन। भीत=डरा हुआ। विहंग=पक्षी। च्युत=अलग।

प्रसंग—प्रस्तुत छंद महाकवि पंत जी की 'द्रुत झरो' शीर्षक कविता से उद्धृत है। कवि की यह कविता साम्यवाद से प्रभावित होकर लिखी गई कविताओं में से एक है। कवि ने इसमें नवयुग का आह्वान किया है और पुरानी, जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं को समाप्त करने की प्रेरणा दी है।

व्याख्या—कवि पुराने पत्तों के रूप में पुरानी मान्यताओं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे पुराने और सूखे पत्तों! तुम शीघ्र ही झड़ जाओ। तुम सर्वी के प्रभाव से पीले पड़ गये हो और बसन्त ऋतु की हवा से भयभीत हो। तुम बीते हुए युग के पुराने और व्यर्थ हो गये हो। कवि यहाँ स्पष्ट करवा चाहता है कि जिस प्रकार पुराने पत्तों के झड़ जाने पर नयी कोपलें फूटती हैं, उसी प्रकार पुरातन युग के समाप्त हो जाने पर नवीन युग आता है। इसलिए वह पुरातन युग के प्रतीक जर्जर पत्तों को झड़ जाने को कहता है।

कवि आगे पुरातन युग को मृत पक्षी का प्रतीक देकर कहता है कि निष्प्राण पुरातन युग उस पक्षी के समान है जो मर चुका है। किन्तु जिसने अभी अपना घोंसला नहीं छोड़ा है। जिस प्रकार मृत पक्षी के पंख शरीर से अलग होकर हवा में उड़ जाते हैं उसी प्रकार कवि मृत परम्पराओं को समाप्त कर देना चाहता है। उन परम्पराओं को कवि उसी प्रकार विलीन कर देना चाहता है जिस प्रकार पक्षी की मृत्यु के पश्चात् उसके पंख अस्त-व्यस्त हो जाते हैं और वे उड़कर हवा में विलीन हो जाते हैं।

विशेष—कवि के प्रगतिवादी स्वर में प्राचीन युग के विरुद्ध विद्रोह की भावना इस कविता में समाहित है। कवि ने प्रभावाभिव्यक्ति के लिए जीर्ण-शीर्ण पत्तों और मृत पक्षी के प्रतीक का सहारा लिया है। अमूर्त का मूर्त चित्रण, रूपक अलंकार। रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

3.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. 'पंत प्रकृति के सुकुमार कवि हैं।' इस कथन के आधार पर पंत के प्रकृति-चित्रण पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर—प्रकृति मानव की एक क्रीड़ा स्थली ही नहीं क्रीड़ा भी है। ऐसा लगता है, मानो नव मानव के चयन को बताते ही प्रकृति रानी ने अपनी आँचल की छाया उस पर डाल दी हो। किलकारी भरता हुआ मानव जब भी प्रकृति की ओर, जिधर से भी दौड़ता हुआ आया

होगा तो प्रकृति भी अपनी दोनों बाँहें फैलाये उसे अपने आलिंगन में ले लेती होगी। प्रकृति भी ममतामयी माँ के समान प्रारम्भ में मनुष्य को गोद में धारण कर पालन-पोषण करती रही होगी। प्रकृति अनादि काल से मानव की सहचरी रही है। मानव जीवन की अनुभूतियाँ प्रकृति की विविध शाखाओं से अपना स्नेह सम्बन्ध जोड़ सकी है। दोनों में एक प्राण और दो देह का सम्बन्ध है।

कविता कामिनी के श्रृंगार में प्रकृति ने अपना सर्वाधिक योगदान दिया है। देश और काल से प्रभावित होते हुए भी कवियों ने प्रकृति को विविध रूपों में निहारता है। प्रकृति से युक्त प्रांगण में पले हुए कवि पंत ने प्रकृति को अपने काव्य का प्रमुख विषय बनाया। पंत स्वयं स्वीकार करते हैं कि—‘मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का श्रेय मेरी जन्म भूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है, जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ। प्रकृति निरीक्षण और प्रकृति प्रेम मेरे स्वभाव के विभिन्न अंग ही बन गये हैं, जिनमें से मुझे जीवन के अनेक संकट के क्षणों में अमोघ सात्वना मिली है।’ यह ‘बालसहचरी’ प्रकृति आगे चलकर स्वप्न-प्रिया और ‘कला-मुकुर’ बन जाती है—

‘जो बाल सहचरी रही तुम्हारी, स्वप्न-प्रिया,
जो कला मुकुर बन गई तुम्हारे हाथों में—
तुम स्वप्न धनी हो जिसके बने अमर शिल्पी!’

इस प्रकार पन्त और प्रकृति परस्पर एक-दूसरे के पूरक बन गये हैं। विशाल हृदय प्रकृति की ओर उन्मुख होकर ‘सुकुमार कवि’ ने प्रकृति बाला के सौन्दर्य पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। और यह कहा—

‘बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन!’

इन पंक्तियों के साथ कवि ने साहित्यिक उद्यान को कलिकाओं से भर दिया।

प्रकृति के प्रति जैसा सघन और सहज अनुराग पंत की रचनाओं में परिलक्षित होता है वैसा अन्य कवियों में नहीं है। वे कहते हैं—‘कविता लिखने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा प्रकृति के दृश्यों को एकटक निहारता रहता था और एक अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।’ प्रकृति की यह प्रेरणा कवि के लिए क्षणिक नहीं रही अपितु वह उसके कवि जीवन का अंग बन गयी।

पन्त की काव्य चेतना का प्रकाशन सर्वप्रथम ‘वीणा’ के सरस, मृदुल और कोमल स्वरों से हुआ। इनके अधिकांश गीतों में प्रकृति के ही वैभव का गुणगान हुआ है। विश्वम्भरनाथ मानव ने कहा है—‘छाया से वह प्रार्थना करता है कि वह उसका मनस्ताप हरे और अंधकार से वह कहता है कि उसे भी वह जीना सिखलाए।’ ‘वीणा’ में कवि को प्रकृति के प्रति जिज्ञासा, आश्चर्यजनक भावना व लालसा व्यक्त हुई है। पन्त प्रकृति के कोमल और मंजुल रूप के कवि हैं। प्रकृति के भीषण रूपों में कवि पन्त का हृदय नहीं रमा। पन्त ने स्वयं स्वीकार किया है—‘साधारणतया प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही मुझे अधिक लुभाया है।’ प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य पर कवि पंत इतना मुग्ध थे कि उन्होंने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में तारी सौन्दर्य को भी ठुकरा दिया है।

‘छोड़ दुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी नाता।

बाले! तेरे बाल जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन।’

पंत की सभी रचनाएँ उनके प्रकृति प्रेम की परिचायिका हैं। उनकी पहली रचना ‘वीणा’ में अधिकांश कविताएँ प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित हैं। ‘श्रुति’ में प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन है। ‘पल्लव’ प्रकृति की चित्रशाला है, यहाँ कवि का प्रकृति प्रेम अधिक प्रांजल और परिपक्व रूप में मिलता है। ‘गुंजन’ की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में प्रकृति पर नारी-भावना का आरोप मिलता है। ‘युगान्त’ में कवि कोकिल की पावक कण बरसाने के लिए कहता है। ‘युगवाणी’ में कवि ने प्रकृति से अधिक मानव पर दृष्टि डाली है। ‘ग्राम्या’ में गाँव की प्रकृति का अंकन है। स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, उत्तरा आदि रचनाओं में कवि प्रकृति की सभी विराट् कल्पनाओं का प्रेमी है। पंत के ‘लोकायतन’ में प्रकृति के यथार्थ और रम्य प्रकृति-चित्र मिलते हैं। इस प्रकार पन्त की प्रायः सभी रचनाओं में कवि का प्रकृति प्रेम मुखरित हो रहा है।

पन्त के प्रकृति चित्रण में विविधता भी दर्शनीय है। उन्होंने आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, उपदेशिका आदि विविध रूपों में प्रकृति के चित्र अंकित किए हैं। साहित्य शास्त्रियों के अनुसार पन्त ने भी आलम्बन वर्णन को श्रेष्ठ प्रकृति चित्रण माना है। कवि ने ‘पावस ऋतु’ का वर्णन इसी शैली में किया है—

‘पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश!
मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़।
अवलोक रहे हैं बार-बार,
नीचे जल में निज महाकार।
जिसके चरणों में पला ताल,
दर्पणा सा फैला है विशाल॥’

प्रकृति के यथा तथ्य वर्णन को ही आलम्बन चित्रण कहा जाता है। इस प्रकार के प्रकृति चित्रण में वस्तु परिगणन और संश्लिष्ट दो प्रकार के चित्रण आते हैं। पन्त के काव्य में इन्हीं दोनों रूपों का वर्णन मिलता है।

प्रकृति वर्णन की दूसरी प्रमुख शैली उद्दीपन रूप है। भावों, विचारों आदि को उद्दीप्त करने के लिए जब प्रकृति का उपयोग किया जाता है, तो वह प्रकृति का उद्दीपन रूप कहलाता है। प्रकृति मानव की भावनाओं को उद्दीप्त करने लगती है। हमारे साथ खिल-खिलाती है। दुःख में आठ-आठ आँसू बहाती है। मानव अपनी भावनाओं के अनुरूप प्रकृति को देखता है। कवि पन्त का हृदय भी कली-कली को मुस्कराता हुआ देखता है। ओस कणों के रूप में अपने आँसुओं को निहारता है। कभी-कभी प्रकृति की मनोरम क्रीड़ाओं को देखकर कवि के मन में एक टीस सी उठती है। पन्त की विरह प्रधान रचनाओं में प्रकृति इसी रूप में अंकित है—

धधकती है जलदों से ज्वाल, बन गया नील व्योम प्रवाल।
आज सोने का संध्याकाल, जल रहा जन्तु गृह सा विकराल॥

आलंकारिक रूप में भी कवि पन्त ने ‘प्रथम रश्मि’ को देखा है। उनका प्रकृति-चित्रण ऐसी परिस्थितियों में परम्परागत बन जाता है। उन्होंने प्रकृति में नारी के केशों को अनेक रूपों में देखा है—

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा गुदुल अध खुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मधुपन बीच गुलाबी रंग॥

प्रिया के लिए गुलाब और सेव कितने सुन्दर उपमान बन पड़े हैं। ऐसे ही अनेक उपमानों से कवि पन्त ने अपनी प्रिया के सौन्दर्य को जीवन प्रदान किया है।

प्रकृति का मानवीकरण रूप कालिदास ने सबसे पहले ‘मेघदूत’ में प्रस्तुत किया था। प्रसाद से चलकर यह मानवीकरण पंत तक चला आया। प्रकृति में समीपता का आरोप मानवीकरण कहलाता है। संध्या को देखकर नवयुवती के सौन्दर्य का वर्णन पंत करते हैं।

कहो, तुम रूपसि कौन?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप,
सुनहला फैला, केश कलाप,
मधुर, मंथर, मृदु मौन।

गंगा को देखकर कवि उसे नारी मान बैठते हैं—

‘सैकत शैया पर दुग्ध धवल;
तन्वगी गंगा ग्रीष्म विरल,
बैठी थी शान्त क्लान्त निश्चल।’

कवि का यही मानवीकरण रूप यत्र तत्र बिखरा पड़ा है।

पंत ने प्रकृति के प्रति कौतुहल व जिज्ञासा का भाव भी व्यक्त किया है। पंत की ‘मौन निमन्त्रण’ कविता इसका सुन्दर उदाहरण है—

स्तब्ध ज्योस्त्ना में जब संसार, चकित रहता शिशु सा नादान।
विश्व के पलकों पर सुकुमार; विचरते हैं जब स्वप्न अजान।
न जाने नक्षत्रों से कौन, निमन्त्रण देता मुझको मौन।

रहस्यवाद कवि पंत को अपने साये में लिए बिना न छोड़ सका। उन्होंने जीवन के रहस्य को प्रकृति के साथ बाँधने का प्रयत्न किया। कवि पंत ने अपनी रचनाओं में अनेक नए-नए प्रतीकों को प्रकृति से अपहृत कर नया आयाम दिया है। अपने कमरे की फर्श पर आयी हुई धूप को वे उपदेशिका और शिक्षिका एवं दूती मानते हैं। उसी की प्रेरणा से अपने जीवन में एक नवीन-रूप स्थापित करना चाहते हैं। उनकी 'संदेश' कविता में प्रकृति के इसी रूप का चित्रण मिलता है।

“वह मुझे देख स्नेहार्द्र दृष्टि, मुस्कुरा उठी!
वह विश्व प्रकृति की दूती बनकर आई थी।”

यही प्रकृति शिक्षिका भी है जिसने मानव जीवन को बहुत कुछ सिखलाकर सार्थक बनाया है—

जिसने कोयल बन सिखलाया तुम को गाना,
मृदु गुंजन भर बतलाया मधु संचय करना,
फूलों की कोमल बाँहों के आलिंगन भर।

फूलों के सदृश कोमल प्रकृति संदेश वाहिका भी है—

‘लो मैं असीम का लाई हूँ संदेश तुम्हें!
आओ फिर खुली प्रकृति की गोदी में बैठो।’

जब मानव का मन पीड़ाओं के दुर्बोध भँवर में फँस जायेगा तब ये प्रकृति नव प्रकाश की संदेश वाहिका बन जायेगी—

जब होगी मानस ग्लानि, धिरेगी मोह निशा,
मैं नव प्रकाश संदेश वाह बन जाऊँगी।

प्रकृति के विविध रूपों के अंकन के साथ-साथ कवि पंत में प्रकृति वर्णन विषयक पटुता भी है। प्रकृति के पदार्थों का एक-एक दो-दो पंक्तियों में कवि ने बड़ी खूबी के साथ चित्रण किया है। पंत के प्रकृति चित्रण में उच्च कोटि की भावनाएँ भी हैं, कल्पनाएँ भी हैं और साथ-साथ उच्चकोटि के विचार भी हैं। छायावादी कवि पंत के लिए प्रकृति काव्य की प्रेरणा, वर्ण्यवस्तु एवं श्रृंगार बन गई है। पंत के लिए प्रकृति प्रेयसी है। उनकी प्रेयसी के रूप को सजाने वाली सहचरी है और उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम भी है। कवि की वाणी है, भाषा है, अलंकृति है, भावना है और विचारधारा है। कवि पंत ने काव्य की भावनाओं का समस्त आह्लाद, सौन्दर्य और वैभव प्रकृति से ही प्राप्त किया है। प्रकृति को अलग कर देने से पंत का काव्य सर्वथा सूना-सा प्रतीत होने लगता है।

‘सिखा दो ना है मधुप कुमारी,
मुझे भी अपने मीठे गान।’

कवि पंत का प्रकृति प्रेमी हृदय शाश्वत प्यासा रहा है। पंत प्रकृति के सुकुमार हैं।

प्रश्न-9: सुमित्रानन्दन पंतजी ने ‘भारतमाता’ कविता में किन भावों को प्रस्फुटित किया है। उसका सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करें।

उत्तर—प्रस्तुत कविता देशभक्ति पूर्ण रचना है। इस कविता में कवि ने यहां की भौगोलिक परिस्थिति तथा सांस्कृतिक परिवेश को आधार बनाकर भारत माता का विभिन्न पहलुओं पर चिन्तन किया है। इस कविता में एक ओर प्रकृति का सुन्दर चित्रण है तो दूसरी ओर छायावादी शैली के आधार पर मानवीकरण किया गया है। भारतमाता को सभी का कल्याणकारी बतलाया गया है। इस कविता में कवि पंतजी ने जो भाव व्यक्त किए हैं वह इस प्रकार हैं—

1. ग्रामवासिनी भारतमाता— प्रस्तुत कविता में पंत जी ने भारत भूमि के भौगोलिक परिवेश को आधार बनाकर कहा है कि यहां कि अधिकतर जनता गांवों में निवास करती है। यहां के ग्रामीण जन कृषि कार्य से अपनी आजीविका को चलाते हैं। गंगा और यमुना आदि नदियों का जल खेतों की सिंचाई करता है तथा किसानों का श्रम रूप जल भी साथ मिलने से यहां चारों ओर लहराती हुई हरियाली दिखाई देती है। उक्त भाव इन पंक्तियों में मुखरित होता है—

भारत माता
ग्रामवासिनी
खेतों में फैला दृग श्यामल
शस्य भरा जन-जीवन आंचल,
गंगा जमुना में शुचि श्रम जल।।

2. **सुख-दुःख उपासिनी**- कवि ने भारत माता को सुख-दुःख की उपासिनी बताते हुए लिखा है-

शील मूर्ति

सुख दुःख उपासिनी।

स्वप्न मौन, प्रभु पद नत चितवन

ओठों पर हंसते दुःख के क्षण

संयम तप का धरती सा मन,

स्वर्ग कला

भूपथ प्रवासिनी।

तीस कोटि सुत, अर्ध नग्न तन,

अन्न वस्त्र पीड़ित, अनपढ़ जन,

झाड़ फूस खर के घर आंगन

प्रणत शीश

तरुतल निवासिनी।।

यह भारत माता सुख-दुःख की समान उपासना करने वाली है। यहां के लोग में भक्ति भाव से अपने अराध्य की आराधना करते हैं। संयम और तप से उनका जीवन पवित्र दिखाई देता है। दुःख के क्षणों में भी होठ मधुर मुस्कान लिए होते हैं। अतः यह देश स्वर्ग की तरह पवित्र और शोभायमान लगता है। सुखमय लगता है तो दूसरी तरफ गरीबी दिखाई देती है। तीस करोड़ लोग जिन्हें भरपेट अन्न नहीं मिलता, तन ढकने को वस्त्र नहीं मिलता। इसके अभाव में वे पीड़ित दिखाई दे रहे हैं तथा वे लोग अनपढ़ और गरीबी का जीवन यापन कर रहे हैं। झाड़-फूस और खर के आंगन में रहते हैं। इस कारण से उन्हें भूपथ पर प्रवास करने वाला बताया गया है। वृक्ष की छाया में अपना जीवन-व्यतीत कर रहे हैं। अतः भारतमाता सुख-दुःख को समेटे हुए हैं।

3. **विश्व प्रगति से अनजान**- प्रस्तुत कविता में कवि यह कहना चाहता है कि भारतमाता को विश्व में हो रही प्रगति से अनजान बतलाया है, अपरिचित बतलाया है। लगता है कि यह कविता स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व की है। उस समय के भारत निवासी विश्व में हो रही वैज्ञानिक तकनीकी से अपरिचित थी। इतना ही नहीं आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में पूर्ण सभ्यता भी नहीं है, रूढ़ियों से ग्रसित है और अन्धविश्वास का बोलबाला है फिर भी सांस्कृतिक रूढ़ि से परिपूर्ण हैं। उनका जीवन सदाचारी एवं मानवीय गुणों से समाहित दिखाई देता है।

अध्यात्म भावना से परिपूर्ण- प्रस्तुत कविता में कवि ने भारतमाता को गीता का ज्ञान देकर लोक को प्रकाशित करने वाली, पंचशील में रत रहने वाली, विश्वशांति व्रत को स्वीकार करने वाली के रूप में स्वीकार किया है। इन अध्यात्मिक भावना से पूर्ण हमारी यह भारत माता है किन्तु दूसरी तरफ कवि ने यहां के लोगों को सदियों से समृद्धि से रहित बताया है और यह भाव व्यक्त किए हैं कि यहां के लोग कब जागृत होकर, पुरुषार्थ कर अपने भाग्य को जगायेंगे। अतः भारतमाता के पुत्रों को संदेश दिया है-

गीता प्रकाशिनी

पंचशील रत, विश्वशांति व्रत

युग युग से गृह आंगन श्रीहत

कब होंगे जन उद्यम जाग्रत?

जीवन प्रकाशिनी- पन्तजी अपनी भावना को व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि भारत माता ने विश्व को गीता का ज्ञान देकर अध्यात्मिक चेतना को जागृत किया है। जिससे सभी लोग ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त किया। हमारी भारतमाता लोक कल्याण की भावना से परिपूर्ण है। लेकिन उसके लिए संगठन और एकता की जरूरत है। मजबूत संगठन के बिना शासन तंत्र मजबूत नहीं हो सकता। शरीर और श्रद्धा, विश्वास, आशा से पूरित मनोबल भी होना चाहिए जीवन से भय को निकाल देना चाहिए। अधिक समर्पण की भावना से ही नये भारत भूमि का निर्माण हो सकता है। जैसे-

सोच मग्न जीवन प्रकाशिनी

उसे चाहिए लौह संगठन

सुन्दर तन, श्रद्धा दीपित मन,
भय जीवन प्रति अथक समर्पण
लोक कलामयि,
रस विलासिनी।।

3.2 सारांश

‘भारतमाता’ कविता में पन्तजी ने भौगोलिक परिवेश भारत प्रवासियों की दशा, सुख-दुःख अज्ञान, उद्यमहीनता रूढ़िग्रस्त आदि अनेक बिन्दुओं का चित्रण कर यह सन्देश देना चाहा कि भारतीय लोगों को सामाजिक उत्थान के लिए कुछ सोचना चाहिए तथा अपने देश को सुदृढ़ बनाने के लिए संगठित होना चाहिए जिससे हमारी भारतमाता का गौरव शतगुणित होकर चिह्न ओर फैलेगा।

इकाई- 4 : सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

संरचना

- 4.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 4.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 4.2 सारांश

4.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

वह तोड़ती पत्थर

देखते देखा मुझे तो एक बार,
उस भवन की ओर देखा, छिन्न तार,
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे डस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं।
सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह, नहीं जो थी झंकार,
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर
दुलक माथे से गिर सीकर
लीन होते कर्म में फिर यों कड़ा
'मैं तोड़ती पत्थर' ॥ 1 ॥

प्रसंग – प्रस्तुत कवितांश हमारी पाठ्य-पुस्तक के छायावादी महाकवि निराला द्वारा रचित कविता 'वह तोड़ती पत्थर' से अवतरित है, जिसमें कावे इलाहाबाद की सड़क पर पत्थर तोड़ने वाली एक नवयौवना मजदूरिन की विवशता का चित्रण कर रहे हैं।

व्याख्या – कवि निरालाजी कहते हैं कि पत्थर तोड़ने वाली उस मजदूरिन को इलाहाबाद की सड़क पर जैसे ही मैंने रुककर देखा, वैसे ही उस मजदूरिन ने मेरी ओर देखा। जिस दृष्टि और भाव से उस मजदूरिन ने मेरी ओर देखा था उसी दृष्टि और भाव से उस मजदूरिन ने सामने वाले बने बड़े मकान की ओर देखा। यह देखकर कि मैं अकेला ही था, उसने अपने तार-तार फटे हुए कपड़ों की ओर दृष्टि डाली। उसने मेरी ओर उस व्यक्ति की भाँति देखा जिसको कोई शक्तिशाली व्यक्ति मारता है और जो मार खाने वाले को रोने भी नहीं देता है। उस मजदूरिन ने उस एक दृष्टि द्वारा ही मुझे अपनी सम्पूर्ण करुण कथा उसी प्रकार सुना दी जिस प्रकार कोई सितार पर सहज भाव से उंगलियाँ चलाकर एक अनोखी झंकार उत्पन्न कर देता है। कहने का भाव यह है कि कवि ने अपने जीवन में पहली बार इतने सहज भाव से एक शोषित नारी के जीवन में व्याप्त करुणा एवं विवशता का अनुभव किया था। कवि कहता है कि एक क्षण तक मेरी ओर देखने के बाद वह युवती काँप उठी और उसके मस्तक से पसीने की बूँदें नीचे गिर पड़ीं। वह फिर चुपचाप पत्थर तोड़ने के काम में लग गयी।

विशेष – (1) निराला की यह कविता प्रगतिवादी काव्य की एक महत्त्वपूर्ण रचना है।

(2) कवि ने कविता के माध्यम से जीवन के यथार्थ का कटुतापूर्ण शैली में चित्रित किया है।

जागो फिर एक बार

(1)

सत् श्री अकाल,
भाल-अनल धक-धक कर जला,
भस्म हो गया था काल-
तीनों गुण ताप त्रय,
अभय हो गये थे तुम

मृत्युञ्जय व्योमकेश के समान,
अमृत-सन्तान ! तीव्र
भेदकर सप्तावरण-मरण-लोक
शोकहारी ! पहुँचे थे वहाँ
जहाँ आसन है सहस्रोतार-
जागो फिर एक बार ॥ 1 ॥

शब्दार्थ— व्योमकेश=शिवजी। सप्तावरण=सात-आवरण।

सप्रसंग व्याख्या— कवि मातृ भूमि के लिए अपना बलिदान देने वाले सिख वीरों की प्रशस्ति करते हुए कहते हैं कि जब गुरु गोविन्दसिंह जी 'सत श्री अकाल' की आवाज लगाकर रण भूमि में उतरे थे। तो उस समय उनके मस्तक से आग निकली थी। उस निकलने वाली क्रोधाग्नि में धक-धककर काल, तीनों गुण, सत, रज और तम तथा तीनों प्रकार के कष्ट दैहिक, दैविक और भौतिक ताप, भस्म हो गये थे। उस समय तुम अभय हो गये थे। उस समय तुम मृत्यु को जीतने वाले अमर देवता थे। तुम योग द्वारा प्रतिपादित सातों आवरणों को भेदकर तथा समस्त शोक से रहित होकर उस उच्चतम स्थान के अधिकारी बन गये थे जहाँ पर सहस्र धनुष कमल स्थित है। अर्थात् तुम सांसारिक शोक सन्तप्त से परे होकर जीवन मुक्त हो गये थे। इसलिए तुम जागकर फिर से एक बार अपनी उसी वीरता का प्रदर्शन करो।

विशेष— (1) कवि ने अतीत के गौरव गान द्वारा देश के प्रति प्रेम का स्वर मुखरित करने की प्रेरणा दी है।

(2) उपमा तथा वीप्सा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(2)

सिंह की गोद से छीनता रे शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह रहते प्राण ? रे अजान !
एक मेष-माता ही रहती है निनिमेष-
दुर्बल वह-छिनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त तप्त आँसू बहाती हैं,
किन्तु क्या, योग्य जल जीता है।
पश्चिम की उक्ति नहीं-गीता है, गीता है-
स्मरण करो बार-बार-जागो फिर एक बार ॥ 1 ॥

शब्दार्थ— सिंह=शेरनी। मेषमाता=भेड़। निनिमेष=टकटकी बाँधकर। अभिशप्त=अभिशाप को प्राप्त।

सप्रसंग व्याख्या— जागो फिर एक बार कविता के माध्यम से कवि देश भक्ति की भावना का जागरण अतीत त्यागमयी स्मृतियों का स्मरण कराते हुए कहता है कि— ऐसी शक्ति और साहस किसमें है जो शेरनी की गोद से उसके बच्चों को शक्ति के बल पर छीन ले। क्या शेरनी अपने जीते जी अपने बच्चे को अपने पास से छीन लेने देगी ? कदापि नहीं। वह अपने प्राणों का बलिदान कर देगी लेकिन अपने बच्चों को किसी को भी नहीं देगी। कवि स्पष्ट करता हुआ कहता है कि अरे मूर्खों ! भेड़ ही ऐसी होती है जो अपने बच्चों को अपनी गोद में से छिन जाने देती है। वह भी इसका विरोध करना चाहती है लेकिन यह उसके बस की बात नहीं होती है। इसी कारण वह अपने बच्चे को छीनते हुए देखकर टकटकी लगाये हुए देखती रहती है। अपने पुत्र वियोग में वह अपने दुःखी जीवन को धारण करती हुई जीवन भर अपने गरम-गरम आँसू बहाती रहती है। परन्तु क्या शक्तिवान व्यक्ति इस तरह अत्याचार करते हुए जीवित रहता है। अर्थात् शक्तिशाली व्यक्ति इस प्रकार के अत्याचारों को सहने के स्थान पर अपने प्राणों को त्यागने के लिए ही तैयार रहता है। सत्य तो यह है कि इस संसार में वही जीवित रहता है जो शक्तिशाली होता है। क्या यह कथन पाश्चात्य चिन्तन की देन है। नहीं, यह तो भीतर का ही उपदेश है। इसलिए गीता के कर्मयोग के उपदेश को बार-बार स्मरण करो और जागकर अपने शक्तिशाली स्वरूप का चिन्तन करते हुए एक बार फिर सम्भलो।

विशेष— (1) कवि ने स्पष्ट किया है कि शक्ति के बल पर ही इस पृथ्वी का भोग किया जा सकता है।

(2) वक्रोक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(3)

पशु नहीं, वीर तुम, समर-शूर, क्रूर नहीं,
काल-चक्र में ही दबे आज तुम राज-कुंवर! समर सरताज!
पर क्या है, सब माया है-माया है,
मुक्त हो सदा ही तुम, बाधा-विहीन-बन्ध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द-रूप। महामन्त्र ऋषियों का
अणुओं परमाणुओं में फूँका हुआ – “तुम हो महान्, तुम सदा ही महान्
है नश्वर यह दीन भाव, कायरता, कामपरता। ब्रह्म हो तुम
पद-रज भर भी है नहीं, पूरा यह विश्व भार” – जागो फिर एक बार ॥ 2 ॥

शब्दार्थ – समर-शूर=युद्धवीर। समर सरताज=सर्वश्रेष्ठ योद्धा। पदरज=पैरों की धूल।

सप्रसंग व्याख्या – कवि निराला अतीत के गौरव का स्मरण कराते हुए देशवासियों को जागरण की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि – हे देशवासियों! तुम पशु नहीं हो, तुम वीर हो, तुम क्रूर नहीं हो तुम तो युद्ध-वीर हो। हे सर्वश्रेष्ठ योद्धा! आज तुम समय के फेर में पड़े हुए हो जिस कारण आज तुम ऐसे बन गये हो। अन्यथा तुम तो हमेशा आजाद रहे हो। तुम हमेशा से ही इसी प्रकार की बाधाओं से मुक्त रहे हो जिस प्रकार कविता छन्द के बंधन से मुक्त रहती है। तुम सच्चिदानन्द स्वरूप हो। हमारे आर्य ऋषियों की वाणी विश्व के कण-कण में व्याप्त है कि तुम महान् हो और सदा से ही महान् रहे हो। तुम्हारा यह दैन्य-भाव अस्थायी है। क्योंकि यह तुम्हारे स्वभाव की स्थिति नहीं है। यह तो अविलम्ब ही नष्ट हो जायेगा। तुम्हारे द्वारा प्रस्तुत कायरता और विलासप्रियता अधिक दिन तक स्थिर नहीं रहेगी। क्योंकि तुम तो साक्षात् ब्रह्म हो। सारा संसार तुम्हारे पैरों की धूल के बराबर भी नहीं है। तुम अपने आत्मस्वरूप का स्मरण करके जाग जाओ और स्वरूप के अनुसार महान् आचरण में प्रवृत्त हो जाओ। इसलिए एक बार फिर जाग जाओ।

विशेष – (1) अतीत के गौरवगान द्वारा देशवासियों को नव-जागरण का सन्देश दिया है।

(2) अद्वैत दर्शन का प्रभाव दृष्टव्य है।

(3) अनुप्रास, उदाहरण तथा अतिशयोक्ति अलंकार।

4.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. निराला के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तर – परिचयात्मक भूमिका – आधुनिक काल के कवियों में उदित सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ अत्यन्त चर्चित कवि रहे हैं। उन्होंने भयंकर विरोधों के बीच में अपने व्यक्तित्व को निखारा है और अन्त में सबकी श्रद्धा के भाजन बन गये जिस प्रकार घनघोर काले-काले बादलों से घिर भगवान् भुवन भास्कर अन्त में आकाश मण्डल पर उदित होकर जन-जन के मन से पूजित होते हैं। महाप्राण निराला का व्यक्तित्व पूर्णतया जीवन्त काव्य था। उनके व्यक्तित्व में जीवन संघर्षों, अन्तर्विरोधों और आत्मिक संघर्षों का समन्वित सहज रूप था। इसी कारण उनका व्यक्तित्व आकर्षक, व्यापक, अनेक विधा और विरोधाभासों से व्याप्त था।

उत्तर प्रदेश के बाँसवाड़ा क्षेत्र के गढ़कोला ग्राम में पं. रामसहाय त्रिपाठी के यहाँ सन् 1896 की बसंत पंचमी को सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ का जन्म हुआ। तीन वर्ष की अवस्था में ही ‘निराला’ को मातृ स्नेह से वंचित होना पड़ा। उनके पिता बंगाल के मेदिनीपुर जिले के अन्तर्गत महिषादल राज्य में सौ सिपाहियों के ऊपर जमादार थे, उनके पिता का स्वभाव अत्यन्त कठोर था। अतः बालक ‘निराला’ को कठोर अनुशासन में रहना पड़ा। इनका स्वर्गवास सन् 1961 में हुआ था।

निराला के व्यक्तित्व के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं –

1. कोमल-कठोर भव्य व्यक्तित्व – महाकवि निराला का बाह्य व्यक्तित्व कोमलता और कठोरता का समन्वित स्वरूप था। डॉ. गंगा प्रसाद पाण्डेय ने उनके व्यक्तित्व के विषय में लिखा है –

‘छह फीट से कुछ अधिक लम्बा, झुकता हुआ सा भरा पूरा शरीर, गेहूँआ रंग, आँखों में दर्शन की पिपासा से तने हुए लाल डोरे, लम्बे एवं चिकने सटकारे बाल निराला का रूप विन्यास है।’ निराला शक्ति की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा के समान कठोर और वीणा वादिनी शारदा के समान कोमल थे। उनके भव्य, आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर भारत कोकिला सरोजनी नायडू को किसी ग्रीक दार्शनिक का भ्रम हुआ था। एक अमरीकी महिला ने उन्हें ग्रीक पौराणिक देवता ‘अपोलो’ के समान विशाल और सुन्दर कहा था।

2. अखण्ड और निर्भीक व्यक्तित्व—निराला स्वभाव से अखण्ड और निर्भीक थे। अपने इस गुण के कारण वे जिस बात को ठीक समझते थे, उसका पक्ष लेने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते थे। वे व्यावहारिक जीवन में किसी प्रकार की रुढ़ियों को स्वीकार नहीं करते थे। बन्धन उन्हें रुचिकर न थे। उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह पुराने सामाजिक बन्धनों को तोड़कर नए ढंग से किया था। हिन्दी के प्रश्न को लेकर वे महात्मा गाँधी से लेकर पंडित जवाहरलाल नेहरू से भी भिड़ने में नहीं चूकते। वे शक्तिशाली सिंह के समान क्रम ही उत्तेजित हुआ करते थे। परन्तु जब उन्हें क्रोध आता था तो उन्हें संभालना मुश्किल पड़ जाता था। वे चुनौती तो किसी की भी सहन नहीं कर सकते थे।

3. विरोधी मिश्रणों का अद्भुत व्यक्तित्व—निराला का व्यक्तित्व विरोधी मिश्रणों का अद्भुत संग्रह था। वे छायावादी होते हुए भी प्रगतिवादी थे और प्रगतिवादी होते हुए भी आध्यात्मिक सिद्धान्तों में अडिग आस्था रखते थे। समष्टि रूप से गुणग्राही थे। उनके मत में प्राचीन के प्रति अन्धश्रद्धा तथा नवीन के प्रति मोह कभी नहीं रहा था। गुण का सम्मान वे दोनों में एक जैसा करते थे। इसी कारण एक स्थान पर वे यदि घोर पुराणपंथी दिखाई पड़ते हैं तो दूसरे स्थान पर घोर नवीनतावादी।

4. स्वच्छन्द एवं वैचित्र्यपूर्ण व्यक्तित्व—महाकवि निराला का व्यक्तित्व स्वच्छन्दता, वैचित्र्य और निरालेपन से युक्त था। एक ओर वे कोमल स्वभाव के थे तो दूसरी ओर उनमें हिमालय के समान स्थिरता एवं कठोरता थी। एक ओर उनका जीवन अर्थाभावों से ग्रस्त था, तो दूसरी ओर वे महान् ज्ञानी थे। कवि के जीवन का वैचित्र्य उनकी जन्म जात स्वच्छन्दता से उदित हुआ था। उनके इस व्यक्तित्व को प्राकृतिक पर्यावरण ने और भी सघनता प्रदान की।

5. साहित्योपासक व्यक्तित्व—निराला का व्यक्तित्व अद्भुत प्रतिभा का धनी था। उसके पास सूर की तन्मयता, तुलसी की समन्वयात्मक सर्जना-शक्ति, बिहारी का शब्द चमत्कार, विवेकानन्द का अद्वैत-दर्शन, केशव जैसा अगाध पाण्डित्य, कबीर जैसी निर्भीकता और रवीन्द्र जैसी मनस्विता थी। इसी कारण उनका कवि हृदय भावुक, कोमल, करुणापूर्ण, संघर्षशील एवं सामर्थ्यवान था। उन्हें बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान था। अनेक आलोचकों का सामना करने के कारण उनके साहित्यिक जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आए और अन्ततः वे एक विद्रोही साहित्यकार बन बैठे। विद्रोही होने पर भी उनकी साहित्य-सर्जना के दृष्टिकोण में थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं आया। उन्होंने इस सम्बन्ध में स्वयं लिखा—‘साहित्य मेरे जीवन का उद्देश्य है, जीने का नहीं। यह सच है कि मैं जीता भी अपने साहित्य में हूँ, किन्तु वह मेरे जीवन का साधन मात्र नहीं। जो मैं नहीं लिखना चाहता था, वह चाहे भूखों मर जाऊँ नहीं लिखूँगा और जो मैं लिखना चाहता हूँ, वह लाखों रुपये के बदले में भी उसे न लिखने की बात न सोचूँगा।’

6. मानवतावादी सरल व्यक्तित्व—महाकवि निराला मानवतावादी दृष्टिकोण के कवि थे। उनके साथियों और प्रशंसकों ने भी उनका विरोध किया था फिर भी वे अत्यन्त करुण और मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत व्यक्ति थे। उनका मानतावादी दृष्टिकोण मानव समाज में व्याप्त विषमता एवं कुण्ठा तथा शोषित-पीड़ित मानवता पर आधारित था। कविवर निराला इस धरती पर मानव मात्र के लिए स्वर्गिक अमृत की कामना रखते थे। वे किसी को पीड़ित नहीं देख सकते थे। किसी के पाँव में बिवाई फटी देखी उसे अपने जूते दे दिये। नई रजाई सर्दी में पेड़ के नीचे बैठी काँपती हुई बुढ़िया को दे दी। वे अनेक विद्यार्थियों को अध्ययन हेतु शुल्क भी दिया करते थे। ‘वह तोड़ती पत्थर’ नामक कविता में उनका यही दृष्टिकोण उभर कर सामने आया है।

निराला का बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व संप्राण था। वे सहृदय काव्यरसिक, साहित्योपासक, उदारमना, स्वाभिमानी, मानवतावादी और क्रान्तिकारी कलाकार थे। उनमें करुणा, ममता, स्नेह, निर्भीकता, स्पष्टता, कोमलता, दुराग्रह, ओजस्विता आदि गुणों के साथ-साथ भावुकता, सहनशीलता तथा अपरजेयता विद्यमान थी। उनका जीवन संघर्षों, विरोधों एवं विपरीत स्थितियों से गुजरा था। इन सब बातों के कारण उनका व्यक्तित्व निराला ही था।

निराला के साहित्य का परिचय—निराला का साहित्यिक क्षेत्र अत्यधिक विशाल था। उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—

1. कविता संग्रह—अनामिका (प्रथम संग्रह), परिमल, अनामिका (द्वितीय संग्रह), गीतिका, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अपरा, आश्रय, अर्चना, श्री रामचरित मानस का खड़ी बोली में रूपान्तरण। ये सम्पूर्ण संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त एक संग्रह ‘वर्षगीत’ अभी तक अप्रकाशित है। इसके अलावा निराला की कुछ फुटकर कविताएँ भी अभी तक अप्रकाशित अज्ञात अवस्था में हैं। गीत, गूँज और सान्ध्य की कला नामक दो संग्रह और प्रकाशित हो चुके हैं।

2. खण्ड काव्य—तुलसीदास, राम की शक्ति पूजा। इन खण्ड काव्यों में तुलसीदास के जीवन को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है तथा राम की शक्ति का उपासक बताया गया है।

3. रेखाचित्र—कुल्ली, भाट और बिल्लेसुर बकरिहा।

4. कहानी संग्रह—लिली, सखी, चतुरी चमार और सुकुल की बेटी।

5. उपन्यास—अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, चोटी की पकड़, चमेली, उच्छृंखला, काले कारनामे।

6. नाटक—समाज, शकुन्तला और उषा अनिरुद्ध। ये तीनों नाटक अभी तक अप्रकाशित हैं।

7. निबन्ध संग्रह—चाबुक, प्रबन्ध-परिचय, प्रबन्ध पद्म, प्रबन्ध-प्रतिमा।

8. जीवनीयाँ—ध्रुव, भीष्म और राणा प्रताप।

9. अनुवाद—निराला जी ने दो प्रकार के अनुवाद किये हैं—कथा-साहित्य का अनुवाद-आनन्दमठ, कपाल कुंडला, चन्द्रशेखर, दुर्गेश-नन्दिनी, कृष्णकान्त का बिल, दुर्गलांभु, गुलीय, रजनी, देवी चौधरानी, राधारानी विष्वक्ष। दूसरे प्रकार के अनुवाद धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य का अनुवाद—राजसिंह तथा महाभारत का अनुवाद आदि।

10. आलोचनात्मक ग्रन्थ—रवीन्द्र कविता कानन। इस ग्रंथ में निराला ने रवीन्द्रनाथ की अनेक कविताओं का भावार्थ देते हुए उनका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

11. स्फुट रचनाएँ—हिन्दी बंगला शिक्षक, रस अलंकार, वात्स्यायन कामसूत्र तुलसीकृत रामायण की टीका।

उपर्युक्त रचनाओं की संख्या उनसठ है, जिनमें से पाँच अप्रकाशित हैं। इस कृतित्व परिचय से यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला की साहित्यिक प्रतिभा अप्रतिम थी। यदि उनके जीवन में अर्थाभाव का चक्र न चलता, पारिवारिक जीवन में विषमतायुक्त वातावरण न रहता, हिन्दी क्षेत्र में नवीनता के नाम पर उनका विरोध न होता और प्रकाशकों, सम्पादकों के द्वारा उनका शोषण नहीं किया जाता तथा जो सम्मान उनकी मृत्यु के उपरान्त किया गया वह उनके जीवन काल में किया जाता तो निःसन्देह निराला के साहित्य का भण्डार और भी विशाल और भी बहुमुखी होता। फिर भी निराला का जो साहित्य आज विद्यमान है, वह हिन्दी की अमूल्य धाती है।

प्रश्न-11. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्य सौष्ठव पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।

अथवा

“निराला” की कविता के भाव पक्ष और कला पक्ष का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर—निराला हिन्दी साहित्य के ऐसे युगान्तकारी कवि हैं जिनकी रचनाओं में मानव की पीड़ा, परतंत्रता, परवस स्थिति पर तीव्र आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है और विषमताओं, विभेदों एवं विपरीत परिस्थिति से संघर्ष करने की तीव्र गर्जना सुनाई पड़ती है। ऐसा क्रान्तिकारी कवि एक ओर अपनी ओजस्वी कविता द्वारा ज्वालामुखी का विस्फोट भी करता है तो दूसरी ओर नारी के दिव्य सौन्दर्य की अलौकिक झांकी प्रस्तुत करता हुआ प्रेम के मर्मस्पर्शी गीत भी गाता है।

निराला की काव्यानुभूतियाँ अथवा भाव पक्ष—

निराला की परिस्थितियों के घात प्रतिघात ने एक उदबुद्ध, संवेतक एवं जाग्रत कलाकार के रूप में ढाल दिया था, उन्हें जीवन और जागृत के प्रति गम्भीरता के साथ सोचने एवं समझने के लिए विवश किया था और उन्हें अन्याय, अनाचार एवं असमानता के विरुद्ध आह्वान करने के लिए प्रेरित किया था। कवि निराला तत्कालीन मानवता पर होने वाले अनवरत अनाचारों से कराह उठता था।

मानव की पीड़ा ने उसे व्यथित कर दिया। बीगता एवं कायरता ने उस कवि के हृदय में गहन बेवना, टीस, छटपटाहट एवं आक्रोश को कूट-कूट कर भर दिया था। इसीलिए ‘निराला’ ने ऐसे काव्य का सृजन किया है, जिसमें क्रान्ति एवं विद्रोह का भाव मुखरित हो रहा है, जिसमें समाज की वेदना और व्यवस्था को स्थान मिला है और जिसमें विषमता से पीड़ित मानवता को स्थान मिला है। उदाहरण के लिए ‘बादल राग’ में बादल से समाज में नवक्रान्ति उत्पन्न करने के लिए मानवों के हृदयों में उथल-पुथल मचाने का आग्रह करता है।

उथल-पुथल कर हृदय—

मचा हलचल-चल रे चल—

मेरे पागल बादल—

दूसरे ‘बादल-राग’ में कवि विप्लव के नव जलधर से यह अनुरोध करता है—‘ऐ अटूट पर टूट-टूट पड़ने वाले उन्माद।’

विश्व-विभव को लूट-लूट लड़ने वाले अपवाद। तीसरे ‘बादल-राग’ में कवि ने सारे विश्व को जीवन भरकर भारत में भी नवजीवन का संचार करने के लिए बादल से भारत में उतरने का आग्रह करता है।

ऐ त्रिलोकजित्! इन्द्र धनुर्धर!

सुरबालाओं के सुख-स्वागत!

विजय! विश्व में नवजीवन भर,

उतरो अपने रथ से भारत।

प्रस्तुत पंक्तियों से कवि की क्रान्तिकारी भावनाओं का स्पष्ट पता चल जाता है कि वह किस प्रकार सामाजिक विषमता, दरिद्रता एवं पराधीनता से व्यथित एवं बेचैन होकर समाज में नई क्रान्ति मचाना चाहता है।

कवि ने इसी सामाजिकता के स्वर को तीव्र और प्रखर बनाते हुए 'जागो फिर एक बार' नामक दो कविताओं में फिर भारत की उन चिर-प्रसुप्त शक्तियों को झकझोरा, जो परतन्त्रता की गहरी नींद में सोई पड़ी हैं और जिन्हें पता नहीं कि जिनकी यशोगाथा के गान पहले महासिन्धु ने गाये हैं, जो महाभारत का युद्ध जीतकर चक्रवर्ती होने की क्षमता रखते हैं और जिन्होंने गुरु गोविन्दसिंह बनकर यश कमाया है। सामाजिक-क्रान्ति का उदाहरण—

**‘जागो फिर एक बार !
पशु नहीं वीर तुम, समर-शूर, क्रूर नहीं,
काल चक्र में दबे, आज तुम राजकुंवर ! समर सरताज ।’**

कवि ने राष्ट्र प्रेम के इन भावों से प्रेरित होकर ही भारत माता के उस साकार रूप की वन्दना की है। कवि उन्नत विचारों से ओतप्रोत होकर 'माँ सरस्वती' की वन्दना करता है और उनसे भी भारत में स्वतन्त्रता की अमर ध्वनि को भरने की प्रार्थना करता है। कवि ने यह स्वर और उच्च कर दिया है—

**‘नश्वर यह दीन भाव
कायरता-कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पद रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्व भार
जागो फिर एक बार’**

कवि निराला परतन्त्रता की असत्य वेदना से इतने अधिक व्यथित एवं बेचैन थे कि वे भारत माता को विदेशी शासन से मुक्त करने के लिए नर-जीवन के सम्पूर्ण स्वार्थों को ही माता के चरणों में बलिदान करना पर्याप्त नहीं समझते थे।

निराला की काव्यानुभूति अनुपम है उन्होंने जीवन की नाना विस्मृतियों, असमानताओं और विपरीत परिस्थितियों में कविता की संरचना की। निराला के काव्य में घात-प्रतिघात, संघर्ष, अनाचार, अन्याय ही मुखरित हुआ है। 'महाकवि निराला, तात्कालिक परिस्थितियों से बेचैन हो उठे थे। कवि निराला ने निश्छल पूर्णतः प्रेम के गीत गाये हैं जिनमें कहीं प्रेयसी के मादक पनीत प्रेम की मधुर झोंकियाँ अंकित हैं तो कहीं प्रिया के मधुर नुपुओं की ध्वनि को सुनकर अनिल भी ठहर जाता है। कहीं ये ही प्रेम जुही की कली के रूप में मुखरित हुआ है, जो निर्जन एकान्त में अपने सम्पूर्ण सुहाग के साधनों के साथ चंचल दृग बन्द किए हुए सोई हुई थी। नायक पवन ने आकर सहसा उसके कपोलों को चूम लिया और वह हिंडोले की तरह तिलमिला उठी, फिर अपने प्रिय के साथ मिलकर क्रीड़ा करने में तल्लीन हो गयी। कहीं यह प्रेम बहते हुए झरने के प्रति अभिव्यक्त हुआ है तो कहीं सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का रूप धारण करके तुलसीदास नामक कविता के रूप में अभिव्यंजित हुआ है।

निराला की दृष्टि से तत्कालीन परिस्थितियों में कोई भी पक्ष अछूता नहीं रहा। उन्होंने अपने तीव्र व्यंग्यों के प्रहार से सम्पूर्ण समाज को झकझोर दिया। उनकी 'कुकुमुत्ता' नामक कविता ऐसी ही है—

**‘अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, गर पाई खुशबू रंगों आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट ।’**

निराला के काव्य में तत्कालीन जीवन व जगत् की विभिन्नता भरी हुई है। उनके काव्य में नव-निर्माण का शुभ सन्देश भी है। 'जागो फिर एक बार' नामक कविता उनके इन्हीं क्रान्तिकारी विचारों से परिपूर्ण है। निराला ने युग चेतना का साकार चित्र अपनी सशक्त काव्यधारा के रूप में अभिव्यक्त किया है जिसमें उनकी भावना राष्ट्रीय-प्रेम, देश-भक्ति और गौरव लालिमा दिखा रही है।

निराला ने अपने काव्य में अनुभूति पक्ष को सबसे अधिक शक्ति प्रदान की है। उनके काव्य के भाव पक्ष में समाज की विषमता को दिखाया गया है। उनमें क्रान्तिकारी विचारों की तीव्र भावनाएँ भरी हुई हैं और इन्हीं को अभिव्यक्ति मिली है।

कविता के काव्य-शिल्पों को परखने के लिए काव्यानुभूति और काव्याभिव्यक्ति दोनों की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है।

निराला की काव्य अभिव्यक्ति अथवा कला पक्ष

भाषा—अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा ही प्रमुख साधन है। हमारे अन्तःकरण के विचारों को साकार रूप देने के लिए भाषा का माध्यम स्वीकार करना पड़ता है। जिस व्यक्ति के विचार जितने अधिक गम्भीर, उत्कृष्ट और सशक्त होंगे, भाषा भी उतनी ही उत्कृष्ट, सशक्त और प्रान्जल होगी। स्वयं कविवर निराला ने यह अनुभव किया है कि श्रेष्ठ साहित्य काल व समय के बन्धन में नहीं बँधता वे भाषा की सरलता पर कभी जोर नहीं देते थे। उनका यह विचार था कि गूढ़ व गम्भीर भावों के लिए भाषा का साहित्यिक स्वरूप ही अपनाया जाना चाहिए। भाषा को कभी भी बोलचाल के अनुसार नहीं बनाया जा सकता। साधारण बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में अन्तर अवश्य रहना चाहिए। निराला की भाषा का सबसे प्रथम गुण है प्रौढ़, सशक्त एवं श्रेष्ठ भाषा। 'राम की शक्ति पूजा' नामक कविता में ऐसी ही भाषा का कवि ने प्रयोग किया है। उनका शब्द समूह अथाह है जिसमें अनेक सामूहिक पद मिलते हैं। संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार पाई जाती है। भाषा की गम्भीरता एवं गुरुता देखते ही बनती है—

'रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल-बल—
मुर्छित-सुग्रीवांगद-भीषण-गवाक्ष-गय-नल—
वारि-सौमित्र-भल्लपति-अगणित-मल्लरोध,
गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षब्ध-हनुमत्-केवल-प्रबोध,
उद्गिरित-ब्रह्म-भीत-पर्वत-कपि-चतु-प्रहर—
जानकी-भीरु डर-आशा-भर-रावण सम्बर।'

निराला की भाषा माधुर्य गुण से भी ओत-प्रोत है। जिन कवियों ने प्रेमी हृदय के मार्मिक उद्गारों की अभिव्यक्ति की है। उनमें सर्वत्र एक ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो सरलता एवं सुबोधता के साथ-साथ अपनी मधुरता में सर्वाधिक आकर्षण पूर्ण जान पड़ती है। कवि निराला ने 'जूही की कली' नामक कविता में ऐसी ही भाषा का प्रयोग किया है—

'मोती सी,
जाने कहो कैसे प्रिय आगमन वह ?
नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी बल्लरी की लड़ी जैसे हिडोल।
इस पर भी जागी नहीं,
चूक क्षमा मांगी नहीं,
निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मून्द रही
किया मतवाली भी यौवन की मदिरा पिए कौन कहे ?'

सरस सुबोध एवं व्यावहारिक भाषा का प्रयोग भी निराला ने किया है। जीवन के व्यावहारिक पक्ष का उद्घाटन करने के लिए अथवा जीवन और जगत् के यथार्थ चित्र अंकित करने के लिए ऐसी सरल, सुबोध और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग हुआ है। उनकी 'विधवा' कविता में ऐसी ही व्यावहारिक भाषा का प्रयोग हुआ है। निराला की कविता में जहाँ सामाजिक अनाचार, शोषण एवं अन्य समाज विरोधी कार्यों के विरुद्ध कवि के आक्रोश, क्षोभ एवं व्यंग्य का निरूपण हुआ है, वहीं कविता की भाषा सरल, सुबोध एवं बोल-चाल के अधिक निकट है। अरबी, फारसी, अंग्रेजी तथा हिन्दी के मिश्रित शब्दों का प्रयोग भी कवि निराला की भाषा में देखने को मिलता है। 'कुकुरमुत्ता' में जन-भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है—

'अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा, कैपिटलिस्ट।'

इस प्रकार निराला की भाषा सर्वत्र भावानुकूल है। संस्कृत मिश्रित माधुर्य गुण से ओत-प्रोत, सशक्त एवं प्रवाहमयी भाषा उनके काव्य में सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता उनकी भाषा को और श्रेष्ठ बना देती है।

प्रतीक योजना—निराला के काव्य में प्रतीक एवं बिम्ब योजना भी बहुत ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य सिन्धु से अपने प्रतीकों का चयन करके विविध रूपों एवं भावों की अभिव्यक्ति की है। निराला की अभिव्यक्ति में रूप एवं भाव दोनों के प्रतीक विद्यमान हैं। उनके प्रतीकों में भाव का चित्रण भी सजीव एवं साकार हो उठता है। जैसे 'जूही की कली' कविता में कवि ने एक

सलज्ज नई नवोढ़ा वधू का रूप चित्र अंकित करते हुए उसके हृदयस्थ भावों की भी अत्यन्त मनोहर रस व्यंजना की है। यह मनोहर सौन्दर्य 'जुही की कली' के प्रतीक को प्राप्त करके कितना रमणीक, कितना आकर्षक एवं कितना मार्मिक बन गया है। जहाँ पवन नायक का प्रतीक है। जुही की कली के साथ निष्ठुर क्रीड़ा करता है और जिसका मधुर सम्पर्क पाकर वह, कली भी खिल उठती है –

‘निर्दय उस नायक ने
निपट निटुराई की
नम्रमुखी हंसी-खिली
खेल रंग प्यारे संग।’

स्वच्छन्दतावादी कवि होने के कारण निराला ने अपने काव्य में उन कोमल पदों को चुना है, जिनसे प्रतीकात्मक स्वरूपों का चित्र मिलता है। ‘बादल राग’ में विप्लव और विद्रोह के क्रान्तिकारी प्रतीक मिलते हैं। ‘रास्ते के फूल’, ‘शेफालिका’, ‘प्रताप के प्रति’ आदि कविताओं में निराला के सौन्दर्ययुक्त प्रतीक अंकित हैं।

सारांश यह है कि कवि निराला ने विविध प्रतीकों द्वारा अपनी हृदयस्थ अनुभूतियों के बड़े मनोहर चित्र अंकित किए हैं। इन चित्रों में रूपगत एवं भावगत दोनों प्रकार का सौन्दर्य विद्यमान है। कवि निराला रूप की अपेक्षा भाव के चित्रण में अधिक सफल रहे हैं। इन प्रतीकों में कवि की विराट एवं उदात्त कल्पना का साक्षात्कार किया जा सकता है।

अलंकार योजना – निराला ने अपनी अलंकार योजना द्वारा प्रस्तुत भावों, विचारों, पदार्थों एवं घटनाओं के ऐसे मनोहारी, मादक एवं मार्मिक चित्र अंकित किए हैं जो अपनी सरलता एवं स्वाभाविकता के साथ-साथ गतिशीलता एवं प्रभावोत्पादकता में अन्य कवियों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण जान पड़ते हैं। निराला ने प्रायः अलंकारों के द्वारा चित्र एवं मूर्ति अंकित करने का अतुल्य प्रयास किया है। कवि निराला ने प्रायः अपने लघु रूपों एवं विराट रूपों के भी जो चित्र अलंकार के माध्यम से अंकित किए हैं, उनमें व्यापकता एवं विराटता के दर्शन होते हैं। कवि ने उपमा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, समासोक्ति, मानवीकरण आदि साम्यमूलक अलंकारों को अपनाया है। इनकी योजना द्वारा भावों के बड़े ही मार्मिक एवं प्रभावशाली चित्र अंकित हुए हैं। कवि निराला ने कतिपय नूतन उपमानों का भी प्रयोग किया है जो अपनी नवीनता एवं अनुपमता के कारण साहित्य में विशिष्ट स्थान बनाए हुए हैं। जैसे चलती हुई बैलगाड़ी को उमर खैयाम की रुबाई कहना। उपमा के साथ-साथ रूपक अलंकार का प्रयोग भी सजीव एवं सुन्दर है। निस्संग एवं पारस्परिक रूपकों द्वारा निराला ने अपनी कल्पना को साकार बनाया है। उपमा तथा रूपक के अतिरिक्त कवि का सर्वप्रिय अलंकार मानवीकरण है जिसके द्वारा कवि ने अचेतन एवं जड़ पदार्थों के भी ऐसे-ऐसे सुन्दर चित्र खींचे हैं जिनसे काव्य में मनोहरता आ गई है। मानवीकरण के साथ कवि ने समासोक्ति अलंकार का भी मंजुल चित्र खींचा है। जुही की कली और पवन के मिलन का मादक चित्र प्रस्तुत करके समासोक्ति अलंकार द्वारा एक नवोढ़ा नायिका एवं परदेश से आये हुए नायक के मिलन का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किया है –

‘सोती थी
जाने कहो कैसे प्रिय-आगमन वह?
नायक ने चूमे कपोल,
नम्रमुखी हंसी खिली
खेल रंग प्यारे संग।’

निःसन्देह इन सभी अलंकारों के भावानुकूल होने के कारण कवि निराला की अलंकार योजना में भाव प्रेषणीयता का गुण सबसे अधिक दिखाई देता है।

छन्द योजना – निराला न केवल भाव एवं विचारों की दृष्टि से विद्रोही कवि कहलाते थे, अपितु छन्द की दृष्टि से भी निराला एक क्रान्तिकारी एवं विद्रोही कवि थे। निराला ने छन्द सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं में आमूलचूल परिवर्तन करके मुक्त छन्द की एक ऐसी पद्धति का भी श्रीगणेश किया जिसके फलस्वरूप हिन्दी में कवियों को स्वच्छन्द गति से कविता लिखने में सुगमता एवं सरलता हो गई और वे अपने उन्मुक्त भावों को स्वच्छन्द गति से प्रस्तुत करके छन्दविधान की धारा से सर्वथा मुक्त हो गए। छन्द विधान की दृष्टि से निराला की कविताओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है –

- (क) समसामयिक सन्त्यनुप्रास वाली कविताएँ।
- (ख) विषयगत मार्मिक सन्त्यनुप्रास वाली कविताएँ और
- (ग) स्वच्छन्द कविताएँ।

प्रथम वर्ग में 'परिमल' की कविताएँ आती हैं। द्वितीय वर्ग में वे कविताएँ हैं जिनमें अन्तिम तुकें तो मिलती हैं किन्तु चरणों में मात्राओं की समानता नहीं है, तीसरे वर्ग की कविताओं में न तो तुक मिलती है और न ही मात्राएँ मिलती हैं।

इस प्रकार निराला ने काव्य के क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन प्रस्तुत करते हुए सरस एवं मार्मिक काव्य का निर्माण किया। कवि निराला ने काव्य को पूर्ण स्वच्छन्दता प्रदान की। भाव पक्ष की दृष्टि से उनका काव्य अनुभूत एवं अपूर्व है वहीं कला पक्ष में उन्होंने प्रतीकों एवं अलंकारों द्वारा क्रान्तिकारी स्वरूपों को जन्म दिया है। निराला का काव्य सौष्ठव अपनी गरिमा में अप्रतिम है।

प्रश्न-12. छायावादी काव्य में निराला के योगदान पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—हिन्दी काव्य के इतिहास में छायावाद एक अत्यन्त समृद्ध, सशक्त, कलात्मक एवं सौन्दर्यशील काव्यधारा रही है। द्विवेदी युग के साहित्यकारों के दो वर्ग थे। एक वर्ग परम्परावादी था तो दूसरा वर्ग नवीनता का अन्वेषक एवं उद्घोषक था। दूसरे वर्ग द्वारा काव्य के जिस नवीन रूप को नया आयाम प्राप्त हुआ उसे छायावादी काव्य धारा कहा गया। द्विवेदी युग में बौद्धिक धारणाओं और तर्कवाद की प्रधानता के कारण हार्दिक अनुभूतियों का मार्ग अवरुद्ध हो रहा था। द्विवेदी-कालीन इस अवरोध के कारण जो प्रतिक्रिया हुई, वह छायावादी कविता की काव्यशैली और भावना-धारा में स्पष्ट दिखाई दी। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार— 'द्विवेदी युग की बौद्धिकता, नीतिमता और उपदेशात्मक की प्रतिक्रिया एक अपूर्व कल्पना-प्रवणता, वैयक्तिक वेदना तथा सौन्दर्य दृष्टि के रूपों में हुई।' इस प्रक्रिया के फलस्वरूप छायावादी काव्य में प्रकृति के साथ मानवीय सम्बन्धों की स्थापना और आध्यात्मिक भूमि पर अव्यक्त प्रेम-कल्पना के साथ उदात्त दार्शनिक एवं रहस्यात्मक अनुभूतियों की प्रमुखता आने लगी। फलतः कविता का रूप विधान एवं शैली संस्कार भी बदला। द्विवेदी युग के आलोचकों ने छायावाद का डटकर विरोध भी किया। छायावादी काव्य को अतृप्त कामवासनाओं, दमित इच्छाओं तथा विकृत भावनाओं का प्रतिफल घोषित कर उसकी एकांगी आलोचना की गई। परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी छायावाद की धारा अपने काल में द्विगुणित रूप में प्रवाहित होती रही। महाकवि प्रसाद ने जहाँ इस धारा को जन्म दिया, वहीं उसे सुदूर तक प्रवाहित करने में महाकवि निराला, पंत और महादेवी वर्मा का अभूतपूर्व योगदान रहा।

छायावाद की परिभाषा—छायावादी काव्य का आविर्भाव परम्परावादिता के प्रति नवीनता के प्रतिफलन का विद्रोह था किन्तु नैतिकता के नाम पर परम्पराओं से चिपके रहने वाले आलोचकों ने इसकी नवीनता से आतंकित होकर अनेक प्रकार की आलोचना की। छायावादी कविता पर अनेक प्रकार के दोषारोपण किये गये और अपने संकीर्ण दृष्टिकोणों के आधार पर इसे परिभाषित करने की चेष्टा की गई। इस सन्दर्भ में उनके मतों का सारांश इस प्रकार है—

1. रहस्यवाद का ही पहला रूप छायावाद है।
2. स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद है।
3. छायावाद पाश्चात्य रोमान्टिसिज्म का ही पर्याय है।
4. प्रकृति में मानवीय अथवा ईश्वरीय भावों के आरोपों को ही छायावाद कहते हैं।
5. पलायनवादी प्रवृत्तियों का नाम ही छायावाद है।

इस प्रकार आलोचकों ने छायावादी प्रवृत्ति को परिभाषित करने का प्रयास किया है परन्तु उपर्युक्त समस्त परिभाषाएँ छायावाद के स्वरूप पर पूर्णतया प्रकाश डालने में असमर्थ हैं क्योंकि कुछ परिभाषाएँ तो रूढ़ धारणाओं पर आश्रित होने से एकांगी हैं और कुछ अतिवादी भावनाओं पर आधारित हैं। परन्तु देखा जाए तो छायावाद में उपर्युक्त विशेषताएँ मिल जाती हैं। संक्षेप में समुचित रूप में छायावाद को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है— 'छायावाद एक ऐसी काव्य धारा है जिसके भावपक्ष में व्यक्तिवाद, अतृप्त प्रेम, निराशा एवं वेदना, प्रकृति का मानवीकरण, मानवतावाद, राष्ट्र प्रेम, सूक्ष्म कोमल भावों की अभिव्यक्ति, जिज्ञासात्मक नवीन रहस्य भावना आदि बातें हैं और भावपक्ष की इस नवीनता के कारण इसके कलापक्ष में नवीन-छन्द-विधान, अलंकार विधान, नवीन लाक्षणिक शब्दावली और नवीन प्रतीकों का प्रयोग होता है।

छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—उपर्युक्त समन्वित परिभाषा के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि छायावादी काव्य में विविध तत्त्वों का सम्मिश्रण है। इस वैशिष्ट्य के अनुसार छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं—

- | | | |
|--|-----------------------------------|--------------------------------|
| 1. सौन्दर्य भावना | 2. श्रृंगार भावना | 3. प्रकृति प्रेम |
| 4. वैयक्तिकता, | 5. करुणा की भावना | 6. अज्ञात सत्ता के प्रति प्रेम |
| 7. नारी सौन्दर्य के प्रति नवीन दृष्टिकोण | 8. नवीन मानवतावादी जीवन दृष्टिकोण | 9. शैलीगत नवीनता। |

इन प्रवृत्तियों में अधिकतर प्रवृत्तियों को माध्यम रूप में अपनाया गया है। इस कारण छायावादी कवियों ने जहाँ प्रकृति को नारी रूप में देखा है, वहीं उनकी सौन्दर्य भावना, श्रृंगार भावना, श्रृंगार अथवा प्रेम भावना के साथ जीवन दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। परन्तु अत्यधिक वैयक्तिकता के कारण उसमें करुणा एवं अज्ञात मिलन की उत्कण्ठा भी सशक्त बन पड़ी है।

छायावादी काव्य और निराला—प्रसाद द्वारा प्रारम्भ किए गये छायावाद को महाकवि निराला ने अपने काव्य द्वारा अग्रसर किया। उन्होंने छन्द सम्बन्धी नवीन प्रयोग किए और विविध शैलीगत प्रयोगों द्वारा विद्रोह और नवीनता का स्वर मुखरित किया। जब छायावाद पर नैतिकतावादियों द्वारा प्रहार होने लगे तो सर्वप्रथम निराला ही उसका पक्ष ग्रहण कर वाद-विवाद के क्षेत्र में उतरे। इस कारण विरोधियों ने अपनी समस्त शक्ति उनके काव्यों के दोषान्वेषण में लगा दी। परन्तु निराला को विद्रोही कवि की उपाधि मिली। उनकी प्रारम्भिक कविता 'जुही की कली' छन्द के पारम्परिक बन्धन को तोड़कर तथा नवीन भावाभिव्यक्ति, नवीन-सौन्दर्य, नई चेतना तथा नये प्रेम को लेकर अवतरित हुई थी। इस रचना से हिन्दी जगत में एक बवण्डर सा खड़ा हुआ। इस प्रकार छायावादी नवीन काव्य-कृति की धूम मचाने वालों में निराला अग्रगण्य बने रहे।

1. प्रकृति प्रेम—छायावादी काव्य की इस विशेषता के दर्शन निराला के काव्य में अधिक होते हैं। उन्होंने जड़ प्रकृति को अपनी कल्पना-प्रवणता से सप्राण बनाया है। 'प्रभाती', 'यमुना के प्रति', 'वासन्ती', 'संध्या सुन्दरी', 'बादल राग', 'शैफालिका', 'जुही की कली' आदि कविताओं में उनका प्रकृति पर प्रेम मुखरित हुआ है और उन्होंने उसकी नैसर्गिक छवियों का बड़ा ही भावात्मक चित्रण किया है। बसन्त के आगमन पर जब धरती नये सौन्दर्य से मण्डित होने लगती है तो कवि को प्रकृति-प्रेम, कोमलता एवं मादकता से सराबोर कर जाती है—

किसलय वासना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका
मधुप-वृन्द बन्दी
पिक-स्वर नभ सरसाया।

2. नारी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति—छायावादी कवि सौन्दर्य और सरसता के उपासक थे। उनके काव्यों में नारी-सौन्दर्य विषयक नवीन अभिव्यक्ति है। निराला यद्यपि संघर्षशील पुरुष-भावना के कवि थे; फिर भी उनके काव्य में नारी के आन्तरिक सौन्दर्य की अच्छी कल्पना है। 'पंचवटी प्रसंग' में उन्होंने शूर्पणखा के रूप सौन्दर्य का जो वर्णन किया है, वह इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—

कवियों की कल्पना तो
देखती ये भौहें बालिका सी खड़ी
छँटते हैं जिनसे आदि रस के सम्मोहनशर
वशीकरण में उच्चाटन भी कभी-कभी।
हरि हे सारे नेत्र नेत्रों को हेर-फेर
विश्व भर को मदोन्मत करने की मादकता
भरी है हुई विधाता ने इन्हीं दोनों नेत्रों में!

3. अज्ञात सत्ता के प्रति प्रेम—रहस्यात्मकता अथवा अज्ञात सत्ता के प्रति छायावादी कवियों ने अपने दार्शनिक चिन्तन को नवीन रूप दिया है। निराला ने भी प्रकृति चित्रण के साथ-साथ श्लिष्ट रूप में अज्ञात सत्ता को सर्वोपरि मानकर उसके प्रति प्रेम दर्शाया है। 'बादल राग', 'अधिवास', 'युक्ति', 'परलोक' आदि कविताओं में उनकी यह प्रकृति काफी मुखरित रही है।

4. मानवतावादी जीवन दर्शन—छायावादी काव्य में यह प्रवृत्ति भी अधिक दिखाई है। निराला मानवतावादी चेतना के कवि थे, अतः उनके काव्य में दीन-दलितों एवं पीड़ित जनों के प्रति सहानुभूति दिखाई देती है। 'भिक्षुक', 'विधवा', 'कर्ण' और 'रास्ते के फूल' उनकी ऐसी कविताएँ हैं। 'कर्ण' कविता में वे प्रतीक व्यंजना के द्वारा दलितों को उद्घोषित करते हैं।

पड़े हुए सहते हो अत्याचार,
पद-पद पर सदियों के पद प्रहार।

निराला धरती पर व्याप्त अभाव, विषमता एवं वेदना को समाप्त करके मानव-जीवन में सरसता का अमृत बरसाना चाहते थे—यही भावना इस प्रकार अभिव्यक्त हुई—

बुझे तृष्णाशा विधानल, झरे भाषा-अमृत निर्झर
उमड़ प्राणों से गहनवर छा गगन में अवनि के स्वर।

5. श्रृंगार सौन्दर्य भावना—महाकवि ने बादल, बसन्त व अन्य प्राकृतिक छवियों के अनेक चित्र प्रस्तुत किए। वस्तुतः जब वे प्रकृति से तन्मयता ग्रहण करते थे तो उनकी श्रृंगार एवं सौन्दर्य भावना सशक्त बन जाती थी। इस दृष्टि से 'जुही की कली', 'शेफालिका' आदि कविताओं में उनकी इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। बसन्त के आगमन पर पृथ्वी की इसी श्रृंगारिक छवि का अंकन दृष्टव्य है—

‘आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे
केशर के केश कली के छटे
स्वर्ण शस्य अंचल।
पृथ्वी का लहराया।’

इस प्रकार 'जुही की कली' में सौन्दर्याभिव्यक्ति की झलक दर्शनीय है—

‘चौंक पड़ी युवती
चकित चतवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास
नम्र मुखी हंसी खिली,
खेल रंग प्यारे संग।’

वस्तु: प्रकृति को आलम्बन-उद्दीपन रूप में अपना कर उसकी श्रृंगारिक और सौन्दर्यमयी छवि के अंकन करने में निराला अन्य छायावादी कवियों के समान सिद्धहस्त थे। यह उनके काव्य की परम विशेषता मानी जाती है।

6. मानवीकरण—निराला सौन्दर्य के प्रेमी और प्रकृति के उपासक कवि थे। इस भावना के कारण उन्होंने प्राकृतिक उपादानों को कई रूपों और छवियों में चित्रित किया है। इस प्रक्रिया में प्रकृति पर मानवीय व्यापारों का आरोप सहज ही होता गया। 'संध्या सुन्दरी' और 'जुही की कली' आदि उनकी प्रसिद्ध कविताओं में मानवीकरण की अभूतपूर्व प्रकृति दिखाई देती है। 'जुही की कली' में विरह विधुरा नायिका के रूप में कलि का चित्रण इस प्रकार है—

‘सोती थी सुहाग-भरी स्नेह स्वप्न मगन
अमल-कोमल-तनु-गरणी-जुही की कली
दृग बन्द किए, शिथिल-पत्रांक में’
‘नायक ने चूमे कपोल’
डोल उठी बल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल
इस पर भी जागी नहीं,
चूक-क्षमा माँगी नहीं,
निद्रालस बंकिट विशाल नेत्र मूंदे रही।’

इस प्रकार जब बसन्तागमन होता है, तो उसे देखकर कवि की उक्त भावना कल्पनाशील बन जाती है। बसन्त नवलतिका का मानवीकरण कवि निराला ने इस प्रकार किया है—

‘किसलय वसना नववय लतिका
मिली मधुर प्रिय उर तरु पतिका
मधुप वृन्द बन्दी
पि-स्वर नभ सरसाया।’

7. करुणा की निवृत्ति—निराला ने पीड़ित मानवता को समीप से देखा था। वे अर्थाभाव में रहकर भी दीन-दुःखियों की सेवा करते थे। यही करुणा का भाव उनके काव्य में स्थान-स्थान पर मुखरित हुआ। स्वयं उनका जीवन भी अभावों से ग्रस्त था और उन्हें निजी कारुणिक परिस्थितियों का समाना करना पड़ा था। पुत्री सरोज की असामयिक मृत्यु ऐसा ही प्रसंग था। अतः सरोज-स्मृति में उनकी करुणा की निवृत्ति अधिक मार्मिक तथा घनीभूत दिखाई देती है।

8. राष्ट्रीयता—निराला की राष्ट्रीय चेतना अत्यन्त जाग्रत और मुखर थी। उनके काव्य में 'जागो फिर एक बार' जैसे नव जागरण गीत, 'भारती जय विजय करे', आदि गौरवशाली 'टूटे सकल बन्ध' जैसे राजनीतिक स्वार्थों की धजियाँ उड़ाने वाले स्वर मिलते हैं। उनके इस व्यापक राष्ट्र प्रेम को देखकर डॉ. भागीरथ मिश्र ने लिखा है कि 'उनकी राष्ट्रीय चेतना प्रचारात्मक नहीं है वरन् रचनात्मक और सांस्कृतिक है। उनकी राष्ट्रीयता के पीछे उनका आध्यात्मिक चिन्तन और विवेकानन्द आदि सन्तों की धारा का प्रभाव परिलक्षित है।' उनकी राष्ट्रभक्ति मंगलाभिलाषा के रूप में भी प्रकट हुई है।

‘काट अन्ध उर के बन्धन स्तर
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर
कलु भेद तमहर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे!’

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निराला की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिवेश से व्याप्त थी। उसमें राष्ट्रहित चिन्तन तथा कर्तव्य निष्ठा, त्याग एवं उत्सर्ग की भावना थी।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि निराला का स्थान छायावादी उन्नायकों में अग्रणी रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं में छन्द, भाव, भाषा आदि में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर छायावादी काव्य धारा को अधिक सशक्त, मुखरित और गतिशील बनाया है। परन्तु इसके बाद भी नवीनता का मोह एवं सतत् प्रयोग धर्मी दृष्टिगोण रखने के कारण वे उससे भी प्रगतिवाद की ओर बढ़े। फिर भी निराला के छायावादी काल का काव्य अपनी छायावादी वृत्तियों के कारण प्रशस्त माना जाता रहा है।

प्रश्न-13. 'निराला हिन्दी काव्य जगत में प्रथम प्रगतिवादी कवि के रूप में हैं।' इस कथन के आधार पर निराला के काव्य में आए प्रगतिवादी तत्वों की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—महाकवि निराला के काव्य में परम्परा से अलग हटकर प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। निराला ने अपने से पूर्व प्रचलित काव्य रूढ़ियों और प्रवृत्तियों से कविता को मुक्त किया। निराला यह मानते थे कि जीवन के समान ही काव्य में भी मुक्ति और नवीनता की अपेक्षा होनी चाहिए। एक ही परम्परा का अनुसरण करने से अथवा एक ही स्थिति में रहने से जिस प्रकार जीवन नीरस हो जाता है उसी तरह एक ही विषय पर लिखी जाने वाली कविता भी नीरस और आकर्षणहीन हो जाती है। द्विवेदी युग की कविता राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना से युक्त थी। दीर्घकाल तक सामाजिक एवं राष्ट्रीय उत्थान से सम्बन्धित कविता की रचना होने से काव्य में नीरसता आ गई थी। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता और वर्णनात्मकता के कारण कविता का जीवन संकुचित हो गया था। कवियों ने आदर्श के आधार पर जीवन और कविता दोनों के लिए कुछ निश्चित प्रतिमान बना लिए थे। यह बात निराला को पसन्द नहीं आई। परिणामस्वरूप अपनी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने काव्य के कथन और शिल्प दोनों में नवीनता का वर्णन किया। ऐसा करने से कविता में नई अर्थवत्ता, नयी चेतना, नवीन स्वतन्त्रता और नयी शैली का आगमन हुआ।

निराला ने अपने काव्य को परिष्कृत कर समाज के साथ जोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने सामाजिक समस्याओं को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। जीवन की दिक्कतों से ग्रसित होकर इस समाज में सांस ले रहे शोषित एवं दलित वर्ग के प्रति करुणा और सहानुभूति प्रदर्शित की। निराला की अनेक प्रगतिशील रचनाओं में इसी तथ्य का स्वरूप पाया जाता है। शैली के क्षेत्र में निराला ने न केवल भाषा के महत्त्व को बढ़ाया, अपितु व्यंग्य एवं विद्रोह के स्वर देकर मुक्त छन्द को भी अपनाया। निराला ने काव्य के क्षेत्र में अनेक प्रगतिशील स्वरूपों को अपनाकर कविता को नयी दिशा देते हुए नवीन आयाम प्रदान किए। निराला के काव्य की प्रगतिशीलता के प्रमुख बिन्दुओं को निम्नानुसार स्पष्ट किया जा सकता है—

1. प्रथम प्रगतिवादी कवि—निराला प्रथम प्रगतिवादी कवि थे। प्रसाद, पंत और महादेवी छायावादी कवि थे। उन्होंने काव्य के क्षेत्र में कोई क्रान्तिकारी कदम नहीं उठाया, किन्तु निराला ने समाज, धर्म, साहित्य, राजनीति और मानव जीवन आदि क्षेत्रों को ध्यान से देखा तथा इन सभी क्षेत्रों में क्रान्ति का मार्ग अपनाया। वस्तुतः निराला पहले साहित्यकार हैं जिन्होंने समाज की गम्भीर समस्याओं का हल प्रस्तुत किया। साहित्य और सामाजिक क्षेत्र दोनों में ही निराला ने क्रान्ति को अपनाया। वे कबीर की तरह समाज के समस्त दकियानूसी रीति-रिवाजों पर टूट पड़े और जाति-पाँति के बन्धन एवं वर्ण भेद को मानने से इन्कार कर दिया। उन्होंने दो हजार वर्षों से हिन्दू समाज के पतन का खाका खींचते हुए समाज में व्याप्त गंदगी के कारणों की चर्चा की। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि निराला प्रचलित रूढ़ियों से मुक्ति की आवाज उठाने वाले, कविता को जीवन से जोड़ने वाले और सामाजिक चेतना को प्रगतिशीलता प्रदान करने वाले प्रथम प्रगतिवादी कवि हैं।

2. निराला की प्रगतिशीलता—निराला ने चेतना की द्योतक कविताएँ तो बहुत पहले ही लिखना शुरू कर दी थी, किन्तु उनका परवर्ती काव्य तो पूरी तरह प्रगतिवादी प्रतीत होता है। निराला की प्रगतिशील कविताओं को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वे छः प्रकार की हैं—

1. प्रगतिशील सामाजिक कविताएँ
2. नारी उत्थान सम्बन्धी प्रगतिशील कविताएँ
3. धार्मिक व्यंग्य और रुढ़ियों का निरूपण करने वाली प्रगतिशील कविताएँ
4. राजनीतिक उद्बोधनपरक कविताएँ
5. आर्थिक विषमता को व्यक्त करने वाली प्रगतिशील कविताएँ और
6. प्रगतिशील कविताओं का मानवतावादी पक्ष।

1. प्रगतिशील सामाजिक कविताएँ—निराला की प्रगतिशील सामाजिक कविताओं में अनामिका की 'वह तोड़ती पत्थर', बेला की कतिपय गजलें, 'कुकुरमुत्ता' का सामाजिक स्वरूप और कुछ इसी प्रकार की अन्य कविताएँ ली जा सकती हैं। 'वह तोड़ती पत्थर' में समाजवादी विचारधारा का स्पष्ट रूप देखने को मिलता है। कविता का लक्ष्य ही यह है कि कवि इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई मजदूरिन के मन की करुणा को प्रकट करना चाहता है। वस्तुतः इलाहाबाद जैसे शहर की भूमिका में पत्थर तोड़ती हुई गरीब स्त्री की हालत पर जिस वातावरण का निर्माण हुआ है, वह समाज के आर्थिक अभाव का द्वांचा प्रस्तुत करता है। कवि ने लिखा है—

'वह तोड़ती पत्थर
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर
नहीं छायादार पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
गुरु हथोड़ा हाथ करती बार-बार प्रहार
देखा मुझे उस दृष्टि से जो मार खा रोई नहीं।'

निराला ने वर्तमान समाज के साधनहीन वर्गों की कठिनाइयों का उल्लेख भी प्रगतिशील शैली में किया है। इसके अतिरिक्त कवि निराला के मजदूर वर्ग की चेतना, शोषकों के अत्याचार, पूंजीपतियों का मनमाना व्यवहार, मजदूर व मालिक के संघर्ष आदि के चित्र निराला की सामाजिक प्रगतिशीलता को प्रकट करते हैं। वर्ग चेतना की दृष्टि से निराला की 'नए पत्ते' कविता विशेष उल्लेखनीय है। इसी प्रकार 'कुकुरमुत्ता' मूलतः वर्ग चेतना और संघर्ष का काव्य है। 'डिप्टी साहब आये' कविता में जनता को प्रचलित बेगारी और मुफ्त खोरी का जमकर विरोध करते दिखलाया गया है। निराला की कविताओं में सामाजिक प्रगतिशीलता का स्वर अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुआ है।

2. नारी उत्थान और प्रगतिशीलता—सामान्यतः निराला का समस्त काव्य नारी की स्वतन्त्रता का पोषक है। उन्होंने प्रगतिशील दृष्टि के आधार पर ही कुछ ऐसी कविताएँ लिखी हैं, जो नारी के उत्थान से सम्बन्धित हैं। 'वह तोड़ती पत्थर', 'वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी' तथा 'बन बेला' ऐसी ही कविताएँ हैं। 'बन बेला' में निराला ने विवाह विषयक सामाजिक रुढ़ियों का चित्रण किया है। ऐसा ही अतिक्रमण जिसके मूल में नारी उत्थान की भावना कर्म कर रही है निराला की 'सरोज स्मृति' में भी देखी जा सकती है। 'नयी बहु की आँखें' कविता में भी निराला ने सीधी-सरल ग्रामीण नारी का सौन्दर्यांकन किया है। निराला की प्रगतिशील कविताओं में नारी के उत्थान का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

3. धार्मिक व्यंग्य और प्रगतिशीलता—सामाजिक जीवन में अनेक धार्मिक रुढ़ियाँ व्याप्त हैं। निराला ने इन रुढ़ियों पर जमकर प्रहार किया है। 'और गंगा के किनारे' कविता में यह भावना स्पष्टतः मिलती है। इसमें धार्मिक अन्धविश्वास पर स्पष्ट रूप से व्यंग्य किया गया है। 'दान' शीर्षक कविता में भी इस प्रकार का व्यंग्य है। निराला ने 'सरोज स्मृति' के अन्तर्गत भी कतिपय धार्मिक रुढ़ियों पर व्यंग्य किया है। वे उन रुढ़ियों को सामाजिक जीवन से निकालकर बाहर फेंकना चाहते थे जो हमारे ऊपर न केवल बोझ हैं अपितु हमारी समस्त चेतना को आत्मसात् किये हुए हैं।

4. राजनैतिक उद्बोधन परक कविताएँ—निराला ने राजनीतिक गतिविधियों पर भी तीखे व्यंग्य किए हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता 'काले-काले बादल छाये न आये वीर जवाहर लाल' में नेहरू जी की राजनीति पर व्यंग्य है। निराला की प्रगतिशीलता का साहसिक स्वर उस समय सुनाई देता है जब वे इस कविता को स्वयं नेहरू जी के सामने सुनाने को तैयार हुए और उन्होंने कविता में स्पष्ट लिख दिया—

'महंगाई की बाढ़ आई गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई
भूखे नंगे खड़े शरमाएँ न आए वीर जवाहर लाल।'

इसी प्रकार की सन् 1942 की एक रचना में निराला जी ने देश की राजनीति पर व्यंग्य भी किया है और अपनी राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है। 'जय भारत जय विजय करे' शीर्षक से लिखा गया उनका राष्ट्र गीत उनकी प्रगतिशील राष्ट्रीयता को ही प्रकट करता है।

5. आर्थिक विषमता और प्रगतिशीलता—निराला ने अनेक ऐसी कविताएँ भी लिखी हैं, जिनमें आर्थिक विषमता को प्रगतिशील शैली में प्रकट किया गया है। बेला संग्रह की 'भीख माँगता है अब राह पर' कविता भी इसी दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसी प्रकार 'अणिमा' में संग्रहीत 'चूँकि यह खाना है' शीर्षक कविता में भी व्यंग्यात्मक शैली में आर्थिक शैली को उजागर किया गया है। इस कविता में पूँजीवादी सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए निराला ने कहा है कि पैसा पनप रहा है, प्रेम पल्लवित होता है और कविता पुष्पित होती है। निराला ने लिखा है—

‘चूँकि वहाँ खाना है
इसलिए
दीन है, दीवाना है।
लोग हैं महफिल है
नगमे हैं, साज है, दिलदार है और दिल है
शमा है परवाना है’

पूँजीवादी सभ्यता पर एक और व्यंग्य 'गीत गुंज' पुस्तक में 'मानव जहाँ बैल घोड़ा है' शीर्षक कविता में भी किया गया है। निराला ने मानवता का प्रचार करते हुए यह प्रतिपादित किया है, कि जब तक एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को मनुष्य नहीं समझेगा तब तक पृथ्वी पर सामाजिक जीवन का स्वस्थ विकास नहीं हो सकेगा। अतः उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली में लिखा है—

‘मानव जहाँ बैल घोड़ा है, कैसा तन मन का जोड़ा है ?
किस सावन का स्वांग रचाया, इस बाधा की बनी त्वचा यह
पक पक ऐसा फूटा है जैसे साबुन का फोड़ा है।’

6. मानवतावादी पक्ष और प्रगतिशीलता—निराला आद्यन्त मानवतावादी कवि थे। उनकी प्रगतिशील कविता में यह भावना अभिव्यक्त हुई है। वास्तविकता यह है कि निराला की प्रगतिशील भावना सामाजिक और राष्ट्रीय होते हुए भी अन्ततः मानवतावाद में परिणित हो गई है। निराला की दृष्टि में सुखी विश्व का स्वरूप जिसमें समस्त मनुष्य स्नेह और समानता के रेशमी पाश में बँधे हों, जहाँ ईर्ष्या, द्वेष और ऊँच-नीच के भेदभाव समाप्त हो गए हों तथा जहाँ मनुष्य मनुष्य को प्यार करता हो तो ऐसी मानवता समाई हुई है। 'अणिमा' के अन्तर्गत ऐसी भी कविताएँ हैं जो मानव समाज के उत्थान के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने के लिए लिखी गई हैं। वास्तविकता यह है कि निराला का मानवतावाद व्यक्ति केन्द्रित न होकर समाज केन्द्रित है। वे छोटे से छोटे मनुष्य को सुखी और सम्पन्न देखना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने सामाजिक जीवन में व्याप्त विकृतियों को समाप्त करने का बीड़ा उठाया था। डॉ. ब्रारिका प्रसाद ने लिखा है—

‘निराला के गीत में युग-युग से प्रताड़ित और प्रवंचित मानवता पर हेमने वाले वज्र प्रहार की प्रतिक्रिया दिखलाई देती है। मानव को कायरता और काम पूरता से जगाकर नये युग निर्माण की प्रेरणा देने का काम निराला की कविताएँ करती हैं। निराला प्राचीन रूढ़ियों का विरोध करके चले हैं। इस विरोध में नये युग निर्माण की कामना दिखलाई देती है।’

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निराला छायावादी पीढ़ी के कवि होते हुए भी पूरी तरह प्रगतिशील कवि थे। उनकी प्रगतिशीलता समाज, जीवन, मनुष्य, धर्म और राजनीति जैसे विषयों से जुड़कर अभिव्यक्त हुई है। कविता के अभिव्यक्ति पक्ष के दौरान भी निराला ने अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाया है। निराला की प्रगतिशीलता के अन्तर्गत वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष का भी स्वर दिखलाई देता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि निराला हिन्दी के प्रथम प्रगतिवादी कवि थे।

प्रश्न-14: ‘वह तोड़ती पत्थर’ कविता में छिपे अव्यक्त भावनाओं को निराला जी ने किन रूपों में व्यक्त किया है, स्पष्ट करें।

उत्तर— कवि निराला जी मानवतावादी चिन्तक थे। अतः उनकी कविताओं से स्पष्ट होता है कि उनकी कविताओं में मानवता के लिए गहरी पीड़ा आक्रोश और संवेदना व्यक्त हुई है। ‘वह तोड़ती पत्थर’ कविता में एक शोषित, पीड़ित, दुखित, श्रमनिष्ठ मजदूरिन की हृदय द्रवित वेदना का मार्मिक चित्रण किया है। मानवतावादी संवेदन की दृष्टि से यह कविता बहुत ही प्रभावशाली है। अनेक शीर्षकों को छूती हुई यह कविता काव्य सौन्दर्य को प्रकट करती है।

1. यथार्थता का चित्रण— निराला जी की लेखनी की एक विशेषता है कि उनकी कलम यथार्थ का चित्रण करती है। प्रस्तुत कविता में भी निरालाजी ने किसी मजदूरिन का यथार्थ चित्रण करते हुए लिखा है कि इलाहाबाद के पथ पर ग्रीष्मकाल की तपती दुपहरी

के धूप में एक दुःखी संतप्त मजदूरिन पत्थर तोड़ रही है। जिस स्थान पर वह बैठी है वहां कोई छायादार वृक्ष भी नहीं है। व्यथा के साथ उसकी श्रमनिष्ठा का यथार्थ चित्रण इन पंक्तियों में दिखाई देता है।

वह तोड़ती पत्थर

देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर

वह तोड़ती पत्थर

कोई न छायादार

पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार।।

2. श्रमशीलता का रूप- प्रस्तुत कविता श्रमशीलता की सुगन्ध को प्रस्फुटित करते हुए कवि निरालाजी लिखते हैं कि गर्मी से परेशान और पसीने से भीगी वह मजदूरिन भारी भरकम हथौड़े से पत्थर पर बार-बार प्रहार करके उसे तोड़ने में संलग्न है। उसके माथे से पसीना चू रहा था फिर भी वह अपने कर्म में श्रम कर रही है। वह निरन्तर निष्ठापूर्वक अपना श्रम करती है-

श्याम तन, भर बंधा यौवन

नव-नयन -प्रिय-कर्मरत मन,

गुरु हथोड़ा हाथ,

करती बार-बार प्रहार

.....

हुलक माथे से गिरे सीकर

लीन होते कर्म में फिर यो कहा-

‘मैं तोड़ती पत्थर।’

3. सहानुभूति संवेदना- निरालाजी की कविताओं में मानवतावादी संवेदनाएं स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। उनकी कविताओं में दीन-दुःखी, शोषित-पीड़ित लोगों के प्रति सहज सहानुभूति दिखाई देती है। ‘वह तोड़ती पत्थर’ कविता में भी ऐसे लोगों के प्रति संवेदना का स्वर अत्यन्त मार्मिक रूप में प्रकट हुआ है-

देखते देखा मुझे तो एक बार,

उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार,

देखकर कोई नहीं,

देखा मुझे उस दृष्टि से

जो मार खा रोई नहीं।

सजा सहज सितार,

सुनी मैंने वह, नहीं जो थी सुनी झंकार।।

शोषक- शोषण के प्रति तीखे प्रहार निरालाजी शोषण वृत्तियों वालों के प्रति सदैव विरोधी रहे हैं। उनकी कविताओं में शोषकों के तीखे प्रहार दिखाई देते हैं। प्रस्तुत कविता में भी मजदूरिन को भारी दोपहरी में पत्थर तोड़ते हुए का रूप चित्रित कर शोषकों के प्रति आक्रोश प्रकट किया है तथा मजदूरिन की विवशता और वेदना के प्रति सहानुभूति व्यक्त लिखा है-

गुरु हथोड़ा हाथ

करती बार-बार प्रहार

सामने तरु मालिका अट्टालिका प्राकार

चढ़ रही थी धूप

गर्मियों के दिन

दिवा का तमतमाता रूप,

उठी झुलसती हुई लू

रूई ज्यों जलती हुई भू,

गई चिनगी छा गई,

प्रायः हुई दुपहर
वह तोड़ती पत्थर।।

4.2 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि निरालाजी की 'वह तोड़ती पत्थर' शीर्षक कविता में मानवीय संवेदना का सुन्दर चित्रण हुआ है वही मजदूरिन की श्रमनिष्ठा का साकार रूप भी दिखाई देता है। कवि ने शोषक वर्ग पर तीव्र कुठाराघात किया है। इस तरह की भावाभिव्यक्ति से कविता बहुत प्रभावशाली बन गई है।

इकाई- 5 : महादेवी वर्मा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संरचना

5.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

5.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

5.2 सारांश

5.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

वे मुस्काते फूल

(1)

वे मुस्काते फूल, नहीं-
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप, नहीं-
जिनको भाता है बुझ जाना
वे नीलम के मेघ, नहीं-
जिनको है धुल जाने की चाह
वह अनन्त ऋतुराज, नहीं-
जिसने देखी जाने की राह ॥ 1 ॥

शब्दार्थ—नीलम=मणि विशेष। मेघ=बादल। अनन्त=न समप्त होने वाला। ऋतुराज=बसन्त। अवसाद=दुःख। अमरों=देवताओं।

प्रसंग—प्रस्तुत अंश हमारी पाठ्य-पुस्तक काव्य संचय के वे मुस्काते फूल नामक पाठ से अवतरित है, जिसमें कवयित्री महादेवी वर्मा ने अलौकिक सुख से लौकिक सुख की तुलना की है।

व्याख्या—प्रियतम (अज्ञात परम सत्ता) को सम्बोधित करते हुए महादेवी कहती हैं—हे देव। तुम्हारे लोक में मेरे योग्य कुछ भी नहीं है। तुम्हारे लोक में गुरझारते हुए वे फूल ही हैं जिन्हें गुरझाते आता ही नहीं है। (देवलोक में पुष्प गुरझाते नहीं, रादा प्रफुल्लित रहते हैं) तुम्हारे लोक में तारों के वे ही दीपक हैं जिनको बुझ जाना प्रिय नहीं लगता है। (देवलोक में अनन्त प्रकाश रहता है, बुझ जाने वाले तारों के दीपक वहाँ कहाँ?)

तुम्हारे लोक में ऐसी सूनी आँखें भी नहीं हैं, जिनमें आँसू के रूप में मोती बनते हैं और न वह प्राणों की सेज ही है, जिनमें पीड़ा बेसुध पड़ी सोती रहती है। तुम्हारे लोक में नीलम की कान्ति के समान सुन्दर वे बादल भी नहीं हैं जिन्हें घुलकर बरसने की इच्छा होती है (और मेरे यहाँ ऐसे ही बादल हैं)। तुम्हारे लोक में तो सदा-सदा रहने वाला बसन्त है, जिसे जाने की बात तो मालूम ही नहीं। (तात्पर्य यह है कि देवलोक में मुरझाने वाले पुष्प, बुझ जाने वाले दीपक, घुल जाने की चाह वाले नीलम के मेघ, जाने की राह देखे हुए ऋतुराज, सूने नयन और पीड़ा को प्रश्रय देने वाली, प्राणों की सेज नहीं है। फिर महादेवी को यह प्रिय क्यों हो?)

विशेष—(1) वहाँ कवयित्री ने देव-लोक में पीड़ा और दुःख का न होना बताया है। ऐसा लोक उसे नहीं चाहिए।

(2) यहाँ कवयित्री की दुःखवादी की प्रवृत्ति स्पष्ट है।

(3) अभिव्यक्ति सरल-सहज और प्रसाद-माधुर्य-गुणमयी है।

(4) 'मुस्काते फूल', 'नीलम के मेघ' और 'ऋतुराज का' मानवीकरण किया गया है।

(5) 'तारों के दीप' में रूपक अलंकार है।

(6) 'बेसुध पीड़ा' में अमूर्त का मूर्तीकरण द्रष्टव्य है।

(7) 'नीलम के मेघ' में उपमा है।

(2)

वे सूने से नयन नहीं—जिनमें बनते आँसू-मोती,

वह प्राणों की सेज, नहीं-जिसमें बेसुध पीड़ा सोती,
ऐसा तेरा लोक, वेदना नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं-जिसने जाना मिटने का स्वाद।
क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहास ?
रहने दो हे देव ! अरे यह मेरा मिटने का अधिकार ॥ 2 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अंश में लेखिका महादेवी वर्मा ने अपनी अन्तर्वेदना को अपने दृष्टि के सम्मुख प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

व्याख्या—प्रियतम (अज्ञात परम सत्ता) को सम्बोधित करते हुए महादेवी कहती हैं—देव ! तुम्हारा लोक तो केवल प्रसन्नता और आनन्द का ही स्रोत है। वहाँ न वेदना है, न अवसाद। उसमें किसी ने न तो जलना ही जाना है, न वहाँ किसी ने मिटने का—अपने को किसी के लिए अर्पित करने का—स्वाद ही चखा है। तुम्हारी करुणा के उपहार के रूप में (अर्थात् करुणा के बदले) फिर मैं तुम्हारा लोक क्यों लूँ ? देव ! मेरे लिए मेरा मिटने का अधिकार ही रहने दो, मुझे तुम्हारा लोक नहीं चाहिये।

विशेष—(1) यहाँ वेदना-भाव की अभिव्यक्ति हुई है।

(2) अभिव्यक्ति की सरलता द्रष्टव्य है।

5.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. 'महादेवी वर्मा की कविताओं में ससीम और असीम में लौकिक और अलौकिक का मिलन दिखालाई देता है।' इस कथन को ध्यान में रखते हुए उनकी कविताओं के वैशिष्ट्य को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

महादेवी के रहस्यवाद को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—आदि काल से ही भारतीय सभ्यता में लौकिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता की प्रधानता रही है। आत्मा की तुष्टि के लिए और जीवन में पूर्णता लाने के लिए हम बाह्य पार्थिव उपकरणों की अपेक्षा अन्तर के वैभव को अधिक महत्त्व देते थे। हमारी इस अन्तःवृत्ति ने हमें मानव-मानव में मानव प्रकृति में तथा बाह्य जगत के विभिन्न उपकरणों में एकता की खोज करना सिखलाया, हमें दुःख में सुख, सुख में दुःख, अपूर्णता में पूर्णता को खोजने की दृष्टि दी है। यही दृष्टि आत्मतुष्टि की द्योतक है। रहस्यवाद की अभिव्यक्ति अस्पष्ट, धूमिल और रहस्यमयी होने के कारण इसका एक आधार दर्शन-शास्त्र भी माना गया है। जीवात्मा प्रकृति और परमात्मा का तादात्म्य रहस्यवाद का विषय है। इसका एक आधार अद्वैतवाद भी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—'तर्क और ज्ञान के स्वर, बुद्धिवाद के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना और कल्पना के सहारे अनुभूति के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है। अद्वैतवाद में उस असीम सत्ता के सान्निध्य की माकूल प्रेरणा है, उस असीम चेतना का, असीम सौन्दर्य का परिचय मात्र है, बौद्धिक एकता का ज्ञान मात्र है। अतः अद्वैतवाद रहस्यवाद का प्रथम सोपान है।'

हिन्दी में रहस्यवाद की अवतारणा सर्वप्रथम कबीर ने की। वही धारा आगे बढ़ती हुई जायसी के 'पद्मावत' को विकसित करती हुई आधुनिक युग में पहुँची। इस युग के प्रमुख कवि पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी माने जाते हैं। महादेवी जी का रहस्यवाद वस्तु, शैली, भाव और अनुभूति की दृष्टियों से भारतीय भावना से अनुप्राणित है। उनके रहस्यवाद में शुद्ध, निर्मल दर्शन आत्मीय भावना के दर्शन होते हैं।

उनका रहस्यवाद उपनिषदों का सार है, जिसे कबीर ने अपनी भावुक तन्मयता और उपासना की एकाग्रता से ओत-प्रोत कर दिया था। स्वयं महादेवी जी अपने रहस्यवाद का परिचय इस प्रकार देती हैं 'आज गीत में हम जिसे रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं। उस परा विद्या की अपार्थिवता ली है, वेदान्त के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की है। लौकिक प्रेम से तीव्रता ली और इन सबको कबीर ने सांकेतिक दाम्पत्य-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्ब दे सकता उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका। इस प्रकार महादेवी जी ने उस भारतीय रहस्यवाद को ग्रहण किया जिसमें उपनिषदों का शुद्ध सात्त्विक चिन्तन तथा कबीर और मीरा का मधुर भाव युक्त माधुर्यभाव था। महादेवी जी की सारी साधना उसी असीम और अव्यक्त का रहस्य सुलझाने की ओर उन्मुख हुई है। उनका कहना है—'मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।'

रहस्यवाद के मूल में साधक के हृदय में अपने प्रियतम के प्रति मिलन की आकुल प्रेरणा होती है। राम कृष्णदास जी ने नीरजा की भूमिका में लिखा है—कवि की आत्मा मानो इस विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है। उनकी दृष्टि

में विश्व की सम्पूर्ण प्राकृतिक शोभा-सुषमा एक अनन्त अलौकिक चिर सुन्दर छायामात्र है। इस प्रतिबिम्ब जगत को देखकर कवि का मन ललक उठा—

‘बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।’

यदि आत्मा और ब्रह्म के मध्य ‘योग’ शब्द ही अधिक प्रिय है तो महादेवी जिस योग में रत हैं वही भाग ‘योग’ है। उन्होंने हृदय की भावना के आधार पर उस परम सुन्दर को प्रत्यक्ष किया है और उसी के बल पर अभिलाषा की है। महादेवी ने उसे जगत के माध्यम से पहचाना है।

‘कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रातः
मिटाता रंगता बारम्बार,
कौन जग का वह चित्राधार’

अपने प्रियतम से मिलने के लिए महादेवी को जिन-जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। विरहिणी को स्वयं तिल-तिल कर जलने की तकनीक भी चिन्ता नहीं, उसे तो इस बात की चिन्ता है कि उसके दीपक के जलने से जो कालिमा उत्पन्न होगी उससे कहीं प्रियतम का पथ कालिमामय न हो जाय—आत्मा का भव्य रूप देखिए—

‘यह न झंझा से बुझेगा,
बन मिटेगा मिट तनेगा,
भय यही है हो न जावे
प्रिय तुम्हारा पंथ काला।’

मुरधता सुधि की जननी है, सुधि पीड़ा की। किसी आलोचक ने लिखा—‘वेदना महादेवी के काव्य-गगन में वायु-सी व्याप्त है। पीड़ा उन्हीं के दर्शन से प्राप्त हुई है अतः वह त्याज्य नहीं। हार बनना है तो हृदय बिंधवाना ही होगा।’

रहस्यवाद का मूलाधार वास्तव में कठिनतम इन्द्रियदमन और योग साधना है। परन्तु कवियों ने उसमें अनुभूति मूलक विरह-मिलन प्रधान भक्ति का समावेश कर दिया है। इसके कारण उनकी रहस्यवादी भावना अत्यन्त आकर्षक और मधुर हो गई है। आधुनिक कवियों में इसीलिए रहस्यवाद की सबसे सुन्दर अभिव्यक्ति महादेवी की कविता में हुई। उनकी परवर्ती सभी कविताओं का एक ही विषय है—

एक अनन्त अज्ञात सत्ता की उपस्थिति का अनुभव और उसके प्रति विरह मिलन का भाव। अपनी संकल्पनात्मक अनुभूति के सहारे महादेवी ने विरह-मिलन के इस भाव को अधिक से अधिक स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखा है। अपने रहस्य गीतों के सम्बन्ध में महादेवी जी स्वयं लिखती हैं—‘रहस्य गीतों का मूलाधार भी आत्मानुभूति की अखण्ड चेतना है पर वह साधक की मिलन-विरह की अनुभूतियों में इस प्रकार घुल-मिल गई कि उसकी अलौकिक स्थिति भी लोकसामान्य हो गई।’ रहस्य गीतों में आनन्द की अभिव्यक्ति के सहारे हम चित् और सत् तक पहुँचते हैं। महादेवी जी अपने रहस्यवाद में सगुण की उपासिका नहीं हैं। उनका रहस्यवाद निर्गुण अनुभूति पर आश्रित है अतः जन-साधारण के लिए थोड़ा अस्पष्ट भी है। उनका कहना है कि अपने अलौकिक क्षणों में जीवात्मा अपनी प्राकृतिक बाधाओं से ऊपर उठकर अनन्त असीम के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। वे आँसू बहाकर कृतज्ञता प्रकट करती हैं—

‘झरते नित लोचन मेरे हों।
जलती जो युग-युग से उज्ज्वल,
आभा से रच-रच मुक्ताहल,
वह तारक माला उनकी।’

वह संकल्पात्मक विरह-मिलन, आत्मा का रुदन-हास रहस्यवादी काव्य की मधुरतम सम्पत्ति है और महादेवी के काव्य में इस सम्पत्ति का महत्वपूर्ण स्थान है।

निर्गुण रहस्यवादी कवियों की भाँति वे भी उस अनन्त का क्रीड़ा स्थान यह मानव-जीवन ही मानती हैं। साधक का अंग-अंग ही तो उसकी मधुरता, उसकी सुन्दरता को व्यंजित करता है। उसे पने के लिए अपने से बाहर उसे कहीं नहीं जाना है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे।

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।

मेरी श्वासें करती रहती नित प्रिय का अभिनन्दन रे।

महादेवी जी को छोड़कर आधुनिक कवियों में पंत, निराला, रामकुमार वर्मा आदि के गीतों में रहस्यवाद की मधुर झंकार पैदा हुई है। किन्तु वे सब केवल रहस्यवादी नहीं। महादेवी की कविता में तो रहस्यवाद के अतिरिक्त अन्य कोई झंकार मिलती ही नहीं। उनकी सारी कला, सारी अनुभूति, सारी कल्पना, सारा वैभव, केवल ससोम और असीम के सम्बन्ध को खोजने में ही समाप्त हुआ है। सत्य तो यह है कि पिछले पाँच हजार वर्षों की भारतीय रहस्यवादी परम्परा उनके गीतों में नये संगीत, नयी कल्पना और नयी मूर्ति के साथ फूट पड़ी है। रहस्यवादी कवियों के काव्य में दुःखवाद की प्रधानता अधिक है। उनकी कविता की प्रतिपंक्ति में रोदन है। इसका एक प्रकार का आध्यात्मिक असन्तोष है। दुःख की धारा 'प्रसाद' में 'औसू' पन्त की ग्रन्थि से महादेवी के काव्य-क्षेत्र में आकर पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो गयी है। महादेवी का दुःखवाद आध्यात्मिक है। दर्शन के गम्भीर अध्ययन, स्त्री स्वभाव और साहित्य परम्पराओं से प्राप्त हुई सुगमता ने उनके आध्यात्मिक दुःखवाद को अधिक परिपुष्ट रूप दे दिया। रामकृष्ण दास लिखते हैं— 'उनकी काव्य साधना आध्यात्मिक है। उसमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन है। कवि की आत्मा मानो इस विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है।'

'विरह का जल-जात जीवन विरह का जलजात,

वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास।

अपना जीवन दीप मृदुल तर,

वर्ती कर निज स्नेह सित उर।

मधुर मिलन में मिट जाना तू

उसकी उज्ज्वल स्मित में धुल-खिल।

मंदिर-मंदिर मेरे दीपक जल। प्रियतम का पथ आलोकित कर।'

इनके रहस्यवाद के मूल में अद्वैतवाद की भावना निहित है। जीवन सदैव ब्रह्म के प्रति विकल रहता है, प्रतिक्षण सच्चे स्वरूप को पाने के लिए प्रयत्नशील होता है। महादेवी जी स्वयं को परब्रह्म ही का एक अंश मानती हैं। उनका अपना पृथक् अस्तित्व कुछ नहीं। उन्हें अपने प्रियतम के सत्य स्वरूप का ज्ञान हो गया है। उनके दृष्टिकोण से अद्वैत की भावना तो उनके लिए है जो द्वैतवादी हैं। महादेवी तो अहम् वृद्धोस्मि के सिद्धान्त को स्वीकार करती हैं, फिर प्रेयसी और प्रियतम के अभिनय की आवश्यकता ही क्या है? वे कहती हैं—

'तुम मुझ में प्रिय, फिर परिचय क्या।

मुझ में नित बनते मिटते प्रिय।

स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या?

काया छाया में रहस्यमय! प्रेयसी प्रियतम का अभिनय क्या।'

कबीर की भाँति महादेवी आत्मा की साधना में बहुत विश्वास रखती हैं। आत्मा अपनी इष्ट प्राप्ति के लिए कई प्रकार के प्रयत्न करती है। मिलनाकुलता में प्रतिक्षण आगे बढ़ती जाती है। महादेवी जी ने अपने ज्ञान का सूक्ष्मतम पथ चुना है। कर्मकाण्ड के पथ पर चलकर यज्ञादिको स्वीकार करना पड़ा है।

इसी प्रकार ज्ञान मार्ग में आध्यात्मिक प्रयास की शांति के लिए चिंतन की आवश्यकता होती है। उनकी साधना हिमगिरि के समान महान् है। एक ओर जहाँ वे सांसारिक सुख-दुःख से किसी प्रकार प्रभावित नहीं होतीं। उन्होंने अपने आँसुओं से संसार के ताप को समाप्त करने का प्रयत्न भी किया है। महादेवी जी की साधना का मार्ग विवेक का मार्ग है। अतः उन्होंने स्थूल-पूजा का विरोध किया है। मूर्ति पूजा में जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है, महादेवी जी को उनकी आवश्यकता नहीं। वे उपकरण उनके शरीर में सर्व सुलभ हैं—

'उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे,

मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे,

पद रज को धोने उमड़े आते लोचन में जल कण रे,
स्नेह-भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे'

महादेवी जी ने वेदान्त के दर्शन (प्रतिबिम्बवाद) का ग्रहण भी कई स्थानों पर किया है। उन्होंने आत्मा के स्वरूप को संकुचित दायरे से निकाल कर उसे विराट और व्यापक व्यक्तित्व प्रदान किया है। महादेवी जी की साधना इस स्थिति पर आकर चरम सीमा पार पहुँची हुई ज्ञात होती है। उनकी आत्मानुभूति के उदाहरण—

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तप भी
तार भी आघात भी झंकार की गति भी
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुप विस्मृति भी
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ

5.2 सारांश

इस प्रकार महादेवीजी ने धार्मिक रहस्यवाद को भी काव्य के रूप में ढालकर, कल्पना का पुट लगाकर जो रूप रखा है उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है अपितु यह भारतीय दर्शन का प्राण तत्त्व है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल महादेवी जी की इस स्वाभाविक रहस्य साधना के विषय में लिखते हैं— 'स्वाभाविक रहस्य साधना बड़ी मधुर और रमणीय है इसमें सन्देह नहीं।'।

रहस्यवादी कवियों ने प्रकृति के कोने-कोने में अपने प्रिय को खोजा है। अतः रहस्यवाद में भी प्रकृति के भव्य और उदात्त रूप का चित्रण करना, उसका संवेदनशील रूप दिखाना रहस्यवादी कवियों का मुख्य ध्येय रहा है। जायसी के पद्मावत और कबीर की उक्तियों में, पंत और प्रसाद के दार्शनिक दर्शन में प्रकृति का सहयोग निश्चित रूप से रहा है। महादेवी जी ने अपनी रहस्य भावना को व्यक्त करने के लिए जिन प्राकृतिक उपकरणों और व्यापारों को चुना है, वे बड़े हृदयस्पर्शी और मनोहारी हैं। महादेवी जी की रहस्य भावना और अनुभूतियों की वास्तविक अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का मधुर संयोग आवश्यक है।

इकाई- 6 : रामधारीसिंह दिनकर

संरचना

- 6.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 6.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 6.2 सारांश

6.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

जनतंत्र का जन्म

(1)

सदियों की ठण्डी-बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने की ताज पहन इठलाती है,
दो राह, समय के रथ का घघर-नाव सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।
जनता ? हाँ, मिट्टी की अबोध मूरतें, वही,
जाड़े-पाले की कसक सदा सहने वाली,
जब अंग-अंग में लगे साँप हों चूस रहे,
तब भी न कभी मुँह खोल दर्द कहने वाली ॥ 1 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश सामाजिक चेतना के धनी कवि श्री रामधारीसिंह दिनकर द्वारा रचित कविता 'जनतंत्र का जन्म' से अवतरित है। कवि ने प्रस्तुत कविता में स्वतंत्र जन-मन की भावनाओं का चित्रण किया गया है।

व्याख्या—कवि दिनकर स्वतंत्र जनमानस की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि चिरकालिक प्रतीक्षा के उपरान्त हमारे देश में जनता का राज आया है जिससे जन-मन प्रफुल्लित हो उठा है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो परतन्त्रता रूपी राख के ढेर में छिपी हुई आग की चिंगारी फिर से जगमगा उठी है। जनतन्त्र के स्थापित हो जाने पर जनता का राज्य हमारे देश में स्थापित हो गया है। जनता स्वयं मालिक बन गयी है इससे ऐसा लगता है कि मानो धरती ने स्वर्णताज को धारण कर लिया हो। कवि कहता है कि हमारे देश में जनसत्ता को आने के लिए रास्ता प्रदान करो और जनतन्त्र आने से जो परिवर्तन हो रहा है उस पर अपनी दृष्टि डालो। अब राजतन्त्र की भावना को त्यागकर सिंहासन को रिक्तता प्रदान कर दो क्योंकि जनता अपने शासन संचालन के मुकुट को स्वयं धारण कर सिंहासन विराजित होकर अपने दायित्वों का निर्वहन करेगी।

कवि जनता बोधक शब्द पर प्रश्न चिह्न लगाता हुआ कहता है कि राजतन्त्र भारत में जनता का राज्य है। यह बात तो सच है परन्तु भारत की जनता तो अशिक्षा के कारण भोली है और गरीबी में जीवन को यापित करने वाली है। वह शोषकों द्वारा शोषित और अपनी परेशानियों को सहन करके भी अपना मुँह नहीं खोलती है। ऐसी भारतीय जनता क्या सच्चे अर्थों में जनतन्त्र के दायित्व का निर्वहन कर सकेगी ?

विशेष—कवि ने स्वतंत्र भारत में जनता के राज्य की ओर संकेत करके उसकी अबोधता, गरीबी और शोषित भाव की ओर दृष्टिपात कर कहना चाहा है कि क्या वह अपने दायित्वों को राही तरह से निभा सकेगी ?

(2)

लेकिन, होता भूडोल, बवंडर उठते हैं,
जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है,
दो राह, समय के रथ का घघर-नाव सुनो,
सिंहासन खाली करो की जनता आती है।
हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती।
साँसों के बल से ताज हवा में उड़ता है,
जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ

वह जिधर चाहती काल उधर ही मुड़ता है ॥ 2 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अंश में भारतीय जनता की अपार शक्ति का अनुभव कराते हुए स्वतंत्रता की बागडोर को पूर्ण जतन से संभालने की प्रेरणा प्रदान की है।

व्याख्या—कवि दिनकर जनता की शक्ति का चित्रण करते हुए कहते हैं कि जनता जहाँ फल और दूध मुँह बच्चे की तरह अपनी अशिक्षा, शोषण और गरीबी के कारण अज्ञानी है वहीं जनता एक बहुत बड़ी शक्ति भी है। जब वह अपने अस्तित्व को पहचान कर जाग उठती है तब उसकी हुँकार से पृथ्वी हिलने लगती है और क्रान्ति का बवंडर उठ खड़ा होता है क्योंकि उस समय वह क्रोधित होती है और उसकी भौहों में वक्रता आ जाती है। ऐसी स्थिति में उसकी हुँकार सुनाई देने लगती है इसलिए कवि कहता है कि अब सिंहासन खाली कर दो क्योंकि स्वतन्त्र भारत में जनता का राज्य स्थापित हो चुका है।

कवि शासक वर्ग को सचेत करता हुआ कहता है कि जनता की हुँकार इतनी प्रबल और प्रभावशाली होती है कि शोषकों के महलों की नींव भी खिसक जाती है अर्थात् उस समय बड़े-बड़े जमींदार शासकों का भी अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। कवि कहता है कि कुछ जनता का रास्ता रोकने की शक्ति किसी में भी नहीं होती है। उसके प्रभाव के समक्ष समस्त शक्तियाँ धूल धूसरित हो जाती हैं। अपनी आकांक्षा के भावरूप सत्ता में परिवर्तन कर देती है।

विशेष—जन शक्ति की प्रबलता की ओर कवि ने संकेत किया है।

(3)

अब्दों, शताब्दियों, सहस्रोताब्द का अंधकार
बीता, गवाक्ष अंबर के दहके जाते हैं,
यह और नहीं कोई, जनता के स्वप्न अज्ञय
चीरते तिमिर का वक्ष उमड़ते आते हैं।
सबसे विराट जनतंत्र जगत् का आ पहुँचा
तैतीस कोटि-हित सिंहासन तैयार करो
अभिषेक आज राजा का नहीं, प्रजा का है
तैतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो ॥ 3 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अंश में कवि दिनकर प्रजातंत्र के भव्य स्वागत हेतु समस्त भारतवासियों से आग्रह कर रहे हैं और इस आजादी को आसान न मानकर जनता जनार्दन की उपलब्धि मानते हैं।

व्याख्या—कवि दिनकर भारत में जनतन्त्र स्थापना की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि अरबों वर्षों, शताब्दियों और हजारों वर्षों का अन्धकार जो हमारे देश पर विभिन्न शासकों के माध्यम से छाया हुआ था और इन शासकों ने अपनी-अपनी इच्छा के अनुरूप इस देश पर शासन किया था। अब वह दूर हो गया है क्योंकि अब हमारे देश में जनता के राज्य की स्थापना हो चुकी है। इससे अम्बर रूपी बड़े-बड़े शोषक शासकों के कलैजे भी जल उठे हैं। यह और कुछ भी नहीं है यह जनता की प्रबल भावनाओं की ही विजय है जिसके बल पर उसने परतंत्रता के शासक के अन्धकार को दूर कर राज्यतन्त्र को स्थापित कर दिखलाया है। कवि कह रहा है कि हमारे देश में प्रजातन्त्र की स्थापना का श्रेय जनता को ही है जिसने अपने बलिदान, त्याग और समर्पण के बल पर इसकी स्थापना की है। हमारे देश का जनतन्त्र विश्व का सबसे महान तत्कालीन जनतन्त्र है। कवि कहता है कि राजतन्त्र में सबको समान हक होता है इसलिए तत्कालीन जनसंख्या के अनुसार तैतीस करोड़ जनता के लिए जनता का सिंहासन तैयार करो। इस सिंहासन पर जनता विराजित होगी इसलिए जनतंत्र में अभिषेक राजा का नहीं होता है, अभिषेक प्रजा का होता है। क्योंकि प्रजा ही अपने आप में राजा हुआ करती है इसलिए जनतन्त्र स्थापना में तैतीस करोड़ जनता के सिर पर राज मुकुट को धारण करो।

विशेष—जनतन्त्र की विशालता एवं उसकी विशेषता की ओर कवि ने संकेत किया है कि हमारे देश में प्रजातन्त्र अपने जिस विशालतम रूप में है। विश्व के इतने बड़े स्तर पर किसी और देश में नहीं है।

6.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. 'दिनकर का काव्य राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है।' इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

अथवा

'दिनकर के काव्य का प्रमुख स्वर राष्ट्रीयता का है।' सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—परिचयात्मक भूमिका—मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के प्रथम राष्ट्र कवि थे तो दिनकर उनके सच्चे उत्तराधिकारी थे। गुप्त जी की राष्ट्रीयता में सांस्कृतिक तत्त्व जितना गहरा था, उसी का एक व्यापक पक्ष में हमें दिनकर के काव्य में भी मिलता है। दिनकर ने प्रारम्भ से ही ओजस्विता एवं तेजस्विता से परिपूर्ण कविताएँ लिखीं। इनकी कविताओं में योद्धा का सा गम्भीर घोष है, अनल का-सा तीव्र ताप है और सूर्य का-सा प्रखर तेज है। इसीलिए वे 'अनल' के कवि कहलाते हैं। दिनकर ने चौदह वर्ष की अवस्था में अपना पहला गीत लिखा था। आपको राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री से राष्ट्रप्रेम, स्वदेशानुराग एवं राष्ट्रभाषा प्रेम की चिंगारी प्राप्त हुई थी तथा माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि तत्कालीन कवियों से ओजस्वी काव्य की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। अज्ञेयजी ने दिनकर को मैथिलीशरण गुप्त का सभ्य और सही उत्तराधिकारी घोषित किया है। गुप्त जी के बाद राष्ट्रीयता की सम्यक् और प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति दिनकर के काव्य में ही हुई है।

राष्ट्रीयता का अर्थ—हेन्सकोहन ने राष्ट्रीयता को मस्तिष्क की वह स्थिति माना है जिसमें व्यक्ति की उच्चतम निष्ठा राष्ट्र के प्रति हो। राष्ट्रीयता एक ऐसी चेतना है जो मानव मन को देश के प्रति श्रद्धालु, समाज के प्रति सहानुभूतिमय और मानवीय सांस्कृतिक विचारों को प्रश्रय देती है। राष्ट्रीयता एकता की भावना से संयुक्त होती है। राष्ट्र के प्रति श्रद्धा, अतीत के प्रति सम्मान, स्वातन्त्र्य के लिए आग्रह और भाषा, जाति, धर्म व संस्कृति के प्रति एकता का भाव आदि बातें राष्ट्रीयता को विकसित करती हैं। राष्ट्रीयता के ये तत्त्व परिस्थिति और परिवेश के साथ बदलते रहते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर काल में आजादी पाकर हमने देशोत्थान या सांस्कृतिक नव-निर्माण की कामना की। अतः राष्ट्रीयता को व्यापक भाव मानना चाहिए। दिनकर की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक भावना पर आधारित है। उसमें विद्रोह और क्रान्ति का स्वर भी है। अतीत का गुणानुवाद भी है, वर्तमान पर क्षोभ भी है और नव निर्माण की तीव्र कामना भी है।

राष्ट्रीयता और दिनकर का काव्य—दिनकर का काव्य राष्ट्रीयता की भावनाओं से ओत-प्रोत है। उनकी राष्ट्रीयता ओजस्वी भावों, पौरुषमयी ललकार, क्रान्ति व विद्रोह की आग की लपटों से निकली संस्कृति का विकसित रूप है। वे पौरुष और क्रान्ति का उद्घोष करते सदैव वीर धर्म आमन्त्रण देते रहे हैं। अतीत का गौरवगान करते हुए समाज में नई चेतना फैलाने का काम दिनकर की अधिकांश कविताएँ करती हैं। क्रान्ति, विद्रोह और पौरुष की आग जलाता हुआ दिनकर कवि जिस राष्ट्रीयता का पौरुष बना रहा उसके पीछे उसकी सांस्कृतिक दृष्टि कार्यरत रही है। अतः दिनकर के काव्य में उपलब्ध राष्ट्रीयता को इन बिन्दुओं के सहारे देखा-समझा जा सकता है—

1. क्रान्ति की भावना—दिनकर की प्रथम रचना 'हुंकार' क्रान्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत है। इस संग्रह में विप्लव एवं विद्रोह की आग बरसाने वाली कविताएँ संकलित हैं। इस काव्य संग्रह की रचनाएँ पढ़कर श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने लिखा है— 'हमारे क्रान्ति युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में, इस समय 'दिनकर' कर रहा है। क्रान्तिवादी को जिन-जिन हृदय मंथनों से गुजरना होता है। दिनकर की कविता उनकी सच्ची तरबी है।' 'रेणुका' में भी कवि के क्रान्तिकारी विचार अभिव्यक्त हुए हैं। 'करगै देवाय' कविता में उन्होंने लिखा है—

'क्रान्ति-धानि कविते। जागे, उठे अम्बर में आग लगा दे।

पतन पाप पाखण्ड जले, जल में ऐसी ज्वाला सुलगा दे॥'

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए देश में क्रान्तिकारी दल जिस प्रकार की कार्यवाही में संलग्न था, कवि उसका समर्थन करता है। वह हिंसात्मक क्रान्ति में श्रद्धा रखता हुआ कहता है—

'रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ जाने उनको स्वर्ग धीर।

पर फिरा हमें गांडीव-गदा, लौटा के अर्जुन भीमवीर॥'

हुंकार में पहुँच कर कवि की वाणी अधिक पौरुषमयी हो जाती है। वह अपने विकल गीतों को स्वतन्त्रता के यज्ञ में आहुति देने के लिए संयोजित करता है।

'रण की घड़ी जलन की बेला, तो मैं कुछ गाऊँगा।

सुलग रही यदिशिखा यज्ञ की अपना हवन चढ़ाऊँगा॥'

इसी प्रकार 'अनल-किरीट' कविता में भी दिनकर ने क्रान्ति का उद्घोष किया है। उसने स्पष्ट कह दिया है कि देश पर आशिक

होने वाले व्यक्ति को अग्नि मुकुट धारण करना चाहिए—

‘लेना अनल किरीट भाल पर ओ आशिक होने वाले।
कालकूट पहले पी लेना, सुधाबीज बोने वाले।’

2. पौरुष की आग—दिनकर जी की राष्ट्रीयता की दूसरी विशेषता वह पौरुष की आग है जो कवि के प्राणों में तो जली ही है, उसे उसने सभी के मन प्राण में जलाना चाहा है। उनकी ‘अनल किरीट’ कविता में यही आग है। कवि राष्ट्रीय भावों से भर कर कहता है जो जागता है वही जीतता है। जो अपने खंजर की जंग अपनी ही अंगुली पर छुड़ाते हैं, वे ही पौरुषमय होने के कारण जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करते हैं। इन पंक्तियों में कवि ने इसी पौरुष को स्पष्ट किन्तु तीखी वाणी दी है—

‘धरकर चरण विजित शृंगों पर झण्डा वही उड़ाते हैं,
अपनी ही उंगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते हैं।
पड़ी समय से होड़, खींच मत तलवों से कांटे झुक कर,
नांद कहां उनकी आँखों में जो धम के मतवाले हैं।’

इसी तथ्य को ‘कुरुक्षेत्र’ के लिए किये गये ‘प्रतिशोध’ शीर्षक को इन पंक्तियों में प्रकट किया है—‘पुण्य खिलता है चन्द्रहास की विभा में तब पौरुष की जागृति कहती धर्म-युद्ध है।’ वस्तुतः दिनकर की राष्ट्रीयता के मूल में पौरुष की आग धधक रही है।

3. विद्रोह का स्वर—दिनकर ने क्रान्ति का अलख जगाते हुए कहा है कि शोषण को सहना सबसे बड़ा पातक कहलाता है। ‘पातक मनुष्य का है, मरण मनुष्यता का, ऐसी शृंखला में धर्म विप्लव है, क्रान्ति है’ कहकर दिनकर ने विद्रोही स्वर प्रसारित करते हुए अपनी राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्त किया है। जब कवि अग्नि-धर्म की प्रेरणा देता है तब भी यही विद्रोही स्वर उसकी राष्ट्रीय भावनाओं का अभिव्यंजक बनकर आता है—

‘धर्म है हुताशन का धधक उठे तुरन्त
कोई क्यों प्रचण्ड वेग वायु को बुलाता है?’

4. अतीत का गौरव गान—भारत का अतीत अत्यन्त उज्ज्वल और गौरवशाली रहा है। उसी अतीत का गुणगान करता हुआ कवि दिनकर अपनी राष्ट्रीयता की भावनाओं को व्यक्त कर सका है। उनका कथन भी है कि ‘जिस कवि को अपने राष्ट्र की अतीत की गरिमा के रूप पर गर्व नहीं, वह प्रगतिशील नहीं, अधोशील है।’ स्पष्ट ही दिनकर की अनेक कविताओं में अतीत का उज्ज्वल रूप कवि के लिए प्रेरक तत्त्व बनकर आया है। अतः वे प्रगतिशील चेतना के वाहक हैं—

‘जागति पर छाया करती थी कभी हमारी भुजा विशाल।
बार-बार झुकते थे पट पर भीरु यवन के उन्नत भाल॥
विजय चन्द्रगुप्त के पद पर सैल्यूस की वह मनुहार
तुझे याद है देवी! मगध का वह विराट उज्ज्वल शृंगार।’

अतीत वैभव के स्वरूप को कवि दिनकर की ‘कस्मै देवाय’ वैभव की समाधि और ‘समाधि के प्रदीप’ आदि अनेक कविताओं में देखा जा सकता है।

5. अखण्डता का समर्थन—दिनकर की राष्ट्रीयता वर्तमान की विकृतियों से क्षुब्ध होकर अखण्डता की समर्थक है। दिनकर भारत में धर्म, संस्कृति, भाषा और वेशभूषा आदि सभी स्थितियों में एकता के समर्थक हैं। कवि की यह मान्यता है कि देश की अखण्डता की रक्षा करना राष्ट्रीयता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। ‘कुरुक्षेत्र’ में कवि ने मनोबल एवं देहबल दोनों को ही आवश्यक माना है। किसी भी देश में आवश्यकता पड़ने पर तथा देश की अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कवि दिनकर ने युद्ध का समर्पण किया है—

‘पुण्य खिलता है चन्द्रहास की विभा में,
तब पौरुष की जागृति कहाती धर्म युद्ध है।’

कवि की रचनाएँ विद्रोह और विप्लव की आग बरसाने वाली हैं। क्रान्तिवादी को जिन-जिन हृदय मंथनों से गुजरना होता है। दिनकर की कविता उसकी सच्ची तस्वीर है। कवि दिनकर का ओजस्वी स्वर, ‘रसवंती’, ‘इन्दुगीत’, ‘रेणुका’, ‘सामधेनी’, ‘इतिहास के आँसू’, ‘धूप और धुँआ’ आदि काव्य संग्रहों में विद्यमान हैं।

निष्कर्ष—प्रस्तुत विवेचन के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि दिनकर सच्चे राष्ट्र कवि थे। कवि दिनकर की राष्ट्रीयता

क्रान्ति का आह्वान है, अग्नि धर्म की प्रतिष्ठा है, अतीत का गौरव गान है और भारत की अखण्डता का समर्थन है। यह मानना भ्रम होगा कि दिनकर हिंसा को फैलाना चाहते थे। अपितु यह कहा जा सकता है कि दिनकर शरीर की लड़ाई से उनकी शक्तियों से मन की लड़ाई से, मन की शक्ति से लड़ना चाहते थे। अतः उन्होंने सदैव ही उस राष्ट्र-निर्माण का स्वप्न देखा जो सभी को जीने और रहने का समान अधिकार देता है। अपनी सभी कविताओं में दिनकर ने बड़ी दृढ़ता एवं गम्भीरता के साथ कर्म, उत्साह, पौरुष एवं उत्तेजना के गीत गाये हैं और जनजीवन में प्राण फूँकने का कार्य किया है। कुरुक्षेत्र में कवि ने व्यक्ति, समाज और राष्ट्र से भी ऊँचा उठकर युद्ध जैसी अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। दिनकर की आरम्भ से लेकर अब तक की कविताओं के अध्ययन में यह ज्ञात होता है कि कवि ने प्रायः ऐसी ही कविताओं का सृजन अधिक मात्रा में किया है जो जन-जीवन को शौर्य, पराक्रम और वीरता से परिपूर्ण कर राष्ट्रीयता का अमर मंत्र फूँकने वाली हैं।

प्रश्न-2. दिनकर के काव्य का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कीजिए और उनकी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—‘रामधारी सिंह दिनकर’ का काव्य छायावाद और प्रगतिवाद अथवा कहें कि कल्पना और मिट्टी से मिलकर बना है। उसमें कल्पना का वैभव, आदर्श के स्वप्न और बुद्धि व तर्क का वैभव भी है और यथार्थ का ताप भी है। प्रगतिशील चेतना के वाहक, राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचारक और क्रान्ति दृष्टा दिनकर का जन्म बिहार राज्य के मुंगेर जिले के अन्तर्गत सीमरिया गाँव में हुआ था। साधारण से कृषक परिवार में पैदा होकर भी दिनकर ने अपनी काव्य प्रतिभा में यह प्रमाणित कर दिया है कि प्रतिभा और विद्वता किसी वर्ग विशेष की थाती नहीं है।

काव्य परिचय—दिनकर की काव्य यात्रा की कहानी बड़ी ही विचित्र और अद्भुत रही है। मूलतः वे राष्ट्रीय भावों के वाहक, प्रगति के सूत्रधार और मानवतावादी विचारों को अभिव्यक्ति देने वाले प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी प्रमुख काव्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है।

मुक्तक काव्य—बारवोली विजय, रेणुका, हुंकार, रसवंती, झन्झ गीत, सामधेनी, बापू, इतिहास के आंसू, दिल्ली, धूप और धुआं, नीलकुसुम, नीम के पत्तों को सुभाषित, सीपी और शंख, परशुराम की प्रतिक्षा, कोयला और कर्तव्य आदि।

प्रबन्ध रचनाएँ—प्रणभंग, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी और उर्वशी। कुछ बिज्ञान ‘परशुराम की प्रतिक्षा’ जैसी लम्बी कविता को भी लघु प्रबन्ध मानते हैं।

‘रेणुका’, ‘हुंकार’, ‘रसवंती’ में एक ओर छायावादी रोमानियत, मधुर कल्पना व भावुकता मिलती है तो दूसरी ओर प्रगतिवादी सामाजिक चेतना। ‘रेणुका’ में अतीत के प्रति गहरा आकर्षण है। ‘हुंकार’ में कवि दीनता और विपन्नता के प्रति दयार्द्र हो गया है। रही रसवंती उसमें कवि सौन्दर्य का प्रेमी बन गया है। ‘झन्झ गीत’ में कवि के अन्तर्जगत और बाह्यजगत का झन्झ है। ‘सामधेनी’ में कवि धीरे-धीरे क्रान्ति से शान्ति की ओर आता दिखाई देता है। ‘कुरुक्षेत्र’ में कवि का शंकाकुल मन समस्याकुल और प्रश्नाकुल हो गया है। ‘रश्मिरथी’ में कवि के जीवन का आधार लिया गया है। इसमें कवि की नई विचारधारा यह है कि व्यक्ति की पूजा उसके गुणों के कारण होनी चाहिए। ‘नील कमल’ की कविताओं में प्रयोगशीलता का पुट है। ‘कोयला और कवित्व’ में कवि समन्यवादी हो गया है। उसने कला और धर्म के सामंजस्य पर विशेष बल दिया है। ‘उर्वशी’ कामान्धवात्मक रचना है। इसके कथानक में काम, आसक्ति, आकर्षण और सौन्दर्य का मनोवैज्ञानिक रूपांकन मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि दिनकर के काव्य में प्रवृत्तियों की कान्तता, एकरूपता नहीं है। इतने पर भी यह सच है कि दिनकर राष्ट्रीय कवि हैं। अतः उनके काव्य का मूल स्वर क्रान्ति का, विद्रोह, राष्ट्रीयता और पौरुष का संगम है।

काव्य प्रवृत्तियाँ—दिनकर का काव्य पौरुष, ओज, क्रान्ति और राष्ट्रीय भावधारा का काव्य है। इसमें पौरुष की ज्वाला है। क्रान्ति की पुकार है। राष्ट्रीयता की उद्घोषणा है और कवि की प्रगतिशील चेतना है। दिनकर के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नांकित हैं—

1. पौरुष व ओज—दिनकर के काव्य में पौरुष और ओज को प्राथमिक स्थान प्राप्त है। उनकी राष्ट्रीयता प्रेरित भावना में उत्साह, पौरुष व प्रतिशोध के भाव बहुत गहरे हैं। एक वाक्य में दिनकर ओज व पौरुष के कवि रहे हैं।

उदाहरणार्थ—

‘लेना अनल-किरीट भाल पर ओ आशिफ होने वाले।

कालकूट पहले पी लेना, सुधा बीज बोने वाले।’

पौरुष और ओजस्वी भावों की वकालत करने वाले दिनकर तलवार की चमक में पौरुष की छाया देखते हैं। वस्तुतः दिनकर राष्ट्र धर्म के ओजस्वी कवि हैं।

2. क्रान्ति की भावना—दिनकर आरम्भ से ही क्रान्ति के पक्षपाती रहे हैं। उनके अनुसार क्रान्तिवादीसूखे वृक्ष को जड़ समेत उखाड़ कर दूर कर देता है और उसकी जगह नवीन वृक्ष का आरोपण करता है। क्रान्ति का स्वर इन पंक्तियों में सुना जा सकता है—

‘शोषण की शृंखला के हेतु बनती जो शान्ति,
युद्ध है यथार्थ में वह भीषण अशान्ति है।
पातक मनुष्य का है, मरण मनुष्यता का है।
ऐसी शृंखला में धर्म विप्लव है क्रान्ति है।’

‘कस्मे देवाय’ कविता में भी क्रान्ति का आह्वान किया गया है।

‘क्रान्ति धात्रि। कविते जाग उठ, आडम्बर में आग लगा के।
पतन, पाप, पाखण्ड जले जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।’

राष्ट्रीयता—राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति दिनकर के काव्य की तीसरी विशेषता है। ‘हिमालय के प्रति’ कविता में कवि की राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना को अभिव्यक्ति मिली है। ‘रेणुका’ और ‘हुंकार’ जैसी कृतियों में ही नहीं, ‘कुरुक्षेत्र’ व ‘सामधेनी’ तक में कवि की राष्ट्रीय भावना को विकास प्राप्त हुआ है।

4. जागरणशीलता—राष्ट्रीय भावों के पोषक कवि दिनकर ने अपनी कविताओं के माध्यम से जागरणशीलता का परिचय दिया है। जागरण ही धर्म है और इसी से कर्मभावना विकसित होती है। दिनकर ने इसी जागृति का उपदेश दिया है

‘मेरी जननी के हिमकिरीट।
मेरे भारत के दिव्यभाल।
नवयुग शंख ध्वनि जगा रही।
जागो नगपति। मेरे विशाल।’

5. कर्मठता—दिनकर के काव्य में कर्मठता का संदेश प्रतिध्वनित है। उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में कर्मठता और क्रियाशीलता का संदेश दिया है। कवि की मान्यता है कि कर्म ही जीवन की सच्ची परिभाषा है। मनुष्य निष्कर्म होकर निठल्ला और बेकार हो जाता है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ देखिये—

‘जिसने श्रम जल दिया उसे
पीछे मत रह जाने दो।
विजित प्रकृति का, सबसे पहले,
उसको सुख पाने दो॥’

कर्मवाद का पुजारी यह कवि सदैव संघर्ष से जूझता रहता है और उसी कर्मठता का संदेश वहाँ प्रतिध्वनित हुआ है।

6. अतीत प्रेम की प्रवृत्ति—दिनकर में अतीत के प्रति बड़ा मोह है। वह अपने देश के अतीत वैभव से प्रतिक्षण प्रभावित होते रहते हैं। उसके प्रति उनका इतना सबल और स्वाभाविक आकर्षण है कि वह उनके हृदय को निरन्तर स्पन्दित और उद्वेलित करता रहता है। ऐसे में कवि मौन नहीं रह सकता। उसके कंठ से वाणी फूट पड़ती है। दिनकर ने अतीत गरिमा के बड़े सुन्दर चित्र उतारे हैं। महापुरुषों में राम, धनश्याम, अशोक, चन्द्रगुप्त अथवा विद्यापति और ऐतिहासिक स्थलों में मिथिला, वैशाली, साँची, पाटलीपुत्र, नालन्दा तथा दिल्ली उनके काव्य के विशेष आकर्षण रहे हैं। इन व्यक्तियों तथा स्थानों ने उनके हृदय को बार-बार आन्दोलित किया है। अपनी वर्तमान अधोगति को विस्मरण करके जब उन्होंने अपने अतीत गौरव की कल्पना की है। तब उनका हृदय एक साथ ओज, उल्लास और उत्साह से परिपूर्ण हो गया है। उस समय वह अपने में इतने तन्मय हो गये हैं कि उन्हें वर्तमान की अपेक्षा अतीत की सुखद स्मृति में ही रहना अच्छा लगता है। वह कहते हैं—

‘देवि! दुःखद है वर्तमान की यह असीम पीड़ा सहना।
कहाँ सुखद इससे संस्मृति में है अतीत की रत रहना॥’

दिनकर की अतीत—प्रियता में भारतीय हृदय का स्वर गुँजता हुआ सुनाई देता है। वह अतीत के अत्यन्त सफल गायक हैं। दिल्ली, पाटलीपुत्र, साँची, सारनाथ, नालन्दा, वैशाली आदि हमारी सांस्कृतिक चेतना के प्रधान केन्द्रों से उन्हें जो स्फूर्ति और प्रेरणा मिली है, वही उनके काव्य का प्राण है। इसलिए उनके काव्य में उनका ही नहीं, हमारा हृदय भी बोलता है। उनकी सूझ-बूझ हमारी सूझ-बूझ है, उनकी विचारधारा हमारी विचारधारा है, उनका हृदय हमारा हृदय है। दिनकर को अपने काव्य में आरम्भ से ही जो सफलता मिली है उसका यही मुख्य कारण है।

दिनकर की भाषा—दिनकर की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। वह अपनी भाषा में अधिकांश संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग बड़ी सफलतापूर्वक करते हैं। उनका शब्द चयन अत्यन्त पुष्ट और भावानुकूल होता है इसलिए भावों की शिथिलता उनकी भाषा में कहीं नहीं पायी जाती है। उनकी भाषा उनके विचारों का पूर्ण रूप से समर्थन करती है। उनका प्रत्येक शब्द उनके विचारों का सच्चा वाहक, प्रतीक और प्रतिनिधि होता है। शब्दों की तोड़-मरोड़ भी उनकी रचना में नहीं है। खड़ी बोली के कवियों में प्रायः व्याकरण की अशुद्धियाँ मिलती हैं, किन्तु दिनकर की भाषा इस दोष से मुक्त है। उन्होंने अपनी भाषा पर विशेष रूप से ध्यान दिया है। भावों के अनुरूप ही उन्होंने अपनी भाषा का श्रृंगार किया है। प्रसाद गुण और ओज से उनकी भाषा में विशेष आकर्षण आ गया है। शाब्दिक चमत्कार और पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना उनमें नहीं है। इन विशेषताओं के साथ उनकी भाषा में कुछ दोष भी हैं। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ फारसी शब्दों का प्रयोग कहीं-कहीं खटकता है। खूँ, इंसान, तकदीर, हिम्मत, कब्र, पैमाना, गम, जवां, शायद, कदम, शाम, सुबह, निशान, जिन्दगी, चिराग, अरमान, आरजू, लाशें, आदमी, फौज आदि फारसी के तत्सम शब्दों के प्रयोग से कहीं-कहीं भावाभिव्यक्ति में सहायता अवश्य मिली है पर कहीं-कहीं उनके भाव उद्दीप्त तथा भाषा प्रवाह में बाधाएँ भी आई हैं। उदाहरण स्वरूप—

जुबाँ बन्द, बहती आँख, गम खा, शायद आँसू होते हैं।

यहाँ 'शायद' शब्द का प्रयोग करके दिनकर ने संदिग्ध भावना का परिचय दिया है। इससे किसानों की दरिद्रता का जो स्पष्ट चित्र सामने आना चाहिये था वह नहीं आया 'बहती न आँख' भी उनके मौन रुदन का सच्चा वाहक नहीं है। दिनकर ने मुहावरों का भी खुलकर प्रयोग किया है, पर कहीं-कहीं धोखा भी खा गये हैं। इन पंक्तियों में देखिये—

'गूँज रह संस्कृति मण्डप में भीषण फणियों की फुकारें।

'जल ही जल' जन-जन रहते हैं कण्ठ-कण्ठ में प्यास लगी है।'

फुकारें, गूँजना और कण्ठ में प्यास लगना मुहावरे नहीं हैं। मुहावरों के ऐसे विकृत प्रयोगों से रस निष्पत्ति तथा भावाभिव्यक्ति में शिथिलता आ जाती है। एक बिहारीपन का भी नमूना प्रस्तुत है—

वसन कहाँ ? सूखी रोटी भी मिलती दोनों शाम नहीं है।

'दोनों शाम' ठेठ बिहारी मुहावरा है। तुक के आग्रह के कारण ही दिनकर ने इस मुहावरे का प्रयोग किया है। विकृत मुहावरों के प्रयोग के आतिरेक संस्कृत के अप्रचलित क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से ही कहीं-कहीं भाव प्रकाशन और भाषा प्रवाह में बाधाएँ उपास्थित हुई हैं। शम्ब, पात, वलक्ष, दुर्ध्व, परिणाह, सुखत्म्, विन्न आदि ऐसे ही अप्रचलित क्लिष्ट शब्द हैं जिन्होंने सरस, सरल और प्रसाद गुण युक्त शब्दों के बीच में आकर रोड़े अटकाये हैं।

भाषा की दृष्टि से दिनकर का गद्य साफ सुथरा है। युग के अनुकूल हिन्दी गद्य की व्यंजना शक्ति बढ़ाने के लिए उन्होंने कई मौलिक और सुन्दर प्रयोग किये हैं। चौकोर, व्यक्तित्व, धुंधला उद्गार, मुंह में जीभ देना आदि ऐसे ही नवीन प्रयोग हैं। शब्दों के ये नवीन प्रयोग हमें अजनबी से नहीं लगते हैं। उनमें साधुर्य है, प्रवाह है, भाषा का ऐश्वर्य है। दिनकर सर्वत्र अपनी भाषालिखते हैं।

भाषा के अनुरूप ही दिनकर की शैली में विशेष अपनत्व है। यह अपनी शैली के स्वयं निर्माता हैं। वह जो कुछ लिखते हैं, डूबकर लिखते हैं, तन्मय होकर लिखते हैं इसलिए उनकी शैली परिमार्जित, प्रौढ़ और प्रवाहमय है। उनमें शब्द लाघव का अभाव है। थोड़े में अधिक कहना उनकी रसिकता के अनुकूल नहीं पड़ता। विस्तार के आग्रह से उनकी शैली में थोड़ा दोष अवश्य आ गया है। फिर भी उन्होंने जो कुछ लिखा है वह प्रभावपूर्ण है।

निष्कर्ष—अतः दिनकर काव्य की ये ही प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। यद्यपि ये सभी प्रवृत्तियाँ पाठ्य-पुस्तक में नहीं मिलती हैं। किन्तु फिर भी इनका विवेचन यहां इसलिए आवश्यक था कि इन्हें छोड़कर दिनकर के काव्य की प्रमुख भावधारा को समझा नहीं जा सकता है। पाठ्य पुस्तक में जो कविताएँ संगृहीत हैं वे दिनकर के प्रबन्ध काव्यों, जैसे—कुरुक्षेत्र और उर्वशी से सम्बन्धित हैं। कुरुक्षेत्र काव्य का स्वर मूलतः ओज और पौरुष से युक्त है और उर्वशी काव्य श्रृंगार भावना पर आधारित है। संकलित अंश में भाषा और शैली दोनों ही प्रवाहमयी और गत्यात्मक हैं।

प्रश्न-19. 'जनतन्त्र' का जन्म कविता के मूलभाव को संक्षिप्त में लिखिये।

उत्तर—'जनतन्त्र का जन्म' कविता का मूलभाव—राष्ट्रीय भावना के ओजस्वी उद्घोषक श्री रामधारीसिंह दिनकर द्वारा रचित 'जनतन्त्र का जन्म' कविता में उन्होंने स्पष्ट किया है कि स्वतन्त्र भारत में जनता का राज है। यह आजादी हमें चिर प्रतीक्षोपरान्त प्राप्त

हुई है। इसलिए अब शासन का सिंहासन छोड़ दो क्योंकि जनता अपने राज्य को संचालित करने के लिए तत्पर है। यह जनता सदियों से शोषित अबोध मूर्त के समान है लेकिन जब यह जाग जाती है तब इसकी हुंकारों से बड़े-बड़े महलों की भी नींव हिल जाती है इसलिए अब जनशक्ति को पहचानकर इसके लिए शासन का सिंहासन रिक्त कर दो। जनशक्ति के रास्ते को रोक्ने की शक्ति समय में भी नहीं है। हमारे देश का जनतन्त्र संसार का सबसे बड़ा जनतन्त्र है। इस कारण आज तैंतीस करोड़ जनता (तत्कालीन जनसंख्या के आधार पर) ने अपने सिर पर जनतन्त्र का मुकुट धारण करके अपने सिंहासन को संभाल लिया है। इसके फावड़े और हल राजदण्ड के समान शोभायमान हो रहे हैं। इसलिए सिंहासन रिक्त कर दो अब हमारे देश में जनतन्त्र आ गया है।

प्रश्न-20- 'दिनकर जी' की 'जनतन्त्र का जन्म' कविता का आशय अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।

अथवा

'जनतन्त्र का जन्म' शीर्षक कविता में निहित संदेश को अपने भावों में स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- 'दिनकर जी' बहुमुखी प्रतिभा के कवि हुए हैं। प्रारम्भ में 'दिनकर जी' ने छायावादी ढंग की कुछ कविताएँ लिखी परन्तु धीरे-धीरे उनकी शैली में द्विवेदी युगीन का प्रभाव पड़ा। वे ओजस्वी और क्रांतिकारी कवि के रूप में माने जाने लगे। उनके काव्य में देशव्यापी राष्ट्रीयता और जागरण का स्वर मुखरित हुआ है। स्वतन्त्रता से पूर्व उन्होंने अपनी रचनाओं में अंग्रेज शासन सत्ता का विरोध किया और निरन्तर क्रान्ति का स्वर बुलन्द करते रहे। स्वतन्त्रता के पश्चात् जब लोकतन्त्र की स्थापना हो गई तो उन्होंने बड़े उत्साह के साथ उसका स्वागत किया। 'जनतन्त्र का जन्म' कविता इसी प्रकार की कविता है। उन्होंने इस कविता में जनभावना के साथ राष्ट्रीय भावना को भी उजागर किया है।

'जनतन्त्र का जन्म' कविता का आशय- प्रस्तुत कविता स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में आए लोकतन्त्र की महिमा का उजागर करता है। सैकड़ों वर्षों तक पराधीन भारत को जब स्वतन्त्रता की सांस मिली तब भारत में जनतन्त्र का जन्म अपने आप में एक सुखद घटना थी। इसी को लक्ष्य करके दिनकर जी ने ओजस्वी पूर्ण भावों को इस कविता में व्यक्त किया है। जिन्हें निम्न रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है।

जनतन्त्र की स्थापना- प्रस्तुत कविता में दिनकरजी ने भारतीय जनतंत्र को एक शक्तिशाली लोकतन्त्र बताया है। सदियों से भारत पराधीन था अतः यहां की जनता की शक्ति भी सुप्त हो गई थी। किन्तु स्वतन्त्रता मिलते ही उनकी चेतना झंकृत हुई। ठण्डी बुझी आग साहस की चिंगारी पाकर पुनः सुलग उठी और बुलन्द आवाज मुखरित करते हुए बोली-अब समय बदल गया है। सिंहासन तक आने के लिए अब हमारा मार्ग खाली करो। क्योंकि अब भारतीय जनता अपने अधिकारों को प्राप्त करना चाहती है। हमारी संख्या कम नहीं है। एक-दो सिंहासन नहीं अपितु तैंतीस करोड़ सिंहासन इस विराट जनतन्त्र के लिए तैयार करना है। इस प्रकार जनतंत्र की स्थापना का प्रादुर्भाव हुआ और विदेशी सत्ता को यहां से पदच्युत होना पड़ा-

सदियों की ठण्डी-बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी खाने का ताज पहन इठलाती है,
दो राह समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।
सबसे विराट जनतन्त्र जगत का आ पहुंचा,
तैंतीस कोटि -हित सिंहासन तैयार करो।।

जनतंत्र में जनता का महत्व- दिनकर जी ने जनतंत्र में जनता के महत्व पर बल दिया। यहां की जनता अधिकतर मिट्टी की भाँति अशिक्षित और अज्ञानी है तथा गरीबी से घिरी हुई है। जाड़े-पाले की पीड़ा को सहन करने वाली है। शोषक वर्ग के द्वारा शोषित किए जाने पर भी चुपचाप कष्टों को सहन कर लेती है। कभी भी अपना मुँह नहीं खोलती है। लेकिन वास्तव में यही जनता ही जनतन्त्र रूपी मंदिर के देवता होते हैं। ऐसी जनता के आधार पर ही पूरा लोकतंत्र टिकता है। अतः हमें इनका स्वागत करना चाहिए।

जनता? हां मिट्टी की अबोध मूर्तें वहीं

जाड़े-पाले की कसक सदा सहने वाली,
जब अंग-अंग में लगे साँप हो चूस रहे,
तब भी न कभी मुहं खोल दर्द कहने वाली ।

देवता कहीं सड़कों पर मिट्टी तोड़ रहे,
देवता मिलेंगे खेतों में, खलिहानों में?

3. जनमत की शक्ति- प्रस्तुत कविता में कवि यह भाव व्यक्त करना चाहते हैं कि जनतन्त्र में जनता का मत सर्वाधिक महत्व रखता है। समस्त जनता के मत के सामने, उसके संगठन के सामने बड़े-बड़े लोगों को भी झुकना पड़ता है। जब भारत स्वतन्त्र हुआ और यहां पर जनतन्त्र का आगमन हुआ तब बड़े-बड़े महलों में रहने वाले राजाओं के मुकुट भी उतर गए तथा उनकी शासन सत्ता भी समाप्त हो गई। अतः कवि यह कहना चाहते हैं कि जनमत में इतनी शक्ति होती है कि वह जैसा चाहता है वैसा कर गुजरता है। जनमत के द्वारा ही लोकतन्त्र को सही मार्ग दर्शन मिलता है-

हुंकारो से महलों की नींव उखड़ जाती।
सांसो के बल से ताज हवा में उड़ता है,
जनता की रोके राह, समय में ताव कहां
वह जिधर चाहती काल उधर ही मुड़ता है।।

4. जनता का प्रभाव- दिनकर जी अपनी भावाव्यक्ति देते हुए कहते हैं कि जनतन्त्र में जनता का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव रहता है। जनतन्त्र को चलाने में जनता का पूरा हाथ रहता है। यदि जनतन्त्र को चलाने वाले शासक जनता के भावों का आदर सम्मान नहीं करती है। स्वार्थों में आकर उस पर अत्याचार करती है। तब जनता कोपाकुल हो उठती है। वह ऐसे लोगों को शासन सत्ता से उतार देती है। जनता के कोप से शासन तंत्र कोप उठता है-

लेकिन होता भूडोल, तूफ़ान उठते हैं
जनता जब कोपाकुल हो भूकूट चढ़ाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर नादसुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।।

6.2 सारांश

दिनकर जी की कविता 'जनतन्त्र का जन्म' से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कविता भारतीय जनतन्त्र पर आधारित है। इस कविता में जनमत को महत्व दिया है जनता या जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले ही जनतन्त्र को सुदृढ़ बना सकते हैं। अतः शासन तन्त्र का संचालन करने वालों को जनता के हितार्थ चिन्तन करना चाहिए। जनता को भी जनतन्त्र की सफलता के लिए सदैव तात्पर्य रहना चाहिए।

इकाई- 7 : सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

संरचना

- 7.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 7.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 7.2 सारांश

7.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

नदी के द्वीप

(1)

हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गर्दी हैं।
माँ है वह! है, इसी से हम बने हैं ॥ 1 ॥

शब्दार्थ—स्रोतस्विनी=नदी की धारा। सैकतकूल=बालू मिट्टी के किनारे।

प्रसंग—प्रस्तुत अंश हमारी पाठ्य-पुस्तक के 'नदी के द्वीप' कविता से अवतरित है, जिसमें कवि अज्ञेय ने नदी को माता के रूप में स्वीकार करते हुए उससे नवीन संस्कार देने की कामना की है।

व्याख्या—प्रस्तुत कविता में कवि ने द्वीप को प्रत्येक रूप में स्पष्ट किया है। कवि अपने वैयक्तिक व्यक्तित्व को द्वीप का, गंगा नदी को माता तथा पिता को भूखण्ड मानकर स्वीकार करता हुआ कहता है कि हम नदी के द्वीप हैं। हम यह नहीं कहते या चाहते कि नदी की धारा हमें छोड़कर बह जावे, क्योंकि यह हमें आकार देती है। हमारे कोण, गलियाँ अन्तरीप, उभार, बालू मिट्टी के किनारे और गोलाइयाँ सब उसकी ही बनाई हुई हैं। वह हमारी माँ है और हम उसी से बने हुए हैं। हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण इस नदी रूपी समाज ने ही किया है।

(2)

किन्तु हम हैं द्वीप
हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जायें।
और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते ?
रेत बनकर हम सलिल को तनिक गँदला ही करेंगे।
अनुपयोगी ही बनायेंगे ॥ 2 ॥

शब्दार्थ—समर्पण=भेंट। प्लवन=बहना। ढहेंगे=नाश को प्राप्त होंगे।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत काव्यांश अज्ञेय द्वारा रचित नदी के द्वीप शीर्षक कविता से अवतरित है। कवि कहता है कि हम द्वीप हैं, हम धारा नहीं हैं। हमने नदी को अपना स्थायी समर्पण किया है जबकि धारा स्थायी नहीं है। हम तो सदा-सदा से नदी के द्वीप हैं। परन्तु हम नदी की धारा के समान बहते नहीं हैं, क्योंकि हमारे बहने का अर्थ है हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व व स्थिर रूप का नाश होकर रेत हो जाना। हम रेत बनकर बहने लग जायेंगे तो न केवल हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा अपितु रेत पर हमारे पैर धरा के सम्मुख उखड़ेंगे, हम बहेंगे, ढह जायेंगे। सहन करेंगे और एक स्थान पर स्थिर न होकर बह जायेंगे और फिर हमारा व्यक्तित्व चूर्ण हो जायेगा तो भी हम धारा

नहीं बन सकते हैं अर्थात् सम्पूर्ण व्यक्तित्व का नाश हो जाने पर भी हम जल धारा नहीं बन सकते हैं। हम यदि रेत बन गये तो नदी का पानी ही हमसे मैला होगा और पानी को हम किसी न किसी प्रकार अनुपयोगी ही बनायेंगे।

विशेष—व्यक्तित्व का महत्त्व नदी के द्वीप की तरह स्थिर रहने में ही है न कि धारा की तरह बहने में।

(3)

नदी! तुम बहती चलो।

भूखण्ड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है।

माँजती, संस्कार देती चलो,

यदि ऐसा कभी हो

तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वैराचर से-

अतिचार से

तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे

यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा, कीर्तिनाशा घोर

काल-प्रवाहिनी बन जाय

जो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर

फिर छनेंगे, जमेंगे, कहीं फिर पैर टिकेंगे।

कहीं फिर भी खड़ा होगा नए व्यक्तित्व का आकार।

माता! उसे फिर संस्कार देना तुम ॥ 3 ॥

शब्दार्थ—दाय=पैतृक सम्पत्ति। आह्लाद=प्रसन्नता। स्वेच्छाचार=स्वच्छद आचरण। अतिचार=अत्याचार। प्लावन=बाढ़। कर्मनाशा=कर्मों का नाश करने वाली। कीर्तिनाशा=यश का नाश करने वाली। काल-प्रवाहिनी=मृत्यु को प्रवाहित या प्रदान करने वाली।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ अज्ञेय द्वारा रचित ‘नदी के द्वीप’ शीर्षक कविता से अवतरित है, जिसमें कवि ने नदी रूपी माता से नवीन संस्कार देने की कामना की है।

व्याख्या—‘नदी के द्वीप’ का कथन है कि हे नदी! तुम सदा बहती चलो। हमें अपने पिता भूखण्ड से जो पैतृक सम्पत्ति मिली है और मिलती रही है, उसे तुम माँजती रहो और उसे संस्कार देती हुई बहती चलो यदि कभी तुम्हारी स्वयं की उल्लास भावना से या दूसरों के किसी स्वच्छन्द आचरण से या दूसरों के अत्याचार से तुम में बाढ़ आ जाये और तुम्हारा प्रवाह धड़-धड़ाता हुआ तुम्हारे कर्मों और यश का नाश करता हुआ प्रलय का प्रवाह बन जाय तो हम द्वीपों को वह स्थिति भी स्वीकार है क्योंकि उस समय हमारा नाश हो जायेगा और हम रेत के रूप में बदल जायेंगे। परन्तु फिर हम उसी रेत में होकर छनेंगे और जमेंगे तथा फिर कहीं पर अपने पाँव टिकायेंगे। तब प्रलय के पश्चात् हमारा व्यक्तित्व नया आकार ग्रहण करके खड़ा होगा। तुम हमारे इस नये व्यक्तित्व को संस्कार प्रदान करती रहना।

विशेष—(1) कवि की सम्पूर्ण कविता प्रतीकात्मक है। भाषा व शैली में प्रतीक पूर्ण रूपेण सफल हुए हैं। कवि ने अपने प्रतिपाद्य या स्पष्ट प्रतिपादन में सफलता प्राप्त की है।

7.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. ‘अज्ञेय की कविताएँ नयापन और ताजगी से युक्त हैं। उनकी प्रयोग धर्मिता को ध्यान में रखते हुये इस कथन की उदाहरण सहित विवेचना कीजिये।

उत्तर—अज्ञेय की काव्य यात्रा छायावादी बोध की ओर से नयी कविता की यात्रा है। ‘अज्ञेय’ ने ‘इत्यलम्’ से काव्य सृजन किया है। किन्तु वह नयी कविता के रूप में तभी पहचानी गई जब उन्होंने ‘हरी घास पर क्षण भर’ बैठकर ‘बावरा अहेरी’ के आलोक में स्नात ही ‘रोंदे हुए इन्द्रधनुषों के अनुभवों से युक्त एक दुनिया दी। अज्ञेय का काव्य सत्यान्वेषण का काव्य है। वे अर्थ पाने के लिए बेचैन रहे हैं और यही बेचैनी उन्हें आत्मान्वेषण से जोड़ती है। असल में उन्होंने शब्दात्मा में छिपे अर्थ को पहचान कर सत्यान्वेषण किया है। अर्थान्वेषण या सत्यान्वेषण की यही भावना अज्ञेय की ‘अरी ओ करुणा प्रभामयी’ की इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है—

‘मत हमें रूपाकार इतने व्यर्थ दो

हम समझते हैं इशारा जिन्दगी का

हमें पार उतार दो रूप मत बस सार दो।'

‘अज्ञेय’ की काव्य-यात्रा को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है। पहला चरण-विद्रोह, निराशा और भावुकता का है। दूसरा चरण मानवास्था और जिजीविषा का है जो सत्यान्वेषण से पुष्ट और प्रेरित है। इसमें कवि जीवन सत्य पाने के लिए शक्ति-संचय करता है। तीसरा चरण आत्मदान में सार्थकता पाने का प्रयास है। यही कारण है कि अज्ञेय की खोज अन्ततः मानवास्था से मिलकर आत्मदान में ही सार्थकता पा सकती है।

‘अज्ञेय’ प्रयोगवाद के जनक हैं—

कवि अज्ञेय ने प्रयोगवाद को जन्म ही नहीं दिया वरन् उसे पोषित करके विकसित भी किया है। अतः वे निश्चित रूप से प्रयोगवाद के जनक कहला सकते हैं।

‘अज्ञेय’ की प्रयोगधर्मिता एवं नयी मान्यताएँ— अज्ञेय ने सप्तकों का क्रमिक व विधिवत् प्रकाशन करवा कर अपनी मान्यताओं और प्रयोगधर्मिता को स्पष्ट किया है। प्रथम तार सप्तक प्रयोगवाद की भूमिका है, दूसरा सप्तक प्रयोगवाद का स्थान और स्पष्टीकरण है। तीसरा सप्तक प्रयोगवाद का विकास है और चौथा सप्तक प्रयोगवाद के ही कतिपय सन्दर्भ का विकसित व केन्द्रित आयाम प्रस्तुत करता है। वास्तव में अज्ञेय ने न केवल सप्तकों का ही प्रकाशन कराया अपितु प्रयोगवाद को एक निश्चित दिशा भी प्रदान की है। उन्होंने अपनी प्रवृत्तियों को विकसित किया और नये परिवेश के अनुकूल नवीन मान्यताओं को भी प्रस्तुत किया है। उनकी मान्यताएँ थीं—

1. किसी भी परम्परा का अनावश्यक पालन उचित नहीं है। आवश्यकता हो वहाँ तक ही मानना चाहिए।
2. उनकी दूसरी मान्यता यह थी कि कवि को निरन्तर सत्यान्वेषण करते रहना चाहिए।
3. पारम्परिक बासी उपमानों, प्रतीकों और प्रयोगों को नकार कर नए प्रसंग व परिस्थिति सापेक्ष शैल्पिक उपकरणों का प्रयोग करना चाहिए।
4. अभिधा के पूर्ण स्वरूप से विरक्त हो जाने के आधार पर उनके पुनः सृजन या पुनः संस्कार के लिए सार्थक प्रयत्न करना चाहिए।
5. भाषा के पुराने तेवरों को छोड़कर नए तेवर अपना लेके चाहिए।

प्रयोग धर्मिता के सांकेतिक तथ्य—

1. अज्ञेय ने व्यक्तिवादिता और अहं की प्रतिष्ठा की। प्यार के गहरे समर्पण के बाद भी अभिमान की कसम सोने नहीं देती।
2. उनकी सामाजिकता का प्रारम्भ वैयक्तिकता से ही होता है।
3. अभिजात्य वर्ग और अन्य परम्पराओं के प्रति विद्रोह का तीखा स्वर अभिव्यक्त किया है।
4. अनास्था, संकट और कुण्ठाओं का बेपर्दा और यथार्थ चित्रण प्रयोगवादी प्रवृत्तियों के आधार पर ही किया गया है।
5. क्षण बोध को स्वीकार करके क्षण की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
6. ‘अज्ञेय’ की रचनाओं में विराट के प्रति आकर्षण भी दिखाई देता है। वह भी प्रयोगधर्मी है।
7. मौलिकता और नवीन बात कहने की प्रवृत्ति भी अज्ञेय की रचनाओं में आद्यन्त व्याप्त है। वे काव्य और शिल्प दोनों में ही नयापन व ताजगी लिये हुए हैं।
8. लघु मानव की प्रतिष्ठा की गई है।
9. युग सत्य की व्यंजना और व्यक्ति सत्य की प्रतीति पर जो बल दिया गया है, वह भी अज्ञेय की प्रयोगशीलता का ही आयाम है।
10. वेदना की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है।
11. नये भाषायी प्रयोग, नये उपमान, नये बिम्ब और नये प्रतीकों को अपनाकर अज्ञेय ने अपनी प्रयोगधर्मिता को स्पष्ट किया है।

‘अज्ञेय’ की कविताओं में नयापन और ताजगी—

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अज्ञेय की दृष्टि प्रयोगवादी रही है। इसी कारण उन्होंने अपने काव्य में अनेक नवीन प्रयोगों की ताजगी भर दी है।

कथ्य नवीनता— 1. अज्ञेय के काव्य में मिलने वाली सत्यान्वेषी दृष्टि उनके काव्य का नयापन अभिव्यक्त करती है। 'आँगन के पार द्वार' में उन्होंने प्रायः प्रत्येक कविता में निरन्तर सत्यान्वेषण किया है। यह सत्य उनके व्यक्तित्व का ही सत्य है। उक्त कविता इसी सत्य के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करती है।

2. आत्म-निष्ठा की प्रवृत्ति के कारण भी अज्ञेय के काव्य में कथ्यगत नवीनता व ताजगी मिलती हैं। उन्होंने अपनी आत्मनिष्ठा के कारण ही लिखा है—

‘तुम्हारा यह उद्धत विद्रोह
धिरा हुआ है जग से
पर है सदा अलग निर्मोही।’

3. 'अज्ञेय' के काव्य में आया नयापन इस कारण भी प्रभावित करता है कि उन्होंने अपने व्यक्तित्व और सामाजिक परिवेश के मध्य कुछ प्रतीकों द्वारा आपसी सम्बन्ध की प्रतीति कराई है। यह प्रतीति काव्य में ताजगी ला देती है। वह 'अज्ञेय' के असामाजिक होने का खण्डन भी करती है।

‘यह दीप अकेला,
स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।
मैं सेतु हूँ, वह सेतु
जो मानव से मानव के ही मिलने से बनता है।’

4. **क्षणवादी चिन्तन—** 'अज्ञेय' की कृतियों में क्षणवाद को भी नहीं भुलाया जा सकता। 'अज्ञेय' ने क्षण को पहचानने की पूरी तरह जीने, पीने और पीकर आत्मसात् करने की बात कही है। यह क्षणवाद क्षणिकता का द्योतक ही नहीं है वरन् शाश्वत-बोध की ओर संकेत करता है। इस क्षणवाद में व्यक्तिवाद तथा अस्तित्ववाद का पूरा प्रभाव है। क्षण के महत्त्व को वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

‘हमें किसी कल्पित अगस्त्यता का गोद नहीं
आज के विवक्त अद्वितीय इस क्षण को
पूरा हम जी लें, आत्मसात् कर लें
उसकी विविक्त अद्वितीयता में,
आपकी, कमपि को क ख ग को
अपनी सी पहचानवा सकें,
रस मय कर दिखा सकें,
शाश्वत हमारे लिए ही है।’

5. **दुःखवाद की नवीन व्याख्या—** कविवर अज्ञेय ने दुःखवाद की नयी व्याख्या की है। वे कहते हैं—

‘दुःख सबको माँजता है
और.....
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना यह न जाने
किन्तु जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है
कि सबको मुक्त रखें।’

6. **वर्तमान जीवन की विषमता—** इस विषमता को नवीन व्यंग्य के आधार पर व्यक्त किया है। नागरिक सभ्यता के जहर को उन्होंने अपनी कविता के व्यंग्य सूत्र में बाँधा है। बहुत सुन्दर व्यंग्य द्वारा स्वार्थपरता, छल-कपट, पीठ पीछे छुरा भोंकना जैसी प्रवृत्तियों को कवि ने वाणी प्रदान की है—

‘साँप तुम सभ्य तो हुए नहीं,
नगर में बसना भी तुम्हें आया नहीं
एक बात पूछूँ? उत्तर दोगे?
फिर कैसे सीखा डसना
विष कहाँ पाया?’

शिल्पगत नवीनता और ताजगी—‘अज्ञेय’ के काव्य का शिल्प-विधान भी नवीन है। शिल्प के धरातल पर उनका काव्य नया, ताजा और उनकी प्रयोगी वृत्ति का जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत करता है—

‘ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच ॥’

1. भाषा—शिल्प विधि के उपकरणों में सबसे महत्वपूर्ण उपकरण भाषा है। भाषा के बाद बिम्ब और प्रतीकों का अप्रस्तुत प्रयोग की बारी आती है। ‘अज्ञेय’ ने स्वयं स्वीकार किया है कि पुरानी भाषा और उसके उपकरण आज के नवीन कवि को असमर्थ लगते हैं। कारण यह है कि प्राचीन भाषा में आज के संवेदनात्मक जीवन की इन समस्याओं के उद्घाटन की शक्ति नहीं है, सामाजिक दायित्व को वहन करने की क्षमता नहीं है और आज की समस्याओं को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द विधान नहीं है। अज्ञेय की काव्य भाषा तीन प्रकार की है—

1. संस्कृत की परिनिष्ठित शब्दावली से सम्बन्धित।
2. देशज शब्दों से सम्बन्धित शब्दावली।
3. बोल-चाल और व्यावहारिक शब्दावली।

किसी उदात्त विषय पर लिखते समय अज्ञेय की भाषा संस्कृत-निष्ठ हो जाती है। कहीं-कहीं कविताओं के शीर्षक और पंक्ति संस्कृत की शब्दावली से पूरित है। जैसे—ध्रुपद: 29, ‘अहं राष्ट्र संगमनी ज्ञानाम्’, ‘ओ निस्संग ममेतर’, ‘ब्रह्म मुहूर्त स्वस्ति वाचन’ आदि। ‘यह स्तोत्रस्विनी है कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर काल प्रवाहिनी बन जाय।’ यह पंक्ति पूरी तरह संस्कृत निष्ठ कही जा सकती है।

2. देशज शब्द—ओट, छुअन, तुमड़ी, गलियारे, ठीकरा, बूहा, तई आदि हैं। अज्ञेय ने अभिव्यक्ति को प्राणवान बनाने के लिए पूरे क्रिया पदों का प्रयोग भी किया है। जैसे ढरकी, घूरते, अंगेरते, तकना, लखना, हरसाता आदि। इनके अतिरिक्त उर्दू, फारसी और ब्रज के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। लोकभाषा व अंग्रेजी का प्रयोग भी है।

जैसे—जाट रे जाट तेरे सिर पर खाट, परजातंतर आदि। उर्दू—दामन पाक रखना, मुल्ला छूटना। अंग्रेजी में—थियेटर, पोर्च, पार्क आदि। भावाभिव्यक्ति को सार्थक और प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से कहीं-कहीं कोष्ठकों का प्रयोग भी किया है—

‘अब सभ्य नहीं हूँ, एक दिन गच्चा खाऊँगा और मारा जाऊँगा’
(नहीं होगा, वह फिर बे मौत, शहादत का रुतबा नहीं पाऊँगा)
(क्योंकि मैं उसे जानता हूँ)

बिन्दु प्रयोग—

‘धीरे और कितने धीरे
यह रात ढलती है—
(क्योंकि मैं उसे जानता हूँ)

इसी प्रकार ‘कि’ का प्रयोग, शब्दों की आवृत्ति, क्रिया की आवृत्ति भी मिलती है। ‘पर अब क्या करूँ? किस के पास और कुछ बचा?’ ‘अज्ञेय’ की प्रतीक योजना विशिष्ट और विविधात्मक है। कुछ प्रतीक अज्ञेय को बहुत प्रिय हैं। ये बार-बार प्रयुक्त सागर, मछली, नदी, धारा, द्वीप आदि। सागर जीवन का, मछली जिजीविषा या चेतना की, नदी समष्टि की, द्वीप व्यष्टि चेतना का और धारा गतिरता की प्रतीक है। सामान्यतः अज्ञेय ने प्रकृति से ही प्रतीक लिए हैं। अज्ञेय के बिम्बों में संश्लिष्टता है। पर्याप्त सघनता है। वे बिम्ब चाक्षुष, रंग, स्पर्श, घ्राण से युक्त हैं। अनेक स्थलों पर ये बिम्ब रूपक और मानवीकरण के सहारे उभरे हैं।

ध्वनि बिम्ब—

‘दूर पहाड़ों से काले मेघों की बाढ़
हाथियों का मनो चिंघाड़ रहा हो यूथ’

घ्राण बिम्ब—

‘तुम्हारी देह मुझको कनक चम्पे की कली है
दूर ही से, स्मरण में भी गंध आती है।’

स्पर्श बिम्ब—

‘तुम्हारे नैन, पहले भोर की दो ओस बूंदें हैं
छूती ज्योतिमय भीतर द्रवित’

अलंकृत बिम्ब—

‘पति सेवा सत सांझ
उचकता देख परम्या चांद
लगा कर ओट हो गयी।’

अप्रस्तुत योजना में नवीनता—अज्ञेय को उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और मानवीकरण प्रिय रहे हैं। नवीनता जड़े ये अलंकारयुक्त पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

‘स्फटिक मुकुट सा निर्मल बापी का तल’
‘बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा’
‘बरफ की लड़ी की छाया सा लटका हूँ।’

एक अन्य विधान—

‘भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल-लाल कनियाँ।’

संक्षेप में, समस्त विवेचन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय का काव्य-सृजन अपने सहयोगियों में सर्वोपरि है। अज्ञेय के काव्य की प्रणय, सौन्दर्य और दर्द की अनुभूतियाँ अनाघात और अस्पर्शित अनुभूतियाँ हैं और इनकी अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त भाषा, बिम्ब, प्रतीक अप्रस्तुत योजना आदि सभी जड़ता से दूर हैं। उनकी काव्य-भाषा उनके द्वारा अन्वेषित है। उसमें अर्थ-गाम्भीर्य अधिक है। इस प्रकार अज्ञेय की कावेताएँ नवीनता और ताजगी लिए हुए हैं और प्रयोग की नई कसौटी पर खरी उतरी हैं।

प्रश्न- 21. ‘अज्ञेय’ की काव्यगत विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—अज्ञेय का काव्य विद्रोह और घोर निराशा से शुरू हुआ। व्यक्तिवादी चेतना के साये में पला, जिजीविषा में रंगा आस्थावादी काव्य है जिसमें अन्वेषण के सशक्त आयाम विकसित हुए हैं। परवर्ती काव्य में ‘अज्ञेय’ ऐसे बिन्दु पर आ गये हैं, जहाँ आत्मविसर्जन प्रमुख हो गया है। इस समस्त काव्य की जो प्रवृत्तियाँ हमारे सामने हैं उनकी राग संवेदना, बौद्धिकता, क्षणवादिता, व्यक्तिवादिता, मानवास्था, जिजीविषा, वेदानुभूति, प्रणयानुभूति, सौन्दर्यानुभूति, सत्यान्वेषण, आत्मान्वेषण, समसामयिक और राष्ट्रीयता आदि की भावनाओं से सम्बद्ध हैं।

1. वैयक्तिकता और सामाजिकता—‘अज्ञेय’ के काव्य में व्यक्तिवादिता का स्वर गहरा है। उनकी मान्यता रही है कि व्यक्ति को अनुशासन में बाँधकर उसकी स्वतन्त्र व्यक्ति सत्ता को आहत करने की चेष्टा करता है जो अनुचित है। व्यक्ति स्वयं ही समाज से अपनत्व रखकर अपने प्रति समर्पित हो तो ठीक है। व्यक्ति वैशिष्ट्य का यह स्वर दिवाकर के प्रति ‘दीप’ में स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित है। यहाँ दीप अपनी लघुता के प्रति सजग होकर भी दिवाकर से कह ही देता है—

‘ज्योति तुम्हारी अक्षय है पर जला जला कर नहीं बनी है
और इधर यह शिखा कंपमय यह मेरी कितनी अपनी है।’

‘अज्ञेय’ का व्यक्तित्व समाजोन्मुखी है। उनका अहं ‘मैं’ से ‘हम’ हो जाता है क्योंकि ‘मैं’ का मिथ्या अहंकार उसे अधिक समय तक शक्ति नहीं दे पाता है। यही कारण है कि अज्ञेय के काव्य में आई व्यक्तिवादिता और अहं निष्ठा समाज के भीतर घुलती गई है। असल में ‘अज्ञेय’ अहंवादी और व्यक्तिवादी है नहीं। वह व्यक्तिवाद को समाज में विसर्जित होने के लिए ही है। ‘मम’ और ‘ममेतर’ की संधि रेखा पर ही कवि की सामाजिकता का महल खड़ा हुआ है। ‘नदी के द्वीप’ कविता में कवि ने स्वीकार किया है कि—

व्यक्तित्व की सुरक्षा ‘द्वीप’ की सुरक्षा आवश्यक है। उन्होंने व्यक्तित्व को समाज में मिला देने की बात पर बल दिया है। अतः हम कह सकते हैं कि अज्ञेय की कविताओं में सामाजिकता का स्वर मुखरित हुआ है। वे स्पष्ट रूप से लिखते हैं—

‘यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।’

उनकी यह स्वस्थ सामाजिकता स्पष्टतः ‘मैं वहाँ हूँ’ कविता में अभिव्यक्त हुई है—

‘मैं सेतु हूँ, वह सेतु
जो मानव से मानव का हाथ मिलने से बनता है।’

आगे वह कहते हैं—

समूह के अनुभव जिसकी मेहराबें हैं।

और जन जीवन की अजस्र प्रवाहमयी नदी जिसके नीचे अज्ञेय की सामाजिक चेतना इतनी गहरी है कि वे अपने ‘अकेलेपन’ को समूह में विलय कर देते हैं और तदुपरांत कर्तव्य बोध से भर जाते हैं। जिसके हर सदस्य का एक बंधा हुआ कर्तव्य है।’ उन्होंने साफ कहा है कि ‘मैं फिर कहता हूँ, ‘मैं नागरिक भी हूँ’ कवि भी हूँ हर समय दोनों हूँ।’ फलतः कवि का स्वर व्यंग्यमय हो गया है।

‘जियो मेरे आजाद देश के सांस्कृतिक प्रतिनिधियों!’

2. आस्था और जिजीविषा—नयी कविता में आस्था और जिजीविषा का स्वर गहराई से उभरा है। यह उसकी प्रमुख विशेषताओं में से एक है। आस्था से तात्पर्य जीवन के प्रति आस्था से है। यह आस्था मानव की जिजीविषा में और अधिक निखरने लगती है। उनकी आधुनिकता आस्था और जिजीविषा कलयुक्त है। वे यथार्थ जीवन की विकृतियों, विसंगतियों, मूल्यों की टकराहट, जीवन व्यापी कटुता, भयावहता और भटकाव सभी कुछ का अनुभव करते हैं परन्तु यह भी सोचते हैं कि यह काफी नहीं है। मानव को इससे भी आगे जाने की जरूरत है। आस्था कीवह खोज ‘हरी घास पर क्षण भर’ से ही शुरू हो गई थी किन्तु इसे ठोस आधार तब मिला जबकि कवि ने ‘बावरा अहेरी’ में कहा था—

‘पर नकारों के सहारे कब चला जीवन! स्मरण को
पाथेय बनने दो, कभी तो अनुभूति उमड़ेगी,
प्लवत् का सान्द्र घन भी बन।’

इन पंक्तियों से लगता है कि कवि जीवन के सागर से हटकर एक आस्थामूलक दिशा में खोज के पथ पर बढ़ रहा है। कवि मिट्टी खोदने वाले से लेकर महल बनाने वाले की जिजीविषा और आस्था से खानों में काम करने वाले, रिकशा खींचने वाले, बर्तन साफ करने वाले और मशक उठा सड़क सींचने वाले सभी की जिजीविषा कवि को मानवास्था से जोड़ती प्रतीत होती है। ‘योगी वह स्मित मेरे भीतर लिख दे’ की कामना वाला कवि जीवन के प्रति जीने की इच्छा लिये हुए हैं। ‘बना दे चित्तेरे’ कविता भी मानव की जिजीविषा और आस्था को व्यक्त करती है। ‘कितनी नावों में कितनी बार’ संग्रह में भी कवि जिजीविषा मुखरित है। उसका जीवन दूसरों के लिए है, उनकी जिजीविषा सदैव कायम रहेगी। सोन-मछली जैसी कविताओं में भी ‘अज्ञेय’ ने ‘मछली’ को प्रतीक बनाकर जीवन के प्रति आस्था और कभी न खत्म होने वाली जिजीविषा को व्यक्त किया है।

3. सत्यान्वेषण-आत्मान्वेषण—यह जीवन सत्य पाने की ललक है। अर्थ पाने का आयाम है और आत्मान्वेषण की भूमिका पर स्थित है। आत्मान्वेषण करते-करते जब वे सत्य के अन्वेषण के लिए तत्पर हुए तो उन्होंने कितने सत्यों, असत्यों को देखा। कवि ने सत्यान्वेषण के विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। अज्ञेय के समूचे कृतित्व पर दृष्टिपात करें तो ‘मुक्ति’ शब्द का प्रयोग बहुतायत से मिलता है। इस प्रयोग से कवि-मानस की मुक्ति-लालसा व्यक्त होती है। अतः जब हम यह कहते हैं कि मुक्ति और जिजीविषा अज्ञेय काव्य के महत्वपूर्ण सन्दर्भ हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि कवि व्यक्तित्व की खोज में लगा हुआ है। प्रारम्भ से लेकर आज तक कवि की सम्पूर्ण काव्य-यात्रा इसी मुक्ति और जिजीविषा की कहानी कहती दिखाई देती है। आत्मान्वेषण का ही एक सन्दर्भ—

‘अर्थ हमारा जितना है,
सागर में नहीं हमारी मछली में
सभी दिशा में सागर जिसको घेर रहा है।’

‘अज्ञेय’ की दृष्टि से जीवन का अर्थ है—

क्योंकि यही सब तो जीवन है
गरमाई मिठास हरियाली उजाला
गंध वाही मुक्त खुलापन

दो खंभों के बीच तनी हुई रस्सी पर कवि निरन्तर इधर से उधर दौड़ता रहता है, किन्तु उसकी कामना इससे मुक्ति की है। यह कामना ही उसे जिजीविषा से जोड़ती हुई अन्वेषण के बिन्दु से मिला देती है और कवि कह देता है—

‘मैं केवल इस खंभे से उस खंभे तक दौड़ता हूँ
कि इस या उस खंभे से रस्सी खोल दूँ’

4. प्रणय प्रभाव—किशोर मन की अभिव्यक्ति और औदात्य की भूमिका—अज्ञेय के काव्य में प्रणय भावनाओं की गहरी और सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। उनकी आरम्भिक कविताओं में प्रणय का भावुक और किशोरोचित वर्णन मिलता है। ‘हरी घास पर क्षण भर’ तक पहुँचते न पहुँचते कवि की प्रणय-भावना में परिष्कार आ जाता है। वह किशोर भावना को त्याग देता है और प्रणय उसके लिए जीवन सत्य बन जाता है। अज्ञेय ने प्रेम की क्षणिकता को स्वीकार तो किया है, किन्तु मात्र भोग तक ही उसे नहीं रहने दिया है। ‘हरी घास पर क्षण भर’ में प्रेम की तीव्रता तो है, किन्तु नरगबोध की जटिलताओं के समक्ष कवि प्रेम की अनुभूतियों के ताप में डूब नहीं पाता है। वे कहते हैं—

‘केवल बना रहे विस्तार हमारा बोध
मुक्ति का सीमा हीन खुलेपन का
चलो उठें अब,
और रहे बैठे तो लोग कहेंगे
धुँधले में बैठे वो प्रेमी बैठे हैं।
यह हम हों भी, तो यह हरी घास ही जाने।’

आगे चलकर कवि की प्रणय भावना समर्पणशील हो गई है। उसकी उदात्त और पवित्र अनुभूति में भी प्रेम की उत्कण्ठा तो होती है, उदात्तता भी आ गई है। ‘पलकों का कँपना’ कविता में यह समर्पण देखा जा सकता है—

‘और सब समय पराया है
बस उतना क्षण अपना
तुम्हारी पलकों का कँपना।’

कवि का प्यार संस्कारी बनता गया और उसने इसकी अभिव्यक्ति की—

‘जिसे कुछ भी कभी, कुछ से नहीं सकता मार
वही लो, वही रखो, साज सँवार
वह कभी बुझने न वाला
प्यार का आगार।’

कुछ कविताओं में प्रेम का माँसलरूप भी व्यक्त हुआ है। ‘तुम्हारी छातियों के बीच मेरा घर है और आओ मैं तुम्हें छिपा लूँगी।’ इन पंक्तियों में प्रेम का झुकाव शारीरिकता की ओर है। कवि की दृष्टि में व्यक्ति अपने भीतर के अनुरागी मानस के सौन्दर्य और प्रेम प्रसूत कल्पना को ही प्यार करता है। कृष्ण ने बार-बार अनेक गोपियों से इसीलिए प्यार किया था कि वे जिस प्यार की तलाश में थे वह उन्हें नहीं मिल पाया अन्यथा वे बार-बार किसी से प्रेम याचना ही न करते।

‘कभी किसी प्रेयसी में उसी को पा लिया होता
तो दुबारा किसी का प्यार-क्यों किया होता।’

‘अज्ञेय’ की प्रेम-भावना में मुक्ति—कामना का रंग गहरा है। मुक्तिभाव से युक्त इस काव्य में एक सहज दीप्ति है। यही वह दीप्ति है जो मनुष्य मात्र को जीवन से जोड़ती हुई उल्लास के कण बाँटती है। अतः यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय की प्रणय भावना में सहजता,

निश्छलता, समर्पण, मुक्ति, स्वच्छ समर्पण और अनासक्ति का भाव विद्यमान है। उनका प्रेम न तो आरोपित है, न कृत्रिम और न वासना के कर्दभ कीचड़ में फँसा हुआ है। उसमें शरीर की स्वीकृति, रूपाकर्षण और सब कुछ गहरा है फिर भी उसमें निरन्तर उन्नत होने का भाव भी है।

5. वेदानुभूति—‘अज्ञेय’ का काव्य प्रणय, वेदना, सौन्दर्य और मानवावस्था का काव्य है। वे प्रणय के धरातल से वेदना की ओर आये हैं। उनकी विचार से वेदना में बड़ी शक्ति है। उनके दुःखवाद से प्रेरित कविताओं में वेदना की एक ऐसी अन्विति मिलती है जो मन को द्रवित कर देती है। ‘अज्ञेय’ ने ‘आह’ को पिता और वेदना को ‘माँ’ कहा है। ‘हरी घास पर क्षण भर’ की कविताओं में वेदना इस प्रकार मुखरित हुई है—

‘दुःख सबको माँजता है’

और—

चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने

किन्तु जिनको माँजता है

उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें’,

‘अज्ञेय’ को दुःख की शक्ति में अधिक आस्था है। एक अन्य स्थान पर उन्होंने दुःख के दर्द की दीप्ति की भी चर्चा की है। उनकी मान्यता है कि दर्द पाप नहीं है। यदि वह पाप होता तो स्वीकार से घुल जाता। इसके विपरीत दर्द की अपनी दीप्ति है—

‘दर्द स्वीकार से मिटता नहीं है

स्वीकार से पाप मिटते हैं,

पर दर्द पाप नहीं है,

दर्द कुछ मैला नहीं,

कुछ असुन्दर नहीं, अनिष्ट नहीं

दर्द की अपनी एक दीप्ति है

ग्लानि वह नहीं देता ?’

इससे स्पष्ट होता है कि अज्ञेय की वेदना उनका जीवन बर्तन बनकर उभरी है। उनका दर्द मनुष्य को निष्क्रिय या कमजोर बनाने वाला नहीं है।

6. क्षण की महत्ता और स्वीकार—‘अज्ञेय’ ने क्षण के महत्त्व को स्वीकार किया है। उन्होंने क्षण को, पहचानने में पूरी तरह जीने, पीने और पीकर आत्मसात् करने की बात कही। अज्ञेय का क्षणिकवाद क्षणिकता के लिए नहीं है शाश्वत बोध का समर्थक है। यह क्षण को पकड़ने का आग्रह उनकी व्यक्तिवादी दृष्टि का तो प्रभाव है साथ ही अस्तित्ववादी धारणा को भी लिये है। उन्होंने क्षण के महत्त्व को इन शब्दों में स्वीकारा है—

‘हमें किसी कल्पित अजरता का मोह नहीं

आज के विविक्त अद्वितीय इन क्षण को

पूरा हम जी लें, पी लें, आत्मसात् कर लें

उसकी विविक्त अद्वितीयता में

रसमय कर दिखा सकें

शाश्वत हमारे लिए यही है।’

अन्य कविता में वे स्पष्ट कहते हैं—

‘नहीं बाँध कर रखा जा सकता

छोटा-सा पल छिन

चल डोले पर चढ़ी जा रही

काल की दुलहिन’

अकेलेपन का दर्द जब पल भर की हँसी से दूर हो सकता है तो उस क्षण की अमरता को हम कम महत्त्वपूर्ण नहीं मान सकते।

7. सौन्दर्यानुभूति—‘अज्ञेय’ प्रणय और सौन्दर्य को बराबर अपने काव्य में स्थान देते हैं। उनकी सौन्दर्यानुभूति सूक्ष्म और कलात्मक है। प्रेम पूर्वक भावों की अभिव्यंजना में कवि का सौन्दर्य बोध भी स्पष्ट होता गया है। उन्होंने नारी-सौन्दर्य की अनाघात छवियाँ प्रस्तुत की हैं, ‘ये उपमान मैल हो गये’ की भावना के अनुसार उन्होंने अपनी सौन्दर्य भावना को प्रकाशित किया है। यही कारण है कि उन्होंने प्रिया को न तो लजाती सांझ के नभ की अकेली तारिका कहा है और न शरद के भोर की निहार स्नात कुमुदिनी कहा है, वे स्पष्टतः कहते हैं—

‘अगर मैं कहूँ
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की
या शरद के सांझ के सूने गगन की पीठिका पर
डोलती कलगी अकेली
बाजरे की।’

अज्ञेय की सौन्दर्यानुभूति का एक पक्ष प्रकृति के आंचल से सीधा जुड़ा हुआ है। उनकी प्रकृति से गहरा मैत्री है। अज्ञेय के प्रकृति काव्य में ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ प्रकृति के सहारे कवि ने भोगातुरता की व्यंजना की है।

‘सो रहा है झोंप अधियात्मा
नदी की जांघ पर
डाह से सिहरी हुई यह चांदनी
चोर पैरों से उदाक कर, झांक जाती।’

इस प्रकार कवि की मौलिक कल्पना शक्ति को देखा जा सकता है—कहीं-कहीं प्रकृति के परिवेश में मनःस्थिति का वर्णन किया गया है। इस दृष्टि से ‘यह मेघ साहसिक सैलानी’ कविता महत्वपूर्ण है। अतः अज्ञेय के काव्य में प्रकृति का संवेदनापूर्ण और अनुरागमय अंकन गहराई से हुआ है। प्रकृति के प्रति कवि की आसक्ति और संवेदना का सर्वाधिक मधुर वर्णन किया गया है—

‘मैंने आँख भर देखा।
दिया मन को दिलासा पुनः आऊँगा
भले ही बरस दिन अनगिनत युगों के बाद।’

‘अज्ञेय’ के काव्य में प्रकृति वर्णन प्रतीक रूप में ही मिलता है। बासन्ती दिवस में कचनार के फूल प्यार के प्रतीक हैं तो ‘पलाश की कली’ दीप्त प्यास की और बावरा अहेरी सूर्य का प्रतीक बन गया है।

तात्पर्य यह है कि अज्ञेय के काव्य में प्रकृति के विविध ताजगी भरे संवेदनात्मक, मानवीकृत और प्रेम भावना युक्त प्रभावी चित्र मिलते हैं। अज्ञेय सौन्दर्य की सार्थकता, समग्रता और सम्पूर्णता में मानते हैं।

‘जो कली खिलेगी जहाँ
खिला जो फूल जहाँ है
जो भी सुख
जिस भी डाली पर, हुआ पल्लवित पुलकित’

मैं उसे वहीं पर
अक्षत, अनाघात, अस्पष्ट, अनाविल
अर्पित करती हूँ तुझे
वहीं वहीं प्रत्येक भरा प्याला जीवन का।’

अन्य विशेषताएँ—अज्ञेय परिवेश के प्रति सतर्क रहे हैं। उन्होंने अपने परिवेश के यथार्थ को शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है। वर्तमान युग की यान्त्रिकता से दुःखी होकर कवि उसके प्रति विद्रोही रुख अपनाता है और कहता है—‘यंत्र हमें दलते हैं और अपने को छलते हैं।’

थोड़ा और पीस लो। यांत्रिक परिवेश के दम घोटू स्वरूप के प्रति अज्ञेय की कविताओं में जुगुप्सा का भाव मिलता है। कवि की दृष्टि नगरीय परिवेश के प्रति जागरूक है। मशीनी युग के मशीनी माहौल में सांस लेती जिन्दगी के प्रति कवि पर्याप्त सहानुभूतिशील हो उठा है। कहीं-कहीं वह व्यंग्यशील भी हो गया है —

‘साँप तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें आया नहीं
एक बात पूछूँ — (उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डसना
विष कहाँ पाया ?’

कवि परिवेश के प्रति सतर्क भी है, साथ ही इसकी दृष्टि यथार्थपरक भी है। कवि थोथी इंसानियत पर भी चोट करता है, जैसे —

‘यों सब आये मेला जुट गया
यही मैं नहीं जान पाया कि इस पंच मेला भीड़ में
वह एक समाज कहाँ घुट गया
और जिसने पहना था देश का चेहरा
वह आईना कहाँ लुट गया।’

इस प्रकार अज्ञेय ने ‘समाज की पथ भ्रष्टता’ की ओर पूरी सावधानी से संकेत कर दिया है। आशय यह है कि ‘अज्ञेय’ अपने परिवेश और उसमें साँस लेते मनुष्य की स्थिति के सही गवाह बनकर आये हैं। मोह भंग की स्थिति को भी कवि ने स्पष्ट किया है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि अज्ञेय का काव्य मूल प्रमुखतः प्रणय, सौन्दर्य, मानवावस्था, सत्यान्वेषण और यथार्थ बोध का काव्य है।

प्रश्न- 22. ‘नदी के द्वीप’ कविता में अज्ञेय ने जीवन के किस सत्य को उद्घाटित करते हुए कविता के प्रतीक के विधान पर टिप्पणी की लिखिए।

उत्तर—अज्ञेय ने ‘नदी के द्वीप’ कविता में अपनी व्यक्तित्व विषयक धारणा का परिचय दिया है। व्यक्ति और समाज अर्थात् व्यक्ति और समष्टि का सम्बन्ध कैसा हो ? इनका अस्तित्व क्या है ? व्यक्ति का समाज के प्रति क्या कर्तव्य है ? आदि अनेक प्रश्नों के उत्तर इस कविता में उपलब्ध होते हैं। व्यक्ति या व्यक्तित्व का कवि ने ‘द्वीप’ को प्रतीक व समाज या सामाजिकता का नदी को प्रतीक बनाया है। नदी का प्रवाह अखण्ड है और द्वीप उस स्तोत्रस्विनी के पुत्र हैं। यह द्वीप रूपी व्यक्ति समाज की ही उपज है। समाज ही उसे भिन्न-भिन्न रूप प्रदान करता है। अतः व्यक्ति का समाज के प्रति कवि ने ‘स्थिर समर्पण’ स्वीकार किया है फिर भी कवि कहता है कि हम द्वीप हैं, धारा नहीं क्योंकि धारा तो निरन्तर बहती है और यदि हम भी बह जायेंगे और रेत बनकर भी कभी धारा नहीं बन सकते हैं वरन् रेत बनकर हम सलिल को तनिक गंदा ही करेंगे। अनुपयोगी ही बनायेंगे। अपने व्यक्तित्व की नियति स्वीकार करते हुए कवि अपनी माता नदी (समाज) से निवेदन करता है कि हमें अपने पिता-भू-खण्ड से जो दाय भाग मिलता है। ‘हे माँ ! तुम उसको माँजती और संस्कार देती चलो’ और यदि कभी तुम्हारे आह्लाद से या दूसरे किसी स्वेच्छाचार या अतिसार से तुम्हारा प्लावन काल-प्रवाह बन जावे तो हमें वह भी स्वीकार है क्योंकि तब हमारा नाश हो जावेगा और हम रेत बनकर फिर छनेंगे, जगेंगे, पैर टेकेंगे, जिसमें हमारे व्यक्तित्व को नया आकार मिलेगा। उस समय भी हे माता ! उसे फिर संस्कार तुम देना।’

नदी की धारा ही द्वीपों का निर्माण करती है, उन्हें बहाकर पुनः नवीन आकार देती है। व्यक्तित्व भी सामाजिक जीवन से निर्मित होकर, उसमें रहकर और उससे अर्थ पाकर ही विशिष्ट सत्ता सम्पन्न है। कवि अपने को व अपने साथियों को ‘नदी के पार’ मानकर सामाजिक जीवन रूपी स्तोत्रस्विनी में दबोच देने के वृद्ध निश्चय की घोषणा करता है। फिर भी वे विशिष्ट व्यक्तित्व से व्यापक जीवन के अनवरत सम्बन्ध भाव को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं और उनकी मान्यता है कि दर्द उसी समय तक क्लेशकर होता है जब तक हम उससे लड़ते हैं। इस विशाल समष्टि के समक्ष अपने को समर्पित कर देने के पश्चात् सब क्लेश मानो समाप्त हो जाते हैं। इसलिए उन्होंने इस ‘द्वीप’ को होने वाली स्थिति को शाप न मानकर नियति कहा है। इसलिए कवि की अस्मिता, अहं विद्रोही आत्मान्वेषण ऐसे ही विशिष्ट व्यक्तित्व में परिणित हो गया है। ऐसे व्यक्तित्व तथा उसके आदर्श रूप का निरूपण ही इस कविता में नई प्रयोगवादी शैली व उपमानों तथा प्रतीकों के माध्यम से करने में कवि सफल हुआ है। इस प्रकार कवि ने इस कविता में व्यक्ति व समष्टिगत जीवन के विभिन्न देश व कालगत सम्बन्धों के स्वरूपों के सत्य का उद्घाटन किया है। दार्शनिक दृष्टि से व्यक्ति का जन्म, स्थिति और मरण इस अखण्ड काल प्रवाह का ही परिणाम है। उसी प्रकार द्वीप का जन्म, स्थिति और मरण स्तोत्रस्विनी नदी पर ही आधारित है। यही सत्य इस कविता में सुन्दर व सफल रूप में उद्घाटित हुआ है। कवि का स्वर इसमें संघर्षपूर्ण न होकर नियतिवादी की भाँति समर्पणशील है।

नदी के द्वीप कविता के प्रतीक विधान

‘नदी के द्वीप’ अज्ञेय जी की प्रतीक रचना है। इसमें प्रारम्भ से अन्त तक कवि ने प्रतीक योजना का सफल निर्वाह किया है और इसके विभिन्न स्वरूपों व सम्बन्धों का चित्रण किया है। ‘नदी’ समाज या विशाल कालधारा का प्रतीक है तथा ‘द्वीप’ व्यक्ति का। नदी के प्रवाह से ही जैसे द्वीप का जन्म, स्थिति व मरण होता है उसी प्रकार सामाजिक जीवन से ही व्यक्तित्व या व्यक्ति का जन्म होता है, उसकी स्थिति व मरण होता है। कवि ने गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकतकूल, गोलाइयाँ आदि को भी व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों का प्रतीक भी बनाया गया है। नदी को माता व भूखण्ड को पिता का प्रतीक ही बनाया गया है। मुख्य प्रतीक नदी व द्वीप ही हैं। जो क्रमशः समाज व व्यक्ति के परिचायक हैं। परन्तु कवि ने अपने व्यक्तित्व की भिन्न सत्ता को रेत व धारा आदि के अस्तित्व से भिन्न स्वीकार किया है और इसलिए उसने स्पष्ट किया है—

‘हम नदी के पुत्र हैं। बैठ नदी के क्रोड़ में। और वह भूखण्ड अपना पितर है।’

7.2 सारांश

अस्तु नदी के द्वीप कविता अज्ञेय जी की एक मानक कविता है।

इकाई- 8 : सुधीन्द्र

संरचना

- 8.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 8.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 8.2 सारांश

8.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

कोकिल

(1)

अब छोड़ प्रणय की तान अरी,
अब गीत प्रलय के गा कोकिल !
फूले उपवन में फूल कहाँ ?
हैं चन्द्रकिरण भी शूल यहाँ ।
आती विभावरी भी ओढ़े
तमसा का वज्र-दुकूल यहाँ !
अब अग्निकणों को चुनना है,
कलिकायें दे बिखरा कोकिल !
अब छोड़ प्रणय की तान अरी,
अब गीत प्रलय के गा कोकिल ! 1 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित राजस्थान में काव्य रचना के क्षेत्र में नये युग के प्रवर्तक सुधीन्द्र द्वारा रचित कोकिल शीर्षक कविता से अवतरित है। कोयल का गान पनभावना होता है लेकिन जब सामाजिक असमानताएँ विषमताएँ व्याप्त हो तो जागरण के अभिलाषी कवि का आक्रोश फूट ही पड़ता है।

व्याख्या—इसी स्थिति में सुनहले प्रभात की आकांक्षा में कवि कोयल को सम्बोधित कर कहते हैं कि—अरे कोकिल ! तू प्रणय भरे गीतों की तान को गाना छोड़ दे क्योंकि अभी बहस समय नहीं आया है आज सर्वत्र विषमताओं और असमानताओं का वातावरण व्याप्त है। इस वातावरण को समतल बनाने के लिए तू प्रलय के गीत गा जिससे जागरण का भाव जागृत हो और समाज में नया परिवर्तन का सुनहरा प्रभात आ जाये। कवि अपने भावों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि इस खिले हुए स्वतन्त्रता रूपी बगीचे में फूल हुए अर्थात् खुशहाली के प्रतीक फूल कहाँ दिखाई पड़ रहे हैं। यहाँ चन्द्रमा की किरणें जो शीतलता बरसाने वाली हुआ करती हैं वे भी आज काँटे की तरह चुभती हुई प्रतीत हो रही हैं। व्याप्त असमानताओं और विषमताओं के कारण वहाँ की रात्रि भी अन्धकार की ओढ़नी ओढ़े हुए आती है। इस वातावरण को समानता के स्तर पर लाने के लिए कलियों अर्थात् अपनी खुशियों को छोड़ दे और विद्रोह के प्रतीक अग्नि कणों का तू वरण कर ले। वातावरण की स्थिति को अवलोकित करते हुए अरी कोयल तू प्रेम भरे गीतों की तान को छोड़ना बन्द कर दे और प्रलय के गीत अर्थात् विद्रोह के गीत गाता प्रारम्भ कर दे क्योंकि तभी समानता का नया प्रभात आयेगा।

विशेष—1. वर्तमान व्याप्त विषमता के वातावरण के मध्य कवि का आक्रोश दृष्टव्य है।

2. प्रतीक विधान सहजनीय है।

3. भाषा भावों के अनुकूल है।

(2)

अब गीत प्रलय के गा कोकिल !
विभ्रम है आज दिशाओं में
विष घुला शरीर-शिराओं में
आसब से जड़ता-सी छायी
आँखों की इन रेखाओं में ॥ 2 ॥

शब्दार्थ—प्रलय=विनाश, कोकिल=कोयल, विषम=भ्रमित, शिराओं=नसों, आसब=शराब।

प्रसंग—प्रस्तुत अंश में कवि ने कोयल के माध्यम से देश में व्याप्त विषमताओं के प्रति जन-मानस में आक्रोश उत्पन्न करने वाले गीतों की प्रेरणा देते हुए नव-जागरण की अपेक्षा की है।

व्याख्या—सामाजिक असमानताओं एवं विषमताओं के प्रति कवि अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहते हैं कि व्याप्त सामाजिक विषमताओं के कारण आज दिशाएँ भी भ्रमित हैं। विष का व्यापन शरीर की शिराओं में हो चुका है। आँखों की कोरों में निराशा के कारण जड़ता-सी छायी हुई है। परिणाम स्वरूप आँखों की स्थिति नशीले जन की तरह हो गयी है। जिस प्रकार आसब पीने से नशा स्वाभाविक रूप से छा जाता है और उस समय उस व्यक्ति की आँखें जड़ हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार सामाजिक विषमताओं के कारण दीन हीन जनों के मन में निराशा छा गयी है। ऐसे वातावरण में अरी कोयल! काल कूट अर्थात् विषपान करा, जिससे वातावरण में हलचल होने लगे। इसके लिए तू प्रणय के गीत गाना छोड़कर प्रलय के गायन को प्रारम्भ कर दे।

विशेष—कवि ने समाज में व्याप्त विषमताओं को दूर करने के लिए नव-जागरण का सन्देश प्रसारित किया है।

(3)

जग में आकुल स्वर बोल रहा
जग धुली ग्रन्थियाँ खोल रहा
इस घने अंधेरे में जीवन
उजियाली राह टटोल रहा
झनका कर जड़ जीवन-वीणा,
नवजीवन-स्वर सरसा कोकिल!
अब छोड़ प्रणय की तान अरी,
अब गीत प्रलय के गा कोकिल ॥ 3 ॥

शब्दार्थ—आकुल=व्याकुल व उत्सुक, राह=मार्ग।

प्रसंग—प्रस्तुत अंश में कवि कोकिल के माध्यम से नवजीवन की कल्पना को साकार करने की अपेक्षा कर रहे हैं।

व्याख्या—कवि सुधीन्द्र प्रस्तुत अवतरण में नवजीवन की कल्पना करते हुए कहते हैं कि सामाजिक भोग में व्याप्त असमानताएँ और विषमताओं के कारण सर्वत्र एक प्रकार की बैचेनी व्याप्त है। कहीं पर भी शान्ति का सौहार्दपूर्ण वातावरण दिखाई नहीं पड़ रहा है। अर्थात् यह संसार एक अजीब घुटन से पूर्ण दिखाई पड़ रहा है। जिससे ऐसा लग रहा है कि यह संसार विषमता की गाँठों को खोल रहा है परिणाम स्वरूप सर्वत्र अन्धेरा छाया हुआ-सा प्रतीत हो रहा है। इस अन्धेरे में जीवन उजाले युक्त रास्ते की आकांक्षा में है। अर्थात् जीवन अपनी सहजता के पथ को खोज रहा है जिसमें आनन्द, समनता और सहयोग की भावधारा बहती हो। इसलिए अरी कोयल तू इस जड़-जीवन पर अपनी वीणा की ऐसी झंकार दे जिससे नवजीवन का स्वर सरस हो जाए अर्थात् विषमताओं के बीच जीवन में सफलताएँ व्याप्त हो जाएँ और जीवन सरसता को प्राप्त हो जाए इसके लिए प्रणय तान को छोड़कर प्रलय का गान प्रारम्भ कर दे क्योंकि जब तक विद्रोह का स्वर नहीं फूटेगा तब तक समाज में नव चेतना जाग्रत नहीं हो सकती है। आज सर्वत्र वैषम्य का भाव तेजी से फैल रहा है। इस विषमता को दूर करने के लिए नव जागरण की आवश्यकता है।

विशेष—कवि ने नव-जागरण और समानता की स्थापना के लिए विद्रोही भाव को जागृत करने पर बल दिया है।

राजस्थान-वंदना

(1)

विदित किसे है नहीं भला वह, भारत भू की ढाल महान्
शौर्य वीर्य का अविरल निर्रर पुण्यतीर्थ वह राजस्थान
था चित्तौड़ दुर्ग-सा उसका दुर्विजय विजयोज्जत भाल
झुका नहीं वह कभी देह पर पाकर भी प्रहार विकराल
समरानल से जिसने उर की जलती ज्वाला ठंडी की
रही युगों जो शोणित स्नाता रंगभूमि रणचण्डी थी
जब जब पुण्य मरण-पीडित हो बना शरण का याचक दीन
अभयदान का दानी बन वह तब तब हुआ समर में लीन

स्वतन्त्रता पौरुष प्रेमी का था बस यही सुखद अधिवास
मंच मनोज विसर्ग नदी का मानो उसने चुना निवास ॥ 4 ॥

शब्दार्थ—विदित=ज्ञात अविरल=निरन्तर प्रवाहित होने वाला विकराल=कठिन

प्रसंग—राजस्थान के प्रसिद्ध कवि डॉ. सुधीन्द्र द्वारा रचित 'राजस्थान वन्दना' शीर्षक कविता से उद्धृत इस पद्यांश में कवि ने अपनी मातृभूमि राजस्थान की वन्दना की है और राजस्थान की वीरता का परिचय प्रदान करने का सफल प्रयास किया है।

व्याख्या—राजस्थान के वीरों के शौर्य, पराक्रम, प्रेम व शरणागत वत्सलता व स्वतंत्रता प्रियता का चित्रण करते हुए कहते हैं कि यह किस व्यक्ति को पता नहीं है कि यह राजस्थान हमारी मातृभूमि भारत की ढाल है जिसने युगों-युगों से विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमणों का डटकर मुकाबला किया है। यह राजस्थान शौर्य, शक्ति का निरन्तर निर्वर रहा है और यह महान् पुण्यों का तीर्थस्थल है। चित्तौड़ के किले के समान इस राजस्थान का अजेय व विजयोन्मत्त ललाट है जो अपने शरीर पर भयंकर प्रहारों को सहन करके भी कभी शत्रुओं के सामने नहीं झुका है। यह रणचंडी देवी की खून से स्नान करने वाली रंगभूमि युगों-युगों से रही है। जब-जब कोई धर्मात्मा या पुण्यात्मा अपने मरण की आशंका से पीड़ित हुआ और इस राजस्थान की धरती के सम्मुख दीन भिखारी बनकर शरण मांगने आया तब-तब इस राजस्थान के चित्तौड़ ने उसे अभयदान दिया और उसकी रक्षा के लिए इसने अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी आतंककारी शत्रु से युद्ध किया। वास्तव में यह स्वतंत्रता, शौर्य, वीरता व प्रेम का सदा से ही सुखद अधिवास रहा है। इस राजस्थान ने तो प्रकृति रूपी नदी का सुन्दर मंच अपने निवास के लिए चुना है अर्थात् यहां की प्राकृतिक छटा भी अत्यन्त स्मरणीय व मनोहर है।

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में वीर प्रसूता, भारत भूमि की महिमा का वर्णन सुन्दर ढंग से किया है।

2. राजस्थान की वीरता व आजादी की जंग में राजस्थान के योगदान का सुन्दर परिचय कराया गया है।

(2)

यहीं यहीं हैं समर परायण वीर भूमि चित्तौर यहीं
बार बार संभूत हुए हैं, शूरों से सिरमौर यहीं
शिरमौरों को रत्न यहीं पर, था जग-जग बप्पा रावल
आज उसी का ज्योतिकिरण हैं, ये क्षत्रिय यश से उज्ज्वल
रहा सदा निज सदा प्रिय, सख्त सुखों का अविरल स्रोत
समर-सिंधु में अर्चि-बल्लरी ले खेते थे वे जीवन-पोत
प्रेम जिन्हें स्वाधीन मरण था, हेय पुरुष परवशता पास
श्रेय रहा इस भंगुर भव में यश वैभव अक्षर अविनाश ॥ 5 ॥

प्रसंग—राजस्थान के सुप्रसिद्ध कवि श्री सुधीन्द्र द्वारा रचित 'राजस्थान वन्दना' शीर्षक से उद्धृत इस पद्यांश में कवि ने राजस्थान में स्थित चित्तौड़ के गुणगान किये हैं।

व्याख्या—कवि कहते हैं कि इस रत्नगर्भा राजस्थान की भूमि में ही वीर भूमि चित्तौड़ है जो सदा से ही समरसपरायण अर्थात् मातृभूमि की आन-बान-शान और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए युद्ध करने वाली रही है। इस वीर भूमि चित्तौड़ ने ही बार-बार अनेक वीर शिरोमणि महान् शूरवीरों को जन्म दिया है और इस चित्तौड़ में ही वीर शिरोमणियों के रत्न के समान जगमग-जगमग प्रकाश फैलाने वाले बप्पा रावल हुए हैं। उस बप्पा रावल की ज्योति की किरणों से ही राजस्थान के क्षत्रिय उज्ज्वल यश से मण्डित हैं। यहाँ के क्षत्रियों को समस्त प्रकार के सुखों का अविरल स्रोत अपना देश ही सदा प्रिय रहा है न कि वे अपने प्राणों को प्रिय समझते थे। वे वीर क्षत्रिय तो अपने जीवन की नाव को युद्ध के समुद्र में तलवारों की पतवार लेकर खेते या चलाते थे। उन क्षत्रियों को अपने प्राणों से प्रेम नहीं था और न वे दासता की जंजीरों के सुखों को ही प्रिय मानते थे वरन् उन्हें तो स्वाधीनता पूर्वक रहने के लिए मरना ही प्रिय लगता था। इस क्षण-भंगुर संसार में उनके लिए यशपूर्ण वैभव ही श्रेय था और इसी के बल पर उन्होंने अविनाशी अक्षय कीर्ति का अर्जन किया था।

8.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1. डॉ. सुधीन्द्र की कविताओं की विशेषताओं का सोदाहरण उद्घाटन कीजिए।

अथवा

सिद्ध कीजिए की कविता के मानवीकण पक्ष की दृष्टि से सुधीन्द्र एक सफल कवि थे।

उत्तर—सुधीन्द्र—सुधीन्द्र राजस्थान के हाड़ीती क्षेत्र के निवासी थे और उन्होंने एक सच्चा कवि हृदय पाया था। ‘शंखनाद’, ‘जौहर’, ‘अमृतलेखा’, ‘प्रत्यय वीणा’, ‘प्रेयस’ आदि उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। ‘शंखनाद’ व ‘जौहर’ में उन्होंने राजस्थान के शौर्य और बलिदान को कविता का विषय बनाया और ये रचनाएं राजस्थान के जातीय इतिहास का रोमांचकारी भाग बन गईं। ‘अमृतलेखा’ व ‘प्रेयस’ में उनकी सौन्दर्य व प्रेम सम्बन्धी रचनाएँ हैं। उनकी कविताओं की भाषा खड़ी बोली हिन्दी है और उन्होंने अपनी कविताओं के बल पर राजस्थान की कीर्ति को फैलाया तथा हिन्दी कविता को समृद्धि प्रदान की।

कविताओं की विशेषताएँ—हमारी पाठ्य-पुस्तक में श्री सुधीन्द्र की केवल दो कविताएँ—

1. राजस्थान वंदना
2. कोकिल

संकलित हैं। इन कविताओं के आधार पर उनकी विशेषताओं का विवेचन करने में ही ज्ञात हो जाता है कि वे एक सफल कवि थे।

1. भाव पक्ष की विशेषताएँ—सुधीन्द्रजी की कविताओं के प्रमुख विषय राजस्थानी शौर्य और बलिदान का चित्रण तथा प्रेम व सौन्दर्य निरूपण रहे हैं। ‘राजस्थान वंदना’ शीर्षक कविता में उन्होंने वीरभूमि चित्तौड़ के गुणगान किये हैं और स्त्रियों के आदर्शों, स्वतन्त्रभाव शरणागत वत्सलता के लिए अनेक कष्टों को हँसते-हँसते सहना व मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगाकर खून की नदियाँ बहा देना आदि प्रमुख हैं। चित्तौड़ के बप्पारावल के आदर्शों का चित्रण करते हुए उन्होंने उन्हें शूरवीरों के शिरमौरों का उज्ज्वल रम्य बताते हुए कहा है—

‘रहा जिन्हें निज देश सदा प्रिय सकल सुखों का अविरल स्रोत,
समर-सिन्धु में असि-बल्लि ले खेते थे वे जीवन-पोत।
प्रेम जिन्हें स्वाधीन मरण था, हेम पुरुष परवशता पास,
श्रेय रहा इस भंगुर में यश-वैभव अक्षर अविनाश।’

‘जौहर’ काव्य में इसी प्रकार उन्होंने क्षत्रिय वीरों के साथ ही क्षत्रिय वीरांगनाओं के जौहर करने का रोमांचकारी वर्णन किया है। ‘वाणी’ जैसी लघु कविता में कवि के ओजस्वी स्वर सुनाई पड़ते हैं और वह सरस्वती को क्रान्ति को दीवानी प्रलय-रागिनी को अपनी वीणा पर छोड़ देने की प्रार्थना करता है और कहता है—

‘हुँकार भरें हम, अखिल घरा भी डोले
भू तने, निर्माण में बंधे युगों को खोले
हम उन्हें गगन हो खल बल, सागर रसमय
हम लें, वज्र में विजय हमारी बोले।’

‘स्नेह का वरदान दो’—कविता में प्रेम व सौन्दर्य का चित्रण है। परन्तु कवि ने इसमें रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास किया है और प्रेम को वासनात्मकता से सर्वथा दूर रखकर लगन, निष्ठा व त्याग को ही प्रेम के आदर्श के रूप में स्वीकार किया है और अपने आपको युगों-युगों से जलने वाला दीपक तथा प्यार के मार्ग पर युगों से चलने वाला पथिक बताया है, जिससे यह कविता रहस्यवादी सी बन गई है और अज्ञात प्रियतम ईश्वर की ओर संकेत करती है।

‘स्नेह का वरदान दो, मैं दीप युगों से जल रहा हूँ।
कुछ गिने रस बिन्दु पाकर मृत्तिका अपनी लिए हूँ,
क्षीण-सी लघुवर्तिका में लौ लगाये ही जिए हूँ,’
‘प्यारका पाथेय दो मैं पथिक युग में चल रहा हूँ।’

कला पक्ष—भाव पक्ष की भाँति ही सुधीन्द्र की कविताओं का कला पक्ष अत्यन्त सबल है। उन्होंने अलंकारों का स्वाभाविक नियोजन किया है तो प्रकृति का सजीव चित्रण उनकी कविता में लय है और गेयता है, शैली में अद्भुत प्रभाव प्रेषणीयता है तो भाषा में शुद्ध खड़ी बोली। हिन्दी का परिनिष्ठित रूप नजर आता है, जिनमें तत्सम शब्दों की प्रधानता है। मानव विषय के अनुकूल शब्द चयन उनकी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

अलंकार—‘राजस्थान-वंदना’ में रूपक अलंकार की छटा को एक ही चरण में लिखा है—

‘समर सिन्धु में असि बल्ली के खेते थे वे जीवन पोत।’

‘स्नेह का वरदान दो’ में विरोधाभास का चमत्कार हमें चमत्कृत कर देने के साथ ही प्रेम के आदर्शों का निरूपक बन गया है—

‘हम को अपनी विजय कर, शाप को निज कर किए हूँ’

प्रकृति—प्रकृति का सुधीन्द्र ने साकार व सजीव वर्णन किया है, जिससे एक चित्र-सा उपस्थित हो जाता है। ‘राजस्थान-वंदना’ में चित्तौड़, अरावली पर्वत व हल्दी घाटी के चित्र ऐसे ही हैं—

‘यह आड़ावल अचल-दुर्ग सा इसका सजग सबल प्रहरी,
जिसकी सुख-छाया में रह-रह सह पाया यह दोपहरी।
यह नीचे हल्दीघाटी है वसुधा-विश्रुत रणस्थली,
जहाँ शूरवीरों के रण से रक्त नदी थी उमड़ चली।’

भाषा शैली—सुधीन्द्र की भाषा में सरसता व सुबोधता के साथ ही विषय-प्रतिपादन की अद्भुत क्षमता है और उनकी शैली में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही शैलियाँ विद्यमान हैं। उनकी मुक्तक शैली जैसी ही प्रभावपूर्ण प्रबन्ध-शैली के दर्शन ‘जौहर’ नामक रचना में किये जा सकते हैं। किसी भी मूर्त व अमूर्त वस्तु का भव्य व भावानुकूल चित्र पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करने में उनकी शैली बड़ी प्रभावशाली रही है।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्री सुधीन्द्र राजस्थान के एक-सुप्रसिद्ध, सबल व सफल कवि थे और उन्होंने अपनी कविताओं से राजस्थान की कीर्ति को विस्तृत करने के साथ-साथ हिन्दी को भी समृद्ध किया था।

प्रश्न-2- सुधीन्द्रजी का संक्षिप्त परिचय लिखते हुए उनकी ‘कोकिल’ कविता का मूल भाव प्रस्तुत करें।

उत्तर—सुधीन्द्रजी का जन्म पूर्व कोटा रियासत के खैराबाद ग्राम में 1814 में हुआ था। सुधीन्द्र जी का मूल नाम ब्रह्मदत्त शर्मा था। उनकी शिक्षा का मूल क्षेत्र कोटा तथा कानपुर रहा। वे हिन्दी और अंग्रेजी में एम.ए. थे तथा हिन्दी कविता में ‘कान्ति युग’ शीर्षक शोध प्रबन्ध पर उन्होंने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

सुधीन्द्र जी एक निष्ठावान प्राध्यापक थे। सुधी समीक्षक के रूप में आज भी उनको याद किया जाता है। सुधीन्द्र जी शान्त और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। राष्ट्रीय स्वीधीनता संग्राम में उनका योगदान अप्रतिम है। काव्यग्रंथ के रूप में शंखनाद, मेरे गीत और जौहर इनकी प्रारम्भिक कृतियाँ हैं। ‘जौहर’ यदुमिनी के बलिदान पर आधारित एक सुन्दर खंडकाव्य है। ‘मेरे गीत’ रचना कोमल भावनाओं पर आधारित गीत संग्रह है। ‘त्रलयवीणा’ उनकी सर्वश्रेष्ठ काव्य रचना है। देशप्रेम के उदात्त आदर्श उनके शब्द-शब्द में मुखरित हुए हैं। ‘शंखनाद’ में राष्ट्रीयधारा प्रवाहित होती है।

‘अमृतलेखा’ और ‘प्रेयस’ काव्यकृतियों में छायावादी कवि के रूप में उनकी काव्य क्षमता का परिचय देखा जा सकता है। निराशा और अवसाद से ऊपर उठकर वे शब्द-शब्द में नयी आशा का संचार करने में जुटे दिखाई पड़ते हैं।

इन्होंने अनेक समीक्षा ग्रन्थ भी लिखे तथा राष्ट्रवाणी, जीवन साहित्य, हिन्दी पत्रिका, वनस्थी पत्रिका, मरुभारती आदि पत्रिकाओं का बड़ी कुशलता के साथ संपादन भी किया।

‘कोकिल’ कविता का मूल—सुधीन्द्रजी को समाज में फैली विषमता और असमानता असहनीय है। समाज में जागरण की भावना आए इसलिए उन्होंने कोयल को प्रतीक रूप में उपस्थित कर यह ध्वनित कर रहे हैं कि कोयल हमेशा मधुर तान से मीठे स्वर में गीत गाती रहती है पर समाज राष्ट्र के उत्थान के लिए कोमलता को छोड़ प्रखर गीत गाना है। अतः कवि कोयल को प्रणय की तान छोड़कर प्रलय का गीत गाने के लिए कहता है। कविता में निम्न भाव की अभिव्यंजना है—

1. समाज जागृति का स्वर—प्रस्तुत कविता में सामाजिक विषमता को लक्षित कर कवि कहते हैं कि अब उपवन में सुन्दर फूल नहीं खिलते हैं बल्कि वहाँ पेने शूल चुभ रहे हैं। इस समाज में कहीं तो सुख सुविधाओं का पूरा अभाव है तो कहीं असन्तुलन है। अतः अपनी मन की व्यथा का कोकिल के माध्यम से व्यक्त करते हुए कि उन साधनों पर सबका समान रूप से अधिकार होना चाहिए। वे साधन केवल चन्द हाथों तक ही पहुँच पाते हैं अतः कोकिल ऐसा प्रलय गीत सुना—

अब अग्निकर्णों को चुनना है
कलिकाएं दे बिखरा कोकिल
वैभव से फटते महलों में
तू प्रलय-लहर लहरा कोकिल।

अब छोड़ प्रणय की तान अरी
अब गीत प्रलय के का कोकिल।

क्रांति का स्वर- प्रस्तुत कविता में सुधीन्द्र जी ने समाज में व्याप्त विसंगतियों का चित्रण किया। एक तरफ वैभव का अंबार तो दूसरी तरफ गरीबी की खाई। इस अमीरी-गरीबी के कारण भाई चारा की भावना, एकता की भावना समाप्त हो रही है। जो सामाजिक अशांति का कारण बनी है। अतः हे कोकिल कुछ ऐसे स्वर गा-

अन्दर में आज तूफान उठा
जीवन में है तूफान उठा
री, रंगमहल की बीणा से
हे आज क्रांति का गान उठा।

विषमता पर आघात- सुधीन्द्रजी के हृदय में सामाजिक चेतना के तार इंकृत होते दिखाई देते हैं। प्रस्तुत कविता में समाज में फैली विषमता का आघात उनके विद्रोह स्वर में व्यक्त हो उठते हैं। हे कोयल! एक तरफ पूँजीपति धन-दौलत की चदर ओढ़कर अभिमान में फूले नहीं समा रहे हैं। कैसा विभ्रम चारों दिशाओं में छाया है। दूसरी तरफ गरीबों की आंखों में कुपोषण का जहर फैला हुआ साफ दिखाई दे रहा है। इस विषमता रूपी जहर को समाप्त करने के लिए समानता रूपी अमृत की आवश्यकता है। कवि आक्रोश स्वरों में कहता है-

विभ्रम है आज दिशाओं में
विष घुला शरीर शिराओं में
आसन से जड़ता सी छाया
आंखों की इन रेखाओं में
अब कालकूट की लहरों में
अमृत का स्पन्दन ला कोकिल।

नवजीवन के संचार की कामना- प्रस्तुत कविता में बतलाया गया है कि सामाजिक जीवन में सर्वत्र अशान्ति फैली हुई है लेकिन मानवता की भावना एकदम से लुप्त नहीं हुई है। अज्ञान रूपी आवरण छाने से जीवन में अन्धकार की दीवार खड़ी हो गई। अगर उसे जीवन में नव संचार मिल जाए, जन जागरण की प्रेरणा मिल जाए तो समाज में फैली विषमता को दूर करने में नया मार्ग मिल सकता है। निराशा से भरे जीवन में सुनहले प्रभात की आशा का संचार हो सकता है। अतः कवि कहते हैं-

जग में आकुल स्वर बोल रहा
जग घुली ग्रन्थियां खोल रहा
इस घने अंधरे जीवन में
उजियाली राह टटोल रहा
झनका कर जड़ जीवन-बीणा
नवजीवन स्वर सरसा कोकिल।

8.2 सारांश

कविता के निष्कर्ष रूप में संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि सुधीन्द्रजी की कविताओं में देशप्रेम, राष्ट्रप्रेम एवं सामाजिक चेतना का स्वर मुख्य रूप से अभिव्यक्त हुआ है। कोकिल कविता में समाज में छाई असमानता के बादल को दूर करने का प्रयास किया गया है। यह कविता अत्यन्त प्रभावशाली एवं प्रेरणादायी है।

इकाई- 9 : गिरिजाकुमार माथुर

संरचना

- 9.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 9.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 9.2 सारांश

9.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

पन्द्रह अगस्त

(1)

विषम श्रृंखलाएँ टूटी हैं
+खुली समस्त दिशाएँ
आज प्रभंजन बनकर चलतीं
युग-बन्दिनी हवाएँ
प्रश्न-चिह्न बन खड़ी हो गई
यह सिमटी सीमाएँ
आज पुराने सिंहासन की
टूट रही प्रतिमाएँ
उठता है तूफान, इंदु तुम
दीप्तिमान रहना
पहरूप, सावधान रहना ॥ 1 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण गिरिजाकुमार माथुर द्वारा रचित 'पन्द्रह अगस्त' शीर्षक कविता से अवतरित है। कवि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बदले वातावरण की ओर संकेत करते हैं। साथ ही भारतवासियों को स्वतंत्रता के महत्त्व का प्रतिपादन बताते हुए भविष्य के प्रति सचेत भी किया है।

व्याख्या—कवि स्वतंत्रता के साथ देश में व्याप्त कुरीतियों की ओर संकेत करते हुए कहते हैं स्वतन्त्रता के कारण जो विषमता की दीवारें खड़ी हुई थी वे टूट गयी हैं और सर्वत्र स्वतन्त्रता का वातावरण फैल गया है। इस स्वतन्त्रता के वातावरण में युगों से जो हवाएँ 'परतन्त्रता के जाल में बन्दी' हुई थी वे अब स्वतन्त्रता भाव से पूरित होकर अत्यधिक उल्लास के कारण तेजगति से प्रवाहित होने लगी हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के कारण आज पुरानी समाजवादी स्थितियाँ अस्तित्व विहीन हो गयी हैं और छोटी-छोटी राज्यों की सीमाएँ टूट गयी हैं। जिस प्रकार चन्द्र किरणों को देखकर सागर में ज्वर आता है, उसी प्रकार इस स्वतन्त्रता रूपी सागर में अनेक तूफान उठेंगे लेकिन तुम चन्द्रमा की तरह आभावान होकर अपने दायित्व के प्रति सावधान रहना क्योंकि आजादी का सौभाग्य अत्यधिक मुसीबतों रूपी बेड़ा का पार करके प्राप्त हुआ है।

- विशेष**— 1. कवि ने आजादी प्राप्त करने के बाद भी सतर्क रहने का सन्देश दिया है। इसकी रक्षा करना सभी का दायित्व है।
2. अभी पूर्ण आजादी प्राप्त नहीं हुई है, उसके प्रति दायित्व निर्वहन आवश्यक है।
3. प्रतीकों का सहज प्रयोग दृष्टव्य है।

(2)

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज
कमजोर हमारा घर है

किन्तु आ रही नई जिव्दगी
यह विश्वास अमर है
जनगंगा में ज्वार,
लहर तुम प्रवहमान रहना
पहरुए, सावधान रहना ॥ 2 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित कविता 'पन्द्रह अगस्त' शीर्षक से अवतरित किया गया है।

व्याख्या—कवि गिरिजा कुमार माथुर ने आजादी की प्राप्ति के उपरान्त शेष स्थितियों की ओर संकेत करते हुए बताया है कि—यद्यपि हमने आजादी प्राप्त कर अपनी स्वतन्त्रता की मशाल को जला लिया है और यह मशाल हमें आजादी की ज्योति प्रदान करने वाली है। लेकिन आजादी का पथ इतना सहज नहीं है। इसमें अनेक कष्ट समाये हुए हैं। यह बात अलग है कि आजादी हासिल करने के बाद शत्रु का शासन हमारे ऊपर से हट गया लेकिन आज की परिस्थितियों में उसकी छायाओं से भी डर है क्योंकि हमारी सीमाओं पर आक्रमण के बादल छाये हुए हैं। दूसरी ओर आजादी प्राप्त करने के बाद भी हमारा समाज शोषण से मुक्त नहीं है। शोषण, अन्याय तथा अत्याचारी व्याप्त भाव धारा के कारण हम अपने घर में ही कमजोर दिखाई पड़ते हैं। लेकिन समय की गति के साथ हमारे समाज में परिवर्तन का सिलसिला तेजी से चल रहा है और एक दिन समाज में व्याप्त विषमताएँ शोषण और अन्याय समाप्त हो जाये और सभी को आजादी की ज्योति में समानता के साथ जीने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। जन-मन में स्वतन्त्रता के साथ जीने की चेतना और स्वतन्त्रता प्राप्ति के लाभों का उपयोग करने की भावना जाग रही है। इस भावधारा की लहर हमेशा ही बहती रहे इस दृष्टि से स्वतन्त्रता के रक्षकों तुम सावधान रहना।

विशेष— 1. कवि ने स्वतन्त्रता के उपभोग में बाधक तत्वों की ओर संकेत किया है।

2. जन गंगा का प्रयोग सामान्य जन के लिए किया है जो अब तक स्वतन्त्रता प्राप्ति के लाभों से वंचित है।

9.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न- 1. गिरिजा कुमार माथुर की काव्यगत विशेषताओं का सोझाहरण परिचय प्रस्तुत कीजिये।

अथवा

‘नयी कविता के कवियों में ‘माथुर’ प्रकृति छवियों, मधुर भावनाओं, प्रेमिल सन्दर्भों और आधुनिक विषमताओं के कवि हैं।’ संकलित कविताओं के आधार पर इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर—गिरिजा कुमार माथुर का जब ‘धूप के धान’ नामक कविता संग्रह प्रकाशित हुआ तब आलोचक अजीत कुमार ने लिखा था कि ‘गिरिजा कुमार माथुर’ प्रथमतः श्रृंगारी कवि हैं। ‘रात की मोठी कथा’ के गीत उन्होंने गाये हैं। रुमानी दृश्य अंकित करने में वे अतिशय सफल हुए हैं।

नयन लालिप स्नेह दीपित भुजमलिन तनगंध सुरभित।

उस नुकीले वक्ष की वह छयन, उकसन, चुभन असलित ॥

यह होते हुए भी विदेश में देखा हुआ नारी का अनावृत्त रूप माथुर को रमा नहीं पाता। ‘उठते स्तन, खुलती बाँह, गोरी जाँघ’ से कवि अपने को दूर अनुभव करता है। श्रृंगारिता का सांकेतिक वर्णन ही उन्हें अधिक प्रिय है और इस संकेत शैली के माध्यम से कवि ने प्रकृति में, ऋतुओं में और मानव-जीवन में सर्वत्र, अभिसार के खुले दृश्य देखे हैं। इस उद्धरण से गिरिजा कुमार माथुर की मुख्य विशेषता और काव्य प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है किन्तु वे इन्हीं श्रृंगारिक भावनाओं तक सीमित रहने वाले कवि नहीं हैं बल्कि वे अपने प्रेम को विस्तार देते हैं। उनकी कविता में नारी और प्रकृति दोनों का सौन्दर्य और प्रेमानुभूति है तो इसके साथ ही आधुनिक विषमताओं पर भी उन्होंने खूब लिखा है और सुन्दर रूप में लिखा है। उनकी काव्यगत विशेषताओं का विवेचन इस प्रकार है—

काव्य चेतना का वैविध्य—अजीत कुमार ने लिखा है कि ‘गिरिजा कुमार माथुर की काव्यचेतना ने अनेक विषयों को छुआ है पर इस बहुविध-छुवन के ऊपर कवि द्वारा किये गये शिल्प के प्रयोग ऐसे छा गये हैं : विशेष रूप से उपमान, ध्वनि योजना और संगीत के कि समूची कविता एक ही रंग में रंगी जान पड़ती है।’

गिरिजा कुमार माथुर ने नये बिम्बों, प्रतीकों और उपमानों को व्यवस्थित किया है, पर छायावादी संस्कारों के कारण इनके माध्यम से रोमेन्टिक भावना और सौन्दर्य को ही अधिक सजीवता और सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। ‘तार सप्तक’ से अपनी काव्य यात्रा आरम्भ करने वाले माथुर अपने प्रारम्भिक रूप में रंग, रूप और रोमान्स की भावना की भावनाओं को प्रयोगशील शैली में व्यक्त करते हैं। इनके प्रमुख काव्य संग्रहों में ‘मंजीर, नाश और निर्माण, धूप के धान, शिला टंख चमकीले और जो बंध नहीं सका’ आदि हैं।

कवि ने अपने रोमानी स्वरूप से पीछा छुड़ाने के लिए बहुत संघर्ष किया है। इसके बावजूद रुमानियत उनकी काव्य चेतना का केन्द्रीय भाव बन गई है। नुकीले वक्ष छुवन, उकसन उन्हें भुलाये नहीं भूलती है।

सौन्दर्यानुभूति और प्रकृति छवि—गिरिजाकुमार माथुर की काव्य प्रकृति मूलतः नारी सौन्दर्य एवं प्रकृति सौन्दर्य में रमने वाले कवि की है। यह माथुर का वैशिष्ट्य भी है और उनकी सीमा भी है।

उनकी सौन्दर्य भावना में एक ओर तो प्रकृति के सुन्दर चित्र आते हैं और दूसरी ओर नारी-सौन्दर्य के चित्र स्थान पाये हुए हैं। प्रकृति और नारी-सौन्दर्य कहीं-कहीं एकाकार हो गये हैं और कहीं-कहीं प्रकृति के चित्रों, कुछ प्राकृतिक दृश्यों का नारी रूप में मानवीकरण भी किया है।

कोयल सा श्यामल स्वर
भीगी अमराई से आता है पल-पल भर
सुरमीली आँखों को ढाँक रही श्याम अलक
साँबली बदलियों का उड़ता-सा घूँघट-पट।

प्रेम और सौन्दर्य में स्मृति का प्रयोग प्राचीन एवं नवीन सभी कवियों ने किया है। गिरिजा कुमार माथुर ने भी अपनी सौन्दर्यानुभूति को प्रेम के स्मृति सागर में अवगाहन कराया है। प्रकृति का परिवेश प्रेममय स्मृति को और बढ़ा देता है तथा यामिनी में धूप-छाँह का विरोधाभास प्रेम-कला के स्वरूप को दिखलाता है—

‘याद यह हो आई मुझको पुरानी
इसी ऊनी सी पतली चाँदनी में
तरल चन्दर-सी चढ़ते ही उजेली
खेलते धूप-छाँह हर्म यामिनी में।’

इस प्रकार माथुर ने अपनी कविताओं में जीवन सौन्दर्य को अभिव्यक्त करते हुए उसको खुले मन से स्वीकृति प्रदान की है। कवि की काव्यांगिनी में जो संकलित रचनाएँ हैं, उनमें सौन्दर्यानुभूति और कवि को मधुर भावनाओं को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से भारे एक लेन्डस्केप, हेमन्ती पूनम, ढाक बनी और एक सीमा तक निसर्ग वापसी को लिया जा सकता है। इन कविताओं में प्रकृति के आकर्षक बिम्ब हैं, सौन्दर्य का सागर है। हेमन्ती पूनम में प्रकृति का मोहक किन्तु उद्दीपन रूप है तथा ढाक वन में प्रकृति के पूर्ण परिवेश को आलम्बन शैली में अभिव्यक्त किया गया है। ‘हेमवन्ती पूनों’ का वह सौन्दर्य भी देखिए, जो अनेक ऐन्द्रिय संवेदना से पुष्प बिम्बों को प्रस्तुत करता है—

आज दिखाता है दही-सा चांद शीतल
कौन जाने स्याह शीशा चाँद हो कल

उड़े उजली धूप बनकर चाँदनी भी
आबनूसी मूर्ति-सी हो आयु उज्ज्वल
इसलिए हेमन्त की
यह मन्द टिठुरन
तन छूअन से
उष्म तुम कर दो, रसीली।

प्रेमानुभूति—सौन्दर्य और प्रेम का वैसा सम्बन्ध है जैसा वृक्ष और उसकी छाया का। जहाँ सौन्दर्य है वहाँ प्रेम है और जहाँ प्रेम है वहाँ सौन्दर्य है। गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं में ये दोनों एकाकार हैं। विवेचन की सुविधा के लिए अलग-अलग रूपों में देखने का प्रयास किया जा सकता है।

‘अभी तो झूम रही है रात’, ‘चूड़ी का टुकड़ा’, ‘रेडियम की छाया’ और ‘देह की आवाज’ आदि कविताओं में प्रेम की स्थूल अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। डॉ. नगेन्द्र ने इनके प्रेम के संदर्भ में लिखा है— ‘यह श्रृंगार न तो भूखे तन और भूखे मन का आहार है और न किसी अदृश्य आलम्बन के साथ कल्पना-विहार है। कवि ने जीवन की मधुर भावना को बड़े हल्के हाथों से किन्तु पूरी तरह गहराई के साथ बिम्बित करने का सफल प्रयत्न किया है।’

गिरिजा कुमार माथुर मांसलता के कवि हैं। लेकिन उनकी मांसलता में रीतिकालीन कवियों जैसा दरबारी विलास न होकर आधुनिक लोकतंत्र की उन्मुक्तता की मिठास है। मांसलता का एक दृश्य प्रस्तुत है—

‘दृज-कोर से उस टुकड़े पर, तिरने लगी तुम्हारी सब सज्जित
तस्वीरें,
रोज सुनहली
कसे हुए बन्धन में चूड़ी का झर जाना
निकल गई सपने जैसी वे मीठी रातें
याद दिलाने रहा
यही छोटा सा टुकड़ा।’

डॉ. नगेन्द्र ने इस कविता के मर्म का उद्घाटन करते हुए लिखा है— ‘इस कविता का विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि इसकी प्रेरत अनुभूति अतीन्द्रिय या मानवीय न होकर मांसल है। उसकी सृष्टि कल्पना के द्वारा की गई है अर्थात् उसमें अनुभूति की कल्पना नहीं है। मधुर अनुभूति के एक लघु क्षण के ऊपर बड़ी बारीकी के साथ कल्पना की रंजित तस्वीरें रची गई हैं, जिस तरह कोई शिल्पी काँच के छोटे टुकड़े पर या रत्न का पूरा चित्र अंकित कर देता है।’

कवि माथुर यह तो नहीं मानते कि मानव संस्कृति संकट-ग्रस्त है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि मानव-संस्कृति विराट परिवर्तनों से होकर गुजर रही है। इसलिए वे विरही युवा मित्र को सलाह देते हैं—

मेरे विरही युवा मित्रवर
तुम जिस दुःख से परेशान हो
वह सचमुच है दुःखी नहीं कोई जीवन में
असली दुःख है और बहुत-से
तुम जिसको हो समझ रहे भारी पहाड़-सा
वह तो कागज-सा हल्का है।

विषमता जन्य आधुनिक बोध— गिरिजा कुमार माथुर की कविता के विषय प्रेम, सौन्दर्य नहीं बल्कि आधुनिक बोध के उस स्तर को भी उन्होंने अपनी कविताओं का विषय बनाया है, जो जीवन सौन्दर्य के लिए संघर्ष को जन्म देने वाला रहा है। वे संघर्षों के कवि भी हैं।

कवि माथुर का कथन है कि— ‘आधुनिकता की मैं वैज्ञानिक प्रक्रिया से उद्भूत मूल्य-दृष्टि मानता हूँ। इसलिए आधुनिकता के बाह्य-अरोप या उसकी अनुकृति को उतना ही दोषपूर्ण समझता हूँ, जितना स्वीकृत रूढ़ियों का अनुकरण। अन्ततः कवि कर्म की सार्थकता इसी में है कि उसकी रचना में कथ्य की मौलिकता, अनुभूति का ताव और अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता किन्तनी है भले ही कविता नई हो या पुरानी और आधुनिकता इसी तथ्य पर निर्भर करती है कि कृतिकार में निरन्तर वर्तमान की सांस्कृतिक संवेदना किन्तनी है और मूल्यगत भविष्य के रूपाकारों की वह किस मात्रा में पूर्वाभिव्यंजना कर सका है।’

कवि माथुर ने लिखा है कि जीवन की परिस्थितियाँ प्रतिदिन विषम होती जा रही हैं। प्रकृति के चित्र में भी वह विषमता देखता है—

आज जीवन चांदनी रुठी हुई है
आयु छवि शत खण्ड है टूटी हुई है
जिन्दगी के चांद का ठहराव कम है
आइनों की पांत यों फूटी हुई— ‘हेमन्ती पुनो’

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि कवि माथुर प्रेम, सौन्दर्य एवं संघर्ष के कवि हैं।

प्रश्न-26. ‘पन्द्रह अगस्त’ शीर्षक कविता का मूल प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।

अथवा

‘पन्द्रह अगस्त’ कविता में कवि ने क्या सन्देश दिया है ?

उत्तर—परिचयात्मक भूमिका— गिरिजा कुमार माथुर हिन्दी काव्य की नयी धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनके समस्त काव्य में नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। ये न तो पूरी तरह से प्रयोगवादी कवि हैं और नवीनता के दुराग्रही कवि हैं। आपने अपनी कविताओं

में सर्वप्रथम यथार्थ जीवन के धरातल पर उतर कर उसमें जहाँ साधनहीन निम्न वर्ग एवं मध्यम वर्ग के व्यक्ति को चित्रित किया है। तार ससक से अपनी कविता को प्रारम्भ करने वाले माथुर अपने प्रारम्भिक रूप में रंग, रूप और रोमांस की भावनाओं को प्रयोगशील शैली में व्यक्त करते हैं लेकिन धीरे-धीरे इनके काव्य की भावभूमि में विविध रूपात्मकता आती चली गयी। कवि समसामयिक चिन्तन के प्रति भी जागरूक दिखाई पड़ता है। पन्द्रह अगस्त कविता में कवि ने भारत की आजादी के प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए आजादी के प्रति सावचेत रहने का जहाँ सन्देश दिया है वहीं सभी को आजादी का सही अधिकार मिल सके की ओर संकेत किया है।

4. कविता का मूल प्रतिपाद्य—कवि ने पन्द्रह अगस्त कविता के माध्यम से आजादी की सुरक्षा के प्रति सावधान रहने के लिए जन-मानस को जगाते हुए इसे 'जीत की रात' कहा है क्योंकि आज की हमें एक लम्बे संघर्ष के उपरान्त प्राप्त हुई है। इसलिए इसकी हर कीमत पर रक्षा करना हमारा दायित्व है। कवि अपने भाव व्यक्त करता हुआ कहता है कि आजादी—

प्रथम चरण है नये स्वर्ग का
है मंजिल का छोर
इस जन-मंथन से उठ आई
पहली रत्न हिलोर।

कवि ने आजादी को नये स्वर्ग का प्रथम चरण बताया है। उसका मानना है कि अभी हमें जीवन के क्षेत्र में सच्ची आजादी प्राप्त नहीं हुई है। इसकी पूर्ति के लिए संघर्ष आवश्यक है। आजादी का लाभ सभी को समान अधिकार के रूप में मिलना चाहिए था लेकिन अभी तक ऐसा नहीं हो सकता—

अभी शेष है पूरी होना
जीवन-मुक्ता डोर,
क्योंकि नहीं मिटपाई दुःख की विगत सांझों को।

आजादी की प्राप्ति के उपरान्त विषमता की व्याप्त श्रृंखलाएँ धीरे-धीरे टूटने लगी हैं परिणामस्वरूप पुराने शासकों की स्थिति में बदलाव आ गया है। अब कोई शासक के रूप में राजा महाराजा नहीं रहा है फिर भी अभी सबको आजादी का सही हिस्सा जो उन्हें प्राप्त होना चाहिए था वह प्राप्त नहीं हो सका है। कवि कहता है कि—

ऊँची हुई गशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया लेकिन उसकी छायाओं का डर है।

आज जो परिस्थितियाँ बाह्य दृष्टि से बत रही हैं। इनके कारण भी हमें हमारी आजादी के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है। आजादी की प्राप्ति के उपरान्त आन्तरिक दृष्टि से अभी शोषण का युगीन चक्र पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है लेकिन अब परिस्थितियाँ पूरी तरह से बदल रही हैं। कवि विश्वास प्रकट करता हुआ कहता है कि—

शोषण से मृत है समाज
कमजोर हमारा घर है
किन्तु आ रही नई जिन्दगी
यह विश्वास अमर है।

आजादी में समानता का लाभ सभी को मिलेगा अपने इस कथन पर कवि आस्था व्यक्त करता हुआ आजादी की रक्षा के लिए सतर्क रहने का सन्देश देता है।

9.2 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'पन्द्रह अगस्त' कविता में कवि ने देशवासियों को आजादी के प्रति सचेत रहने और सभी को आजादी का पूरा-पूरा उपभोग करने का सन्देश देते हुए बताया है कि जन-जागृति से व्याप्त प्राचीन परम्पराओं में परिवर्तन आता जा रहा है और अब वह दिन दूर नहीं है जब सबको आजादी के उपभोग का समान अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

इकाई- 10 : नरेश मेहता

संरचना

10.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

10.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

10.2 सारांश

10.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

किरण धेनुएँ

(1)

उदयाचल से किरन-धेनुएँ
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।
पूँछ उठाये, चली आ रहीं
क्षितिज जंगलों से टोली,
दिखा रहे पथ, इस भूमि का
सारस सुना-सुना बोली,
गिरता जाता फेन मुखों से
नभ में बादल बन तिरता,
किरण धेनुओं का समूह
यह आया अन्धकार चरता,
नभ की आम छाँह में बैठा,
बजा रहा वंशी रखवाला ॥ 1 ॥

शब्दार्थ—उदयाचल=जहाँ से सूर्य उदित होता है। किरन-धेनुएँ=किरण रूपी गाएँ। हाँकला रहा है=लेकर आ रहा है।
क्षितिज=आसमान। फेन=झाग। चरता=हटाता।

प्रसंग—प्रस्तुत कवितांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्य माधुर्य' के 'किरण धेनुएँ' नामक पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि ने सूर्य को मतवाला ग्वाला तथा किरणों को धेनुओं का रूप दिया है।

व्याख्या—प्रस्तुत पद्यांश नरेश मेहता द्वारा विरचित 'किरण धेनुएँ' शीर्षक कविता से अवतरित किया गया है। कवि ने किरणों को धेनुओं के रूप में प्रस्तुत करते हुए वर्णित किया है कि प्रभात रूपी ग्वाला सूर्य की किरण रूपी गायों को उदयाचल पर्वत से हाँकता हुआ लिए चला आ रहा है। अर्थात् प्रातःकाल में सूर्य अपनी किरणों को पृथ्वी पर बिखेरने लगा है। वे किरण रूपी गाएँ अपनी पूँछ उठाये हुए आकाश रूपी जंगल में टोली रूप में निकल कर आ रही हैं और पृथ्वी पर आने के लिए सारस अपनी बोली सुनाकर उनका पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। आकाश मार्ग से आने वाली किरन धेनुओं के मुखों से जो श्वेत झाग गिर रहा है। वह आकाश में बादल का रूप धारण करके विचरित हो रहा है। किरण रूपी गायों का समूह पृथ्वी मार्ग पर आते हुए अन्धकार को नष्ट कर रहा है। अर्थात् पृथ्वी पर किरणें गिरने से अन्धकार नष्ट हो रहा है। आकाश रूपी आम्रवृक्ष की छाया में इन गायों की रक्षा करने वाला सूर्य वंशी बजा रहा है अर्थात् प्रातःकालीन वातावरण सूर्य किरणों से आच्छादित हो रहा है और निद्रा जागरण से हलचल प्रारम्भ हो गयी है।

विशेष—1. कवि ने किरणों के माध्यम से प्रकृति-सौन्दर्य का अनोखा चित्रण प्रस्तुत किया है। मानवीकरण, उपमा और रूपक अलंकारों का सहज प्रयोग वृष्टव्य है।

(2)

ग्वालिन-सी ले दूब मधुर
वसुधा हँस-हँसकर गले मिली,

चमका अपने स्वर्ण सांग वे
अब शैलों से उतर चलीं,
बरसा रहा आलोक धूप है,
खेतों खलिहानों में,
जीवन की नव किरण फूटती
मकई के धानों में
सरिताओं में सोम दुह रहा, वह अहीर मतवाला ॥ 2 ॥

शब्दार्थ—इव=घास। वसुंधा=पृथ्वी। शैलों=पर्वतों से। आलोक=प्रकाश।

सप्रसंग व्याख्या—कवि पूर्व प्रसंगानुसार सूर्य किरणों का रूपक बाँधते हुए कहते हैं कि आकाश मार्ग से किरण रूपी गायों के आने पर ग्वालिन रूपी धरती हरी-हरी (घास) लेकर उनका स्वागत करने को तत्पर हो रही है। अर्थात् पृथ्वी पर आच्छादित दूब पर सूर्य किरणें पड़ने लगी हैं। इस दूब पर पड़े हुए ओस कण चमकने लगे हैं। कवि कल्पना कर रहा है कि मानो अपनेसुनहरे सींगों को चमकते हुए सूर्य किरण रूपी गाएँ उदयाचल पर्वत से नीचे उतर कर आ गयी हैं। सूर्य की किरणों का दूधवत प्रकाश अब खेतों और खलिहानों में बिखरने लगा है। सूर्य के प्रकाश से मक्का के खेतों में नव आशा की किरणें फूटने लगी हैं और नदियों के जल से मतवाला सूर्य (कृष्ण) जल रूपी सोम रस को दोहन करने लगा है।

विशेष—कवि ने प्रकृति का मानवीकरण रूप में आकर्षक वर्णन किया है। सांग रूपक का सहज प्रयोग दृष्टव्य है।

10.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. नरेश मेहता की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—नरेश मेहता नयी कविता के समर्थ कवि हैं। उनका व्यक्तित्व उनके काव्य पर अपनी गहरी छाप छोड़ता है। इनको नयी कविता के क्षेत्र में एक नया आयाम प्रस्तुत करने वाला कवि माना जाता है। उन्होंने अपने कवि रूप को हमेशा मतवादी संकीर्णता और प्रचलित फैशन से बचाये रखा है। यही कारण है कि एक ओर तत्त्विक स्वर पर आधुनिक होते हुए भी उनकी कविता आधुनिकवाद का ढिंढोरा पीटती हुई नहीं दिखाई देती है। उनका सम्बन्ध कम्युनिष्ट पार्टी से होने पर भी उनकी कविता में आक्रोश का स्वर नहीं बल्कि करुणा और आनन्द की ही भावभूमि मिलती है।

नरेश मेहता मूलतः भागवती संवेदना के कवि हैं। अस्तित्व मात्र के प्रति कृतज्ञता और उसकी पावनता का बोध ही उनके कवि को यह सामर्थ्य है कि उनके काव्य का आलम्बन चाहे प्रकृति हो, वैदिक औपनिषदिक वैष्णव प्रतीक हो या ईसाई प्रतीक हो, वह सबसे समान स्तर पर काव्यात्मक लगाव विकसित कर पाते हैं। नयी कविता की दृष्टि से उनकी काव्यगत विशेषताओं को निम्न शीर्षकों के माध्यम से संक्षिप्त में वर्णित किया जा सकता है—

वेदना भाव—नरेश मेहता की कविता में वेदना भाव की प्रधानता है। उनके काव्य में युग जीवन की कुण्ठा के प्रति वेदना अनेक रूपों में चित्रित हुई है। उनके काव्य में कहीं साँसारिक विषमता तो कहीं पूर्वजों के प्रति विवशता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इनके प्रति वेदनाभाव साकार हो उठा है—

मैं
अपनी विवशताएँ नहीं
कदाचित
मेरी विवशता
पुत्र को जीना पड़े ?
हमारे वंश का यह धर्म है।

यथार्थ की अनुभूति—कवि ने अपने युग में उत्पन्न सभी समस्याओं एवं परिस्थितियों का अध्ययन बड़ी गहनता एवं तीव्रता के साथ किया है। इसी कारण उनकी कविताओं में अपने युग की कुण्ठा, निराशा, जड़ मान्यताओं और व्याप्त विषमताओं की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

पुत्र मेरे
आज के वैषम्य से कह दो

हमें आलेख कर
मरुस्थलों में गाड़ दो गहरे
तुम्हारे परित्यक्त वस्त्रों में
हमें सज्जित करो
ये हमारे वस्त्र
भिक्षा पात्र
फैले हाथ—
सब अभिव्यक्ति पाने के लिए
गरम स्रोतों से
धरा में अंधेरा गम खा रहे हैं।

व्यंग्य बोध—नरेश मेहता के काव्य में उनका व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण प्रभावी रूप में प्रस्तुत हुआ है। उन्होंने समाज, व्यक्ति युगीन स्थितियों, परिस्थितियों और विसंगतियों को गहराई से देखा और परखा है और उन पर अपना व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है—

आओ
हम जब अपने-अपने नाम खोज निकालें
भीड़ों की असावधानियों से जो
कुचल गये हैं
क्योंकि वे मूल्य हैं
अपने को जानने के लिए कि
हम कब लोग होते हैं
और कब नहीं।

आस्थावादी स्वर—नरेश मेहता की कविताओं में उनका आस्थावादी स्वर मुखरित हुआ है। कवि कर्म के प्रति अपनी आस्था की अभिव्यक्ति करता हुआ कहता है कि—

हम परिश्रम की गन्ध होती है।
वहीं लोगों में होती है
मैं ऐसी गन्धों को भी
मूल्य कहता हूँ।

सौन्दर्यानुभूति—कवि ने जहाँ सामाजिक जीवन के यथार्थ और उसमें व्याप्त विसंगतियों पर अपनी लेखनी उठायी है, वही नूतन सौन्दर्य-बोध को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। कवि नवीनता का पुजारी है। उनके काव्य में कोमल भावनाओं का सधा हुआ रूप परिलक्षित होता है—

तुम यहाँ बैठी हुई भी अभी उस दिन
सेब सी बन लाल
चिकने चीड़ सी वह बाँह अपनी टेक पृथ्वी पर वहाँ
इस पेड़ जड़ पर बैठ,
मेरी राह में, इस धूप में।
वह गया वह नीर,
जिसको पदों से तुमने छुआ था।

प्रकृति सौन्दर्य—कवि नरेश मेहता के काव्य में प्रकृति सौन्दर्य और प्रेम की भी अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने प्रकृति के प्रति अपनी अनन्य आस्था को प्रकट करते हुए उसके विविध रूपों की झाँकियाँ प्रस्तुत की है। प्रतीक रूप में उनका प्रकृति प्रेम इस प्रकार है—

ग्वालिन सी ले दूब मधुर
वसुधा हँस-हँस कर गले मिली
चमका अपने स्वर्ण सींग वे
अब शैलों से उतर चली
बरस रहा आलोक धूप है
खेतों-खलिहानों में
जीवन की नव किरण फूटती
मकई के धानों में

संस्कृति के प्रति आस्था—कवि नरेश मेहता के काव्य में उनको भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था के भाव भी जाग्रत हुए परिलक्षित होते हैं। कवि “अतिथि देवो भव” भाव को चरितार्थ करता हुआ अपने श्रद्धामय भावों को अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि—

द्वार पर जो भी गुहार देता है
वैष्णव है।
अथाचित अतिथि यह कर पाती है।
किन्तु दाता है।
न जाओ किसी के स्वरूप पर
स्वागत करो।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कवि नरेश मेहता की कविता भाव और शिल्प की दृष्टि से अपना अलग महत्त्व रखती है। उनके काव्य में विषय-विविधता, चिन्तन, गाम्भीर्य, शिल्प नवीनता और मुक्त छन्दों का सफल प्रयोग उनकी काव्य प्रतिभा को बोधित कराती है।

प्रश्न-2- नरेश कुमार मेहता की कविता ‘किरन धेनुएँ’ में छिपे भावों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—नरेश मेहता की कविता की मूल संवेदना जीवन में पवित्रता की अनुभूति और उसी पवित्रता से जुड़े रहने में मानवीय जीवन की सार्थकता है। इस दृष्टि से उन्हें धार्मिक, अध्यात्मिक मानववादी कवि कहा जा सकता है। मेहता जी का लेखन बहुत विस्तृत है। ‘दूसरा सप्तक’ में उनकी ‘समय देवता’ और किरन धेनुएँ आदि कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। इनके अनेक प्रमुख काव्य संग्रह हैं— ‘वनपांखी सुना,’ ‘बोलने दो चीड़ को,’ ‘मेरा समर्पित एकान्त,’ ‘उत्सवा,’ ‘तुम मेरा मौन हो,’ ‘संशय की एक रात,’ ‘महाप्रस्थान,’ ‘प्रवाद पर्व तथा शबरी आदि। इस प्रकार नरेश मेहता की काव्य साधना बहुमुखी प्रतिभा की परिचायक एवं अत्यधिक प्रभावित रही है।

नरेश मेहता की ‘किरन धेनुएँ’ कविता रूपक-योजना पर आधारित है। इसमें सूर्य की किरणों को गायें तथा सूर्य को ग्वाला का रूपक देकर चित्रित किया गया है।

‘किरन-धेनुएँ’ कविता का मूलभाव

1. उषाकाल का सौन्दर्य चित्रण— प्रस्तुत कविता में मेहताजी ने उषाकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन करते हुए लिखते हैं कि सूर्य रूपी ग्वाला उदयाचल से किरणरूपी गायों को हाँक कर ला रहा है। वे किरण रूपी गायें अपनी-अपनी पूँछ उठाकर क्षितिज रूपी जंगल से टोली बद्ध होकर चली आ रही हैं। उषाकाल का सुन्दर चित्र खींचते हुए कवि कहता है कि सूर्य रूपी ग्वाला के आगमन पर सारस पक्षी कलरव कर रहे हैं। मानो अपनी मधुर कलरव करके किरण रूपी गायों का मार्ग प्रशस्त कर रहे हो। कवि अपनी मधुर कल्पना को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं—

उदयाचल से किरन-धेनुएँ
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।
पूँछ उठाये, चली आ रही

क्षितिज जंगलों से टोली
दिखा रहे पथ इस भूमि का
सारस सुना-सुना बोली।

2. मानवीकरण का चित्रण- नरेश मेहताजी की कविताओं में मानवतावादी की झलक भी यत्र-तत्र दिखाई देती है। उनकी प्रकृतिपरक कविताओं में अचेतन पदार्थों पर मानवीय व्यापारों का आरोप दिखाई देता है। जैसे गायों के मुख से फेन गिरता है वैसे ही किरण रूपी गायों के मुख से फेन गिर रहा है और वह फेन आकाश में बादल बनकर तर रहे हैं। वह किरण रूपी गायों का समूह समूचे अंधकार को चीर कर आ रहा है वहाँ पूरे संसार को प्रकाशित कर रहा है।

गिरता जाता फेन मुखों से
नभ में बादल बन तिरता
किरण धेनुओं का समूह
यह आया अन्धकार चिरता ।

3. प्रकृति पर अभेदारोप- कवि ने इस कविता में प्रकृति पर अभेद का आरोप किया है। जैसे ग्वालें गायों को चरने देते हैं और स्वयं किसी पेड़ की छाया में बैठकर बंशी बजाते हुए विश्राम करते हैं वैसे ही किरण रूपी गायें संसार का अंधकार चीरकर आगे बढ़ती हैं और आकाश रूपी आम की छाया में बैठकर सूर्य बांसुरी बजा रहा है। जिस प्रकार ग्वालिन हरी-हरी घास हाथ में लेकर उसे खिलाने के लिए पुचकारती है, प्यार करती है, उसी तरह धरती रूपी ग्वालिन की किरण रूपी गायों से हंस-हंसकर गले मिलती है। सूर्य की किरणें प्रातः समय कुछ पीलापन लिए होती हैं। धीरे-धीरे तीव्र होती जाती हैं। फिर ऊँचे पर्वतों से होते हुए सम्पूर्ण धरती पर फैलने लगती हैं। अतः कवि कल्पना करता है कि किरणरूपी गायों ने अब अपने स्वर्णिम प्रभा वाले सींग को चमकाते हुए पर्वत शिखरों से धरती पर चरने के लिए उतर रही हैं।

नभ की आग्न छांह में बैठा,
बजा रहा बंशी रखवाला
ग्वालिन-सी ले दूब मधुर
वसुधा हंस-हंस गले मिली,
चमका अपना स्वर्ग सींग वे
अब शैलों से उतर चली।

4. नवजीवन का संचार- कवि ने सूर्य को मतवाला ग्वाला बताते हुए कहते हैं कि जब सूर्य का प्रकाश तीव्र होकर खेतों खलिहानों में मकई के धानों पर पड़ता है तब उसे नये अंकुर प्रस्फुटित होते हैं। वे नये अंकुर ऐसे लगते हैं कि माना उनमें नव जीवन का आशामयी किरण फूट रही हो। सूर्य की गर्मी से उन्हें ऊर्जा मिलती तब देखकर अन्दर में नव संचार होने लगता है। सूर्य का मधुर पेय सोम होता है। सूर्य का तीव्र प्रकाश जब सरिताओं में पहुँचता तब अपनी उष्ण किरणों के द्वारा रस का दोहन करता है। उसे पीकर वह मदमस्त होता दिखाई देता है-

जीवन की नव किरण फूटती
मकई के धानों में
सरिताओं में सोम दुह रहा,
वह अहीर मतवाला।

10.2 सारांश

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मेहता जी की प्रस्तुत कविता में सूर्य और उसकी किरणों पर ग्वाला एवं गायों का आरोप कर प्राकृतिक सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण किया है। इस कविता में मानवीय भावना व्यक्त होती है। सूर्य प्रतिदिन अन्धकार को चीरकर समस्त प्रकृति में जीवनी शक्ति का संचार करता है तथा सब तरफ हरा-भरा कर देता है। इस कविता में कवि ने पवित्र मानवतावादी का स्वर मुखरित किया है।

इकाई- 11 : रामानन्द तिवारी 'भारती नन्दन'

संरचना

11.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

11.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

11.2 सारांश

11.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

तुलाधार

(1)

तब तुलाधार उनसे कर जोड़े बोले,
मुनिवर मैंने तो पण्य तुला में तोले,
मैं नहीं जानता ब्रह्मतत्त्व क्या होता,
मैं तो माया के भव्य स्वरूप संजोता।
बस एक अर्थ परमार्थ बना है मेरा,
मन एक अर्थ का बना निरन्तर चेरा,
बस एक अर्थ साधन में रत जीवन है,
परमार्थ, धर्म और कर्म एक बस धन है ॥ 1 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित रामानन्द तिवारी 'भारती नन्दन' द्वारा रचित 'तुलाधार' खण्डकाव्य से अवतरित है। यह अंश जांजलि ऋषि तथा तुलाधार के मध्य हुए वार्ता प्रसंग से अवतरित है।

व्याख्या—मुनि प्रश्न को सुनकर तुलाधार ने हाथ जोड़कर मुनि से कहा है कि हे मुनिवर! मैं वणिक कार्य से जुड़ा हुआ हूँ इसलिए ब्रह्म तत्त्व आदि का मुझे ज्ञान नहीं है। हे मुनिवर! मैंने तो अब तक क्रय-विक्रय के योग्य वस्तुओं को ही तराजू में तोला है और इसी तौल के धर्म का निर्वहन किया है।

मैं ब्रह्मतत्त्व के बारे में कुछ भी नहीं जानता क्योंकि मेरा सम्बन्ध व्यापार से होने के कारण मैं हमेशा ही माया के भव्य स्वरूप से ही जुड़ा रहा हूँ अर्थात् मैं अर्थ संग्रह की नीति का पालन करता हूँ और अर्थ संग्रह की ही योजना की क्रियान्विति करता रहा हूँ। अब तक धन-संग्रह ही मेरा परमार्थ बना हुआ है। मैं व्यापार करता हूँ इसलिए मैं केवल धन का ही उपासक रहा हूँ। मेरे जीवन का मूल उद्देश्य केवल धन कमाना है और मैं उसी अर्थोपार्जन से जुड़ा हुआ हूँ। मेरा परमार्थ और मेरा धर्म केवल धन ही है क्योंकि मैं जीवन में धन को ही महत्त्व देता हुआ चला आ रहा हूँ।

विशेष— 1. तुलाधार ने अपने जीवन के लक्ष्य की ओर संकेत किया है।

2. धन अर्जन के महत्त्व पर प्रकाश डाला है।

3. व्यापारी ब्रह्म तत्त्व की ओर इतना ध्यान नहीं देता है जितना अपनी वस्तुओं के क्रय-विक्रय की ओर ध्यान देता है।

(2)

पण्यों के संग्रह-हित जो वन में रहते,
उसके हित वन के कष्ट अनेकों सहते,
उनके पण्यों का समुचित मूल्य चुकाता,
उन पर मैं अपना स्नेह समस्त लुटाता।
है अधिक पण्य से मेरा उनसे नाता,
मैं उनका सुख-दुःख अपना मान बटाता

आत्मीय बन्धु है मेरे वे वनवासी,
मैं सदा श्रेय का उनके हूँ अभिलाषी ॥ 2 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यावतरण भारतीनन्दन द्वारा रचित तुलाधार खण्डकाव्य से अवतरित है। 'तुलाधार' व्यापारी वनवासियों के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि—

व्याख्या—वनवासी जीवन मानव हितार्थ है। वे विक्रय योग्य वस्तुओं का संग्रह वन में रहकर करते हैं। उन वस्तुओं के संग्रह में वे अनेक कष्टों को उठाते हैं। उनके इस दर्शन से ही मेरे मन में धर्म भावना का जागरण हुआ और उनके अब तक केवल मैंने इतनी ही धर्म की बात को सीखा है कि उसी आधार पर मैं उनके द्वारा संग्रहीत वस्तुओं का उचित मूल्य चुकाता हूँ और उनको स्नेहिल भाव से देखता हूँ क्योंकि वे मेरे जीवन के आधार हैं और मानव जीवन के वे आधार हैं क्योंकि उनके सहारे से ही जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। इसलिए वस्तुओं से अधिक वे हमारे लिए प्रिय हैं। इसलिए मैं उनसे सुख-दुःख में अपनी सहभागिता निभाता हूँ। वे वन में निवास करने वाले मेरे सम्बन्धी जन के समान हैं। इसीलिए मैं हमेशा अपने कल्याण की उनसे कामना करता रहता हूँ।

- विशेष**— 1. मानव-मानव का सहारा होता है। एक-दूसरे की जीविका एक-दूसरे पर आधारित होती है।
2. जीविकोपार्जन में सहायक जन आत्मीय जन के समान होता है।
3. तुलाधार की चारित्रिक विशेषताएँ दृष्टव्य हैं।

(3)

मेरे पण्यों के शाहक नगर निवासी,
मैं हूँ उनके भी मंगल का अभिलाषी
मैं उचित मूल्य में पण्य उन्हें सब देता,
श्रम और लाभ का भाग अल्पतम लेता।
बस यही धर्म जीवन का मैंने जाना,
इसमें ही मुझको पुण्य मिला मनमाना,
मैं वणिक पण्य क्रय-विक्रय का व्यापारी
हूँ धर्मशास्त्र का नहीं अधिक अधिकारी ॥ 3 ॥

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित रामानन्द तिवारी भारतीनन्दन द्वारा रचित खण्डकाव्य 'तुलाधार' से अवतरित है। वणिक वृत्तिधारी तुलाधार अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहता है कि मेरे कर्म के आधार पर जहाँ वनवासी आत्मीय जन हैं वहीं नगर निवासियों की मंगल कामना का मैं अभिलाषी हूँ क्योंकि दोनों के सहयोग से ही मैं अपने जीवन का यापन करता हूँ। वह कहता है कि—वनवासियों से विक्रय हेतु जो मैं वस्तुओं को खरीदता हूँ उनको नगर में ले जाकर मैं बेचता हूँ इसलिए नगरवासी मेरी वस्तुओं के शाहक हैं। शाहक व्यापारी के लिए सबसे अधिक प्रिय होता है इसलिए मैं शाहक रूपी नगरवासियों के हित और मंगल का आकांक्षी हूँ। मैं वनवासियों से विक्रय वस्तुओं का क्रय कर उन्हें ले जाकर उचित मूल्य पर देता हूँ और अपनी मेहनत का लाभ आंशिक रूप में प्राप्त करता हूँ। बस जीवन का यही धर्म मेरी समझ में आया है और इसी को मैं अपना धर्म मानता हूँ। मैं वणिक हूँ और वस्तुओं के क्रय का पालन करता हूँ। मुझे धर्म शास्त्र का इतना ज्ञान नहीं है।

विशेष— 1. व्यापारी की मनोवृत्ति और उसके कृत्य पर प्रकाश डाला गया है।

2. आंशिक लाभ के आधार पर वस्तुओं का क्रय-विक्रय ही कर्म और धर्म है, संकेतित है।

(4)

सुन तुलाधार के वचन अतीव विनय के,
भ्रम दूर हुए जाजलि के मुग्ध हृदय के,
होकर विनम्र वे तुलाधार से बोले
तुमने जीवन के तत्त्व न्यास से तोले ॥ 4 ॥

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पद्यावतरण भारतीनन्दन द्वारा रचित खण्डकाव्य 'तुलाधार' से अवतरित है। तुलाधार ने अपनी व्यापारिक दृष्टि के आधार पर अपना धर्म जांजलि मुनि के समक्ष प्रस्तुत किया। जांजलि मुनि उसकी बात को सुनकर अत्यधिक प्रभावित हुआ। तुलाधार के विनय पूर्ण वचनों को सुनकर जांजलि के मुग्ध हृदय में जो भ्रम समाया हुआ था वह दूर हो गया और वे विनय भाव से पूरित होकर तुलाधार से कहने

लगे कि तुमने वास्तव में ही जीवन के तत्त्व धरोहर रूपी तराजू पर रखकर तोले हैं अर्थात् कर्म ही धर्म है। इसका तुमने हित चिन्तन के साथ पालन किया है।

- विशेष—** 1. ऋषि हृदय की सहजता दृष्टव्य है।
2. जनहित में कर्म ही धर्म है।

11.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1: रामानन्द तिवारी 'भारती नन्दन' द्वारा रचित 'तुलाधार' कविता में क्या भाव निहित है, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर— प्रस्तुत कविता 'तुलाधार' खण्ड काव्य से सम्बन्धित है। इस कविता में मुनि जाजलि और तुलाधार के संवाद को व्याख्यायित किया जाता है। तुलाधार (व्यापारी) अपने व्यापार को ही धर्म मानता है। व्यापार को ही अपना तथा दूसरा का हित मानता है। इस कविता में ब्रह्मतत्त्व, परमार्थ, पुरुषार्थ चतुष्टय तथा लोक जीवन की सार्थकता पर सुंदर विवेचन किया गया है।

1. ब्रह्मतत्त्व का रहस्य— प्रस्तुत कविता में कवि कहते हैं कि जब मुनि जाजलि तुलाधार से उसके जीवन विषयक प्रश्न पूछता है कि वह जीवन की सफलता और असफलता किसमें मानता है। तुलाधार प्रश्न को समाहित करते हुए कहता है कि लौकिक जीवन में तो माया का ही प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है। मैं भी दिन-रात माया का ही भव्य स्वरूप को संजोता रहता हूँ। क्योंकि सामान्य व्यक्ति के लिए ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त कर पाना अतीव कठिन है। ब्रह्म तत्त्व के रहस्य को हर कोई नहीं समझ सकता। क्योंकि व्यापारी लोग क्रय माल का तुला में तोल कर विक्रय करता है। अतः सामान्य व्यक्ति तो इन लोग व्यवहार में ही लगा रहता है—

तब तुलाधार उनसे कर जोड़े बोले,
मुनिवर मैंने तो पण्य तुला में तोते,
मैं नहीं जानता ब्रह्म तत्त्व क्या होता,
मैं तो माया का भव्य स्वरूप संजोता।

2. अर्थोपाजन ही परमार्थ है— प्रस्तुत कविता में तुलाधार का माध्यम से कवि कहना चाहता है कि लौकिक जीवन में धन से बढ़कर कुछ भी नहीं है। धन ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ एवं परमार्थ है। अर्थ, काम, धन और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में संसारिक व्यक्ति के लिए अर्थ की ही सबसे अधिक महिमा है। संसारिक व्यक्ति हर समय अर्थ का ही चिन्तन करता है और उसे प्राप्त करने में ही अपना सारा जीवन लगा देता है। धन का अर्जन ही वस्तुतः व्यक्ति का परमार्थ, धर्माचरण और कर्तव्य परायण बना गया है क्योंकि हर क्षेत्र में धन की ही प्रधानता दिखाई देती है—

बस एक अर्थ परमार्थ बना है मेरा,
मन एक अर्थ का बना निरन्तर चेरा,
बस एक अर्थ साधन में रत जीवन है,
परमार्थ, धर्म और कर्म एक बस धन है।

3. श्रम एवं पण्य का मूल्यांकन— इस कविता में बताया गया है कि लोक जीवन में अर्थ संग्रह का ही महत्त्व है। अर्थ संग्रह के लिए लोग अनेकों कष्ट और संघर्ष झेलता है। अर्थ कैसे प्राप्त हो इसके लिए विविध वस्तुओं का व्यवसाय करता है। व्यवसाय करने का हेतु है अर्थसंग्रह तथा अर्थसंग्रह के लिए वह वनों में जाता है। वहाँ से बेचने योग्य वस्तुएँ लाता है। तुलाधार उन वस्तुओं को तराजू में तोल कर बेचता है। इस प्रकार से तुलाधार अपने श्रम, पुरुषार्थ के माध्यम से उन बेचने योग्य सामग्री का मूल्य अपने खजाने में रखता है। यही उसका लोक धर्म है—

मैं तोल तुला पर उनका विक्रय करता,
श्रम और पण्य का मूल्य कोष में भरता।

लोक धर्म की सेवा— प्रस्तुत कविता में कवि यह बताना चाहते हैं कि वन के वासी सन्यासी जो प्राकृत जीवन में विस्मृत रहते हैं। वे भी अर्थाजन को जीवन का कर्तव्य और धर्म मानते हैं। उनके धर्म दर्शन से ही लोक धर्म की भावना जागी है।

यही तत्त्व उनके धर्म से सीखा है। तथा धर्म का सार भी मुझे इतना ही लगता है कि यदि लोक सेवा अर्थ और काम के द्वारा ही कर सकते हैं। ऐसा कार्य करके ही प्राणी विश्व देवा बन सकते हैं। अतः अर्थ का अर्जन ही सच्चा लोक धर्म बन गया है-

उनसे बस इतना धर्म तत्त्व है सीखा
इतना ही मुझको सार धर्म में दीखा
है धर्म लोक की अर्थ काम से सेवा,
इससे ही होते प्राणित विश्वे देवा।।

अर्थोपार्जन में भी सद्व्यवहारिकता- कवि का कहना है कि व्यवसाय-व्यापार में भी आपसी स्नेह व्यवहार की अपेक्षा रहती है। क्योंकि व्यापार व्यवहार में पण्य से अधिक रिशतों का सम्बन्धों का महत्त्व होता है। जब तक एक दूसरों के सुख-दुख को नहीं समझेंगे तो वह व्यवसाय में भी सफल नहीं हो पायेगा। अतः वनवासियों के हित का ध्यान रखकर, उन्हें उचित मूल्य देकर वस्तुओं का क्रय करना ही आत्मीय संबंधों को छोड़ता है। मैं हमेशा उनके कल्याण की अभिलाषा करता हूँ। अर्थ के अर्जन के साथ सद्व्यवहार की बहुत आवश्यकता है। अतः 'तुलाधार' कवि के माध्यम से कविता तुलाधार से यह कहलाना चाहता है-

मैं उचित मूल्य में पण्य उन्हें सब देता,
श्रम और लाभ का भाग अल्पतम लेता।

अर्थसंग्रह के साथ जुड़ा पवित्र आचरण- प्रस्तुत कविता में कवि यह लिखते हैं कि व्यवसाय के साथ आचरण की पवित्रता नितान्त आवश्यक है। जो व्यापारी जितना प्रामाणिक ईमानदार और सदाचार होगा वह उतना ही धनोपार्जन कर सकता है। अतः प्रस्तुत कविता में तुलाधार से कवि यह कहलाना चाहते हैं कि मैं धर्मशास्त्र का अधिकारी नहीं हूँ किन्तु मानवीय जीवन के प्रति उसकी आस्था हो। अपने जीवन में यही धर्म का सार मैंने समझा है और ऐसे व्यवहार से, आचरण से मुझे मनमान पुण्य (धर्म) मिला है। मैं तो वणिक् हूँ, क्रय-विक्रय का व्यापारी हूँ। धनार्जन करना मेरा कर्तव्य है-

बस यही धर्म जीवन का मैंने जाना,
इसमें ही मुझको पुण्य मिला मनमाना,
मैं वणिक् पण्य क्रय-विक्रय का व्यापारी
हूँ धर्मशास्त्र का नहीं अधिक अधिकारी।

11.3 सारांश

प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि यह सन्देश देना चाहता है कि जन साधारण लोग ब्रह्म तत्त्व को नहीं जानता है। वह मोह माया से घिरा हुआ है। जारों पुरुषार्थ में अर्थ को अधिक महत्त्व दिया जाता है। क्योंकि वह लौकिक जीवन के लिए अत्यधिक महत्त्व रखता है। आज अर्थ प्रधान युग है। अर्थ की आवश्यकता है। पर शोषण, धोखा, ठग, शोषण आदि का सहारा न लें। व्यवसाय में भी सच्चा स्नेह, प्रेम की आवश्यकता है। मानवीय भावों को समझते हुए व्यापारी वर्ग को श्रम और लाभ में समन्वय रखना चाहिए। ऐसा करने से ही वह लोक धर्म की रक्षा कर सकता है। कवि के धनोपार्जन के लिए पवित्र भावना को जीवन में अपनाने की प्रेरणा की है।

इकाई- 12 : नन्द चतुर्वेदी

संरचना

- 12.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 12.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 12.2 सारांश

12.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

आषाढी साँझ के पर्व पर

(1)

लो, गगन का पथ सजाया है धरा ने
शैल शिखरों को दिया सिन्दूर मण्डल
और कुकुम से सँवारी देह की छवि
आज पहला मेघ आया है अतिथि बन
इस आषाढी साँझ के मधु पर्व पर ॥ 1 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण राजस्थान के आधुनिक कवियों में अग्रणी नन्द चतुर्वेदी द्वारा रचित कविता 'आषाढी साँझ के पर्व पर' शीर्षक से अवतरित है, जिसमें कवि ने आषाढी साँझ पर हुए प्रकृति परिवर्तन की ओर संकेत किया है।

व्याख्या—कवि आषाढ़ मास की साँझ के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि आषाढ़ मास में वर्षा का वातावरण होता है। पृथ्वी का जल वाष्प बनकर बादल का रूप धारण करता है और यह बादल रूप आकाश के पथ को सजाता है। कहने का भाव यह है कि सूर्य के ताप से जो जल वाष्प बनकर उड़ता है वह आकाश में एकत्र होकर बादलों का रूप धारण करता है। हमारे यहाँ बरसात आषाढ़ मास में होती है। इस मास की साँझ जहाँ बादलों से भूषित है, वहीं पर्वतों की चोटियाँ सिन्दूरी रंग से शोभायमान हो रही हैं क्योंकि संध्या का डूबता हुआ सूरज अपनी पीत वर्णीय आभा पर्वतों की चोटियों पर फेंक रहा है। कवि कहता है कि आज आषाढी साँझ के पर्व पर बादल आकाश में अतिथि का रूप धारण करके आये हैं।

विशेष—1. कवि ने आषाढ़ मास के प्राकृतिक वातावरण को प्रस्तुत किया है।

2. बादल बनने और उसके छाने में कवि कल्पना प्रशंसनीय है।

3. गानवीकरण अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(2)

एक क्षण के लिए ही
वाष्प के उस अतनु वाले मेघ को,
देते रहेंगे,
उस पुरातन स्नेह के शत-शत निवेदन
जो मरण के द्वारा पर अविजित अमर है।
और क्या है भूमि की अनुभूति में ?
एक क्षण है
स्वप्न हैं पूरे-अधूरे, दुःख-सुख के
एक क्षण उद्दाम प्राणों की पिपासा,
एक क्षण है फूल की अविजित सुरभि का ॥ 2 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित नन्द चतुर्वेदी द्वारा रचित 'आषाढी साँझ के पर्व पर' शीर्षक कविता से अवतरित है, जिसमें कवि ने जीवन की नश्वरता और प्रकृति की अजेयता का वर्णन किया है।

व्याख्या—हम वर्षा कालीन मेघों को अपने परम्परागत स्नेह से सिंचित करते रहेंगे जो जीवन की नश्वरता के बीच अपनी शाश्वतता बनाये हुए हैं। जो प्रकृति चक्र में बँधे हुए अपने जीवन को धारण कर इस धारा को सिंचित करते रहते हैं। जीवन स्वप्न आधे अधूरे सुख-दुःख से पूरित लालसाओं से युक्त है जो क्षणित सुख पुण्य की सुरभिवत देने वाला है।

विशेष— 1. कवि ने जीवन की नश्वरता का स्वाभाविक चित्रण किया है।

2. मानव जीवन क्षणिक सुख-दुःख की लालसाओं से पूरित है, सत्य भाव दृष्टव्य है।

12.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1: नन्द चतुर्वेदी द्वारा रचित कविता 'आषाढ़ी साँझ के पर्व पर' का भावार्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर— नन्द चतुर्वेदी राजस्थान के आधुनिक हिन्दी कवियों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मूलतः आप गीतकार के रूप में जाने जाते हैं। लम्बे समय तक राजस्थान साहित्य अकादमी से सम्बद्ध रहे तथा आप विभिन्न पत्रिकाओं गन्थों के संपादन में भी संलग्न रहे।

'आषाढ़ी साँझ के पर्व पर' कविता में कवि नन्द चतुर्वेदी ने आषाढ़ के महीने की संध्याकाल को रमणीय वर्णन करते हुए भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण प्रसंग का स्मरण किया है।

1. आषाढ़ी सन्ध्या का सुषमामय चित्रण— कवि आषाढ़ मास की संध्या के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि सन्ध्याकाल के समय ऊँचे-पर्वत शिखरों पर अस्ताचल की ओर जाते सूर्य की लालिमा लिए किरण फैल जाती है उस समय ऐसा लगता है मानो धरती ने आकाश मार्ग को सजा दिया है तथा सिन्दूर व कुंकुम से पर्वत शिखरों को सजा दिया है। पर आषाढ़ मास के सन्ध्या की शोभा में कुछ ओर ही निखार होता है, क्योंकि इस महीने में वर्षा ऋतु का पहला मेघ उमड़-घुमड़ करता आकाश मार्ग से आता है। जिस प्रकार संध्याकाल के समय जब अतिथि आता है तो उसका अत्याधिक सत्कार किया जाता है, उसी प्रकार आषाढ़ी सन्ध्या को वर्षा ऋतु का प्रथम बादल अतिथि प्रतीत होता है। प्रकृति का ऐसा सौन्दर्य किसे नहीं आकर्षित करता है।

लो गगन का पथ सजाया है धरा ने
शैल शिखरों को दिया सिन्दूर मण्डल
और कुंकुम से संवारी देह की छवि
आज पहला मेघ आया है अतिथि बन
इस आषाढ़ी साँझ के मधु पर्व पर।

यक्ष प्रसंग की अभिव्यंजना— प्रस्तुत कविता में कवि नन्द चतुर्वेदी ने महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूत' खण्डकाव्य में वर्णित यक्ष प्रसंग की ओर संकेत किया है कुबेर के शाप के कारण एक वर्ष तक वह रामगिरि आश्रमों में रहने लगा। अपनी प्रिया के विरह से व्यथित उस यक्ष ने आषाढ़ मास के वर्षाकाल के प्रथम बादल को जब उत्तर दिशा में जाते हुए देखा तो उसे अपना दूत बनने की प्रार्थना की क्योंकि वह यक्ष अपनी प्रियतमा से मिलने के लिए अति आतुर था। कवि कहना चाहता है कि वह अपने हृदय में न जाने कितनी व्यथा भोग रहा था। सुखमय भविष्य के लिए स्वप्न संजो रहा था। कवि कहना चाहता है कि इसी प्रकार मानव भी अपरिचित, अजानी कामनाओं का स्पन्दद्रष्टा बना हुआ है। वह भविष्य के उज्ज्वल कल्पनाओं में अपनी उत्कण्ठा को तृष्णा रूप में पी रहा है। उस यक्षको तो एक वर्ष के लिए ही प्रियतमा का वियोग भोगना था। शाप की इतनी सीमा थी। पर आज मान असीम काल के रथ को भी चुनौती दे रहा है। इस तरह की व्यंजना व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं—

यक्ष? हाँ हम सब अजामी कामना के स्पन्दद्रष्टा
यक्ष ही तो है
इस असीम, विराट उत्कण्ठा तृष्णा को पी रहे हैं
दे रहे हैं काल के रथ को चुनौती
दो दिवस की वर्षा की महिमा मिटाकर अग्रसर है।

3. **भारतीय सभ्यता-संस्कृति की गौरव गाथा-** इस कविता में कवि ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के बीते स्वर्णिम काल का याद किया है। हमारी सभ्यता एवं संस्कृति जो स्वर्णों से मण्डित थी। आज उसके चरण धूल से धूमिल हो गई है। प्रयास करने पर भी वह धूल हटती नहीं है। आज हम अपने गौरवमय इतिहास को याद करते हैं तो स्वयं को हीन मानने लगे हैं क्योंकि हमारे देश में अनेक ऐसे वीर योद्धा हुए हैं जो स्वयं मरण महोत्सव को अपनाकर मिट गये थे। पर आज हम ऐसे गर्वपूर्ण वीर भावना से खाली होते जा रहे हैं। केवल गौरव पूर्ण इतिहास की गौरव गाथा गाते हैं। हमें केवल गौरव गाथा ही नहीं गानी है अपितु स्वर्णिम इतिहास का अनुकरण करने के लिए सम्बद्ध होना है-

जानते हैं सभ्यता के स्वर्ण-मण्डित चरण

जिन पर गिर गयी है धूल

वह बस गिर गयी है

यह स्मरण इतिहास का है।

4. **जीने की आकांक्षा-** प्रस्तुत कविता में कवि भावों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यह हमारा नश्वर शरीर चार दिन का है तथा बादल भी कभी स्थायी नहीं रहेंगे, फिर भी जीने की आकांक्षा लिए हम जीवन मार्ग पर बढ़ते रहते हैं। अचेत मेघ को यक्ष ने सन्देशवाहक बनाया और उस मेघ के प्रति पुरातन स्नेह की अभिव्यक्ति करते रहते हैं। इस नश्वर संसार में मरण धर्मा शरीर को धारण करते हुए भी अमरता को प्राप्त करना चाहते हैं।

वाष्प के उस अतनु वाले मेघ को

देते रहेंगे

उस पुरातन स्नेह के शत-शत निवेदन

जो मरण के द्वार पर अविजित अग्र है।

5. **क्षणिक जीवन अपूर्व अभिलाषा-** प्रस्तुत कविता में कवि अपने भावों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि मानव अपने क्षणिक जीवन में सुख-दुःख के घेरों से घिरा हुआ है। वह दुःख को भूलकर सुख की अभिलाषा के स्वप्न संजोता रहता है। यह किसको पता है कि ऐसे स्वप्न पूरे होंगे या अधूरे ही रहेंगे। फिर भी मन में कामनाओं की पिपासा बनी रहती है। ऐसी आकांक्षा करना कहां तक उचित है। क्षणिक जीवन की नश्वरता को समझकर अपने कदम आगे बढ़ाने चाहिए।

12.2 सारांश

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि न्य चतुर्वेदी ने प्रस्तुत कविता के माध्यम से प्राकृतिक परिवेश को लक्षित करके आज के मानव के जीवन से सम्बन्धित चिन्तन को प्रस्तुत किया है। अतीत का गौरव गाथा गाते हुए बताया है कि आज हमारी सभ्यता संस्कृति धूमिल होती जा रही है। महाकवि कालिदास के जिस यक्ष की व्यथा का चित्रण किया कवि ने उस घटना को भी यहां प्रस्तुत कर बताया है कि आज मानव इस क्षणिक जीवन में भी अतृप्त कामनाओं की सम्पूर्ति करना चाहता है। अतः इस कविता में कवि ने सम-समयिकता पर सुन्दर चित्रण किया है।

इकाई- 13 : प्रेमचन्द विजयवर्गीय

संरचना

13.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

13.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

13.2 सारांश

13.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

सीमान्त के प्रहरी से

(1)

ओ हिमानी चोटियों के सजग प्रहरी
तंग सूनी घाटियों के सबल रक्षक,
तू न एकाकी समझना आपको,
देश तेरे साथ अन्तिम श्वास तक।
जानते हम, हों न चाहे शस्त्र पूरे,
हो न चाहे पास तेरे अन्न का कण,
दे भले ही दे तू अपना प्राण तन-मन,
तू न देगा मातृ-भू का एक भी तृण ॥ 1 ॥

प्रसंग— प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित प्रेमचन्द विजयवर्गीय द्वारा रचित कविता 'सीमान्त के प्रहरी' से शीर्षक से अवतरित है। कवि देश रक्षक सैनिकों के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहते हैं कि—

व्याख्या— अरे बर्फीली चोटियों की सजगता के साथ रक्षा करने वाले हमारे वीर सैनिकों ! तुम इस रक्षा कार्य में लगे हुए अपने आपको अकेला मत समझना क्योंकि तुम हिमालय के बर्फीले भाग और संकीर्ण घाटियों की जिस तन्मयता के साथ रक्षा कर रहे हो उस कार्य में सम्पूर्ण देशवासी तुम्हारे साथ अन्तिम श्वास तक जुड़े हुए हैं। इसलिए तुम अपने आपको अकेला मत समझो और देश सेवा के दायित्व को सजगता के साथ निभाते रहो। तुम्हारा देश सेवा व्रत और त्याग अविस्मरणीय है और तुम्हारे साथ हम सबकी मंगलमयी भावनाएँ जुड़ी हुई हैं।

कवि देश रक्षक सैनिकों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर उनकी कर्तव्य परायणता और वीरता पर प्रकाश डालते हुए आगे कहते हैं कि हम यह भली-भाँति जानते हैं कि चाहे तुम्हारे पास सीमाओं पर रहते हुए खाने के लिए अनाज न हो और उनकी रक्षा करने के लिए चाहे तुम्हारे पास पूरे शस्त्र न हों फिर भी तुम्हारी कर्तव्य परायणता और वीरता में कोई कमी नहीं आती है। तुम अपने प्राणों का बलिदान दे सकते हो लेकिन अपनी मातृभूमि का एक तिनका भी किसी को छूने नहीं दोगे। इतना अटल विश्वास हमारा तुम्हारे प्रति है।

विशेष— 1. कवि ने देश की सीमाओं के रक्षक वीर सैनिकों की कर्तव्य परायणता एवं सत्यनिष्ठा का वर्णन कर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।

2. देश रक्षा के प्रश्न पर हम सब एक हैं। इस अकादय सत्य का उद्घाटन किया है।

(2)

जा कि तेरे साथ है इस देश का बल,
साथ तेरे देश की हर भावना है,
साथ धन जन, साथ तन मन
साथ, तेरी विजय की शुभ कामना है!
साथ है हर मातृ अंचल छाँह तेरे,
साथ है हर माँग का सिंदूर तेरे,

हर बहन की प्यार भीगी राखियाँ हैं,
साथ है हर दुधमुँही मुस्कान तेरे ॥ 2 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि विजयवर्गीय में देश के रक्षक वीर सिपाहियों को उनकी वीरता का अहसास दिलाया है और देशवासियों के मन में उनके प्रति श्रद्धाभाव को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत काव्यांश में कवि प्रेमचन्द विजयवर्गीय वीर सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे वीर सैनिकों ! तुम ही देश के रक्षक हो। तुम सीमा की रक्षा के लिए अपने कदमों को बढ़ाओ। इस कृत्य में तुम अकेले नहीं हो समास्त देशवासियों की बलरूपी भावनाएँ तुम्हारे साथ जुड़ी हुई हैं। तुम्हारे साथ इस देश का तन, मन, धन और तेरी विजय की कामना जुड़ी हुई है क्योंकि तुम्हारे कृत्य से ही इस देश की आजादी की रक्षा हो सकती है।

वीर सैनिकों तुम्हारी रक्षा के लिए माता के आंचलों की छाया और प्रत्येक माँ का सिन्दूर जुड़ा हुआ है। तुम्हारे साथ बहनों के प्यार में सनी हुई राखी है और नौनिहालों की मुस्कान तुम्हारे साथ जुड़ी हुई है इसलिए सीमा रक्षा के पथ पर जाते हुए तुम अपने आपको अकेला मत समझो क्योंकि हर देशवासी छोटे से बड़ा, स्त्री-पुरुष भावनात्मक दृष्टि से तुम्हारे साथ है।

विशेष— 1. वीर सैनिक सीमा के सजग प्रहरी हैं और भावनात्मक दृष्टि से सम्पूर्ण देशवासी उनके साथ जुड़े हुए हैं, भाव संकेतित है।

(3)

साथ तेरे देश का उपवास जप तप
साथ तेरे मंदिरों की प्रार्थना है,
हर अज्ञा है मस्जिदों की साथ तेरे
साथ तेरे चर्च की हर अर्चना है।
न्याय की आवाज उठती विश्व से है
विश्व से स्वाधीनता का रोष आया,
पक्ष में तेरे उठा आवाज अपनी,
सत्य का यह देख अब आक्रोश आया ॥ 3 ॥

सप्रसंग व्याख्या—पूर्व प्रसंगानुसार कवि वीर सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि देश रक्षा के प्रश्न पर सभी देशवासी तुम्हारे साथ हैं। वे अपनी भावनाओं और उनके जप-तप यहाँ तक कि उपवास आदि के फलों से भी तुम्हारे साथ हैं। उनकी मंगल भावनाएँ तुम्हारे प्रति समर्पित हैं। वे तुम्हारे कल्याण के इच्छुक हैं क्योंकि तुम देश की रक्षा का कठिन व्रत धारण किए हुए हो। इसीलिए मन्दिरों की प्रार्थना और मस्जिदों की अज्ञान का भाव भी तुम्हारे साथ जुड़ा हुआ है। यहाँ तक कि चर्च की पूजा भी तुम्हारे साथ भावनात्मक दृष्टि से समायी हुई है। कविवर कहते हैं कि इस संसार में जब भी न्याय की आवाज उठती है और स्वतन्त्रता का भाव जाग्रत होता है उसी समय तुम्हारे पथ में सत्याचार पर क्रोध का आवेश जाग्रत हो जाता है क्योंकि तुम्हीं स्वतन्त्रता, न्याय और सत्य के रक्षक हो।

विशेष— 1. कवि ने वीर सैनिकों के प्रति सम्मान भरी भावना की अभिव्यक्ति की है।

2. देश रक्षा के कार्य में रत सैनिकों के प्रति हिन्दू-मुस्लिम ईसाई तथा अन्य सम्प्रदायों के जन भावनात्मक दृष्टि से जुड़े हुए हैं।

(4)

हिंद की स्वाधीनता के हिम मुकुट पर,
तू बजादे सत्य की यह आज भेरी!
न्याय का हर पक्ष तेरे साथ है,
हे विजय की माला ही गलमाल तेरी ॥ 4 ॥

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित प्रेमचन्द विजयवर्गीय द्वारा रचित 'सीमान्त के प्रहरी से' शीर्षक कविता से अवतरित है। कवि सीमा रक्षक सैनिकों को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि—भारत की स्वाधीनता की रक्षा के लिए हिमालय की सीमा पर तुम सत्य पोषित युद्ध के बाजों को बजाने वाले वीर हो। तुम युद्ध की वह भेरी बजाओ, जिससे दुश्मन अपनी कार गुजारियों को भूल जाए। तुम इसमें किंचित मात्र भी संकोच मत करो क्योंकि तुम्हारा पथ सत्य और न्याय से समर्थित है और विजय की माला ही तुम्हारे गले की शोभा बनी हुई है।

विशेष – 1. कवि ने वीर सैनिकों को हिमालय की सीमा पर सत्य और न्याय के आधार पर युद्ध के लिए तैयार रहने की सद्प्रेरणा दी है।

2. कवितांश की भाषा ओज प्रधान तथा भावानुकूल है।

13.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न- 1. प्रेमचन्द्र विजयी वर्गीय द्वारा रचित कविता ‘सीमान्त के प्रहरी से’ का मूलभाव व्यक्त कीजिए।

उत्तर – सामान्य परिचय – ‘सीमान्त के प्रहरी से’ कविता डॉ. प्रेमचन्द्र विजय वर्गीय द्वारा रचित एक श्रेष्ठतम रचना है। उनकी यह कविता ‘युग वाणी’ काव्य ग्रन्थ से ली गयी है। डॉ. विजयवर्गीय ओजस्वी स्वर के कवि हैं। सामाजिक चिन्तन उनके काव्य का प्रधान गुण है। ‘सीमान्त के प्रहरी से’ कविता प्रेरणा व उद्बोधन से पूरित चिन्तन पर आधारित है। कवि ने बोधगम्य भाषा में सीमा के प्रहरी वीर सैनिकों को उनके कर्तव्य और दायित्व के प्रति सजग करते हुए सीमा रक्षा की प्रेरणा प्रदान की है। सीमा रक्षा का दायित्व और देश हित में उत्सर्ग सभी के लिए गौरव और गरिमा की बात है।

कविता का मूल भाव – डॉ. प्रेमचन्द्र विजय वर्गीय सीमा के रक्षक सैनिकों के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहते हैं कि तुम बर्फीली चोटियों के प्रहरी और तंग घाटियों के रक्षक हो। यद्यपि रक्षा का दायित्व तुम्हारे कन्धों पर है लेकिन तुम इस दायित्व में अकेले नहीं हो सम्पूर्ण देशवासी भावनात्मक रूप से तुम्हारे साथ जुड़े हुए हैं। हम तुम्हारे अपूर्व साहस, वीरत्व की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते क्योंकि तुम रोटी और शस्त्र के अभाव में भी देश की सीमाओं की रक्षा करने में किंचित मात्र भी संकोच नहीं करते हो। हम यह भली-भाँति समझते हैं कि तुम्हारा का अति कठिन है। लेकिन तुम्हारा देश हित में उत्सर्ग भी अमूल्य है क्योंकि –

तू सिपाही सत्य का स्वातन्त्र्य का है,
न्याय का और शान्ति का है तू सिपाही
प्राण देकर प्राण के ओ प्रबल प्रहरी,
जा रहा तू देश हित बलि पंथ साही ॥

कवि कहता है कि तुम सीमाओं के सजग रक्षक हो लेकिन तुम्हारे साथ सभी सद्भावनाओं से जुड़े हैं और सभी के मन में तुम्हारी विजयी की शुभकामनाएँ समायी हुई हैं इसलिए तुम अपने कर्तव्य मार्ग पर अडिग भाव से बढ़ते रहो क्योंकि –

साथ तेरे हर उबलता दग्ध यौवन
लड़खड़ाती रुग्णता और हर बुढ़ापे की कंपन।
साथ तेरे जन्म का है हर बधावा,
साथ है हर मौत का गीला रुदन ॥

कवि कहता है कि हे वीर सैनिकों देशवासियों की भावनाएँ चाहे वे छोटे हों या बड़े हों, वृद्ध हों या जवान हों तुम्हारे साथ जुड़ी हैं। दुआएँ दवा का काम करती हैं। इसलिए तुम दुआओं से भी जुड़े हुए हो –

साथ तेरे देश का उपवास जपतप
साथ तेरे मन्त्रियों की प्रार्थना है
हर अर्जा है मस्जिदों की साथ तेरे
साथ तेरे चर्च की हर अर्चना है।

इसलिए तुम देश रक्षा के अपने पुनीत दायित्व का सजगता के साथ निर्वहन करो। तुम सत्य, न्याय के रखवाले हो इसलिए सीमाओं की रक्षा के लिए तुम निरन्तर सजग रहकर बढ़ते रहो। तुम्हारा बलिदान और त्याग सद्भावनाओं की गोद में सजा हुआ मूल्य अविस्मरणीय तोहफा है, अतः तुम –

हिन्द की स्वाधीनता के हिम मुकुट पर,
तू बजा दे सत्य की यह आज भेरी!
न्याय का हर पक्ष तेरे साथ है,
हे विजय की माल ही गलमाल तेरी ॥

निष्कर्ष—उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि 'सीमान्त के प्रहरी से' कविता एक प्रेरणादायक कविता है और कवि ने जहाँ सैनिकों को अपनी कविता के माध्यम से उद्बोधित किया है वहीं उनके प्रति देशवासियों की जुड़ी भावनाओं की ओर संकेत कर उन्हें कर्तव्य पथ पर सत्य, न्याय की रक्षा के लिए सदा आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा दी है।

प्रश्न-2: 'सीमान्त के प्रहरी' कविता में निहित सन्देश का स्पष्ट कीजिए?

उत्तर—आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में राजस्थान के जाने-माने कवियों में डॉ. प्रेमचन्द्र विजयवर्गीय का विशेष स्थान है। डॉ. प्रेमचन्द्र विजयवर्गीय द्वारा रचित 'सीमान्त के प्रहरी' कविता 'युग वीणा' काव्य संग्रह से संकलित है। इस कविता में कवि ने देश की सीमाओं पर पहरेदारी सैनिकों को मुख्य रूप से केन्द्रित करके उनके कर्तव्यों और राष्ट्रभक्ति के स्वर को मुखरित किया है। इस कविता के माध्यम से सैनिकों को अपना संदेश दिया है जो निम्न प्रकार से है—

1. देश रक्षक-देश भक्ति का स्वर— प्रस्तुत कविता में कवि बर्फीली चोटियों की सीमाओं पर तैनात खड़े देश के रक्षकों से कहते हैं—कि हम जानते हैं तुम्हारा हृदय देशभक्ति के भावना से ओत-प्रोत है। अनेक कष्टों को सहन करते हों और तंग सूनी घाटियों की सीमान्त में एकाकी जीवन जी रहे हों। हम देशवासी जानते हैं कि तुम्हारे पास मोर्चा लेने के लिए शायद पूरे शस्त्र भी नहीं होंगे। पेट भरने को पूरा अन्न भी नहीं होगा फिर भी देश भक्ति की भावना के लिए कर्तव्य निष्ठा के साथ देश के रक्षक बने हुए हो। हम सबकी शुभाशीर्ष तुम्हारे साथ है और पूर्ण सहानुभूति रखते हैं—

ओ हिमानी चोटियों के सजगप्रहरी
तंग सूनी घाटियों के सबल रक्षक
तू न एकाकी समझना आपको,
देश तेरे साथ अन्तिम श्वास तक।

जानते हम हो न चाहे शस्त्र पूरे,
हो न चाहे पास तेरे अन्न का कण।

2. समर्पण की भावना— इस कविता में कवि ने सीमाओं पर तैनात सैनिकों के समर्पण भाव को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि उनका यह मार्ग बहुत ही कठिन है तथा कार्य भी बहुत कठिन है। चारों तरफ मौत का भयंकर अन्धेरा छाया हुआ। ऐसी स्थिति में भी तुम्हारे भीतर में बलिदान की भावना, समर्पण की भावना है। वे अपने देश के लिए प्राण को न्यौछावर कर देंगे किन्तु अपनी मातृभूमि का एक तृण भी किसी के हाथ जाने नहीं देंगे। तुम्हारी यही समर्पण की भावना अन्धकार को चीरकर सवेरा ला देगी।

जानते हम पंथ है दुर्लभ्य तेरा,
जानते हम कर्म का काठिन्य तेरा,
मौत का है सामने तेरे अंधेरा,
किन्तु पीछे आ रहा जगता सवेरा।

.....
दे भले ही दे तू अपना प्राण तन मन,
तू न देगा मातृ-भू का एक भी तृण।

3. सत्य के पुजारी— प्रस्तुत कविता में कवि ने सीमान्त पर खड़े रक्षक को देश की स्वतन्त्रता की भावना से ओत-प्रोत बताया है। हमारा राष्ट्र तभी विजय प्राप्त कर सकता है जब इसमें सत्य का अस्तित्व होगा। सत्य पर चलने वाला ही न्याय और शांति का संदेश दे सकता है। इसलिए हमारे देश के सिपाही सत्य न्याय और शांति के अग्रदूत हैं। वे अपने प्राणों का बलिदान करने के लिए तत्पर हैं। अपना बलिदान देकर देश की रक्षा करने में सचेष्ट हैं। जो इन पंक्तियों में दिखाई देता है—

तू सिपाही सत्य का स्वातन्त्र्य का है,
न्याय का और शांति का है तू सिपाही

प्राण देकर प्राण के ओ प्रबल प्रहरी !

जा रहा तू देश हित बलि पंथ राही।।

4. **विजय की शुभकामना**— प्रस्तुत कविता में कवि यह परिलक्षित करते हैं कि जब सैनिक सीमाओं की रक्षा हेतु अपने-अपने घर से प्रस्थान करते हैं उस समय देशवासियों के हृदय के उद्गार उनके प्रति प्रस्फुटित होते हैं, तुम देश की रक्षा के लिए जाओ पूरे देश की शक्ति तुम्हारे साथ है। ऐसा भावनाओं को लेकर सैनिक विजय के पथ पर अग्रसर होता है—

जा कि तेरे साथ है इस देश का बल,

साथ तेरे देश की हर भावना है,

साथ धन जन, साथ तन मन

साथ, तेरी विजय की शुभ कामना है।

5. **जनता की शुभ भावना**— प्रस्तुत कविता में कवि ने यह व्यक्त किया है कि सैनिक देश की रक्षा करता है। वह अकेले नहीं करता पूरी जनता का सहयोग होता है। देश की प्रत्येक माता का आंचल, पत्नी का सिन्दूर, बहनों की राखी, बच्चों की मुस्कराहट, युवकों की शक्ति, वृद्धों की आशीषों से भरा आत्मीय भाव सैनिकों के साथ रहता है जो उनके भीतर उत्साह का संवर्धन करता है। और उन पर शत्रु आक्रमण करते हैं तब सभी आत्मीय जन मंदिर, मस्जिद और चर्च में जाकर दुआएं करते हैं। इस तरह से सैनिकों के प्रति जनता की शुभ भावना रहती है।

13.2 सारांश

इस कविता से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि डॉ. प्रेमचन्द्र विजयवर्गीय ने सैनिकों के हृदय में रही देश भक्ति, समर्पणभाव, सत्यनिष्ठा, कर्तव्यनिष्ठा आदि का चित्रण कर उनके भीतर यह विश्वास पैदा करते हैं कि देश के रक्षक प्राणों की बाजी लगाकर अपने देश की रक्षा करेंगे तथा देशवासियों को भी उनके प्रति सहयोग की भावना रखनी चाहिए।

इकाई- 14 : हरीश भादानी

संरचना

- 14.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 14.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 14.2 सारांश

14.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

हमको मिली है उम्र

(1)

हमको मिली है
उम्र केवल प्यास पीने के लिए
बोल मन वो बूँद का अहसास लेकर क्या करें
साँस तो इतिहीन राहों की धरोहर है
किसी विस्तार जैसी ही हमारी दृष्टि
दूर सिन्दूरी दिशाओं की धरोहर है ॥ 1 ॥

प्रसंग— प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित हरीश भादानी द्वारा रचित कविता 'हमको मिली है उम्र' शीर्षक से ली गयी है। कवि हरीश भादानी मानवतावादी और प्रगतिवादी विचारधारा के पोषक कवि हैं इसलिए वे जीवन की सार्थकता के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करे हुए कहते हैं कि—

व्याख्या— मानव जीवन का महत्त्व दूसरों के हितार्थ कार्य करने में ही है। उसका मूल लक्ष्य दूसरों के दुःखों को दूर करना ही है क्योंकि परहित की भावना ही जीवन की सकारात्मकता है। यदि स्वभाव से पूरित होकर मनुष्य अपना जीवन जीता है तो उस जीवन के जीने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता है यह तो स्पष्ट है कि मानव जीवन क्षणिक है इसलिए हमारे इस नाशवान जीवन का दृष्टिकोण विस्तृत होना चाहिए उसमें जनहित का भाव समाया हुआ होना चाहिए क्योंकि जीवन आशाओं से पूरित होना चाहिए इसका अस्तित्व क्षणिक है।

विशेष— 1. जीवन की नश्वरता की ओर संकेत।

2. जीवन का लक्ष्य परहित की भावना से जुड़ा हुआ होना चाहिए।

(2)

धूप जीवन ढाँप लेने के लिए
बोल तन फिर छाँह का अहसान लेकर क्या करें
साध धामे साँस का आँचल चला करती
विषमता में जनमते गीत के हर छन्द में
सुगबुगी सूरजमुखी रागें पला करती
हमको मिली है
विवशता ही बाँच लेने के लिए
बोल मन, क्षण-अर्थ का अहसास लेकर क्या करें ॥ 2 ॥

प्रसंग— प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित हरीश भादानी द्वारा रचित कविता 'हमको मिली है उम्र' शीर्षक से अवतरित है। कवि मानव जीवन की नश्वरता और उसकी उपादेयता पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि—

व्याख्या— मानव जीवन में जो कठिनाइयाँ आती हैं वे मानव जीवन को परिस्थितियों से संघर्ष करने के लिए ही होती हैं। उन कठिनाइयों और मुसीबतों के बीच ही पलकर जीवन निखरता है इसलिए जीवन में मात्र सुखों की लालसा ही वांछित नहीं है क्योंकि दुःखी मन ही पर दुःख को सहजता से समझता है और उसके दुःख को दूर करने में अपनी सहभागिता निभाता है। जीवन श्वासों पर आधारित होता

है इसलिए श्वासों की आकांक्षा अपने मन में समाये हुए बढ़ती रहती है लेकिन विषमताओं के बीच जीवन का सत्य निखर कर आता रहता है। कवि अपने मन को सम्बोधित कर कहता है कि जब जीवन विशता को जानने और उनसे सम्बंध जोड़ने के लिए अपनी उपादेयता अपने आप में समाये हुए है तो फिर क्षणिक सुख का अहसास करने से जीवन की सार्थकता सिद्ध नहीं हो सकती है।

विशेष – 1. जीवन की सार्थकता कठिनाइयों और दुःखों की अनुभूति कर पर हित भाव में ही समाहित है।

2. मानव जीवन क्षणिक श्वासों में बँधा हुआ है, भाव संकेतित है।

मंजिल को बाँधों मत

(1)

मंजिल को बाँधो मत चलना रुक जाएगा
जीवन थक जाएगा
बोलो अठपाखी मलयानिल
कब हरी किस वातायन में
बोलो कब चपला किरण बँधी
दहरी वाले किस आँगन में
केवल दो पल की
उम्र हुआ करती पाहुन मनुहारों की
पायल को टोको मत रुनझुन रुक जाएगी
सरगम घुट जाएगा
मंजिल को बाँधों मत चलना रुक जाएगा
जीवन थक जाएगा ॥ 3 ॥

सप्रसंग व्याख्या – प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित हरीश भादानी द्वारा रचित कविता 'मंजिल को बाँधो मत' शीर्षक से अवतरित है। कवि आशावादी स्वर से पूरित होकर प्रगति पथ पर सतत् गति से बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

परम्पराओं रूपी मंजिल में अपने आपको आबद्ध मत करो क्योंकि परम्पराओं में बँधने से प्रगति का रास्ता रुक जाता है और जीवन की गति स्थिर हो जाती है। जीवन आगे बढ़ने का नाम है इसलिए उसके उद्देश्यों को किसी सीमित लक्ष्य की परिधि में नहीं रखा जा सकता है। कवि उदाहरण देते हुए कहता है कि मलयाचल से आने वाली वायु सतत् गति से प्रवाहित होकर जन-जीवन को सुख प्रदान करती रहती है वह किसी मोहक वातावरण को देखकर रुका नहीं करती है इसी प्रकार बिजली की चंचल किरण किस आँगन के बीच रुक सकती है। कवि कहता है कि गतिशीलता ही प्रगति है। अतिथि भी कुछ समय के लिए रुकता है और फिर वह भी अपने कदमों को उद्देश्य की तरफ ही बढ़ा देता है। अतः निरन्तर गतिशीलता प्रगति बोधक है। कवि प्रगति के पथ पर निरन्तर गतिमान रहने के लिए कहता है कि पायल का बजना ही उसके अस्तित्व को कायम रखना है और यही उसकी शोभा है। यदि पायल का बजना बन्द हो जायेगा तो उसमें अस्तित्व विहीनता आ जायेगी इसलिए उसकी गति को निरन्तरता प्रदान करना ही उसकी अनुकूलता है। इसलिए लक्ष्य को सीमाओं के अन्तर्गत निर्धारित मत करो इससे गति अवरुद्ध हो जायेगी।

विशेष – 1. कवि ने निरन्तर आगे बढ़ते रहने को ही प्रगति की निशानी माना है।

(2)

चल दो सरसाई सपनों से, धरती की पोरें कसमस दें
रजनीगंधा आशाओं से, क्षितिजों की पोरें रसमस दें
सखी है दिन में, सूरज की रातों में सात सितारों की
दूरी को नापो मत राहें बढ़ जाएगी
धुंधला चढ़ जाएगा
मंजिल को बाँधो मत चलना रुक जाएगा
जीवन थक जाएगा ॥ 4 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित 'मंजिल को बाँधो मत' शीर्षक कविता से अवतरित किया गया है, जिसमें कवि ने कर्मवीरों को जीवन का उद्देश्य निर्धारण के संदर्भ में अपने प्रबल विचार व्यक्त किये हैं।

व्याख्या—कवि उद्देश्य निर्धारण के सम्बन्ध में कहता है कि उद्देश्यों की सीमा को अन्दर समाहित मत करो क्योंकि जीवन प्रगति का प्रतीक है। प्रगति के लिए उद्देश्यों की सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती है। इसलिए कल्पनाओं की गति को आगे बढ़ने दो क्योंकि जब तक कल्पनाएँ ही नहीं होगी, जीवन में गति कैसे आ सकती है। इसलिए स्वप्नों को साकार करने के लिए तुम स्वयं अपना पथ प्रशस्त करो इससे तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचने के लिए एक नवीन आनन्द की अनुभूति होगी। गतिमान रहना ही जीवन है। यदि तुम अपने लक्ष्य को सीमाओं में बाँध लोगे तो तुम्हारी स्थिति उसी प्रकार की हो जायेगी जिस प्रकार दूरी नापने पर मन में यह भाव समा जाता है कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अभी इतना रास्ता और तय करना है। इससे मानसिकता में बदलाव आ जाता है अतः तुम निरन्तर गतिमान रहो।

विशेष—1. गतिशीलता ही जीवन है, लक्ष्य बोधित है।

14.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. श्री हरीश भादानी की काव्यगत विशेषताओं को वर्णित कीजिए।

अथवा

श्री हरीश भादानी के काव्य सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—सामान्य परिचय—श्री हरीश भादानी राजस्थानी भाषा के अग्रणी कवियों में से हैं और उन्होंने अपनी काव्य यात्रा एक गीतकार के रूप में प्रारम्भ की। आपके 'अधूरे गीत', 'हंसिनी की याद', 'एक अकेला सूरज खेले', 'रोटी नाम सत है', 'सन्नाटे के गीत', 'हंसिनी की याद', 'रोटी नाम सत है', 'सन्नाटे के शिलाखण्ड पर', 'सपन की गली', 'एक उजली नजर की सुई', 'नष्टो मोह', 'सड़कवासी राम', 'विश्वामित्र', 'राजगुरु', 'पितृकल्प', 'पानी का सूरज', 'चार नाम समय के', 'सुलगते पिण्ड', 'आज की आँख का सिलसिला' आदि अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें उनकी कविता शोषण के विरुद्ध आवाज बुलन्द करती हुई तथा समाज में समानता की स्थापना का आह्वान करती हुई दृष्टिगोचर होती है। आपने बीकानेर से 'दातायन' नामक पत्रिका का सम्पादन किया है और राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा मीरा पुरस्कार तथा विशिष्ट साहित्यकार का सम्मान प्राप्त किया तथा अनेक संस्थाओं ने आपका अभिनन्दन किया है।

काव्यगत विशेषताएँ—श्री हरीश भादानी के काव्य की भावगत व कलापक्षीय विशेषताएं इस प्रकार है -

भावगत विशेषताएँ—हरीश भादानी की कविताओं में सर्वत्र शोषण के विरुद्ध बुलन्द आवाज नजर आती है। समाज के दलित व पीड़ित वर्ग के प्रति उनमें गहरी संवेदना है और समाज में समानता की स्थापना के लिए वे शोषण के विरुद्ध क्रांतिकारी पक्ष लेते हैं। 'रोटी नाम सत है' शीर्षक कविता में उन्होंने भूखे-तंग लोगों की स्थितियों का संवेदनात्मक चित्रण किया है और सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक विषमताओं पर करारा व्यंग्य-प्रहार करते हुए जनता को ही राज्य का विधान बताकर भूख के धर्मराज का व्रत क्रान्ति को ही बताते हुए कहा है—

‘बाजरी के पिण्ड और, राल की बैतरणी
थाली में परोस ले, थाली में परोस ले
दाता जी के हाथ मरोड़कर परोस ले
भूख के धरम रज यही तेरा बत है
रोटी नाम सत है।’

अपनी दूसरी कविता 'क्लर्क कथा' में उन्होंने क्लर्कों के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त की है और उनके दयनीय जीवन के प्रति अपनी हार्दिक पीड़ा को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

‘रुके न देखे घड़ी कभी भी
दिन पर लदगी पीड़ा
दिन कुरसी पर रात खाट पर
कुतरे भय का कीड़ा
घर से सड़क चले पुरजे की

किसने की है रचना ?

क्या बोले मन सुगना !

‘काटो तो जानूँ’ शीर्षक कविता में उन्होंने व्यक्ति और समाज के भ्रमों के अंधकार, जड़ता के बर्फ और किंकर्तव्य-विमूढ़ स्थितियों के बंधनों को काटने का आह्वान किया है –

‘चौराहे पर प्रश्न चिह्न सी
खड़ी भीड़ को
अर्थ भरी आवाज लगाकर
दिशा दिखाओ तो जानूँ
क्षण-क्षण की छैनी से काटो तो जानूँ।’

विशेषताएँ—हरीश भादानी की कविताओं में छन्द, अलंकार, प्रकृति चित्रण, भाषा, शैलीगत अनेक मौलिक विशेषताओं के दर्शन होते हैं—

1. **छन्द**—छन्द की दृष्टि से यद्यपि भादानी की कविताओं में किसी शास्त्रीय छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है तो भी उनकी कविताएँ पदों के रूप में लिखी गई हैं। जिनके प्रारम्भ में एक टेक होती है और प्रत्येक पद्य के पश्चात् या अन्त में उस टेक को दोहराया गया है, जिससे उसमें लयात्मकता व गेयता का समावेश हो गया है। ‘रोटी नाम सत है’, ‘क्लर्क कथा’ तथा ‘काटो तो जानूँ’ कविताओं में क्रमशः ‘रोटी नाम सत है’, ‘क्या बोले मन सुगना’ तथा ‘क्षण-क्षण की छैनी से काटो तो जानूँ’ का प्रयोग टेक के रूप में ही दृष्टिगोचर हुआ है। इस प्रकार छन्द की दृष्टि से गेयता और लयात्मकता उनकी कविताओं की विशेषताएँ हैं जो उन्हें पाठ्य के साथ ही श्रवण के लिए भी प्रभावपूर्ण सिद्ध करने में सक्षम हैं।

2. **अलंकार**—श्री हरीश भादानी की कविताओं में अलंकार नियोजन में स्वाभाविक सहजता, अनुठापन व मौलिकता है और उनके नूतन, मौलिक उपमानों ने कविताओं को अधिक गम्भीर भावपूर्ण तथा प्रभाव प्रेषणीय बना दिया है। रोटी और दाल के लिए ‘रोटी नाम सत है’ कविता में रोटी को बाजरी के पिण्ड और दाल को वैतरणी नदी से उपमित करके उन्होंने भारत की आध्यात्मिकता में पिण्डदान व श्राद्ध की ओर संकेत करते हुए भूखी जनता को ‘भूख के धर्मराज’ का सफल रूप प्रदान किया है। खादी वरदी, टोपियाँ, रोटियाँ, कुंडियाँ आदि उपादानों का प्रयोग प्रतीकात्मक है तो रसोई में लाव-लाव की पैरवी का बनना सहज स्वाभाविक है। ‘वायदों की चुसनी’ से ‘छाले पड़े जीभी पर’ में विरोधाभास अलंकार की सहज नियोजन है। ‘क्लर्क कथा’ में ‘कागज का जंगल, आखर चुगनी आँखें, भुजिया-पूड़ी चखना, टप-टप टीपना, भय के कीड़े का कुतरना’ अत्रि ऐसे प्रयोग हैं जो क्लर्क की कथा की व्यथा-कथा को स्पष्ट करते हैं। ‘काटो तो जानूँ’ कविता में क्षण की छैनी, भ्रमों का संग भूसा से उपकृत करना उनकी सर्वथा मौलिक कल्पना है।

प्रकृति-चित्रण—भादानी की ऊपर्युक्त कविताओं में (पठित) प्रकृति का स्पष्टतः चित्रण नहीं किया है तो भी यह कहा जा सकता है कि उन्होंने भारत के राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की प्रकृति को साकार कर दिया है। इन्द्र का ऐरावत हाथी पर बैठना, भैरवी राग का बजना, खाली पेट की करोड़-करोड़ कुंडियाँ, स्वाहा-स्वाहा करके होम देना, टिक-टिक बजती घड़ी मूरख मौसम का छतों पर बरफ फैलना आदि ऐसे प्रयोग हैं जो प्रकृति के ही आकलन हैं।

भाषा-शैली—श्री भादानी की भाषा सरल सुबोध है और उसमें प्रतीकात्मकता की प्रमुखता है तथा यह राजस्थान की रची-बसी भाषा के शब्दों से महिमा मण्डित है। रोटी नाम सत है, रोटियाँ, कुंडियाँ, तोपें, बन्दुकियाँ, हथाली, मनसुगना, कमलरियों, ऊजागई, खूँटी, चुगनी, भूजियाँ, टप-टप टीपें, थड़ियाँ आदि शब्द शुद्ध राजस्थानी भाषा के हैं। शैली की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि भादानी की कविताओं में अद्भुत चित्रात्मकता, प्रभावप्रेषणीयता, भावानुकूलता व वातावरण को सजीव करने की क्षमता विद्यमान है।

प्रश्न-2 हरीश भादानी द्वारा रचित कविता ‘मंजिल को बाँधो मत’ का मूल कथ्य स्पष्ट कीजिए।

अथवा

मंजिल को बाँधो मत कविता में वर्णित सन्देश को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—सामान्य परिचय—‘मंजिल को बाँधो मत’ हरीश भादानी द्वारा रचित प्रगतिवादी विचारधारा से पूरित एक महत्वपूर्ण कविता है। हरीश भादानी के काव्य में मुक्ति की छटपटाहट के साथ मानवतावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। प्रगतिवादी दृष्टिकोण धनी हरीश भादानी के सम्बन्ध में श्री नंद चतुर्वेदी का यह कथन खरा उतरता है कि ‘उन्होंने मनुष्य और कविता को अलग-अलग नहीं होने दिया’ उनकी कविता आम आदमी के जीवन के निकट है। कवि ने ‘मंजिल को बाँधो मत’ कविता में जीवन की गतिशीलता को वर्णित किया है। लक्ष्यों

की सीमाओं में बँधकर व्यक्ति अपने जीवन में उस गतिशीलता को प्राप्त नहीं कर सकता है जिसका वह आकांक्षी होता है। जीवन में निरन्तरता की अनवरत गति ही उसे उसके उद्देश्य तक पहुँचा सकती है।

कविता का मूल कथन—मंजिल को बाँधो मत कविता में कवि ने प्रगतिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति करते हुए स्पष्ट किया है कि जीवन निर्धारित लक्ष्यों की सीमा नहीं है क्योंकि इससे जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। जीवन को उन्नतशील बनाने के लिए उसे उद्देश्यों के अन्तर्गत समेटा नहीं जाना चाहिए। उद्देश्यगत स्वतन्त्रता आवश्यक है तभी जीवन का सर्वांगीण विकास संभव है। कवि कहता है कि—

**मंजिल को बाँधो मत, चलना रुक जायेगा
जीवन थक जायेगा।**

कवि मंजिल को न बाँधने के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर उसका समर्थन प्रकृति के उपादानों से उदाहरण लेकर करता है कि—

**बोलो अठपाखी मलयानिल
कब हरी किस वातायन में
बोलो कब चपला किरण बँधी
देहरी वाले किस आँगन में।**

कवि कहता है कि वायु की गति स्वच्छन्द होती है तभी वह जड़ और चेतन को जीवन प्रदान करती है। इसी प्रकार बिजली अपनी स्वतन्त्र गति से गतिमान रहती है। उसे किसी घर में किसी भी स्थिति में कैद नहीं किया जा सकता है क्योंकि इनकी नियति में स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता समायी हुई होती है। इसी प्रकार यदि जीवन की गति भी स्वतन्त्रता के साथ जुड़ी रहेगी तो वह भी जन-आकांक्षाओं और भावनाओं के अनुरूप होगी। इसलिए जीवन की गति को अपने अनुसार चलने दो। उसे सीमाओं में मत समेटो। यदि ऐसा करोगे तो जीवन रुक जायेगा। इसी भावना की अभिव्यक्ति कवि पायल का उदाहरण देकर कहता है कि—

**पायल को टोको मत रुनझन रुक जायेगी।
सरगम घुट जायेगा
मंजिल को बाँधो मत चलना रुक जायेगा,
जीवन थक जायेगा।**

मंजिल को बाँधने से उत्सुकता समाप्त हो जाती है। आशा और निराशा दोनों के मध्य जीवन जूझने लगता है। उसकी गति तो स्वतन्त्रता ही होनी चाहिए। उसको लक्ष्यों और उद्देश्यों के निर्धारण के मध्य नहीं बाँधना चाहिए क्योंकि—

**बोलो कब सावन की रिमझिम
सहमी धूपाई घाटी में
बोलो बन्दी-सा छिपा रहा
कब बीज कौन-सी माटी में।**

कवि कहता है कि बीज मिट्टी में छिपा नहीं रह सकता। समय आने पर वह स्वयं अपनी स्थिति के अनुसार फूटकर अंकुरित हो जाता है। इसी प्रकार जीवन को यदि सीमित लक्ष्यों में बाँध दिया जायेगा तो उसकी गति अवरुद्ध हो जायेगी। कवि कहता है कि इस प्रकार बीज अपने समय पर अंकुरित होकर अपने अस्तित्व को कामय कर लेता है, उसी प्रकार मनुष्य को जीवन में आने वाली समस्याओं से घबराना नहीं चाहिए। बल्कि स्वगति से उसको आगे बढ़ने देना चाहिए। कवि कहता है कि—

**दूरी को नापो मत राहें बढ़ जायेगी
घुर्धं चढ़ जाएगा।
मंजिल को बाँधो मत चलना रुक जायेगा।
जीवन थक जायेगा।**

14.2 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जीवन गति का नाम है। गति स्वतन्त्र भाव से युक्त होनी चाहिए तभी जीवन की सार्थकता है। निश्चित सीमाओं में जीवन को बाँधने से उसकी गति रुक जाती है।

इकाई- 15 : रघुराज सिंह हाड़ा

संरचना

15.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

15.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

15.2 सारांश

15.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

कल की भोर

(1)

क्या मधुर थी कल्पना-अंकुर उगें,
और फूलों के यहाँ मेले लगें!
किन्तु यह क्या, शूल बोये जा रहे!
मत करो बंजर चमन की ठोर को
तुम सम्हालो रोशनी के शोर को!
नाव चल तो दी किनारे छोड़कर
रुढ़ियों के बंधनों को तोड़कर
पार जाने के लिए पतवार लो
गालियाँ ही दो न तेज हिलोर को!
तुम सम्हालो रोशनी के शोर को॥ 1 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत कवितांश हमारी पाठ्य-पुस्तक काव्य संचय के 'कल की भोर' नामक कविता से अवतरित है, जिसमें कवि हाड़ा ने आज के भौतिकवादी चकाचौंध की स्थिति को स्पष्ट किया है।

व्याख्या—कवि रघुराजसिंह हाड़ा आज के इस भौतिकवादी चकाचौंध से दूर हटकर कहते हैं कि हमने जिस समाज के सपने देखे थे और यह विचार था कि अज्ञानता, विषमता तथा अन्याय की व्याप्त शृंखलाएँ टूटेंगी सर्वत्र खुशियों का एक सुनहरा वातावरण स्थापित होगा लेकिन आज स्थिति कुछ दूसरी ही दिखाई दे रही है। भेदभाव की दीवारें खड़ी की जा रही हैं, ऊँच-नीच के विचार अपने पूर्व रूप में ही व्याप्त दिखाई से पड़ने लगे हैं। कवि कहता है कि इन विषमताओं की सीमाओं में बँधकर इस देश रूपी चमन को अनुपजाऊ मत बनाओ। तुम भौतिकवादी चमक दमक की दृष्टि में रखकर अपने सुनहले भविष्य के प्रति जागरूक रहो। कवि कहता है कि प्रगति की नाव तेजी से आगे बढ़ने लगी है, परिणामस्वरूप नव परिवर्तन दिखाई पड़ने लगे हैं लेकिन परम्पराओं को तोड़कर आगे बढ़ने के लिए प्रगति की पतवार को सँभालना होगा। परिवर्तन की तेज आँधी चलने लगी है। इसमें संयमित प्रगति की ओर तुम अपनी दृष्टि को कोरी भौतिकवादी भावनाओं में बहाने का प्रयास मत करो।

विशेष—1. कवि ने परम्पराओं के बीच प्रगति की है ओर अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्ति किया है।

(2)

व्यूह में घिरकर जबानी कुद्ध है
युद्ध है अभिमन्यु! यह तो युद्ध है
अनुभवों का पार्थ तुम से दूर है
चक्र तरसे तर्जनी के पोर को
तुम सम्हालो रोशनी के शोर को!
आँधियों की पीठ पर बैठे रहो
जो मिले तूफान उन सबसे कहो—
शौर्य और दुस्साहसों में फँक है

**यों न झटको सन्तुलन की डोर को
तुम सम्हालो रोशनी के शोर को ॥ 1 ॥**

व्याख्या—कविता के पूर्व प्रसंगानुसार कवि कहता है कि समाज में व्याप्त विषमताएँ, परम्पराओं में धिर कर युवामन छटपटा रहा है। युवा पीढ़ी को संकेतित कर कवि कहता है कि जिस प्रकार अभिनय चक्र व्यूह में फँसकर उससे संघर्ष करता रहा उसी प्रकार तुम्हें भी इस व्याप्त परम्पराओं से संघर्ष करना पड़ेगा। यदि तुम इन परम्पराओं के बीच शुभविजय की भावधारा को जगाओगे तो तुम अपने लक्ष्य को अवश्य प्राप्त करोगे। यह अलग बात है कि तुमसे अनुभव रूपी अर्जुन उसी प्रकार दूर है जिस प्रकार चक्रव्यूह में फँसे अभिनय से दूर था। प्रगति के लिए संघर्ष तुम्हीं को करना है। बिना संघर्ष के शुभविजय की कल्पना नहीं की जा सकती है इसलिए भौतिकता को तुम अपने दृष्टिकोण से देखकर अपने प्रगति के पथ पर बढ़ो।

कवि कहता है कि तुम अपने जीवन में निरन्तर संघर्ष करते रहो। इन संघर्षों के मध्य ही तुम्हें प्रगति का पथ मिलेगा और तुम्हारे जीवन का भावी पथ खुशहाल होगा जो उन्नति के दरवाजे पर खड़ा होकर समता का पाठ स्मरण करायेगा। व्याप्त विषमताएँ अस्तित्व विहीन होगी। कवि कहता है कि प्रगति के पथ पर बढ़ने के लिए शौर्य की आवश्यकता होती है और शौर्य के बल पर ही लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। दुस्साहस से नहीं। समाज में समानता का भाव सभी की प्रगति से ही संभव है। इसके लिए तुम्हें मिलकर प्रयास करने होंगे तभी कल का सुनहरा भोर प्रगति का दिग्दर्शक बनेगा। इसलिए केवल भौतिकता की चकाचौंध में फँसकर अपने प्रगति के पथ को अवरुद्ध मत करो।

विशेष—1. संघर्षों के माध्यम से ही प्रगति की जा सकती है।

2. प्रगति से ही सामाजिक समानता का स्तर कायम किया जा सकता है।

15.1 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. 'कल की भोर' शीर्षक कविता का मूल भाव स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—सामान्य परिचय—'कल की भोर' कविता रघुराज सिंह हाड़ा द्वारा रचित प्रगतिवादी विचारधारा से पूरित कविता है। कवि का सामयिक चिन्तन प्रस्तुत कविता में दृष्टव्य है। कवि आने वाले कल के प्रति आशावान रहने का संकेत करता है। इसीलिए कवि का चिन्तन नितना परम्पराओं के निकट है उतना ही वह आधुनिकता के नजदीक है। कवि आधुनिक प्रगति के मध्य रागायी भौतिकवादी चकाचौंध को संभालने का संकेत कर व्याप्त विसंगतियों और विषमताओं को दूर कर सुनहले भविष्य के प्रति आशावान है।

कविता का मूलभाव—'कल की भोर' शीर्षक कविता में कवि हाड़ा ने सामयिक चिन्तन को अभिव्यक्ति देते हुए कहा है कि आज के इस भौतिकवादी युग में सर्वत्र चकाचौंध करने वाला वातावरण छाया हुआ है। इनके बीच हमारी पुरानी मान्यताएँ, समाज में व्याप्त विषमताएँ दीवार बनकर खड़ी हुई हैं। इनसे आगे बढ़कर कल के सुनहरे स्वप्नों की संवार करने के लिए प्रयत्नरत रहो क्योंकि—

दीप देहरी पर सजाए साँझ ने,
बहुत कोसा कालिका की बाँझ ने,
किन्तु लौ उद्विग्न लपटों-सी उठी,
लील न जाए घरों के छोर को।

कवि कहता है कि व्याप्त हो रही इस भौतिकता के बीच आने वाले कल के सुनहरे स्वप्न सजाये थे कि सर्वत्र समानता और खुशहाली का एक अनोखा वातावरण बनेगा। समाज में व्याप्त विषमताएँ और भेदभाव समाप्त होंगे। लोग अपनी आँखों में नये प्रगति के स्वप्न सजाकर जाग्रत होंगे। लेकिन परिवर्तन के बीच आज कुछ स्थित अलग दिखाई पड़ती है—

किन्तु यह क्या शूल बोये जा रहे हैं।
मत करो बंजर चमन की ठौर को,
तुम संभालो रोशनी के शोर
आज सर्वत्र स्वार्थ की भावधारा तेजी से बह रही है।

'इनके बीच भी परिवर्तन प्रगति के सूचक बन रहे हैं। समाज में व्याप्त विषमता टूट रही है लेकिन इन टूटती विषमताओं के बीच जो परिवर्तन हो रहे हैं इनको कौन संभालेगा और कौन अपनी सहभागिता निभायेगा। कवि कहता है कि—

नाव चल तो दी किनारे छोड़कर,
रुढ़ियों के बँधनों को तोड़कर,
पार जाने के लिए पतवार लो,
गालियाँ ही न दो तेज हिलोर को
तुम सम्हालो रोशनी के शोर को।

कवि आज के वातावरण के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि आज समाज में व्याप्त विषमताओं के बीच युवामन निराशाओं से धिर कर झटपटाने की स्थिति की अनुभूति कर रहा है। उसकी स्थिति चक्रव्यूह में फँसे अभिमन्यु के जैसी हो रही है क्योंकि वह प्रगति के पथ पर अग्रसर होने के लिए विवश है लेकिन उसके पास अनुभवों की कमी है, कवि कहता है कि—

व्यूह में धिरकर जवानी कुद्ध है
युद्ध है अभिमन्यु! यह तो युद्ध है।
अनुभवों का पार्थ तुम से दूर है।
चक्र तरसे तरजनी के पोर को।
तुम सम्हालो रोशनी के शोर को।

कवि भटकती युवा पीढ़ी को सन्देश देता हुआ कहता है कि तुम निरन्तर संघर्ष करते रहो। इन संघर्षों के बीच ही तुम्हें प्रगति का पथ मिलेगा। तभी तुम कल के सुनहरे स्वप्न साकार कर सकोगे—

आँधियों की पीठ पर बैठे रहो
जो मिले तूफान उन सबसे कहो
शौर्य और दुस्साहसों में फर्क है।
यों न झटको सन्तुलन की डोर को,
आज दे आवाज कल की शोर को।

15.2 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कवि इस भौतिकवादी वातावरण में प्रगति के पथ पर चलने के लिए और सामाजिक वातावरण को नव रूप प्रदान करने के लिए निरन्तर संघर्ष करना आवश्यक है। क्योंकि संघर्षों के माध्यम से ही कल के सुनहरे सपने सजाए जा सकते हैं।

इकाई- 16 : दयाकृष्ण विजय

संरचना

- 16.0 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
- 16.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
- 16.2 सारांश

16.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

नई पौध का आँगन

(1)

आओ हम सब मिलकर
जड़ों से लिपटी मिट्टी झटकारकर
फेंक दें बाहर।
नई पौध के लिए करे आँगन तैयार।
बिरखे
हवा में लहराकर बढ़ें
सूरज की किरणों के साथ ऊपर चढ़े
डाल-डाल पात-पात
खुली धूप में
दूधों नहा सकें
पूतों फल सकें ॥ 1 ॥

प्रसंग—प्रस्तुत अंश हमारी पाठ्य-पुस्तक के 'नई पौध का आँगन' कविता पाठ से अवतरित है, इस कविता में दयाकृष्ण विजय ने मानवतावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है।

व्याख्या—कवि नई पीढ़ी को प्रेरणा देता हुआ कहता है कि समय की बदलती धारा के बीच जो हमारे समाज में परिवर्तन हो रहे हैं इनके प्रति हम अपने दायित्वों का निर्वहन करें और जो जीर्ण-शीर्ण परम्पराएँ हमारे समाज में व्याप्त हैं उन सबको हम मिलकर दूर करें तभी नये सुबह की नयी किरण हग सबके माध्य अपनी प्रगति की नव आशा का संचालन करेगी। इसके लिए हग सबको गिलकर आगे बढ़ना होगा। कवि कहता है कि हम सब नई पौध के लिए उपयुक्त भूमि तैयार करें फिर ही उसमें लगने वाले नये पौधे लहलहाकर बढ़ें और सूरज की रोशनी के साथ अपने अस्तित्व का विकास करें। खुले वातावरण में फल-फूलकर हमें सुख और आनन्द प्रदान करें। कहने का भाव यह है कि नये समाज की संरचना के लिए हमें एकता और सहयोग की भावना से युक्त होकर ही आगे बढ़ना होगा तभी हम अपने इच्छित मानवतावादी दृष्टिकोण को सम्बल प्रदान कर सकेंगे।

विशेष—1. कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण मुखरित हुआ है।

2. प्रतीक विधान सराहनीय है।

16.1 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. दयाकृष्ण विजय द्वारा रचित 'नई पौध का आँगन' कविता का मूल भाव स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—सामान्य परिचय—'नई पौध का आँगन' डॉ. दयाकृष्ण विजय द्वारा रचित प्रगतिवादी कविता है। प्रस्तुत कविता 'श्वेत शिखरों पर धूप बिम्ब' काव्य संग्रह से संकलित है। डॉ. विजय मानववादी आस्था और राष्ट्रवादी लेखन के केन्द्र बिन्दु हैं। आपने अपनी लेखनी काव्य के क्षेत्र में ही नहीं चलायी बल्कि एकांकी, नाटक, कहानी और निबन्ध आदि विधाओं को भी स्वतन्त्रता पूर्वक के सजाया है। आपने महाकाव्य की भी रचना की है। 'नई पौध का आँगन' कविता मानववादी दृष्टिकोण से पूरित प्रेरणास्पद कविता है। कवि पुरातनी

परम्पराओं, विषमताओं के बीच नवीनता को श्रेष्ठता के आधार पर स्वीकृति देता है। क्योंकि समय के साथ होने वाले परिवर्तन ही नव समाज के निर्माण में सहायक हो सकते हैं और इन्हीं से प्रगति और गति दोनों ही स्थितियाँ संभव हैं।

मूलभाव—कवि कहता है कि हमारे समाज में व्याप्त पौराणिक परम्पराएँ और विषमताएँ टूटने लगी हैं। यह अच्छा ही रहा क्योंकि समाज के नव सृजन में ये साधक न होकर बाधक ही सिद्ध हो रही थी, कवि कहता है कि—

अच्छा हुआ आँगन का बुढ़ियाया आम।
स्वयं गिर गया।
कीड़ों ने खा-खा कर
कर दी थी खोखली जड़ें,
सूखे पत्तों ने झर-झर
कर दी थी शाखाएँ निर्वसन।

कवि कहता है कि सृष्टि का नियम परिवर्तन है। इसलिए परिवर्तन को लाना और उसे स्वीकारा करना आवश्यक है। कवि कहता है कि—

अच्छा हुआ आँगन का बुढ़ियाया आम
स्वयं गिर गया
आओ हम सब मिलकर
जड़ों से लिपटी मिट्टी झटकार कर
फेंक दे बाहर।
नई पौध के लिए करें आँगन तैयार
विरखे
हवा में लहरा कर बढ़ें।

16.2 सारांश

कवि नव परिवर्तन का संकेत देता हुआ कहता है कि समाज के निर्माण में युवा पीढ़ी मिलकर आगे बढ़े तभी समाज में खुशहाली आ सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun



जैन विश्वभारती संस्थान

लाडनूँ - 341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

बी.ए. प्रथम वर्ष

विषय - सामान्य हिन्दी

संवर्ग

संवर्ग-1

गद्य संग्रह

संवर्ग-2

काव्य संचय

विशेषज्ञ समिति

- | | |
|--|--|
| 1. प्रो. नन्दलाल कल्ला
पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.) | 2. प्रो. वेदप्रकाश शर्मा
पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज.) |
| 3. प्रो. जगमालसिंह
पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
मेघालय विश्वविद्यालय, मेघालय (आसाम) | 4. डॉ. ममता खाण्डल
सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग,
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ़ (राज.) |
| 5. प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.) | 6. प्रो. समणी ऋजुप्रज्ञा
आचार्या, जैन विश्वभारती संस्थान,
लाडनूँ (राज.) |

लेखक

कैलाश भट्ट 'आकाश'

संपादक

डॉ. समणी शुभ प्रज्ञा

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 2800

प्रकाशक

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ-341 306 (राज.)

अनुक्रमणिका

गद्य संग्रह

पाठ	पृष्ठ संख्या
1. कहानी, आत्माराम, लेखक— प्रेमचन्द	01—07
2. आत्मकथा : आप बीती लेखक—लज्जाराम मेहता	08—18
3. जीवनी : राष्ट्रमन्दिर का सुवासित पुष्प : केसरी सिंह बारहठ—लेखक—रामचरण महेन्द्र	19—26
4. रेखाचित्र : बहिन सुभद्रा, लेखक—महादेवी वर्मा 27—29	
5. संस्मरण : साधना के कवि, लेखक—जैनेन्द्र कुमार	30—35
6. एकांकी : राखी, लेखक—हरिकृष्ण प्रेमी	36—41
7. गद्य काव्य : आकुलता, लेखक—विजयसिंह पथिक	42—46
8. व्यंग्य : मूल्यों का उलटफेर, लेखक—हरिशंकर परसाई	47—50
9. रिपोर्ताज : मुक्ति योद्धाओं के शिविर में, लेखक—विष्णुकान्त शास्त्री	51—53
10. यात्रा : दाक्षिण गंगा गोदावरी, लेखक—काका कालेलकर	54—59
11. पत्र साहित्य : इतिहास से शिक्षा, लेखक—जवाहरलाल नेहरू	60—63
12. वैज्ञानिक निबन्ध : पर्यावरण और सनातन दृष्टि, लेखक—छगन मोहता	64—68
13. ललित निबन्ध : हल्दी-दूब और दधि-अच्छत, लेखक—विद्यानिवास मिश्र	69—77
14. भाषण : भारतीय चिन्तन में धर्मनिरपेक्षता, लेखक—डॉ. शंकर दयाल शर्मा	78—82
15. रारंकृति : राजरथान की रारंकृतिक धरोहर, लेखक—आरचन्ड नाहटा	83—87
16. पंचलाइट लेखक— फणीश्वरनाथ रेणु	88—94
17. डायरी (अंश) : प्रवास की डायरी, लेखक—डॉ. हरिवंशराय बच्चन	95—98
18. साक्षात्कार : सिन्धी साहित्यकार ईश्वर चन्दर से, लेखक—मनोहर वर्मा	99—101

काव्य संचय
आधुनिक हिन्दी काव्य का विकास

लेखक	कविता	पृष्ठ संख्या
1. मैथिलीशरण गुप्त	मातृभूमि आगे बढ़ो! ऊंचे चढ़ो!	102—110
2. जयशंकर प्रसाद	भारत महिमा, प्रयाण—गीत	111—120
3. सुमित्रा नन्दन पंत	भारत माता, द्रुत झरो	121—127
4. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	वह तोड़तो पत्थर, जागो फिर एक बार	128—143
5. महादेवी वर्मा	क्या पूजा क्या अर्चन?, वे मुस्काते फूल	144—148
6. रामधारी सिंह दिनकर	जनतंत्र का जन्म	149—157
7. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'	नदी के द्वीप, हिरोशिमा	158—169
8. सुधीन्द्र	कोकिल, राजस्थान—वन्दना	170—175
9. गिरिजा कुमार माथुर	पन्द्रह अगस्त	176—180
10. नरेश कुमार मेहता	किरन धेनुएँ	181—185
11. रामानन्द तिवारी 'भारती नन्दन'	तुलाघार	186—189
12. नन्द चतुर्वेदी	आषाढ़ी साँझ के पर्व पर	190—192
13. प्रेम चन्द विजयवर्गीय	सीमान्त के प्रहरी से	193—197
14. हरीश भादानी	हमको मिली है उम्र, मंजिल को बाँधो मत	198—202
15. रघुसिंह सिंह हाड़ा	कल की मोर	203—205
16. दयाकृष्ण विजय	नई पौध का आंगन	206—207